Haridwar

113007

Acc. No
RT-0555

सचित्र आयुर्वेद

बम्बई सरकार द्वारा नियुक्त आयुर्वेद कमीशन के सदस्य
गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) में आयुर्वेद कालेज के स्टाफ के साथ

गुरुकुल-पत्रिका
गुरुकुल कांगड़ी

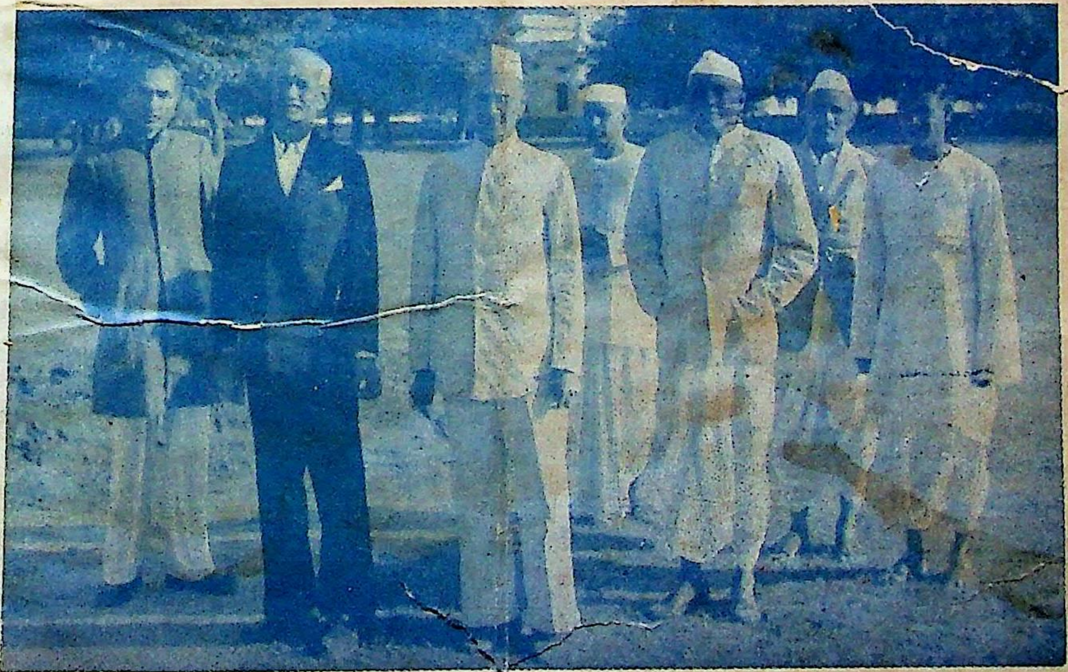

प्रकाशक
द्यनाथ आयुर्वेद भवन लि

'सचित्र आयुर्वेद' के ग्राहकों को उपहार

सन् १९५२ के बैद्यनाथ कलेंडर में भगवान् धन्वन्तरि का बहुत ही सुन्दर तिरंगा चित्र छापा गया है। यह चित्र हमने कलेण्डर के लिए विशेष रूप से बंगाल के सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री इन्द्र दूगड़ से बनवाया है। यह तो निस्संदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि भगवान् धन्वन्तरि का इतना सुन्दर चित्र बाजार में मिलना असम्भव है। फ्रेम में मढ़वाकर स्थायी रूप से घर में और औषधालय में रखने लायक है। श्री धन्वन्तरि जयन्ती पर हमारे पाठकों ने ऐसे चित्र की आवश्यकता महसूस की थी। पर उस समय हम उनकी इच्छा की पूर्ति करने में असमर्थ थे। अब हमने निश्चय किया है कि अपने सब ग्राहकों को यह चित्र उपहार-स्वरूप भेजें। अतएव नवीन ग्राहक बननेवालों को अपना चन्दा शीघ्र ही भेजना चाहिए ताकि उनको भी भगवान् धन्वन्तरि के सुन्दर चित्रवाला यह बैद्यनाथ कलेण्डर भेजा जा सके।

मुखपृष्ठ का चित्रपरिचय

बम्बई सरकार द्वारा नियुक्त आयुर्वेद कमीशन गत मास (अक्टूबर १९५२) गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार) के अन्तर्गत आयुर्वेद महाविद्यालय में आयुर्वेद की प्रगति का निरीक्षण करने के उद्देश्य से गया था। कमीशन के अध्यक्ष डा० के० एस० म्हस्कर थे। उसी अवसर का चित्र है।

बाएँ से दाएँ :—श्री रामेश वेदी (रिसर्च स्कालर); कैप्टेन सुन्दर लाल भण्डारी (प्रिन्सिपल, गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय); डाक्टर के० एस० म्हस्कर (आयुर्वेद-अन्वेषण समिति के अध्यक्ष); डा० सत्यपाल (चीफ़ मेडिकल आफिसर, गुरुकुल विश्वविद्यालय); वैद्य बापालाल भाई (प्रिन्सिपल, आयुर्वेद महाविद्यालय, सूरत); वैद्य गोखले (प्रिन्सिपल, आयुर्वेद कालेज, पूना)।

दो बहुमूल्य सम्मतियाँ

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद की सम्मति :—

"आयुर्वेद एक ऐसा विषय है जिसके उद्धार का प्रयत्न किया जा रहा है। इस काम के लिए 'सचित्र आयुर्वेद' जैसी पत्रिका का महत्त्व और स्थान है।'

सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता, बिहार के स्वायत्त शासन व स्वास्थ्यमन्त्री माननीय पण्डित विनोदानन्द झा की सम्मति :—

'सचित्र आयुर्वेद' का प्रकाशन बड़ा ही सुन्दर है। विषयों का विभाजन और उनका सम्पादन अत्यन्त अच्छे ढंग से किया जाता है।

प्रकाशक—पण्डित रामनारायण शर्मा वैद्य (१, गुप्ता लेन, कलकत्ता) के लिए जनवाणी प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स
([illegible] कलकत्ता ७) में मुद्रित।

शीतकाल में मालिश के लिए

H.L.

SACHTIRA AYURVED.

2951

G.K.V.
Lib
HARDWAR

शी ता आ जाती है, होठ फटने सब उपद्रव शान्त हो जाते हैं इस ऋतु में तैल मर्दन, शिर रोगी मनुष्य भी नीरोग होकर

महानारा ह के वात रोगों की मशहूर दवा है।)

महाविषगर्भ तैल—सब तरह के तैल लगाने पर भी जब वात वेदना (वायु का दर्द) न जाती हो तब इसे लगाना चाहिए। यह ८० तरह के वात रोगों को नष्ट करने में बहुत तेज है। कीमत—१० तोला १॥।≡), ५ तोला १-)॥,

दशमूल तैल—यह तैल सब प्रकार के सिर दर्द में मालिश करने से तत्काल लाभ करता है। इसके अतिरिक्त कान और आँख के दर्द में भी अच्छा गुण करता है। कीमत—५ तोला १≡), २॥ तोला ॥≡)॥

महामाष तैल (निरामिष)—पक्षाघात, (लकवा) आदि में अङ्ग असक्त हो जाते हैं। उनमें फिर से नवजीवन लाने के लिए और वात रोगों को नष्ट करने के लिए सर्वश्रेष्ठ है। कीमत—१० तोला ३॥), ५ तोला २)

महालाक्षादि तैल—पुराने ज्वर और राजयक्ष्मा में महोपकारी है। इससे प्रसूति ज्वर और हाथ-पैरों की जलन नष्ट होकर ताकत बढ़ाती है। १० तोला २।-), ५ तोला १।)॥

विष्णु तैल (वृहत्)—जिसका कोई अङ्ग सूखता जाता हो या लड़खड़ाकर चलता हो, उसके लिए और उँगलियों का जकड़ जाना, उन्माद, सिर एवं जोड़ों के दर्द आदि में बहुत लाभ करता है। कीमत—१० तोला ३।≡), ५ तोला १॥।-)

श्रीगोपाल तैल—रईस लोगों के काम की वस्तु है। रोज लगाने से बुढ़ापा नहीं आता, शरीर को नीरोग और पुष्ट रखता है। नपुंसकता में भी फायदा करता है। यह कस्तूरी मिश्रित तैल है। कीमत—१० तोला ६।), ५ तोला ३।), १। तोला ॥।≡)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, कलकत्ता, पटना, झाँसी, नागपुर।

वैद्यनाथ स्वर्णघटित रस

आयुर्वेदीय चिकित्सा में रसों का बहुत उत्तम स्थान है। वैद्यों के पास रस-चिकित्सा न होती, तो वतमान डाकृरी चिकित्सा के सामने ठहरना कठिन था। यदि वैद्यों के पास स्वर्णघटित रस-रसायन न हों, तो उन्हें शस्त्रहीन योद्धा समझना चाहिए। रस-रसायन अल्प मात्रा (एक-दो रत्ती) में ही तत्काल लाभ दिखलाता है और इससे अरुचि भी नहीं होती।

हम निरन्तर इस बात का प्रयत्न करते हैं कि आयुर्वेद की औषधें डाकृरी दवाओं के सामने श्रेष्ठ साबित हों। प्रत्येक भारतवासी, अमीर और गरीब आयुर्वेद से लाभ उठाकर उसकी प्रशंसा करें—इसीलिए मूल्य में लाभ को प्रधान स्थान नहीं दिया जाता। उचित मूल्य में प्रमाणित रस-रसायन चाहनेवाले सज्जन निश्चय ही हमारी औषधों से संतुष्ट होंगे। नीचे हम कुछ प्रधान स्वर्णघटित रसों के गुण-धर्म दे रहे हैं :—

कल्याण सुन्दर रस—निमोनियाँ और उरस्तोय में संचित कफ और जल को शोषण कर रोगी को निरोग कर देता है। मूल्य—१ तो० ५२), ।) आना भर १३-), =) भर ६॥-), -) भर ३।-)

कस्तूरी भैरव रस (वृहत्)—वायु की उग्रावस्था सन्निपात और नाड़ी कमजोर हो जाने पर इसके प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। मूल्य—१ तो० २६), ।) भर ६॥-), =) भर ३।-), -) भर १॥≡)

कुमार कल्याण रस—यह दवा अपने नामानुसार बच्चों के सभी रोगों में फायदा करता है। चेचक और मोतीझरे की तो यह खास दवा है। मूल्य १ तो० ६४), ।) भर १६-) =) भर ८-), -) भर ४-)

गर्भ चिन्तामणि रस—गर्भावस्था के समय ज्वर, दाह और सन्निपात होने पर या बच्चा पैदा होने के बाद प्रसूत ज्वर में इसका सेवन करना बहुत लाभदायक है। मूल्य—१ तो० २६), ।) भर ६॥-), =) भर ३।-), -) भर १॥≡)

चतुर्मुख रस—वायु रोगों के लिए यह रामबाण है। मूल्य—१ तो० २४), ।) भर ६-), =) भर ३-), -) भर १॥-)

चिन्तामणि रस—यह सब प्रकार के हृदय रोगों के लिए लाभदायक है। हृदय रोग के साथ यकृत शोथ में भी आरोग्यबर्द्धनी बटी के साथ यह विशेष गुण करती है। मूल्य—१ तो० २८॥), ।) भर ७≡), =) भर ३॥=), -) भर १॥।-)॥

चिन्तामणि चतुर्मुख रस—चतुर्मुख रस की अपेक्षा यह विशेष लाभदायक है। मूल्य—१ तो० ४०), ।) भर १०-), =) भर ५-), -) भर २॥-)

जयमंगल रस—जीर्णज्वर मलेरिया तथा कठिन बुखारों के लिए प्रसिद्ध दवा है। मूल्य—१ तो० ३३), ।) भर ८।-), =) भर ४≡), -) भर २=)

त्रैलोक्य चिन्तामणि रस—यह दवा नये-पुराने सब तरह के वात रोगों को नष्ट कर बल-वीर्य्य की वृद्धि करती है। मूल्य—१ तो० ७४॥), ।) भर १८॥≡), =) भर ९।=), -) भर ४॥≡)॥

पूर्णचन्द्र रस (वृहत्)—धातु पुष्टि के लिए निश्चित लाभकारी, बल, वीर्य्य-वर्द्धक, शुक्रस्राव और प्रमेह आदि विकारों के लिए अपूर्व लाभकारी दवा है। मूल्य—१ तो० १२॥), ।) भर ३≡), =) भर १॥=), -) भर ॥।-)॥

बंगेश्वर रस (वृहत्)—इसके सेवन से नये-पुराने सब प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, वीर्य्य-क्षीणता, शीघ्र पतन, पेशाब के साथ वीर्य्य गिरना, स्वप्नदोष आदि नष्ट होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। मूल्य—१ तो० १९॥), ।) भर ४॥।≡), =) भर २॥), -) भर १।)॥

बसंत कुसुमाकर रस—प्रमेह, शुक्रपात, नपुंसकता, मधुमेह आदि रोगों की अचूक दवा है। मूल्य—१ तो० ३७), ।) भर ६।-), =) भर ४॥≡), -) भर २।=)

बसन्त तिलक रस—इसके सेवन से प्रमेह, मधुमेह, वीर्य्य-विकार नष्ट होते हैं। मूल्य—१ तो० ३२), ।) भर ८-), =) भर ४-), -) भर २-)

बसन्त मालती रस—पुराने बुखार, राजयक्ष्मा, खाँसी, दमा, और कमजोरी आदि में बहुत फायदा करती है। मूल्य—१ तो० २६), ।) भर ६॥-), =) भर ३।-), -) भर १॥≡)

वात चिन्तामणि रस (वृहत्)—भयंकर वात रोगों के लिए अचूक दवा है। मूल्य—१ तो० ३८), ।) भर ९॥-), =) भर ४॥।-), -) भर २।≡)

महालक्ष्मी विलास रस—फुफ्फुस (फेफड़े) संबंधी रोगों में विशेषकर राजयक्ष्मा की उग्रावस्था में यह अपूर्व लाभ करता है। मूल्य—१ तो० १६), ।) भर ४-), =) भर २-), -) भर १-)

मृगांक रस—राजयक्ष्मा जैसे भयंकर रोगों के लिए प्रसिद्ध दवा है। मूल्य—१ तो० ९६), ।) भर २४-), =) भर १२-), -) भर ६-)

याकूती—हृदय की दुर्बलता, नाड़ी क्षीणता, शरीर ठंडा पड़ जाना, दम उखड़ जाना आदि में शीघ्र लाभ करता है। मूल्य—१ तो० ४८), ।) भर १२-), =) भर ६-), -) भर ३-)

योगेन्द्र रस—यह वात-पित्तज रोग, उन्माद, मूर्च्छा हिस्टीरिया, पक्षाघात आदि को नष्टकर शरीर में बल-वीर्य्य, बढ़ाता है। मूल्य—१ तो० ५८), ।) भर १४॥-), =) भर ७।-), -) भर ३॥≡)

रत्नगिरि रस—सब प्रकार के नवीन और जीर्णज्वर, खाँसी, श्वास, दुर्बलता और रक्तपित्त की प्रसिद्ध दवा है। मूल्य—१ तो० ५०), ।) भर १२॥-), =) भर ६।-), -) भर ३≡)

रत्नगर्भ-पोट्टली रस—आयुर्वेदीय रसायनों में इसकी प्रधानता है। राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास आदि भयङ्कर रोगों का नाशक है। मूल्य—१ तो० ६७), ।) भर १६॥।-), =) भर ८।≡), -) भर ४।)

रसराज रस—पक्षाघात, लकवा, अपतन्त्रक, आक्षेपक, सिर में चक्कर आना आदि कठिन वातरोगों को दूर करता हैं। मूल्य—१ तो० ३०), ।) भर ७॥)॥, =) भर ३॥।-), -) भर १॥।≡)

शक्रवल्लभ रस—हस्तमैथुनजन्य नपुंसकता की श्रेष्ठ दवा है। मूल्य—१ तो० १९), ।) भर ४॥-), =) भर २।≡), -) भर १।)

श्वासचिन्तामणि रस (वृहत्)—पुराने और कठिन श्वास रोगी जो किसी दवा से अच्छे न हों उनके लिए यह रामबाण दवा है। मूल्य—१ तो० २०), ।) भर ५-), =) भर २॥-), -) भर १।-)

सर्वाङ्ग सुन्दर रस—बालग्रह, ज्वर अतिसार दूषित दूध के कारण उत्पन्न विकार आदि बाल रोगों की प्रसिद्ध दवा है। मूल्य—१ तो० ४८), ।) भर १२-), =) भर ६-), -) भर ३-)

सुवर्ण मालिनी वसन्त रस (वृहत्)—जीर्णज्वर, क्षय, कास, श्वास आदि में विशेष लाभदायक है। मूल्य—१ तो० २४), ।) भर ६-), =) भर ३-), -) भर १॥-)

सूतशेखर रस नं० १—अम्लपित्त की यह अत्यन्त प्रसिद्ध औषधि है। मूल्य—१ तो० १०), ।) भर २॥-), =) भर १।-), -) भर ॥≡)

सूतिका भरण रस—सब प्रकार के प्रसूत रोग और धनुर्वात की प्रसिद्ध दवा है। मूल्य—१ तो० ३२), ।) भर ८-), =) भर ४-), -) भर २-)

सोमनाथ रस—श्वेत प्रदर के लिए प्रसिद्ध दवा है। मूल्य—१ तो० २४), ।) भर ६-), =) भर ३-), -) भर १॥-)

हेमगर्भ पोट्टली रस—इसके सेवन से राजयक्ष्मा, संग्रहणी, कास-श्वास, हृदयरोग आदि कठिन से कठिन रोग अच्छे हो जाते हैं। मूल्य—१ तो० ५६), ।) भर १४-), =) भर ७-), -) भर ३॥-)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० कलकत्ता, पटना, झांसी, नागपुर

सम्पादक मंडल

निर्देशक—आ० म० म० पं० भागीरथ स्वामी

प्रधान सम्पादक—पं० रामनारायण शर्मा, वैद्य शास्त्री

सहायक सम्पादक—पं० सभाकान्त झा, आयुर्वेद शास्त्री

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
सम्पादकीय ...		.... ३९७
रस का स्थान हृदय ...	वैद्य रणजितराय	... ४०१
आयुर्वेदीय चिकित्सा के व्यापक सिद्धान्त ...	वैद्य रामरक्ष पाठक, आयुर्वेदाचार्य	... ४०६
विषम ज्वर ...	वैद्य रमेशप्रसाद त्रिपाठी, ए० एम० एस०	... ४१५
स्वेदापग वर्ग ...	वैद्य विश्वनाथ द्विवेदी, आयुर्वेदशास्त्राचार्य	... ४२१
निदान-चिकित्सा हस्तामलक ...	वैद्य रणजितराय	... ४२४
क्षय रोग का मानसिक कारण ...	प्रो० लालजीराम शुक्ल	... ४३१
कज्जली कल्प ...	वैद्यराज पु० वि० धामणकर, आयुर्वेद-भूषण	... ४३५
दन्तोत्पाटन की प्राचीन कला ...	वैद्य किशोरीदास गुप्ता, आयुर्वेद दन्तचिकित्सक	... ४३७
व्यावहारिक वैद्यक वर्ग ...	आयुर्वेद बृहस्पति पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, राजवैद्य	... ४४०
प्राकृतिक चिकित्सा से लाभ या हानि ...	श्री रामकुमार गोयनका	... ४४४
आयुर्वेदीय चिकित्सा का चमत्कार ...	उमाशंकर प्रसाद सिंह, ए० एम० एस०	... ४४६
कामला की चमत्कारिक चिकित्सा ...	डा० सूर्यदेव 'प्राणाचार्य'	... ४४९
ज्वरांकुश रस ...	वैद्य सभाकान्त झा शास्त्री, स० सम्पादक	... ४५१
मलेरिया ज्वर में करंज की उपयोगिता ...	डा० क्षेत्रमोहन चट्टोपाध्याय, एल० एम० एस०	... ४५३
द्रोणपुष्पी (गूमा) ...	वैद्यरत्न कविराज प्रताप सिंह, रसायनाचार्य	... ४५५
बदरीफल या बेर ...	श्रीयुत भानु देसाई	... ४५७
स्वच्छता-सफाई ...	वैद्य रवीन्द्र शास्त्री	... ४६२
खुजली से छुटकारा कैसे हो ? ...	वैद्य रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार	... ४६६
श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव ...		४६८, ४६९
इण्डियन फार्मास्यूटिकल एसोसिएशन		... ४७०
चुनाव के लिए कुछ उम्मेदवार वैद्य ...		... ४७०
अन्वेषण का विशाल आयोजन ...		... ४७०
नीमाड जिला वैद्यमण्डल का प्रथमाधिवेशन ...		.... ४७१
आयुर्वेद बोर्ड के मन्त्री प्रेस कान्फ्रेन्स में ...		... ४७१
आयुर्वेद की उपयोगिता ...		... ४७२
पुत्र वा कन्या ...		... ४७२
मोहता-आयुर्वेद सदन की दूसरी नई योजना ...		... ४७२
श्री बनवारी लाल आयुर्वेद विद्यालय की विज्ञप्ति ...		... ४७२

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

113007

113007

❀ श्री धन्वन्तरये नमः ❀

सचित्र आयुर्वेद

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्। आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

वर्ष ४ | कलकत्ता, दिसम्बर, १९५१ | अङ्क ६

चुनाव में आयुर्वेद-प्रेमी विजयी हों (२)

आयुर्वेद एक प्रतीक है कोटि-कोटि भारतीय जनता की सेवा का, मानवता की सेवा का। आयुर्वेद-प्रेम का अर्थ है निष्काम, सच्ची सेवा। आयुर्वेद है आयु का शास्त्र, जीवन का शास्त्र। सच्चे आयुर्वेदज्ञ ही जनता को सच्चा रास्ता दिखा सकते हैं जिस पर चल कर जनता सुख और शान्ति के सुनहले सपनों को मूर्त रूप प्रदान कर सकती है। इसीलिए हम कहते हैं कि विधानसभाओं के चुनावों में आयुर्वेदज्ञों को विजयी होना चाहिए, आयुर्वेद प्रेमियों को विजयी होना चाहिए।

राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति का आधार उस का सर्वाङ्गीण स्वास्थ्य है। गत २८ अक्टूबर को माननीय पण्डित विनोदानन्द झा ने अपने भाषण में कहा था कि 'कोई भी राष्ट्र तभी स्वस्थ रहेगा जब उस की भौतिक उन्नति होगी'। परन्तु इतना ही नहीं, बल्कि इस से भी अधिक सत्य यह कथन है कि 'किसी भी राष्ट्र की भौतिक (और आध्यात्मिक) उन्नति तभी होगी जब वह स्वस्थ रहेगा।' रोगी को पहले स्वस्थ होना जरूरी है, भौतिक उन्नति पीछे होती रहेगी।

स्वास्थ्य से पहले भौतिक उन्नति की बात करना घोड़े के आगे तांगा जोड़ने के समान है। जो फल है उसी को मूल मान लेने के समान उलटी बात है। यह इसी प्रकार है जैसे सन्निपात में पड़े रोगी से कहा जाय कि पहले अपने इलाज के लिए रुपया कमा कर लाओ तब तुम्हारा इलाज होगा। पर इलाज बिना रुपये के भी होता है या कम खर्च से भी हो जाता है। बल्कि कम खर्च से अधिक अच्छा इलाज़ भी हो जाता है। केवल लंघन और विश्राम से भी

वैद्य लोग रोग आराम करते हैं। जब कि कीमती इंजेक्शन रोग को बढ़ाते चले जाते हैं।

सम्पत्ति के विषय में हमारी धारणा ही गलत बन गयी है। हम लोग राष्ट्र के प्रत्येक काम के लिए, प्रत्येक योजना के लिए रुपया चाहते हैं। अपनी भौतिक उन्नति विषयक लम्बी–चौड़ी योजनाओं के लिए हम लोग विदेशों से कर्ज पर कर्ज लिये चले जा रहे हैं। फिर भी पिछले कई वर्षों में हम लोग अन्न तक के लिए आत्मनिर्भर नहीं हो सके हैं। कितने दुःख की बात है कि जो जीवन का आधार है, जो जीवन की प्रथम आवश्यकता है उस अन्न के लिए भी हमारा देश परमुखापेक्षी है।

इस दुरवस्था का निदान क्या है? क्यों हमारा देश चार वर्षों की स्वतंत्रता के बाद भी आज ऐसी अवस्था में पड़ा हुआ है? इस का कारण है हमारा अज्ञान। हम नहीं जानते कि सच्ची सम्पत्ति क्या है। हम नहीं जानते कि हम क्या हैं। हम नहीं जानते कि सच्ची स्वतंत्रता क्या है। भौतिक दृष्टि से स्वतंत्र हो जाने पर भी हम आज भी मानसिक दृष्टि से परतंत्र बने हुए हैं। हम आँख मूंद कर पश्चात्य देशों की नकल करने पर तुले हुए हैं। पाश्चात्य विद्वान् जिस को अच्छा कहते हैं उस को हम अच्छा मान लेते हैं और वे जिस को बुरा कह देते हैं उस को हम बुरा मान लेते हैं। अपनी स्वतंत्र विचार-शक्ति हम खो बैठे हैं। हम भारतीय धरती के लाल हैं तो क्या, हम पाश्चात्य देशों के मानस पुत्र बन गये हैं। सदियों की गुलामी के संस्कार हमारे चित्त पर जम कर बैठे हुए हैं।

इस मानसिक गुलामी से मुक्ति पाये बिना हमारा कल्याण नहीं है। हमारे लाखों भाई, भारतमाता के लाखों लाल रोगों से मर रहे हैं और हम अर्थाभाव का रोना रोने में लगे हैं। शासनसूत्र के संचालको! एक-एक भारतीय लाल एक-एक अनमोल हीरा है। तुम क्यों चाँदी के टुकड़ों का कर्ज बढ़ाते चले जा रहे हो? क्या हिन्दुस्तान को गिरवी रख दोगे?

भारतवर्ष की समृद्धि भारतीय जनता के पुरुषार्थ पर अवलम्बित है; भारतीय जनता का पुरुषार्थ उस के स्वास्थ्य पर अवलम्बित है। और भारतीय जनस्वास्थ्य आयुर्वेद पर अवलम्बित है। एक-एक स्वस्थ भारतीय कोटि-कोटि अनमोल रत्नों के मूल्य का काम कर सकता है और वह बहुत ही कम खर्च से स्वस्थ किया जा सकता है यदि भारत के लाखों वैद्यों का इसमें ठीक सहयोग सरकार ले। यह कैसे हो सकता है इस विषय पर एक लेख हम इसी अंक में डाक्टर लक्ष्मीपति का प्रकाशित कर रहे हैं।

डा० लक्ष्मीपति ने अपने विशद विवेचन में अपने अनुभव के अधार पर बतलाया है कि भारतवर्ष के ग्रामों में जो लाखों वैद्य चिकित्सा-कार्य कर रहे हैं उन को यदि थोड़ी शास्त्रीय शिक्षा और दे दी जाय तो वे भारतीय जनस्वास्थ्य के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। उनको चिकित्सा का व्यावहारिक ज्ञान तो है ही, भले वे रोग और दवा का नामकरण न कर सकते हों और यह न बता सकते हों कि क्यों और कैसे लाभ हुआ। आपको मतलब आम चूसने से है या पेड़ गिनने से? गुलाब तो गुलाब ही रहेगा चाहे उस को किसी भी नाम से पुकारा जाय। रोग और योग के नामकरण विभिन्न भाषाओं में विभिन्न हो सकते हैं। उन नामों को रट लेने मात्र से कोई अच्छा चिकित्सक नहीं हो सकता। परन्तु नामों से सर्वथा अनभिज्ञ व्यक्ति यदि रोगी को देख कर उपयुक्त दवा दे सकता है तो उस को अच्छा चिकित्सक मानना ही पड़ेगा, चाहे वह संसार की कोई भी भाषा न जानता हो। विषयज्ञान और भाषाज्ञान दो अलग चीजें हैं।

(शेषांश पृष्ठ ४०० पर)

ग्रामीण औषधि-उपचार के द्रुत प्रचार के लिए

पंचवर्षीय योजना

डा० ए० लक्ष्मीपति बी. ए., एम. बी, सी. एम.

आधुनिक औषधि-उपचार के तरीकों और स्वास्थ्य सफाई के सिद्धांतों के लाभों का इस देश के कोने-कोने में प्रचार करने के लिए किसी तात्कालिक योजना की दरकार है। उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मद्रास में सन् १९४७ ई० में ग्राम-वैद्य-योजना का सर्वप्रथम आयोजन किया गया और चोपड़ा-कमिटी ने इसकी बहुत प्रशंसा भी की थी। यह उनकी संक्षिप्त कालीन योजना थी। उन्होंने संकेत किया है कि ऐसी ही अवस्था में रूस और चीन ने ग्रामीण औषधिक उपचार के द्रुत प्रसार-निमित्त ऐसी ही योजनायें चालू की थीं। यू० एस० एस० आर० में १९३५ में औषधि सहायता-विभाग में शिक्षण-प्राप्ति-निमित्त भर्ती हुए लोगों की संख्या ४४,७७० हो गयी थी (चोपड़ा-कमिटी-रिपोर्ट भाग १, पृ० ११६ देखिये)। औषधि-विशेषज्ञों के इस पाठ्य-क्रममें किसी उद्योग में २ वर्ष तक कार्यानुभव-प्राप्त सक्षम व्यक्ति भर्ती किये जाते थे। शिक्षा प्राप्त कर प्रैक्टिस करते समय सान्ध्य पाठशालाओं या गृह-कार्य-द्वारा उन्हें और भी अतिरिक्त शिक्षा दी जाती थी। यदि वे चाहें, तो ३ वर्ष के बाद युनिवर्सिटी के लोगों के साथ मेडिकल कालेज की प्रथम वर्षीय श्रेणी में भर्ती किये जाते थे।

चीन में तो छोटे-छोटे चीर-फाड़, मरहम-पट्टी, टीका, नालियों और पैखानों के निर्माण में किसान लगाये जाते थे। और बाद को अपने-अपने ग्रामों में भेज दिये जाते थे। प्राथमिक सहायता और ग्राम-सफाई के लिए भारत में भी गान्धी जी ने ग्रामसेवकों को ऐसी शिक्षा देने की कोशिश की। कस्तूरबा ट्रस्ट द्वारा दाइयों को शिक्षा दी जाती है।

जन-शक्ति की सुलभता

भारत में, ग्राम-वैद्यों में, उनसे कहीं अच्छे लोग हैं, जो हमारे कार्य-संचालन में हमारे पर्याप्त सहायक होंगे, हमें केवल इसकी परमावश्यकता का यथार्थ बोध होना चाहिए। हमें बोध होना चाहिए कि युद्ध-काल जैसी तात्कालिक योजनायें लागू करनी हैं। यह अल्पकालीय योजना है। अभी भारतवर्ष में २,५०,००० वैद्यों से अधिक ही ग्रामों में वैद्यकी करते हैं। उनमें से कुछ के नाम भिन्न-भिन्न राज्यों के देशी औषधियों के व्यवसायियों के रजिस्टर पर चढ़ भी गये हैं। किन्तु ग्राम-सफाई के आधुनिक तरीकों की शिक्षा से, उनमें से अधिकांश वंचित हैं। यदि प्रतिवर्ष दो सौ के हिसाब से प्रत्येक राज्य में उन्हें शिक्षित करें, जैसा कि अभी हम लोग कर रहे हैं, तो इन लोगों को शिक्षित करने में १०० वर्ष लग जायँगे और प्रतिवर्ष अशिक्षित लोग और भी बढ़ते जायँगे। यह योजना की सच्ची भावना नहीं हैं।

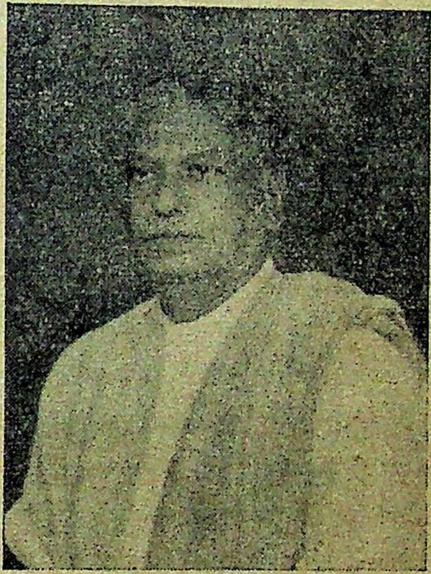

लेखक

द्रुत प्रसार—योजना की सच्ची भावना

प्रत्येक जिले में कम-से कम ४ या ५ शिक्षण केन्द्र खुलने चाहिए। करीब ५० शिक्षण-केन्द्रों से प्रतिवर्ष प्रत्येक राज्य में

५००० शिक्षित वैद्य हम-लोग भेज सकते हैं। ४ या ५ वर्ष में २,००,००० शिक्षित वैद्यों की सेना तैयार कर लेंगे, जो स्वास्थ्य और सफाई के सम्बन्ध में ग्रामबासियों को आवश्यक ज्ञान प्रदान करेंगे।

परम्परागत ज्ञान की रक्षा

इस योजना की सर्वोत्तम बात यह है कि हमारे परम्परागत ज्ञान को संरक्षण प्रदान करती है और सरकार का धेला खर्च नहीं होता। जिलाधीश ही सर्वोच्च अधिकारी होगा जो आयुर्वेदीय औषधियों के व्यवसायी वैद्यों के चुनाव की सिफारिश करेगा। मुझे ऐसा लगता है कि उनके औषधि-ज्ञान के साथ भाषा-नैपुण्य का विशेष सरोकार नहीं। उनमें कुछ ऐसे हैं, जिनका भाषा-ज्ञान तो बहुत अच्छा नहीं, किन्तु जिन्हें औषधियों के पोषक तत्त्वों और अपने द्वारा व्यवहृत औषधियों का अच्छा सक्रिय ज्ञान है। प्राथमिक उपचार, सूतिकोपचार और ग्राम-सफाई के नवीन विषयों का सक्रिय ज्ञान उन्होंने चाव से प्राप्त किया है और परीक्षाओं में भी अच्छी सफलता पायी है। दर असल, जिन लोगों ने ४ या ५ वर्ष नियमित रूपसे स्कूलों में शिक्षा पायी है, उन में से बहुतों की अपेक्षा इन लोगों का सक्रिय औषधि-निदान का ज्ञान कहीं बढ़कर है क्योंकि उनके पक्षमें उनका अनुभव है और उन्हें औषधि-उपचार का चिरपरम्परागत व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त है।

शिक्षण के लिए अधिकाधिक सुविधाओं की आवश्यकता

यह अखिल भारत वर्षीय योजना है। यह सोचकर हमें गर्व होता है कि भूतपूर्व स्वास्थ्य-मन्त्रिणी श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति ने सर्वप्रथम मद्रास में इस योजना को कार्यान्वित किया और अपनी चेष्टा से केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्री-सम्मेलन, १९४६ में इस योजना को अखिल भारतीय रूप दिया (देखिये अनुच्छेद १२, पृ० ७, चोपड़ा कमिटी रिपोर्ट भाग १) प्रत्येक प्रति सहस्र की आबादी पर एक वैद्य को शिक्षित करना वह चाहती थीं। मेरा सुझाव है कि ग्राम-वैद्य पाश्चात्य औषधियों के किसी स्वीकृत सुयोग्य डाक्टर के तत्त्वावधान में अपनी शिक्षा पूर्ण करने को प्रोत्साहित किये जायँ और प्रत्येक विषय में कम-से-कम छः मासकी शिक्षा प्राप्त करने का सर्टिफिकेट दिखलाने की उन्हें जरूरत पड़ सकती है। चोपड़ा कमिटी-द्वारा पाठ्य-क्रम निर्द्धारित किया जा चुका है, अतः शिक्षण व्यवस्था भी निर्द्धारित रूपमें समान स्तर पर होगी। दर असल आनुसन्धानिक और व्यावहारिक परीक्षाओं द्वारा परीक्षा-स्तर ऊँचा किया जा सकता है।

अर्थ-व्यवस्था

यह योजना आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होगी; क्योंकि शिक्षण-काल में ग्राम वैद्य से प्राप्त शुल्क और परीक्षा-शुल्क शिक्षण-केन्द्रों और परीक्षाओं के संचालन के लिये पर्याप्त होगा। विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा इस दिशा में किये गये काम के अलावा अखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल, दिल्ली, भारतवर्ष भर में, सालभर में दो बार परीक्षाएँ ले सकता है और इस प्रकार आधुनिक स्वास्थ्य और सफ़ाई के सिद्धान्तों और प्राथमिक साहाय्योपचार के प्रचुर प्रचार में प्रोत्साहन प्रदान कर सकता है।

समय सर्वाधिक आवश्यक उपकरण

ग्राम-स्वास्थ्य के मसले को हल करने में समय सर्वाधिक आवश्यक उपकरण है। सरकारी और गैर-सरकारी चेष्टा की परमावश्यकता है। कार्य-रत सब-के-सब वैद्योंको हमें प्रशिक्षित करना है और यथासम्भव शीघ्र उन्हें समयोपयोगी बनाना और एक सुनिश्चित व्यवस्था में डालना है।

सम्पादकीय]

[३९८ वें पृष्ठ से आगे

भारतीय ग्रामों में फैले हुए लाखों वैद्यों को व्यावहारिक विषयज्ञान तो है ही। उसीको थोड़े प्रशिक्षण से और परिपक्व बनाया जा सकता है। इन के अतिरिक्त सुशिक्षित और अनुभवी सुयोग्य वैद्य भी बहुत बड़ी संख्या में हमारे देश में उपलब्ध हैं। इन सभी वैद्यों तथा भारतीय औषधों की सहायता से हम बहुत सरलता से अपने राष्ट्र को स्वस्थ बना सकते हैं। वह स्वस्थ जनता फिर अपने पुरुषार्थ से राष्ट्र को समृद्ध बनायेगी।

इसीलिए सर्वान्तःकरण से हमारी यह कामना है कि चुनाव में आयुर्वेद-प्रेमी विजयी हों।

रस का स्थान : हृदय

वैद्य रणजितराय

प्राचीन संहिताओं के यत्किंचित् अनुशीलन तथा आयुर्वेद के अध्यापन की प्राचीन परिपाटी ने मेरे मन पर यह स्थायी छाप डाली है कि : आचार्यों की दृष्टि प्रतिक्षण व्यवहार में उपयोगिता पर—वस्तु के क्रियात्मक पक्ष पर रहती थी। जुलाई १९५१ के "सचित्र आयुर्वेद" के 'सचित्र आयुर्वेद का गत वर्ष'—शीर्षक लेख में अध्यापन की प्राचीन पद्धति की विशेषता बताते हुए मैंने दिखाया था कि वह कितनी क्रियात्मक थी। भावी जीवन में जिस विषय के साथ विद्यार्थी का गाढ़ सम्बन्ध होनेवाला है उसकी—रोग, रोगी, चिकित्सा में उपयोगी द्रव्य तथा उनकी निर्माण-विधि—की दीक्षा गुरु-गृह में पद-न्यास करते ही विद्यार्थी को मिलने लगती थी। संहिताओं में भी स्थान-स्थान पर जहाँ तत्-तत् रोग में उपयोगी द्रव्यों की गणना की है या उनके कषायादि लिखे हैं, वहाँ साथ ही यह भी सर्वत्र कहा है कि, अल्पबुद्धि के लिए एतावन्मात्र पर्याप्त है—इतने ही द्रव्यादि का उपयोगकर वह यश और द्रव्य का अर्जन कर सकेगा। बुद्धिशाली छात्र इन्हीं के आधार पर अन्य भी द्रव्यों तथा कषायों की स्वयं कल्पनाकर उनका उपयोग कर सकेगा। कितनी व्यवहार-दक्षता !

सिद्धान्त-पक्ष में भी व्यवहार पर आचार्यों ने दृष्टि रखी है। व्यवहार शब्द का प्रयोग करते हुए मेरा आशय यह है कि : उन्होंने अपने सिद्धान्तों की रचना करते हुए लक्ष्य यही रखा है कि आगमकाल (विद्यार्थि-दशा) में रोगों के निदान और चिकित्सा पर विद्यार्थी का ध्यान सब प्रकार से, प्रारम्भ से अन्त तक रहे। "आयुर्वेदीय पदार्थविज्ञान" में मैंने आचार्यों की इस दृष्टि पर कुछ प्रकाश डाला है। एक उदाहरण उससे लेता हूँ।

आर्यदर्शनों के अनुसार आत्मा निर्विकार है—उसे रोगादि का लेप नहीं होता। जो रोगादि का अनुभव होता है वह शरीर और मन को ही। स्वयं आयुर्वेद भी यही मानता और कहता है। ऐसी स्थिति में आयुर्वेद का आत्मा से कोई सम्बन्ध हो ही कैसे सकता है ? तथापि आत्मा को भी आयुर्वेद में द्रव्यों की गणना में स्थान दिया गया है। उसका कारण है। स्वस्थ का प्रसिद्ध लक्षण है—समदोषः समाग्निश्च···इत्यादि। चार चरणों के इस अनुष्टुप् में स्वास्थ्य का प्रमुख लक्षण तो टीकाकारों ने 'प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनाः' ही को कहा है। शेष उसके हेतु ही माने हैं। तात्पर्य, दोषों, धातुओं, मलों तथा अग्नि के प्रमाण एवं क्रिया में यत्किंचित् भी विषमता होगी तो उसका प्रभाव आत्मा और मन की प्रसन्नता पर पड़ेगा। 'सचित्र आयुर्वेद' के अगस्त १९५१ के अङ्क में पृ० १२८ पर 'प्रथम क्रियाकाल' शीर्षक लेख में इस विषय का एक उदाहरण दिया है। एक रोगी अरति (बेचैनी) की व्यथा लेकर एक प्रतिष्ठित वैद्य के यहाँ गया। उन्होंने उसे 'कोई विशेष रोग नहीं' कहकर विदा कर दिया। इस रोगी को तीन वर्ष पीछे जलपार्श्व हो गया। तब इन वैद्य का ध्यान प्रारम्भिक व्यथा पर गया और उन्होंने निर्णय किया कि अरति का कारण कफ का संचय था, जिसने उत्तरोत्तर बढ़कर स्रोतों का अवरोधकर जलपार्श्व को जन्म दिया। रोग के अत्यन्त प्रारम्भ में ही अरति के रूप में मन, आत्मा तथा इन्द्रियों की अप्रसन्नता-मात्र से उसकी (रोग की) सूचना का यह उत्तम उदाहरण है। चिकित्सा में इस वस्तु पर ध्यान दिया जाय तो ऐसे अगणित उदाहरण मिल सकते हैं।

ऐसे उदाहरणों में यों रोगजनित क्लेश या आरोग्यजनित

सुख का अनुभव मन को होता है, तथापि उसका आश्रय आत्मा होने से उसे भी—आत्मा को भी—द्रव्यों में स्थान दिया गया।

आत्मा की स्वीकृति का अन्य एक कारण है। दोषों के वैषम्य के अतिरिक्त कर्मों को भी आयुर्वेद में रोगों का निदान (हेतु) माना गया है। ये कर्म कभी अकेले कभी दोषों के साथ मिलकर रोगों की उत्पत्ति करते हैं। इस प्रकार रोगों के तीन भेद होते हैं : दोषज, कर्मज, दोष-कर्मोभयज। इनका विस्तार निदान के ग्रन्थों में देखना चाहिये। कर्मज रोगों में पूर्वशरीरकृत कर्मों का वर्तमान शरीर में अवतरण आत्मा के माध्यम द्वारा होने से कर्मज रोगों की व्याख्या के लिए आत्मा को भी द्रव्यत्वेन आयुर्वेद में स्थान दिया गया है।

आशय यह है कि, समूचा आयुर्वेद तथा उसके अध्यापन की परिपाटी भावी व्यवहार या क्रिया को ही लक्ष्य में रखे हुए हैं। आयुर्वेद में हृदय को जो रस का स्थान कहा है उसका भी कारण व्यवहार में इस सिद्धान्त की उपयोगिता ही है। देखिये—

प्रत्यक्ष भी है, आयुर्वेद का मत भी यही है कि : रस का स्थान समस्त शरीर है—जन्म से मरणपर्यन्त यह शरीर के एक-एक परमाणु में रहता है तथा उसे अपनी अवस्थिति से लाभ पहुँचाता है। परन्तु, रस का स्थान हृदय को भी कहा है :

तस्य (रसस्य) हृदयं स्थानम् ॥ —सु० सू० १४।३

इस प्रकरण में आगे हृदय से चौबीस धमनियों द्वारा शरीर में प्रसृत हो उसका तर्पणादि कर्म रस करता है, ऐसा लिखा है। उसे लक्ष्य में रखकर तथा प्रत्यक्ष भी यही होने से उक्त पंक्ति का अर्थ यह किया जाता है कि : सारे शरीर को रस का स्थान कहते हुए भी जो हृदय को उसका स्थान कहा है उसका आशय यह है कि, रस हृदय से ही सर्वत्र प्रसृत होता है और उसका तर्पणादि करके पुनः हृदय में लौट आता है। इस व्याख्या में निरुक्त (भाषा विज्ञान) की दृष्टि से थोड़ा संशोधन किया जा सकता है। स्थान शब्द ऐसे प्रसंगों पर उस अर्थ का वाचक है जिसके लिए अंग्रेजी स्टेशन शब्द है। स्टेशन शब्द वैसे 'स्टे' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ 'खड़ा होना' है। परन्तु स्टेशन शब्द का रूढ़ अर्थ देखते हुए इस धातु का गर्भित अर्थ कुछ व्यापक है यह स्पष्ट देखा जा सकता है। स्टेशन का रूढ़ अर्थ वह स्थान है, जहाँ से गाड़ी आदि अमुक नियत मार्ग से अपने गन्तव्य स्थान को जाती हैं और वहाँ से अमुक ही मार्ग द्वारा उस मूल स्थान को आ जाती हैं। अर्थात् चक्रवत् परिभ्रमण का जो केन्द्र हो उस स्थान को स्टेशन कहते हैं। स्थान शब्द का भी यही व्यापक अर्थ लिया जाना चाहिए। 'स्था' (मूल में ष्ठा) तथा 'स्टे' की प्रकृति (उद्गम) एक ही है। भाषा-भेद से स्वरूप-भेद हो गया है। इस प्रकार हृदय को रस का स्थान कहने का निहितार्थ यह हुआ कि, इस स्थान से धमनियों द्वारा प्रसृत हो पुनः सिराओं द्वारा रस यहीं आता है।

दोषों का जो शरीर में एक-एक स्थान कहा है, उसका भी अर्थ इसी प्रकार विशद किया जा सकता है। वैसे चिकित्सा-व्यवहार में उपयोगिता की दृष्टि से संहिताकारों तथा टीकाकारों ने इसका एक अर्थ यह दिया है कि : प्रकोपावस्था के पूर्व उस-उस स्थान पर उस-उस दोष का संचय होता है। अपरंच, तत्-तत् संशोधन द्वारा उस स्थान से उस दोष को निकाल दिया जाय तो दोष प्रकुपित और प्रसृत होकर अन्यत्र रोगोत्पत्ति नहीं कर पाता। किंवा, वह पूर्व प्रसृत होकर अन्यत्र रोगोत्पत्ति कर चुका हो तो भी इस उपाय से ही मूलोच्छेद होकर उसकी शान्ति होती है। आयुर्वेद में दोषों के जो विभिन्न स्थान बताये हैं, उनका विशदीकरण 'सचित्र आयुर्वेद' के सितम्बर १९५१ के अङ्क में 'दोषों के स्थान' लेख में विस्तार से किया है।

दोषों का जो एक-एक स्थान निर्दिष्ट हुआ है, उसका एक अर्थ यह है। परन्तु ऊपर रस का हृदय को स्थान

कहने का अर्थ जिस पद्धति से दिया है इसीके अनुसार दोषों के एक-एक स्थान का भी अर्थान्तर होता है। प्रकुपित होने पर दोष अपने-अपने स्थान से प्रसृत हो समस्त शरीर में पहुँचते हैं तथा अनुकूलता देखकर तत्-तत् अवयव में स्थान संश्रय करके रोगोत्पत्ति करते हैं। संशोधन द्वारा इनका मूलोच्छेद करना हो तो इन्हें स्नेहन तथा स्वेदन करके अपने संश्रय के स्थान से शिथिल और च्युत (पक्व) करके मूल स्थान पर लाया जाता है। वहाँ से इनका संशोधन अनायास किया जा सकता है। उदाहरणतया, अति कफ संचय अथवा अति वातजन्य विबन्ध के कारण मल गुदद्वार से प्रवृत्त्युन्मुख (सरलता से निकल सके ऐसी स्थिति में आया) न हो तो चाहे इतनी अश्वकंचुकी देने पर भी मल प्रवृत्ति होती ही नहीं, होती है तो सन्तोषकारक नहीं होती। ऐसी स्थिति में कफाधिक्य हो तो भोजन में त्रिकटु आदि साधित अर्धजल मिश्रित दूध उबालकर रोगी को दिया जाय—अन्य आहार न दिया जाय—औषध भी ऐसे ही कफ का पचन करनेवाले दिये जायँ तो कफ का परिपाक होकर वह स्वयं प्रवृत्त्युन्मुख हो जाता है, जिससे मृदु विरेचन (त्रिफला, एरण्ड तैल आदि) भी, अल्पमात्रा में भी उत्तम कार्य कर जाते हैं। उधर, वात के प्रकोपवश विष्टम्भ होने से मल की प्रवृत्ति न हो तो प्रथम स्निग्ध द्रव्य द्वारा (जैसे एरण्ड तैल, बिनौले का तैल आदि देकर) मल को मृदु कर दिया जाय—वात और मल को गुदद्वार से प्रवृत्त्युन्मुख कर दिया जाय तो सरलता से मल प्रवृत्ति हो जाती है। "सचित्र आयुर्वेद" के प्रथम अंक (जुलाई १९४८) में न्यायायुर्वेदाचार्य वैद्य पण्डित चन्द्रशेखर जैन शास्त्री, जबलपुर ने 'इच्छाभेदी रस' शीर्षक स्वानुभवपूत लेख में बड़ी रोचक भाषा में इस विषय के अनेक उदाहरण दिये हैं। वाचक उन्हें एकबार फिर देख जायँ।

तात्पर्य यह है कि, दोष प्रकुपितावस्था में तत्-तत् स्थान से प्रसृत हो शरीर के प्रत्यवयव में जाते हैं तथा स्नेहन-स्वेदन द्वारा शिथिल हो पुनरावृत्त हो उसी स्थान पर आ जाते हैं। परन्तु इन दो क्रियाओं के सिवाय भी व्यायामादि कारणों से दोष कोष्ठगत अपने स्थानों से शाखाओं तथा रसादि धातुओं में जाते हैं तथा वृद्धि आदि तत्-तत् कारणवश शाखाओं को छोड़कर कोष्ठ में जाते हैं। (देखिये च० सू० २८।३१-३२)।

विषमावस्था में दोषों के इस कोष्ठ से शाखा और शाखा से कोष्ठ में गमन को देखकर कई पण्डितों का मत है कि, समावस्था में भी दोषों का चक्रवत् भ्रमण होता है—तत्-तत् स्थान को केन्द्र मानकर; उसी प्रकार जैसे हृदय को केन्द्र मानकर रस-रक्त का। सुधी-जन विचार करें।

इस प्रकार हृदय को रस का स्थान कहने का यह एक तात्पर्य हुआ। परन्तु, चिकित्सा-कर्म की दृष्टि से इस सिद्धान्त का अन्य भी महत्त्वपूर्ण अर्थ है। और, वह यह।

रस और हृदय में आश्रयाश्रयिभाव :सम्बन्ध बताने का तात्पर्य यह है कि, क्रियाशारीर आदि आयुर्वेद के मूलभूत विषय पढ़ते हुए ही विद्यार्थी के मन में यह बात अंकित कर दी जाय कि, जो वस्तु हृदय अथवा उसमें स्थित मन को व्यथित या आच्छादित करती हैं उनका प्रभाव रस पर—तथा परस्पर या अन्य धातुओं पर—भी होता है। दूसरी ओर जिन वस्तुओं की क्रिया रसधातु पर होती है वे उसके आश्रयभूत हृदय एवं तदन्तर्गत मन को भी प्रभावित करती हैं। यथा—

राजयक्ष्मा के चार कारणों में एक क्षय है। इसके दो भेद हैं : अनुलोमक्षय तथा प्रतिलोमक्षय। इसमें अनुलोम-क्षय की संप्राप्ति बताते हुए कहा गया है कि : पुरुष का हृदय जब अत्यधिक शोक या चिन्ता[१] से व्याप्त रहता है किंवा क्रोध, भय, त्रास (घबराहट), उत्कण्ठा (कामेच्छा) ईर्ष्या आदि से आविष्ट होता है तो उसका हृदय-स्थित रसधातु क्षीण होता है। परिणामतया, उससे पुष्ट होनेवाले अन्य धातुओं, मलों, अवयवों तथा बल (क्षमता, रोग-प्रतिकारक शक्ति) का भी क्षय (अपचय) होता है। अन्त

---

[१] —Anxieties—एंग्ज़ाइटीज़ ; Worries—वरीज़ ।

में पुरुष ग्रन्थ में आगे कहे प्रकार से राजयक्ष्मा का भक्ष्य होता है।

प्रसंग से अनुलोमक्षय के अन्य प्रकार का भी निर्देश कर दूँ। पुरुष (प्रकृत्या किंवा रोगादिवश) कृशकाय हो तथापि रूक्ष (जो शरीर की पुष्टि न करे, जो अस्निग्ध हो ऐसे) अन्नपान का सेवन करे, अथवा अनशन करे, अथवा अल्प आहार करे तो स्वभावतः उसके हृदयस्थायी रसधातु का क्षय होता है; परिणामतया ग्रन्थोक्त प्रकार से वह राजयक्ष्मा से ग्रस्त होता है। (देखिये–च० नि० ६।८, च० चि० ८।२४; सु० उ० ४१।१८)।

आधुनिकों ने जीवाणु-विशेष को यक्ष्मा का कारण मानते हुए भी यह भी स्वीकार किया है कि, तत्तत्कारणवश शरीर के बल—रोग प्रतिकार क्षमता—का क्षय होता है, तभी जीवाणुओं को शरीर में उचित क्षेत्र मिल जाने से वे फूलते-फलते और रोगोत्पत्ति करते हैं। इन कारणों का बहुत ही विशद विचार प्राचीनों ने किया है। नव्यमताभिभूत व्यक्ति भी अभिनिवेश[1]-रहित होकर यक्ष्मा के निदान का अनुशीलन करेंगे तो वे अवश्य इस बात का समर्थन करेंगे। अस्तु,

आधुनिकों ने भी चिन्ता तथा अपुष्टिकर आहार के सेवन[2] को यक्ष्मा के निदान में प्रमुख स्थान दिया है। इन दो शब्दों के अंग्रेजी पर्याय मैंने सोच-समझकर टिप्पणी में दिये हैं। उन पर ध्यान देने से इस विषय का सम्पूर्ण आधुनिक वाङ्मय तत्क्षण आँखों के सामने आ जाने से वाचक सहज ही दोनों शास्त्रों की तुलना कर मेरा अनुमोदन करेंगे।

चिन्ता को आधुनिकों ने यक्ष्मा का प्रमुख कारण माना है। गणना से विदित हुआ है कि, पुष्टिकर अन्नपान जिन्हें सबसे कम उपलब्ध होता है उन भिखारियों में यह रोग कदाचित् पाया जाता है, कारण, वे सर्वथा चिन्ताशून्य होते हैं। मुस्लिम पुरुषों की अपेक्षया—स्त्रियों की बात मैं नहीं कहता, कारण पर्दा, घर में ही रहने की धार्मिक भावना आदि विशिष्ट तथा अति प्रजा (गर्भ स्थिति)—रूप शुक्र क्षयकारी एवं गृह-कलह प्रभृति स्त्री-मात्र में देखे जानेवाले सामान्य कारणों से वे यक्ष्मा की सविशेष भोज्य बनती हैं—सो मुस्लिम स्त्रियों की बात छोड़, मुस्लिम पुरुषों की अपेक्षया—हिन्दु पुरुषों में यह रोग अधिक देखा जाता है। कारण, संयुक्त कुटुम्ब के भार का बहन करने के कारण वे 'गाड़ी के बैल'[1] हुए होते हैं। हिन्दु का स्वभाव ही कुछ चिन्ता का होता उधर मुस्लिल यों भी चिन्ता को फेंक देने की वृत्तिवाले होते हैं। क्षय होने पर तो वे और भी चिन्ता शून्य हो जाते हैं। हिन्दू इसके विपरीत रोग होने पर घबरा जाते हैं। स्वजन-परिजन, साले उसे आश्वासन देने के स्थान पर मुर्दा-सा मुँह बनाकर उसके पास आते हैं; बात भी ऐसी करते हैं कि रोगी का पहले से दुर्बल और रोग का उपनिमन्त्रक मन और भी बलहीन हो जाता है।

चिन्ता आदि भावों के क्षय तथा अन्य शारीर-मानस रोगों के प्रादुर्भाव और वृद्धि का हेतु होने से ही आयुर्वेद तथा अन्य दर्शनों में मनः समाधिकर आहार-विहार पर इतना भार दिया है। मन को शान्त रखकर ये भाव हृदय और रसादि धातुओं को सम स्थिति में बनाये रखते हैं। प्रसंगवश और भी एक बात कह दूँ।

चिन्ता आदि भाव तथा रूक्ष एवं अल्पाशन जैसे क्षय के कारण हैं, वैसे ही हृद्रोगों के भी। इन दोनों रोगों का एक अन्य कारण विषमाशन भी है। इसका अर्थ है—स्वस्थवृत्त में अन्नपान के सेवन-सम्बन्धी जो नियम कहे हैं,

---

[1] १—पक्ष-विशेष का आग्रह।

[2] २—Malnutrition—माल्न्यूट्रीशन।

[1] १—'गडानो बेल' नाम का एक गुजराती चल-चित्र इन दिनों बहुत चल रहा है। उसमें यही दिखाया गया है कि, किस प्रकार कुटुम्ब के भार के वहन की चिन्ता से, साथ ही नालायक आश्रितों के कारण कुटुम्ब का मुख्य व्यक्ति क्रमशः राजयक्ष्मा की बलि होता है। थोड़ी भी गुजराती जाननेवाले व्यक्ति अवश्य इस चल-चित्र को देखें।

उनका उल्लङ्घन कर भोजन करना। यथा, भोजन के काल का नियम न रखना ; हितकर आहार का सेवन न करना इत्यादि। आजकल के व्यवसाय-प्रधान जीवन में प्रतिदिन और पद-पद पर इन नियमों का जो और जैसा भङ्ग होता है, उसे दुहराने की आवश्यकता नहीं। कहना केवल यह है कि, हृद्रोग से पीड़ित रोगी उपस्थित होने पर उसे सलाह तो यह देनी चाहिए कि वह हृदय को विश्रान्ति देने के लिए अपना कार्यक्रम कुछ बदले—'हाय-हाय' कुछ कम करे। वह समझ ले कि द्रव्यादि के पीछे पड़कर वह अपने हृदय को उतना ही निर्बल बना रहा है—अपनी आयु के मूल्यवान् क्षणों को उतना ही कम करके आप ही अपने आपको मृत्यु के नजदीक घसीट रहा है। परन्तु, खेद। द्रव्यलालसा के इस युग में तुरही की इस आवाज़ को सुने तब न! प्रातः-सायं मन की शान्ति के लिए वह सन्ध्या-प्रार्थना, उसी उद्देश्य से की जानेवाली वह दान-दक्षिणा, वह अतिथि धर्म का पालन, अति व्यवाय (मैथुन) से होने वाले विकारों की अनुत्पत्ति के लिए तत्तत् रात्रि में ही गमन का वह आदेश, और पचास वर्ष हो जाने पर मन की संपूर्ण शान्ति के लिए वह वानप्रस्थ की चर्या आज तो स्वप्न की—पुरातत्त्व के म्यूज़ियम की—वस्तु हो गयी हैं। तथापि कहने के अपने कर्तव्य से ब्राह्मण क्यों चूके ?

हाँ, तो कहना यह है कि, संभव हो तो हृद्रोगी को अपना कार्यक्रम बदलने की प्रेरणा करनी चाहिए। इसके विपरीत आज हम वैद्य भी क्या करते हैं। थके घोड़े को विश्राम देने के स्थान पर जैसे कोई मन्द बुद्धि चाबुक मार-मार कर चलाने की कोशीश करे उसी प्रकार हम भी डाक्टरों की कोरामीन और हकीमों की हृदय की टोन देनेवाली दवाओं के अनुकरण में शक्तिवर्धक औषधों के शोध और उपयोग में लगे हैं। ब्राह्मी वटी, याकूती, जवाहर-मोहरा आदि ऐसी ही औषध हैं जो ग्राहकों की माँग और अर्वाचीन चिकित्सा-शास्त्रों की अनुकृति में सद्वैद्यों द्वारा आविष्कृत हुई हैं। इन औषधों का उपयोग करना हो तो भी रोगी को उक्त प्रकार की सलाह तो देनी ही चाहिए। सत्य तो यह है कि, हृदय-रोग प्रायः (लगभग ९५-९६ प्रतिशत) विषमाशनादि से हुए अजीर्ण विकारों के कारण दोषों के प्रकोप से होते हैं। नव्य विज्ञान भी इस बात का साक्षी है परन्तु प्रायः हृदय की रचनात्मक विकृति पर भाषणों में अधिक समय दिया जाने से आज के सेविल के मानस-पुत्र दोषों के वैषम्य पर लक्ष्य नहीं दे पाते। आयुर्वेदिक हॉस्पिटलों में हृद्रोगों की दोषानुसारी चिकित्सा पर ध्यान देकर देखना चाहिए।

सो यह हुई मन और हृदय को प्रभावित करने वाली वस्तुओं की आश्रयभूत रस धातु की क्षीणता का हृदय पर प्रभाव भी एक उदाहरण द्वारा देखें। संतत ज्वर-विशेष (टायफॉयड) के कारण रस तथा अन्य धातुएँ स्वभावतः क्षय को प्राप्त होती हैं। परिणामतया, अन्य अवयवों के सदृश हृदय भी क्षीण और बलहीन होता है। फल यह होता है कि, उसमें स्थित मन भी दीन और दुर्बल हो जाता है। परिणाम में पुरुष में मृत्यु के भय आदि मानस विकार देखे जाते हैं। ऐसे समय बृंहण द्रव्यों तथा तत्काल बल देने के लिए मुक्ता, प्रवाल आदि शीत गुण युक्त हृद्य औषधों का उपयोग वैद्य-जन करते हैं। अन्य उदाहरण नित्य के चिकित्सा कार्य में चिकित्सकों के प्रतिदिन देखने में आते हैं।

उपसंहार में दो-एक और बात लिखने योग्य प्रतीत होती हैं। प्राचीनों ने साधक-पित्त का स्थान हृदय को कहा है। तुलना करने से यह आधुनिकों का एड्रीनलीन होना चाहिए। परन्तु इसका उत्पत्ति स्थान वृक्कों के ऊपर स्थित अधिवृक्क (सुप्रारीनल) नामक ग्रन्थियाँ हैं। इसकी क्रिया भी हृदय पर विशेष होती है। इस विशेष क्रिया के कारण इसका स्थान प्राचीनों की पद्धति का अनुसरण करते हुए हृदय को कहा जा सकता है।

दूसरी बात। मैं समझता हूँ, क्रिया-विशेष के कारण ही तत्-तत् द्रव्य का स्थान तत्-तत् अवयव मानने की इस पद्धति का एक बार स्वीकार किया जाय तो हृदय के कर्म आधुनिकों के 'ब्रेन' के समान कहे होने से हृदय का अर्थ मस्तिष्क भी करने के विषय में जो विवाद प्रवृत्त हुआ है, उसका भी समाधान सरलता से हो सकता है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा के व्यापक सिद्धान्त
तथा
क्रियात्मक स्वरूप

वैद्य रामरक्ष पाठक, आयुर्वेदाचार्य

[गताङ्क से आगे]

क्रियाकाल और उसकी उपादेयता

पाठकों को स्मरण होगा कि व्याधियों की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करते समय 'क्रियाकाल' का भी संकेत किया गया है। अर्थात् उपर्युक्त व्याधियों की ६ अवस्थायें उनके 'क्रियाकाल' अर्थात् चिकित्सा के समय हैं। यदि इन क्रियाकालों की उपेक्षा की गयी तो व्याधि अपनी द्वितीय अवस्था में उत्तरोत्तर प्रवेशकर प्रतिकार सौष्ठव से प्रतिकार-गौरव की अवस्थामें चली जाती है। इसलिये इन क्रियाकालों की जानकारी परमावश्यक है। क्रियाकालों के ज्ञान की उपादेयता उनके प्रयोग पर ही निर्भर करता है। कहा भी है कि—

"न ह्यतिपतितकालमप्राप्तकालं वा भेषजमुपयुज्यमानं यौगिकं भवति; कालो हि भैषज्य प्रयोगपर्याप्तिमभिनिर्वर्तयति ॥" (च० वि० ८।१२७)

अर्थात्—काल के व्यतीत हो जाने पर वा काल से पूर्व ही औषध का प्रयोग यौगिक नहीं होता अर्थात् लाभप्रद नहीं होता। क्योंकि काल ही औषध प्रयोग की सिद्धि अर्थात् रोग-निवारण को सम्पादन करता है। इसलिये रोगों की अवस्था का ज्ञान कर उस समय के योग्य जो प्रतिकार हो उसे करना चाहिये। जैसे ज्वर की आमावस्था में लंघनादि पाचन का काल है अतः लंघनादि द्वारा पाचन करना उपयुक्त है। इस समय में शोधन आदि करने का समय नहीं है अतः शोधन आदि का अकाल है, उसे नहीं करना चाहिये। इसीसे कहा है कि काल को विताकर तथा काल के पहले ही प्रयोग किया हुआ औषध लाभ नहीं करता। और भी कहा है कि-

"अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न कृता क्रिया।
क्रियाहोनाऽतिरिक्ता वा साध्येष्वपि न सिध्यति ॥"

तथा च—

"शीते शीतप्रतिकारः उष्णेचोष्ण निवारणम्।
कृत्वा कुर्यात्क्रियांप्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत ॥"

—सु० सू० ३

अर्थात्—चिकित्सा काल उपस्थित नहीं होने प चिकित्सा करने से तथा चिकित्साकाल के उपस्थित हो जा पर चिकित्सा नहीं करने से, तथा हीन एवं अतिरिक्त चिकित्स करने से साध्यरोग भी अच्छा नहीं होता।

चिकित्सा के सहायक अंग

व्याधियों की विभिन्न अवस्थाओं तथा उनके क्रियाका के वर्णन के बाद चिकित्सा का वर्णन स्वभाविक है। परन् चिकित्सा के वर्णन के लिये उसके सहायक अंगों को भ जानना जरूरी है। अतः सम्प्रति चिकित्सा के सहाय अंगों का वर्णन किया गया है।

चिकित्सा के मुख्य सहायक अंग दो हैं—

(१) क्षमता या देह प्रकृति रक्षिणी Immunity)

(२) गुणवत् चतुष्पाद।

देह प्रकृति रक्षिणी (क्षमता)

"जीव देहेषु सर्वेषु शक्तिः प्रकृति रक्षिणी।
अनिर्वाच्याद्युनानित्या बीजं संसार शाखिनः॥
जीवयन्त्यनिशं जीवान् वर्तन्ते संहरन्त्यपि।
सात्म्यग्रहण्यसात्म्यापसारण्यैकैव सा द्विधा॥
सा सात्म्यग्रहणी देहे यया गृह्णाति सात्म्यकम्।
ख्याता सान्या यया चायमपसारयतीतरत्॥
अनयैवा नपां(Oxygen) जीवःशक्त्या जयतिसन्ततम्
बुभुक्षा च पिपासा च जायते ह्यत एव हि॥
स्वेदमूत्र पुरीषाणि देहादपसारन्ति च।
अतिभुक्ते विषे पीते छर्दिश्चाशु प्रजायते॥
श्वासमागंगतं भोज्यं बहिर्जात्यनयैव हि।
औषधेन बिना व्याधिरनयैव प्रशाम्यति॥"
—आ० विज्ञान

तथा च—

"यदा प्रकृति रक्षिण्या शक्त्या व्याधिर्न शाम्यति।
तदेव भेषजं सेव्यमन्यथा तद्विगर्हितम्॥
शक्तेः प्रकृतिरक्षिण्याः प्रतिघातात्पुनः पुनः।
व्याधिः सञ्जायते तस्यास्ततोऽनुसरणं हितम्॥
मानवैरवशैर्नित्यं यथा सा प्रतिहन्यते;
शक्तिः प्रकृतिरक्षित्री जन्तुभिर्न तथेतरैः॥
अस्तस्तएवनियतं कृच्छ्रैः सर्वार्थ नाशकैः।
व्याधिभिः परिभूयन्न दुर्भाग्या एव सृष्टिषु॥"

इस संसार में मनुष्य वस्तुतः रोग के कारणों से सदा घिरा रहता है। थोड़ी भी असावधानी उसे रोगों के फन्दे में डालती रहती है। ऐसी परिस्थिति में अर्थात् इन रोग के कारणों के नित्य सम्पर्क में रहने पर भी हमें उनके आक्रमण से हमारे शरीर की सहज प्रकृति रक्षिणी ही बचाती है। यह सभी देह धारियों में सहज होती है। यह शक्ति यावच्छरीर नित्य बनी रहती है। यह वह शक्ति है जो हमें सदा सब प्रकार के संक्रमणों से रक्षा करती है। इसे आधुनिक विज्ञान इम्युनिटी (Immunity) कहता है। हमारे चारों ओर नाना प्रकार के असंख्य रोगोत्पादक जीवाणु व्याप्त रहते हैं और श्वासादि द्वारा हमारे शरीर के अन्दर प्रविष्ट होते रहते हैं। रस और रुधिर में इनको तथा इनके विषों को नष्ट करने की शक्ति होती है, जिससे शरीर इन जीवाणुओं से उत्पन्न होनेवाले रोगों से रक्षित रहता है। इस स्वभाविक शक्ति का ही नाम 'प्रकृति रक्षिणी' या 'क्षमता' या 'प्रतिबल' (Immunity) है। 'क्षमता' शब्द प्राचीन है। जैसे—"न च सर्वाणि शरीराणि व्याधिक्षमत्वे समर्थानि भवन्ति।"—(च० सू० २८-७)।

शरीर में जीवाणुओं का प्रतिरोध अनेक प्रकारों से होता है। इनको हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) स्वाभाविक (Natural Immunity) और (२) युक्तिकृत क्षमता (Artificial Inmunity)। इनमें स्वाभाविक क्षमता या देह-प्रकृति रक्षिणी—के मुख्य प्रकार जीवाणुओं का साक्षात् कवलन है। रुधिर में ल्युकोसाइट नाम के जो क्षत्रकण हैं, वे जीवाणुओं का ग्रासकर उन्हें नष्ट किया करते हैं। अतएव जीवाणुजन्य कई रोगों में इनकी संख्या रुधिर में प्रभूत राशि में हो जाती है। ल्युकोसाइट जीवाणुओं का कवलन निम्न प्रकार से करते हैं। क्षत्रकणों का कार्य जीवाणुओं का भक्षण और संहार करना है। इस उद्देश्य से जीवाणुओं के निकट आने पर उनके ग्रास के लिये क्षत्रकणों में शुण्डिकाएँ निकल आती हैं। जीवाणुओं के शुण्डिकाओं के मध्य में आने पर उनके शिखर परस्पर मिल जाते हैं और क्षत्रकण के शरीर का शेष अंश भी सरककर शुण्डिकाओं से मिल जाते हैं। इस प्रकार क्षत्रकणों में स्वतन्त्र भी 'सर्पण' होता है। उनकी आकृति भी इसी कारण प्रतिक्षण बदलती रहती है। सामान्यतः ये किंचित् गोलाकार होते हैं। इन कणों की इस क्रिया के कारण ही 'क्षत्रकण' (क्षत्+त्र) नाम दिया गया है। 'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः, क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः' (रघुवंश)। यह क्षत्र शब्द की निरुक्ति है। सामान्यतः इन कणों को अंग्रेजी में श्वेतकण White blood corpuscles) या ल्युकोसाइट कहते हैं।

परन्तु श्वेतकण (ल्युकोसाइट) अकारण ही जीवाणुओं के कवलन के लिये उत्सुक नहीं होते। परीक्षणों से सिद्ध हुआ है कि रुधिर किसी अज्ञात सूत्र से इन जीवाणुओं को स्वादु बना देता है जिससे ल्युकोसाइट सहज ही इनकी ओर आकृष्ट होते हैं। रुधिर की यह क्रिया 'कल्पन' (Opsonin) कहलाती है। 'औप्सोनीन' का मूल एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ ज्योनार की तैयारी करना है। इस अर्थ का द्योतक प्राचीन साहित्य में 'कल्पन' आता है जैसे—"सातत्यात् स्वाद्वभावाद्वा पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम्। कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत्पुनः।" (चरक वि०-३०)। जिस मनुष्य में यह कल्पन-शक्ति जितनी अधिक होगी उसके ल्युकोसाइट की यह कल्पन-क्रिया उतनी ही अधिक होगी। परिणाम-स्वरूप वह जीवाणुओं के आक्रमण से उतना ही बचा रहेगा। यह शक्ति उत्तम आहार और शुद्ध वायु के सेवन से प्राप्त होती है। जीवनीययुक्त आहार द्रव्यों का सेवन इस शक्ति को बढ़ाता है। यह शक्ति कृत्रिम उपायों से भी बढ़ाई जाती है। क्षमता के अन्य कारण कल्पन के ही सहायक होते हैं।

रक्त के द्रव भाग में भी जीवाणुओं के संहार की शक्ति होती है। इनमें स्थित जो द्रव जीवाणुओं का संहार करते हैं उनका नाम 'जीवाणुसूदन' है। इनके स्वरूप या मूल का अभी पता नहीं लगा है।

जीवाणुओं से शरीर में जो विकार उत्पन्न होते हैं उनका मुख्य कारण जीवाणुओं से उत्पन्न किये विष हैं। इन्हें निष्क्रिय करने के लिये रुधिर 'प्रतिविष' (Antitoxin) उत्पन्न करता है। इस प्रतिविष के प्रभाव से जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न विष उदासीन हो जाता है जिससे विषों का प्रभाव शरीर पर नहीं होता।

इनके अतिरिक्त जीवाणुओं के प्रतिरोध का अन्य साधन रक्त की 'समसनी' शक्ति है। जीवाणुओं का प्रवेश होने पर रुधिर में 'समसन' नाम के द्रव्य उत्पन्न होते हैं। इनके सम्पर्क से जीवाणु गतिशून्य होकर एक दूसरे से जुड़ जाते हैं।

ल्युकोसाइट के अतिरिक्त लिम्फोसाइट में भी जीवाणुओं के प्रतिरोध की शक्ति होती है। इनकी उत्पत्ति रसग्रंथिओं, नलग्रंथियों, पच्यमानाशयों के अन्त में स्थित 'पायर्स पाचेज' नामक ग्रंथिसमूहों से तथा प्लीहा से होती है। अनेक रोगों में इनकी संख्या कई गुणा बढ़ जाती है।

रोगज क्षमता (Acquired Immunity)

प्रत्येक जीवाणु के लिये ल्युकोसाइट तो एक ही होते हैं परन्तु कल्पना, जीवाणुसूदन, प्रतिविष तथा समसन भिन्न-भिन्न होते हैं। शरीर पर जीवाणु-जन्य किसी रोग का आक्रमण होने पर उन जीवाणुओं के प्रतिकार के लिये शरीर में यथोचित कल्पन प्रभृति द्रव्यों तथा ल्युकोसाइटों की अधिकाधिक उत्पत्ति होती है। रोग का आक्रमण यदि घातक सिद्ध हुआ तो यह समझना चाहिये कि शरीर में कल्पन-प्रभृति द्रव्यों की उत्पादक शक्ति या दूसरे शब्दों में क्षमता या प्रकृति-रक्षिणी शक्ति न्यून हुई। इसके विपरीत रोग का नाश होकर शरीर रक्षित रहा तो समझें कि शरीर की क्षमता या प्रकृतिरक्षिणी शक्ति बली है। अर्थात् क्षमता ने रोग पर विजय प्राप्त किया। इस प्रकार रोग से मुक्ति पाने पर उस रोग के जीवाणु को संहार करने की शक्ति शरीर में विशिष्ट हो जाती है जैसे मसूरिका प्रभृति में। इसको रोगज क्षमता कहते हैं।

युक्तिकृत क्षमता (Artificial Immunity

स्वाभाविक क्षमता के अतिरिक्त कृत्रिम उपायों से भी शरीर में क्षमता उत्पन्न की जाती है। जैसे विशिष्ट प्रकार के जीवाणुओं का भैक्सीन बना कर टीका लगाना इत्यादि इसमें विशिष्ट जाति के जीवाणु अथवा उसके विष उत्तरोत्तर बढ़ती मात्रा में सूचीवस्ति (Injection) द्वारा घोड़ों के शरीर में प्रविष्ट किये जाते हैं। परिणाम स्वरूप घोड़े के रक्त तथा रस में उस जाति के जीवाणुओं के विष का प्रतिरोधि विष उत्पन्न हो जाता है। इन घोड़ों का रक्त निकाल कर उसकी लसीका (Serum) छोटी-छोटी

प्रणालियों में संग्रह कर के रखी जाती है। अनागत रोग विशेष के प्रतिबन्ध तथा आगत के प्रतिकार के लिये इस लसीका की सूचीवस्ति (Injection) दी जाती है। इस चिकित्सापद्धति का नाम 'लसीका चिकित्सा' (Serum Therapy) है। मसूरिका के प्रतिबन्ध के लिये गोमसूरिका (Cow Pox) से आक्रान्त बछड़ों के स्तनों से निकले स्राव की सूचिवस्ति दी जाती है। इसी पद्धति का नाम टीका (Vaccination) है। इस युक्तिकृत क्षमता की अपेक्षा पूर्वोक्त रोगज क्षमता अधिक स्थायी होती है।

आयुर्वेद-संहिताओं में ओज के वर्णन में 'बल' शब्द का प्रयोग रोग-निग्रह के लिये आया है। जैसे—"प्राकृतस्तु बलं श्लेष्मा ++++ सचैवौजः स्मृतः काये।" (च० सू० १७) तथा "बलं ह्यलं निग्रहाय रोगाणाम्" (च० चि० ३)। अर्थात् प्रकृत कफ को ही ओज कहते हैं जो शरीर का 'बल' है। यह बल रोगों को रोकने में निश्चय ही समर्थ है। उपर्युक्त श्वेतकणों के रोगों को रोकने की शक्ति संभवतः प्राचीन आचार्यों ने इस प्रकृत श्लेष्मा या ओज के 'बल' से ही प्रदर्शित की हो ऐसा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त भी ओज के वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकृति-रक्षिणी या क्षमता, या बल का किसी-न-किसी रूप में प्राचीन आचार्यों को भी पता था।

क्षमता या प्रकृति रक्षिणी शक्ति के उपर्युक्त वर्णनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि चिकित्सा के सहायक इस प्रमुख अङ्ग की रक्षा करना अर्थात् शरीर में 'क्षमता' को अक्षुण्ण बनाये रखना चिकित्सा की सिद्धि के लिये परमावश्यक है। जिन-जिन कारणों से इस 'क्षमता' की हानि होती हो उनका सर्वथा त्याग और उन-उन भावों का, जिनसे इनकी पुष्टि होती हो, जैसे उत्तम जीवनीय आहार द्रव्यों का सेवन, शुद्ध वायु का सेवन आदि; उनका सेवन करना चाहिये। संक्रामक रोगों के प्रसार के समय आवश्यकतानुसार 'युक्तिकृत क्षमता' को भी उत्पन्न करे जिससे शरीर की रक्षा हो सके।

सर्वे संक्रामका रोगाः संक्रमणेन हि केवलम्।
नहि स्युर्वैष्णवी शक्ति र्न व्रजेद्ध्रासतां यदि ॥

(२) चतुष्पाद।

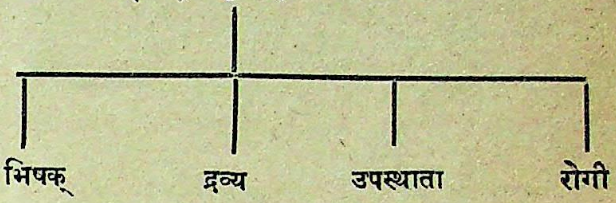

"भिषग्द्रव्यमुपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्।
गुणवत् कारणं ज्ञेयं विकाराव्युपशान्तये॥"
च० सू० ९

विकार (रोग) को शान्त करने के लिये चिकित्सा के गुणवान चतुष्पाद का होना परमावश्यक है। चतुष्पाद के अन्दर उक्त भिषक् (वैद्य), द्रव्य (औषध), उपस्थाता (परिचारक) और रोगी ये चार होते हैं। इन चारों का गुणवान् होना भी परमावश्यक है।

वैद्य के गुण

"श्रुते पर्यवदातत्वं बहुशो दृष्टकर्मणा।
दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुण चतुष्टयम्।"

अर्थात्—(१) वैद्य को अपने शास्त्र का निर्मल ज्ञान होना चाहिये। (२) उसे चिकित्साकर्म को क्रियात्मकरूप में बहुत बार देखा हुआ और स्वयं किया हुआ होना चाहिये (३) चिकित्सा के कार्य में उसे दक्ष होना चाहिये तथा (४) पवित्र रहना चाहिये। ये चार वैद्य के गुण हैं।

द्रव्य (औषध द्रव्य) के गुण

"बहुता तत्रयोग्यत्वमनेक विधकल्पना।
संपच्चेति चतुष्कोऽयं द्रव्याणां गुण उच्यते॥"

अर्थात् (१) औषध द्रव्य प्रभूत मात्रा में होना चाहिये जिससे जब जितनी आवश्यकता हो उपलब्ध हो सके। (२) उस औषध द्रव्य के अन्दर जिस रोग के लिये वह प्रयोग किया जाता हो उस को दूर करने की योग्यता होनी चाहिये तथा औषध की जो योग्यता होती है वह उस के अन्दर वर्त्तमान होनी चाहिये। (३) औषध द्रव्य ऐसा

होना चाहिये कि आवश्यकता पड़ने पर उसकी नाना प्रकार की कल्पनायें (क्वाथ-चूर्ण-स्वरस-फाण्ट आदि) की जा सकें। (४) औषधद्रव्य अपने गुणों (सम्पत) से युक्त होने चाहिये अर्थात् आपूर्ण रस-विपाक-वीर्य-प्रभाव-युक्त, परिपक्व, अजग्ध, नवीन इत्यादि-सम्पत् से युक्त होने चाहिये।

उपस्थाता के गुण

"उपचारज्ञता दाक्ष्यमनुरागश्च भर्त्तरि।
शौचं चेति चतुष्कोऽयं गुणः परिचरे जने॥"

अर्थात् (१) परिचारक को रोगी के सभी प्रकार के उपचारोंको जानना चाहिये। अर्थात् रोगीका पथ्य निर्माण–यथा भोजन बनाना, यूष, रस, आदि के निर्माण की जानकारी होनी चाहिये, उसे किस प्रकार सुलाना, बैठाना, मलमूत्र आदि का त्याग कराना चाहिये, इसकी जानकारी होनी चाहिये। अर्थात् रोगी की सर्वप्रकार की सेवा का ज्ञान होना चाहिये। (२) दक्षता—अपने कार्यों में चतुराई (Smartness) होनी चाहिये। (३) भर्त्तरि अनुराग अर्थात् जिसकी सेवा कर रहा हो उसमें प्रेम रखना अथवा भर्त्ता–जो वैद्य; उसके बचन का पालनकर्त्ता और उस वैद्य में अनुराग होना चाहिये। (४) शौच—पवित्रता (स्वच्छता) सभी कार्यों में सफाई और पवित्रता होनी चाहिये। ये चार गुण परिचारक में होने चाहिये।

रोगी के गुण

'स्मृतिर्निर्देशकारित्वमभीरुत्वमथापि च।
ज्ञापकत्वं च रोगाणामातुरस्य गुणाः स्मृताः॥"

अर्थात् (१) स्मृति–रोग किस प्राकार प्रारम्भ हुआ, कितनी देर से है ? इत्यादि बातों का स्मरण रखना चाहिये। (२) निर्देशकारित्व–जैसी चिकित्सक व्यवस्था दे उसके अनुसार चलने वाला होना चाहिये। (३) अभीरुता–निडरता (घबराना नहीं) अर्थात् किसी प्रतिकार से उसे डरना नहीं चाहिये। तथा उसे रोग या प्रतिकार से घबराना नहीं चाहिये। (४) रोगों के लक्षणों को ठीक-ठीक बताने का सामर्थ्य या योग्यता होनी चाहिये, रोगी को जो कष्ट हों वह उन कष्टों को ठीक-ठीक बता सके, ऐसा होना चाहिये।

इस प्रकार ये चतुष्पाद सोलह गुणों से युक्त होने पर ही सिद्धि में कारण होते हैं। कहा भी है :—

"कारणं षोडशगुणं सिद्धौ पादचतुष्टयम्।"

परन्तु इन में भी प्रधान कारण वैद्य ही होता है क्योंकि वही औषध को जानने वाला, परिचारक का शासन (Direction) करने वाला, तथा रोगी के रोग का निदान कर औषध आदि की व्यवस्था करने वाला होता है। इसी से कहा है कि "विज्ञाता शासिता योक्ता प्रधानंभिषगत्र तु॥"

(च० सू० ९)

इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि औषध आदि तीनों की प्रवृत्ति वैद्य के अधीन होती है। अतः ये गौण हैं और वैद्य ही प्रधान है।

जिस प्रकार रसोई करने वाले पाचक के, पात्र, ईन्धन, अग्नि आदि पाचन में कारण होते हैं तथा जिस प्रकार विजयी की विजय में, भूमि, सेना तथा प्रहार आदि कारण होते हैं उसी प्रकार वैद्य (चिकित्सक) के चिकित्सा कर्म की सिद्धि में औषध, परिचारक और रोगी भी कारण होते हैं। तात्पर्य यह कि ये औषध आदि चिकित्सक की चिकित्सा के उपकरण हैं। चिकित्सा में प्रधान कारण वैद्य ही है। सुश्रुत ने भी कहा है कि:—

'गुणवद्भिस्त्रिभिः पादैश्चतुर्थो गुणवान् भिषक्।
व्याधिमल्पेन कालेन महान्तमपि साधयेत्॥
वैद्यहीनास्त्रयः पादा गुणवन्तोऽप्यपार्थकाः।
उद्गातृहोतृब्रह्माणो यथाध्वर्यु विनाऽध्वरे॥
वैद्यस्तुगुणवानेकस्तारयेदातुरान् सदा।
प्लवं प्रतितरैर्हीनं कर्णधार इवाम्भसि॥"

अर्थात् उपर्युक्त गुणों से युक्त तीन पादों से (औषध, परिचारक और रोगी से) चौथा पाद गुणवान् वैद्य महान् रोग को भी अल्प काल में अच्छा कर लेता है। वैद्य विहीन उक्त तीनों पाद गुणवान् होने पर भी उसी प्रकार अर्थ को

सिद्ध करने वाले नहीं होते जिस प्रकार किसी यज्ञ में अध्वर्यु के बिना उद्गाता, होता तथा ब्रह्मा की उपस्थिति यज्ञ को पूरा नहीं कर सकती। एक गुणवान् वैद्य भी आतुरों (रोगियों) को सर्वदा उसी प्रकार उस के रोग से पार उतार लेता है अर्थात् रोग से बचा लेता है जिस प्रकार कुशल कर्ण-धार प्रतितरों से हीन होने पर भी नाव को पार कर लेता है।" इस के अतिरिक्त जिस प्रकार कुम्भकार के बिना मिट्टी, दण्ड, चक्र तथा सूत्र आदि घट आदि का निर्माण नहीं कर सकते उसी प्रकार वैद्य के बिना औषध आदि रोग-निवारण में कथमपि समर्थ नहीं हो सकते। इन उदाहरणों द्वारा हमारे आचार्यों ने चिकित्सा-कार्य में वैद्य की प्रधानता का प्रतिपादन किया है।

चिकित्सा के उपर्युक्त दोनों सहायक अङ्ग चिकित्सा की सफलता के लिये परमावश्यक हैं। साथ ही इन दोनों सहायक अङ्गों की जानकारी भी चिकित्सक के लिये उतनी ही आवश्यक है।

इसी से आचार्य ने आगे चलकर कहा है कि "चतुष्पादं षोडशकलं भेषजमिति भिषजो भाषन्ते" (च० सू० १०) अर्थात् सोलह गुणों से युक्त चार पाद को ही भेषज युक्तिपूर्वक प्रयुक्त होने पर आरोग्य-दान में समर्थ होती है। कहा भी है "तद्भेषजंयुक्तियुक्तमलमारोग्यायेतिभगवान्पुनर्वसुरात्रेयः॥"

(च० सू० ११)

दोषों का सामत्व तथा निरामत्व विवेचन

चिकित्सा के सहायक अङ्गों के वर्णनापरान्त दोषों के सामत्व तथा निरामत्व का विवेचन करना परमावश्यक है। क्योंकि इसकी जानकारी के बिना चिकित्सा सफल होने के बदले घातक सिद्ध हो जाती है।

113007

साम्र दोष की परिभाषा

"ऊष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम्।
दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते॥
आमेन तेन संयुक्ता (संपृक्ता) दोषादूष्याश्चमूर्छिताः।
सामा इत्युपदिश्यन्ते ये च रोगास्तदुद्भवाः॥"

अ० हृ० सू० १३

और भी—

अन्ये दोषेभ्य एवाति दुष्टेभ्योऽन्योन्यमूच्छनात्।
कोद्रवेभ्यो विषस्येव वदन्त्यामस्य संभवम्॥"

अर्थात्—जाठराग्नि के कमजोर होने से नहीं पका हुआ आद्य धातु (रस) दुष्ट होकर आमाशय में पहुँचने पर 'आम रस' कहलाता है। शरीरस्थ दोष और दूष्य जब उक्त आम रस से संयुक्त या संपृक्त होकर मूर्च्छित होते (मिलते) हैं तो उसे सामदोष या साम्लदुष्य कहते हैं जो रोगों के उत्पत्ति का कारण होता है अर्थात् जिससे रोग उत्पन्न होते हैं। यह आम दोष तथा दूष्यों के अत्यन्त दुष्ट होकर मिलने से भी उसी प्रकार उत्पन्न होता है, जिस प्रकार कोद्रवों के संधान से विष की उत्पत्ति होती है।

साम दोष के लक्षण-

"स्रोतोरोध बलभ्रंश गौरवानिल मूढ़ता।
आलस्यापक्ति निष्ठीव मल[1] संगाऽरुचिक्लमाः॥
लिङ्गं मलानां सामानां निरामानां विपर्ययः॥

अ० हृ० सू० १३

अर्थात्—उक्त प्रकार से उत्पन्न हुए साम दोष शरीर में रहते हैं तो स्रोतों में रोध (रुकावट), बल की हानि, शरीर का भारीपन, वायु का प्रतिलोम होना, आलस्य, अपचन, थुकथुकी (मितली), मलबन्धता (दूसरे पाठ के अनुसार अतिसार), अरुचि, क्लम (अनायास थकावट) होती है। ये लक्षण साम दोष (मल) के हैं। निराम दोष के लक्षण इस से विपरीत होते हैं।

---

[1]—'मल भेद' भी कहीं-कहीं पाठ है।

सामवात के लक्षण

१—विबन्ध
२—अग्निसाद
३—तन्द्रा
४—अंत्रकूजन
५—अङ्गवेदना
६—अङ्गशोथ
७—अङ्गतोद
८—अङ्गग्रह
९—स्नेहादि वातोपक्रमों से वृद्धि
१०—सूर्योदय होनेपर वृद्धि
११—मेघोदये वृद्धिः
१२—रात्रौ वृद्धिः
१३—स्तैमित्य
१४—गौरव
१५—स्निग्धत्वम्
१६—अरोचक
१७—आलस्य
१८—शैत्य
१९—कटुरूक्षाभिलाषः
२०—अर्तिः
२१—कटुरूक्षोपशमः
२२—आध्मानम्

साम पित्त के लक्षण

१—दुर्गन्ध
२—हरितवर्ण
३—श्यामवर्ण
४—अम्लरस
५—स्थिरत्व
६—गुरुत्व
७—अम्लोद्गार
८—कण्ठदाह
९—हृद्दाह
१०—कटुकत्वम्
११—बहलत्वम्
१२—असितम्

साम कफ के लक्षण

१—आविलत्वम्
२—तन्तुमत्वम्
३—स्त्यानता
४—कण्ठ देश में स्थान (रुकना) और दुर्गन्ध
५—क्षुधानाश
६—उद्गाराभाव (डकार का न आना)
७—प्रलेपित्वम्
८—पिच्छिलम्

सामवात—

वायुः सामो विबन्धाग्निसाद तंद्रान्त्रकूजनः ।
वेदना शोथ निस्तोदैः क्रमशोऽङ्गानि पिडयन् ॥
विचरेद्युगपच्चापि गृह्णाति कुपितो भृशम् ।
स्नेहाद्यैर्वृद्धिमाप्नोति सूर्यमेघोदये निशि ॥
वायुरामान्वयः सार्तिराध्मानकृदसंचरः ।”

अ० सं० सू० २१

साम पित्त—

“दुर्गन्धः हरितश्यावं पित्तमम्लं स्थिरं गुरुम् ।
अम्लिका कण्ठहृद्दाहकरं सामं विनिर्दिशेत् ।
दुर्गन्ध कृदसितं पित्तं कटुकं बहलं गुरुः ॥”

साम कफ—

आविलस्तन्तुलस्त्यानः कण्ठदेशेऽवतिष्ठति ।
सामोबलासो दुर्गन्धः क्षुदुद्गार विघातकृत् ॥”
अबिलस्तन्तुमान् स्त्यानः प्रलेपी पिच्छिलः कफः ।
सर्वं च मारुतं सामं तन्द्रास्तैमित्य गौरवैः ॥”

निराम दोषों के लक्षण

निरामोवातः

१. विशदः
२. रूक्षः
३. निर्विबन्धः
४. अल्पवेदनः
५. विपरीत गुणैः विशेषतः स्निग्धैः प्रशमशीलः

निरामं पित्तं

१. ह्रषत्ताम्रस
२. पीतवर्णम्
३. अत्युष्णम्
४. कटुरसम्
५. अस्थिरम्
६. विगन्धम्
७. रुचिकरम्
८. पक्तिकरम्
९. बलकरम्
१०. मेचकम् (अनेकवर्णम्)
११. अच्छम्

निरामः कफः

१. फेनवान्
२. पिण्डितः
३. पाण्डुः
४. निःसारः
५. अगन्धः
६. छेदवान्
७. मुखशुद्धिकरः
८. अच्छः
९. विशदः
१०. श्वेतः
११. मधुरः

निरामोवायु:

"निरामो विशदो रूक्षो निर्विबन्धोऽल्पवेदन: ।"

निरामं पित्तं

"आताम्रं पीतमत्युष्णं रसे कटुकमस्थिरम् ।
पक्वं विगन्धं विज्ञेयं रुचि पक्तिबल प्रदम् ।।"

निराम: कफ:—

"फेनवान् पिण्डित: पाण्डुर्नि:सारोऽगन्ध एव च ।
पक्व: स एव विज्ञेयश्छेदवान वक्त्रशुद्धिकृत् ।।"

उपर्युक्त साम तथा निराम दोषों के लक्षणों को देखकर उनका यथायोग्य प्रतिकार वैद्य को करना चाहिये। क्योंकि वक्ष्यमाण संशोधन तथा संशमन चिकित्सा में यदि इनका विचार न किया जाय तो महान् उपद्रव होने की सदा सम्भावना रहती है। कहा भी है कि 'सामा दोषा न निर्हर्त्तव्या' अर्थात् साम दोषों का निर्हरण नहीं करना चाहिये क्योंकि सामावस्था में दोष सम्पूर्ण शरीर में फैले रहते हैं तथा धातुओं में लीन रहते हैं। अत: उस समय में उन अनुत्क्लिष्ट दोषों का निर्हरण करने से कच्चे फल से रस निकालने के समान आश्रय का ही विनाश होता है। अर्थात् जिस प्रकार किसी कच्चे फल से रस निकालने में उस फल को कूँचकर (फल का नाशकर) रस निकालना पड़ता है ; उसी प्रकार साम दोष के निर्हरण करने में वह धातु जिसमें साम दोष लीन रहता है नष्ट हो जाती है। कहा भी है—

"सर्वदेह प्रसृतान् सामान् दोषान्न निर्हरेत् ।
लीनान् धातुष्वनुत्क्लिष्टान् फलादामाद्रसानिव ।।
आश्रयस्य हि नाशाय ते स्युर्दु निर्हरत्त्वत: ।।"

—अ० हृ०

इसलिये वैसी (सामा) अवस्था में पाचन तथा दीपन स्नेह एवं स्वेद से दोषों का परिष्कार कर उचित समय पर यथासन्न एवं यथाबल अर्थात् दोषों के बलाबल को देखकर शोधन औषधों से शोधन करें। कहा भी है कि—

"पाचनैर्दीपनै: स्नेहैस्तान् स्वेदैश्च परिष्कृतान् ।
शोधयेत् शोधनै: काले यथासन्नं यथाबलम् ।।"

—अ० हृ०

'आमं जयेल्लंघनकोष्णपेया लघ्वन्नरूक्षौदनतिक्तयूषै:
निरूहणै: स्वेदन पाचनैश्च संशोधनैरूद्ध्र्वमधैस्तथा च ।।'

शोधन किन-किन मार्गों से कहाँ अर्थात् किस अवयव स्थित दोष का करे इसके लिये आचार्य ने कहा है कि—

"हन्त्याशुयुक्तं वक्त्रेण द्रव्यमामाशयान्मलान् ।
घ्राणेन चोद्ध्र्वजत्रूत्थान् पक्वधानाद्गुदेन च ।।"

अर्थात्—आमाशयस्थ मलों को निकालने के लिये ऐसे द्रव्यों का योग करें जो मुँह से अर्थात् वमन द्वारा मल को शीघ्र निकालें। तात्पर्य यह कि आमाशयस्थ मलों को वामक द्रव्य मुखमार्ग से शीघ्र ही निकाल देते हैं और जत्रू के ऊद्ध्र्व भाग के विकार (दोष) को नस्य द्वारा (शिरो विरेचन द्वारा) नाक के मार्ग से शीघ्र निकाले तथा पक्वाशय स्थित दोषों को गुदा-मार्ग से विरेचक औषधों द्वारा निकालें।

इस प्रसंग में एक बात पर और ध्यान देना चाहिये कि सभी आम दोष धारण करने योग्य नहीं होते। उनके धारण से नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते हैं जैसे—

"उत्क्लिष्टानध ऊद्ध्र्वं वा नचामान्वहत: स्वयम् ।
धरयेदौषधैर्दोषान् विधृतास्ते हि रोगदा: ।।"

अर्थात् ऐसे आमदोष को जो ऊपर तथा नीचे की ओर उत्क्लिष्ट होकर स्वयं बह रहे हों उन्हें औषधों के प्रयोग से धारण न करें। क्योंकि उन्हें धारण करने से वे रोग को उत्पन्न करते हैं। ऐसे उत्क्लिष्ट दोषों को, यदि वे पहले ही प्रवृत्त हो गये हों अर्थात् निकलने लगे हों तो उन्हें निकलने दें और जो विबद्ध हों उन्हें उन-उन दोषों को पाचन करनेवाले औषधों से आवश्यकतानुसार पचावे या निकालें।

उपक्रम के काल

पाठकों को स्मरण होगा कि व्याधियों के विविध अवस्थाओं का वर्णन करते समय उनके क्रियाकाल का संकेत किया गया है। ये क्रियाकाल ही उपक्रम के काल हैं।

जैसे—

"चय एव जयेद्दोषं कुपितं त्वविरोधयन्।
सर्वकोपे बलीयांसं शेष दोषाविरोधतः॥
संचयेऽपहृता दोषा लभन्ते नोत्तरा गतिः।
ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः॥"

अर्थात् दोषों को उनके संचय काल में ही जीतने का प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु इस बात का ध्यान रखे कि जो दोष कुपित हों उनका विरोध न होने पावे। अर्थात् संचित दोष के जीतने के लिये ऐसा कोई द्रव्य उपयोग में न लाया जाय जिससे कुपित हुआ दोष और भी उस औषध के प्रयोग से कुपित हो जाय। यदि सभी दोष प्रकुपित हों तो जो उनमें बली हो पहले उनको जीतें; परन्तु यह ध्यान में रखें कि शेष दोषों का कोई विरोध न होने पावे। संचय काल में जीते हुए दोष आगे बढ़ने नहीं पाते। अन्यथा जब वे आगे बढ़ जाते हैं तो अधिक बलवान् हो जाते हैं और उनका जीतना भी कठिन हो जाता है।

यहां पर इस बात का भी ध्यान रखें कि सभी प्रकोपक कारणों से सभी दोष प्रकुपित होकर या दो से दो प्रकुपित होकर तथा एक से एक प्रकुपित होकर जब आपस में मिलते हैं अर्थात् जब इनका संसर्ग होता है तब उस संसर्ग में कुपित हुए दोष क्रुद्ध दोष का अनुसरण या अनुधावन करता है। इस लिये संसर्ग में जो दोष बढ़ा हुआ हो उसकी चिकित्सा पहले करनी चाहिये। अर्थात् वह बढ़ा हुआ दोष ही चिकित्स्य होता है। परन्तु यहां भी यह ध्यान रखें कि शेष दोषों का चिकित्सा में विरोध न होने पाये। सन्निपात में भी यही युक्ति लगानी चाहिये।

कहा भी है—

"सर्वैर्भावैस्त्रिभिर्वापि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः।
संसर्गे कुपितः क्रुद्धं दोषं दोषोऽनुधावति॥
संसर्गे यो गरीयान् स्यादुपक्रम्य स वै भवेत्।
शेष दोषाविरोधेन सन्निपाते तथैव च॥"

—अ० हृ०

हमारे आचार्यों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि शुद्ध प्रयोग (चिकित्सा) वही है जो किसी विकार को दूर तो करे परन्तु अन्य कोई विकार उससे न उत्पन्न हो। ऐसा प्रयोग जो किसी विकार को तो शान्त करे परन्तु दूसरा विकार उत्पन्न कर दे वह शुद्ध प्रयोग (चिकित्सा) नहीं कहला सकता। यथा—

"प्रयोगः शमयेद् व्याधिं योऽन्योन्यमुदीरयेत्।
नासौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत्॥"

(क्रमशः)

ऊर्द्ध्वमूल, अधःशाख वृक्ष

संज्ञा और चेष्टा के वेगों के वहन के अतिरिक्त एक अन्य भी कर्म नाड़ियों के हैं, और वह यह कि ये जिस अंग में जाती हैं उसकी पुष्टि करती हैं। यदि कोई नाड़ी कट जाय तो उससे व्याप्त अंग क्षीण हो जाता है। आयुर्वेद में वात के कुपित होने से अंगों का क्षीण होना प्रसिद्ध है। अतः इन्हें 'पोषणी नाड़ी' की भी संज्ञा प्राप्त है। आयुर्वेद तथा अध्यात्म में शरीर को ऊर्द्ध्वमूल और अधःशाख वृक्ष की उपमा दी है। शरीर के नाड़ीसंस्थान का जो स्वरूप हमने देखा, उससे इस उपमा की अन्वर्थकता सिद्ध हो गयी। मस्तिष्क ही शरीररूप वृक्ष का मूल है, सुषुम्णा प्रकाण्ड तथा उनसे निःसृत नाड़ियाँ शाखाएँ हैं।

——वैद्य रामरक्ष पाठक (त्रिदोपतत्त्वविमर्श)

विषमज्वर

वैद्य रमेशप्रसाद त्रिपाठी, ए. एम. एस.

अर्वाचीन वैद्यक में वर्णित रोगों में भारतवर्ष में सर्वाधिक प्रचुरता के साथ पाये जानेवाला रोग मलेरिया है। यह शब्द इटालियन भाषा का है, जिसकी व्युत्पत्ति माल+एरिया है। माल शब्द अपने मूल रूप में सम्भवतः मल ही हो जो उच्चारण-भेद से दीर्घाकारादि पुकारा जाने लगा हो। यह उच्चारण-भेद बहुत से भारतीय शब्दों की योरोपीय उच्चारण प्रणाली में देखा जा सकता है। माल का धात्वर्थ गन्दा है जो भारतीय मल शब्द के अर्थ से बिलकुल मेलजोल खाता है और एरिया शब्द वायुवाचक है। सम्मिलित रूप में इस शब्द का उच्चारण दीर्घाकारादि न होकर ह्रस्वाकारादि ही होता है।

योरप में निदान विज्ञान (Pathology) के विकास के अनन्तर अब यह निश्चित परिपाटी चल पड़ी है कि प्रत्येक रोग का किसी न किसी विशिष्ट जीवाणु के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया जाता है। यद्यपि इस नाम के पीछे भी वह (प्लाज्मोडियम मलेरिया) संकेत है किन्तु उसके अतिरिक्त भी जीवाणुओं का स्पष्ट सम्बन्ध है और फिर भी सभी इसी नाम से अभिहित होते हैं। इसलिए पुरातन काल में इस रोग के लिए मलेरिया नाम देने के पीछे योरोपीय लोगों की जो धारणा थी वह बहुत कुछ अंशों में ठीक भी थी। वे समझते थे कि मलेरिया गन्दी वायु के सेवन से होता है, विशेषकर ऐसे स्थानों की गन्दी वायु, जहाँ अधिकतर सीड़ व सड़न आदि रहा करती हो। जंगलों में जो प्राणियों की बस्ती से अधिक दूर जहाँ सफाई न रहने के कारण सदैव कुछ न कुछ गड्ढों में पानी इकट्ठा रहने के कारण तथा सूर्यप्रकाश की भी कमी के कारण वहाँ की वायु अधिक दूषित रहती है और ऐसी वायु से मलेरिया उत्पन्न होता है। इसीलिए इसके लिए Jungle fever, Marsh fever, Paludism आदि नाम भी अंग्रेजी में प्रचलित हैं।

मलेरिया का सादृश्य पौर्वात्य वैद्यक में वर्णित "विषमज्वर" नामक रोग से है। इसलिए आधुनिक काल में लोग मलेरिया को विषमज्वर कहने लगे हैं। सुश्रुत के एक श्लोक के आधार पर कुछ लोग विषमज्वर का कारण भूतादि मानते हैं किन्तु उक्त कथन कहाँतक ठीक है यह तो श्लोक देखकर ही जाना जा सकता है;

परो हेतुः स्वभावो वा विषमे कैश्चिदीरितः।
आगन्तुरनुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे॥

—सुश्रुत

ध्यान देने की बात है कि उपर्युक्त श्लोक में सुश्रुत ने अपना मत नहीं कहा है। यह बात "कैश्चिदीरितः" से साफ झलकती है। साधु हृदयों के लिए अन्यदीय मतों का समादर भी नगण्य नहीं होता। और दूसरी बात यह है कि इस श्लोक में भूत शब्द का कहीं प्रयोग तक भी नहीं हुआ है। यदि उन महोदय के अनुसार भूतादि को कारण मान लिया जाय तो आचार्य सुश्रुत के स्वकीय मत का ही खण्डन होगा तथा अन्य आचार्यों के वचनों का विरोध होगा।

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः।
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम्॥

—सुश्रुत उ. त. ३९ श्लोक २८

विषमज्वर का सामान्य लक्षण लिखते हुए भालुकि ने लिखा है—

यः स्यादनियतात् कालात् शीतोष्णाभ्यां तथैव च।
वेगतश्चापि विषमः स ज्वरो विषमः स्मृतः॥

अस्तु, एतावता यह तो स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य विद्वान मलेरिया का प्रधान कारण वाह्य मानता है और पौर्वात्य विद्वान दोषादि आभ्यन्तर कारण को ही प्रधान मानते हैं। यह भेद दोनों में स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसमें कौन-सा पक्ष कितना तर्कसंगत है, यह आगे विवेचन किया जायगा।

कीटाणु वर्णन

पाश्चात्य विकृति विज्ञान के अनुसार जो कीटाणु 'स्पोर' निर्माण के द्वारा अपनी वृद्धि करते हैं, उनको Sporozoa कहते हैं। इनके भी बहुत से वर्ग हैं। इनमें जो पूर्णतः दूसरों के ऊपर निर्वाह करते हैं और जिनका वास लोहकणों के भीतर होता है वे "हीमोस्पोराडिया" कहलाते हैं। यह 'हीमोस्पोराडिया' भी कई उपवर्गों में विभक्त हो जाता है। उनमें एक उपवर्ग प्लाज़्मोडियम नाम का है, इसकी तीन जातियाँ हैं। १. प्लाज़्मोडियम वैवाक्त, २. प्लाज़्मोडियम मलेरिया, ३. प्लाज़्मोडियम फेल्सीयेरम। इस प्लाज़्मोडियम जाति का ज्ञान सर्वप्रथम Lavaran ने १८८० में पाया था। उनके बाद इटली के कुछ अन्वेषकों ने जिनमें— Marchi Fava, Celli, Golgi Bignami, का नाम लिया जा सकता है, इस सम्बन्ध में कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त किया था। १८९४ में Manson ने बताया कि इनका स्थानान्तर एक विशेष प्रकार के मच्छरों के द्वारा होता है। और १८९५ में Ross ने इसपर और भी अधिक प्रकाश डाला। इस प्रकार काफी दिनों तक अनुसन्धान कार्य चलता रहा और अन्त में Grassi, Bignane, Bastiwelli ने इन तीनों जातियों का १८९९ में पूर्णज्ञान प्राप्त किया। १९०० में Grassi ने मच्छर शरीरगत जीवन (मैथुनीचक्र) (Sporogony) का पूर्णतः वर्णन भी किया।

प्लाज्मोडियम की इन तीनों जातियों से विषमज्वर नामक रोग उत्पन्न होता है। इन तीनों के अतिरिक्त इसी जाति का एक कीटाणु और भी पाया गया है जिसे "प्लाज्मोडियम ओवेल" कहते हैं। इससे भारतवर्ष में तो अभी तक नहीं, केवल अफ्रीका के पुच्छहीन बन्दरों में रोग उत्पन्न होता है अथवा यहाँ भी ऐसे बन्दर हों, तो यह रोग हो सकता है। आश्चर्य नहीं यदि कुछ काल के बाद मनुष्यों में भी इस काटाणु के द्वारा एक और प्रकार का विषमज्वर उत्पन्न होने लगे। अच्छाई यही है कि इससे उत्पन्न होनेवाला रोग अतिसौम्य तथा अचिकित्सित रहने पर भी अच्छा हो जाने वाला है।

इन कीटाणुओं का जीवन मनुष्य और मच्छर दो प्राणियों में विभक्त होता है, जिनमें पहले को अमैथुनीचक्र तथा दूसरे को मैथुनीचक्र कहते हैं। संक्षेप में अमैथुनीचक्र का प्रारम्भ स्पोरोजाइट से होता है और अन्ततः जाति-रक्षा के लिये व्यवायक रूप धारण करना पड़ता है और मैथुनीचक्र का प्रारम्भ व्यवायकों से होकर अन्ततः स्पोरोजाइट में समाप्त होता है। इन दोनों चक्रों का विशेष अध्ययन करने पर यह मालूम पड़ता है कि विषमज्वर उत्पन्न करने के लिये मच्छरी के दंश के बाद मनुष्य के शरीर में ८५ से लेकर १०० करोड़ की संख्या तक कीटाणुओं की उपस्थिति अनिवार्य है और उनकी वृद्धि होकर इस संख्या तक पहुँचने के लिये जो कम-से-कम संचय काल निर्धारित किया जाता है वह किसी भी हालत में १४ दिनों से पूर्व नहीं हो सकता। अर्थात् विषमज्वर कीटाणु से उपसृष्ट मच्छरी दंश के बाद १४ दिनों तक ज्वर के लक्षण नहीं दिखायी दे सकते। और, मच्छरी को भी रोगी से उपसृष्ट होने के लिये कम-से-कम रोगी का रोग १५ दिन पुराना रहना चाहिये। क्योंकि ज्वरारम्भ के ८ दिन के पश्चात् ही व्यवायक बन सकते हैं और उन्हें भी परिपक्वावस्था तक पहुँचने के लिये ८ दिन आवश्यक होता है। यदि इस अवधि के बीच में ही मच्छरी किसी रोगी को काटे तो उपसृष्ट नहीं हो सकती और उस अनुपसृष्ट मच्छरी के द्वारा किसी अन्य प्राणी के काट लिये जाने पर वह प्राणी विषमज्वर से उपसृष्ट नहीं हो सकता।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर सारांश यह निकला कि यदि किसी ऐसे स्थान पर जहाँ कोई पूर्व से ही मलेरिया-

पीड़ित न हो, यदि कोई प्राणी कहीं बाहर से विषमज्वरोपसृष्ट होकर आता है तो उस प्राणी के अतिरिक्त उसी घर में किसी अन्य प्राणी को संचय काल के पूर्व ही मलेरिया नहीं होना चाहिये। क्योंकि पहला प्राणी अपने साथ उपसृष्ट मच्छरी तो ले न आयेगा और नयी मच्छरी १४ दिनों के पहले उपसृष्ट होकर ज्वरोत्पादन ही न कर सकेगी पर देखा यह जाता है कि दूसरे-तीसरे-चौथे-छठे आदि दिन यदि किसी को ज्वर हुआ तो, शीत, झुरझुरी आदि लक्षणों को देखकर तुरन्त ही डाक्टर लोग कह दिया करते हैं कि इसे मलेरिया हो गया है।

यद्यपि यह भी सत्य है कि उसे मलेरिया ही रहता है और दिन-प्रति-दिन चिकित्साक्षेत्र में हमें इसका अनुभव भी करना पड़ता है किन्तु मेरा प्रश्न तो पाश्चात्य विकृति विज्ञान के पण्डितों और चिकित्सा विशेषज्ञों से है कि इस प्रकार के विषमज्वरों में वे ज्वरोत्पत्ति की कौन-सी अन्य नयी उत्पत्ति देते हैं। अच्छा होता यदि भारतीय आयुर्वेद के समान पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र भी रोगोत्पत्ति में आभ्यन्तर कारण को प्रधान मानकर औसतः बाह्य कारण का सम्बन्ध मानता। और, इस प्रकार उसे रोगक्षमता Immunity के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार की विचित्र कल्पनाएँ न करनी पड़तीं किन्तु इस मत को पाश्चात्य पण्डित कब और कहाँ तक उपादेय मानेंगे, यह तो भविष्य ही बतायेगा। अब देखिये आयुर्वेद इस सम्बन्ध में क्या कहता है।

जिसका आरम्भ, क्रिया तथा काल तीनों में वैषम्य हो वह विषमज्वर है।

विषमो विषमारम्भः क्रियाकालोऽनुषंगवान्”

— अष्टांगहृदय

इसकी टीका करते हुए अरुणदत्त ने लिखा है—“आरम्भश्च क्रियाच कालश्च आरम्भ क्रियाकालाः विषया यस्य स एवम्” जिस ज्वर से पीड़ित होने पर रोगी अच्छा हो गया मालूम पड़ता है किन्तु दोष पूर्णतया नष्ट नहीं हुए रहते और उनका अनुबन्ध लगा रहता है अथवा आरम्भ से ही अहिताहाराचार-विहारादि से दुष्टदोष वृद्धि को प्राप्त होता हुआ धात्वन्तर में अवस्थित होकर विषमज्वर को उत्पन्न करता है। इसमें किसी-न-किसी धातु का दूषित होना आवश्यक है। इसकी विशेषता यह होती है कि कभी जाड़ा लगता है और कभी गरमी से प्रारम्भ होकर आता है। इसका वेग कभी तीव्र होता है और कभी कमजोर। इसके आने का कोई निश्चित समय नहीं होता। इतनी विषमताएँ एक ही रोग में अन्यत्र कहीं नहीं मिलतीं। यही इसकी विशेषता है। इसीसे इसका नाम विषमज्वर रखा गया है। यह बाह्य कारण की इतनी अपेक्षा नहीं करता जितनी कीटाणुवाद का सिद्धान्त माननेवालों के लिये आवश्यक प्रतीत होती है। यदि किसी अर्थ में बाह्य कारण की अपेक्षा है भी तो वह कीटाश्रित न होकर बाह्यतः अहिताहाराचारादि के सेवन में है जो प्रायः सर्वत्र ही हुआ करती है। और, यह अहिताहारादि सेवन “दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतः” में परिलक्षित दोष के प्रति कारण है, प्रत्यक्षतया रोग के प्रति नहीं। पूरा श्लोक इस प्रकार है।

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतः, ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः।
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम्॥
यः स्यादनियतात् कालात् शीतोष्णाभ्यां तथैव च।
वेगतश्चापि विषमः स ज्वरो विषमः स्मृतः॥

इस परम्परा को मान लेने से किसी भी प्राणी में किसी समय कारणतः दोष की वृद्धि से इस रोग की उत्पत्ति का समाधान किया जा सकता है और इस प्रकार विकृति विज्ञान-वादियों के समान अवगुंठनवती भाषा के प्रयोग दोषी होने से ही हम अपने को बचा सकते हैं। यह निर्णय विचारकों के ऊपर छोड़ दिया जाता है कि विषमज्वर की उत्पत्ति में कीटाणुवाद का सिद्धान्त समर्थन पाने योग्य है अथवा आयुर्वेद का दोष सिद्धान्तवाद।

विषमज्वर के भेद

पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र में विषमज्वर के कई भेद किये गये हैं। प्लाज्मोडियम वैवाक्स से होनेवाला तृतीयकज्वर, प्लाज्मोडियम मलेरिया से होनेवाला चतुर्थक ज्वर और

प्लाज्मोडियम फेल्सीपेरम से होनेवाला घातकी तृतीयक ज्वर है। कीटाणु की इन तीन स्वतन्त्र जातियों से ये तीन प्रकार के विषमज्वर उत्पन्न होते हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य प्रकारों का वर्णन किया जाने लगा है। जैसे—अन्येद्युष्क (Quotidian) और चातुर्थिक विपर्यय (Double Quartan)। लेकिन ध्यान देने की बात है कि इन अन्तिम दो प्रकारों के लिये कोई विशिष्ट कीटाणु नहीं बताये गये हैं। इनके सम्बन्ध में यही कहा जाता है कि यदि क्रमागत दो दिनों में तृतीयक के कीटाणु का और क्रमागत तीन दिनों में चतुर्थक के कीटाणु का क्रमशः दो अथवा तीन बार स्वतन्त्र उपसर्ग हो तो अन्येद्युष्क और चतुर्थक क्रमागत दो दिनों में दो स्वतन्त्र उपसर्ग होने से चातुर्थिक विपर्यय होता है। ये दोनों प्रकार अनेक दलोपसर्ग के कारण होते हैं। इसी प्रकार जब मिश्रउपसर्ग होता है तब प्रायशः इन्हीं तीनों में से कोई एक-दूसरे के साथ मिलकर भी ज्वर उत्पन्न करता है किन्तु उसके लक्षणों में कोई पृथक् वैशेष्य नहीं रहता। यह तो पाश्चात्य विज्ञान की बात हुई। आयुर्वेद में इस सम्बन्ध में क्या है, यह देखना चाहिये।

आयुर्वेद में विषमज्वर के निम्नलिखित भेद किये गये हैं। (१) सन्तत, (२) सतत, (३) अन्येद्युष्क, (४) तृतीयक, (५) चतुर्थक, (६) सततविपर्यय, (७) अन्येद्युष्कविपर्यय, (८) तृतीयकविपर्यय और (९) चतुर्थकविपर्यय। स्थानभेद से इनमें सन्तत रसगत, सतत रक्तगत, अन्येद्युष्क मांसगत, तृतीयक मेदोगत और चतुर्थक अस्थिमज्जागत होता है। यथा-

सन्ततं रस रक्तस्थः सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः
मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि त्वस्थिमज्जागतः पुनः॥
कुर्याच्चतुर्थकं
— सुश्रुत

सन्ततशब्दः सततस्योपलक्षणः — मधुकोषकार

सम्प्राप्ति एवं लक्षणः—

गुरुदोष रसवाही स्रोतों द्वारा प्रसृत होकर सम्पूर्ण शरीर में स्तब्धावस्था को प्राप्त होकर सन्ततज्वर को उत्पन्न करते हैं। यह अविसर्गी होता है और लगातार वात, पित्त तथा कफ की अधिकता के भेद से क्रमशः सात, दस अथवा बारह दिनों तक रहता है। इसके सम्बन्ध में कुछ लोगों को शंका होती है कि यह तो विषमज्वर नहीं है क्योंकि विषमज्वर का प्रधान लक्षण उसके मुक्तानुबन्धित्व तथा विषमत्व में है और वह लक्षण यहाँ नहीं मिलता। इसका उत्तर चरक चि० स्थान अ० ३ में इस प्रकार है—

विसर्गं द्वादशेकृत्वा दिवसेऽव्यक्तलक्षणः।
दुर्लभोपशमः कालं दीर्घमप्यनुवर्तते॥

इससे स्पष्ट हो जाता है कि इसमें भी मुक्तानुबन्धित्व लक्षण मिलता है। कुछ लोग आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान खरनाद के मत को अपनी पुष्टि में उद्धृत करते हुए कहते हैं कि सन्तत विषमज्वर नहीं है।

ज्वराःपूर्वमयोक्ता ये पंच सन्ततकादयः।
चत्वारः सन्ततं हित्वाज्ञेयास्तेविषमज्वराः॥

लेकिन इस श्लोक का भाव केवल इतना ही है कि सन्तत में तृतीयक आदि की भाँति कई बार वेगों की आवृत्ति नहीं होती। वेग अधिक काल तक स्थायी रहता है और अन्यों की अपेक्षा अधिक नष्टकारक भी है। यही लक्षण पाश्चात्य विज्ञान में वर्णित प्लाज्मोडियम फेल्सीपेरम कीटाणु से उत्पन्न होनेवाले विषमज्वर नामक रोग में मिलता है। यद्यपि यह तीसरे दिन आनेवाला रोग है किन्तु तृतीयक या चतुर्थक के समान इसका ज्वरकाल कुछ घण्टों का न होकर बहुत लम्बा होता है जिससे दो आवेगों के बीच या काल (विज्वरकाल) बहुत कम या नहीं के बराबर होता है। इसीलिये इसका ज्वर अर्धविसर्गी या कभी-कभी सन्तत होता है। (डा० घाणेकर)

सततकज्वर दिन और रात में दो बार आता है। "अहोरात्रे सततको द्वौकालावनुवर्तते" ईशानदेव ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है—"अह्नि द्वौकालौ रात्रौ द्वौकालौ वा अह्नि एककालं रात्रावेककालं एवं वा द्वौकालौ और अन्येद्युष्क दिन और रात मिलाकर एक ही बार आता है। "अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रे एककालं प्रवर्तते।" तृतीयक

और चतुर्थक ज्वर की सम्प्राप्ति में चरक ने चि० स्थान श्लोक ६४-६५ में लिखा है कि जिस प्रकार क्षेत्र में डाला हुआ बीज समय आने के पूर्व तक वहीं पड़ा रहता है और काल पाकर ही प्ररोहित होता है उसी प्रकार दोष भी धातुओं में तब तक छिपे पड़े रहते हैं जब तक उनके प्रकोप का समय नहीं आता और समय पाकर ही बल एवं वृद्धि को प्राप्त होते हैं जिससे तृतीयक और चतुर्थक ज्वर उत्पन्न होता है। दोष-भेद से तृतीयक तीन प्रकार का होता है "कफ पित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः—वात, पित्तात् शिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः।" दोष भेद से चतुर्थक का प्रभाव भी दो प्रकार का होता है। "चतुर्थकोदर्शयति प्रभावं द्विविधं ज्वरः। जंघाभ्यांश्लैष्मिकःपूर्वं शिरस्तोऽनिल सम्भवः।" चतुर्थक विपर्यय के सम्बन्ध में चरक ने लिखा है कि वह प्रथम और अन्तिम एक-एक दिन छोड़कर मध्य में दो दिनों तक आता है। "विषमज्वर एवान्यश्चातुर्थकविपर्ययः स मध्ये ज्वरयत्यह्नि आदावन्ते च मुंचति।" तंत्रान्तर में प्रथम पंक्ति में पाठ भेद है। "अस्थिमज्जोभयगते चतुर्थकविपर्ययः।" शेष समान है। पराशर के वचनों से भी इसी की पुष्टि होती है। इन विपर्ययों के सम्बन्ध में मधुकोषकार ने हरिचन्द के नाम से जो उद्धरण दिया है वह अविकल रूप में यहाँ दिया जा रहा है।

द्वे अहनी निरंतरं ज्वरयित्वा उपरम्यैकमहः पुनर्ज्वरयतीत्येषश्चतुर्थकविपर्यय इति। आदि दिनाभावश्चोत्तरोत्तरपाति दिवसेष्ववधार्यः। चतुर्थकविपर्यस्योपलक्षणत्वेन तृतीयकादि विपर्ययोऽप्यूह्य इत्याहुः। तद्यथा—मध्ये एकदिनं ज्वरयति आद्यन्तयोर्मुञ्चतीति तृतीयकविपर्ययः। एककालं विमुच्य सर्वमहोरात्रं व्याप्नोतीत्यन्येद्युष्क विपर्ययः। कालद्वये मुंचति, सर्वमहोरात्रं ज्वरयति-इति सततक विपर्ययः। अत्र दोषविकृतिरेव नानाविधाहेतुरिति।

"कफस्थानेषु वा तिष्ठन् दोषो द्वित्रिचतुर्षु च।
विपर्ययाख्यान् कुरुते विषमान् कृच्छ्र साधनान्।"

सुश्रुत उत्तर तन्त्र अध्याय ३६ में लिखित वृद्ध सुश्रुत के इस श्लोक की व्याख्या करते हुए जेज्जट ने सततक को छोड़कर अन्येद्युष्क, तृतीयक तथा चतुर्थक के विपर्यय का उदाहरण दिया है। इस सम्बन्ध में तो यही कहना उचित होगा कि—"स्मृतिद्वैधं तु यत्रस्यात् तत्र धर्मावुभौमतौ"—इसी न्याय को वाप्यचन्द्र ने भी चरक और सुश्रुत के कुष्ठ-रोग वर्णन में दिखाई देनेवाले वैषम्य को देखकर कहा है। ये सभी बातें मधुकोषकार द्वारा बहुत विशदता के साथ वर्णित की गयी हैं।

कीटाणुओं द्वारा ज्वरोत्पत्ति का विवरण

जिस प्राणी के शरीर में विषमज्वर के कीटाणु प्रवेश कर गये रहते हैं उसमें सदा ही ज्वर की अवस्था नहीं रहती, कुछ काल निर्ज्वरता का भी रहता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि शरीर में जीवाणुओं की उपस्थितिमात्र ज्वर का कारण नहीं है। सच पूछा जाय तो अभी तक इस रोग के ज्वर का कोई विशिष्ट कारण नहीं मालूम हो सका है।

केवल यह माना जाता है कि माइक्रोसाइट जिन लोहकणों के भीतर निवास करते हैं, जब उनके गल जाने के कारण स्वतन्त्र होकर रक्तधातु में विचरण करने लगते हैं, तब उनके साथ स्वभावतः शरीर में अनुपस्थित रहनेवाला कोई भिन्न जातीय प्रोटीन स्वरूप का विषमय पदार्थ भी बाहर निकलता है, जिसकी प्रतिक्रिया के कारण ज्वर उत्पन्न होता है और जिस समय ये कीटाणु रक्तकणों के बाहर आते हैं तभी रोगी को शीत, झुरझुरी तथा ज्वर का अनुभव होता है। इतना सब होते हुए भी किसी विशिष्ट काल में ही तृतीयक और चतुर्थक आदि के कीटाणुओं द्वारा लक्षण उत्पन्न होने का कारण क्या है? इस प्रश्न का उत्तर पाश्चात्य विज्ञानवादी केवल कीटाणुओं के स्वभाव के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे पाते। अब देखना यह है कि क्या आयुर्वेद इस सम्बन्ध में मौन है या उसके भी अपने कुछ सिद्धान्त हैं? इस प्रश्न पर विचार करते हुए मधुकोषकार ने वृद्ध सुश्रुत का जो उद्धरण दिया है, वह मननीय है।

अहोरात्रादहोरात्राद् स्थानात् स्थानं प्रवर्तते।
ततश्चामाशयं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥
कफस्थानविभागेन यथासंख्यं करोति हि।
सततान्येद्युष्क त्र्याख्यान् चतुर्थान् सप्रलेपकान् ॥

सु० उ० त० अ० ३९

इसके अर्थ का अधिक स्पष्टीकरण करते हुए मधुकोषकार ने लिखा है—

आमाशयहृदयकण्ठशिरःसंधयः पंचकफस्थानानि। एषु स्थितैर्दोषैर्यथासंख्यं सततादयः क्रियन्ते। तत्रामाशयस्थितेन दोषेण सततकः क्रियते द्विकालं। न चामाशयप्राप्त्या सर्वदा प्रसंगः, अहोरात्रेषु प्रकोपकालापेक्षया ज्वरोत्पत्तेः। हृदयस्थितेन दोषेणामाशयमागत्यान्येद्युष्कः क्रियते एककालं, न च सर्वदा सततारम्भकदोषापेक्षयाऽस्य व्यवहितत्वात्। कण्ठस्थितेन दोषेणैकस्मिन्दिने हृदयमागम्यते, अपरस्मिन्नामाशयमागत्य ज्वर आरभ्यते तृतीयकः। एवं शिरःस्थितेनदोषेण कण्ठहृदयामाशयान् त्रीन् त्रिभिर्दिनैः क्रमेणप्राप्यचतुर्थकः क्रियते। पुनः स्वस्थानगमनं तु दोषाणां तृतवेगत्वेन लाघवात् वेगदिने एव भवति।

इस उद्धरण से विषमज्वरों का एक निश्चित विशिष्टकाल में ही ज्वर आदि लक्षणों के उत्पन्न करने की उपपत्ति कितनी अच्छी है, यह कोई भी विज्ञ सावधान होकर देख सकता है।

चिकित्सा

कुछ बातें चिकित्सा के सम्बन्ध में भी यदि कही जाय तो अच्छा होगा। यह तो सभी जानते हैं कि क्विनीन तथा तज्जातीय अथवा तन्मिश्र पदार्थ मलेरिया की विशिष्ट औषधि है। और उनका खुलकर इतना अधिक प्रयोग होने लगा है कि रोगियों का बहुसंख्य प्रतिशत मलेरिया से नामतः मुक्त होकर भी दूसरे भयङ्कर रोगों का शिकार बनता जा रहा है। यह पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के विशिष्ट रोगों और उनकी विशिष्ट औषधियों के गुण और दोषों का एक उदाहरण है।

आयुर्वेद शास्त्र रोगों की उत्पत्ति में बीज प्राधान्यवाद को नहीं मानता, यद्यपि वह इसकी उपेक्षा भी नहीं करता। वह क्षेत्र को ही प्रधानता देता है। इसलिए वह चिकित्सा में भी क्षेत्रीय चिकित्सा का पोषक है। "अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टं अन्तरैव विनश्यति।" इसलिए जिन दोषों के कारण यह रोग उत्पन्न होता है उन्हें दूर करने के लिए अन्य संक्रामक रोगों की भाँति इसमें भी निदान परिवर्जन, संशोधन, संशमन आदि उपायों का वर्णन किया गया है। काष्ठौषधियों और रसों की चर्चा तो सभी ग्रन्थों में इतनी अधिक है कि उनका यहाँ नामोल्लेख तक अधिक स्थान ले लेगा।

इस सम्बन्ध में मैं एक बात कहना और भी आवश्यक समझता हूँ। क्विनीन और तज्जातीय पदार्थ के आविष्कार होने के पूर्व जब भारत में विषमज्वर की उपस्थिति सिद्ध है तब उसकी परम्परा से की जानेवाली भारतीय चिकित्सा अब अनुपयोगी अथवा व्यर्थ है, यह कहने की धृष्टता मुझमें नहीं है।

ऐसी स्थिति में यह कहना उचित ही है कि विषमज्वर की चिकित्सा के लिए भी भारतीय आयुर्वेद अपनी पद्धति से अनाशुकारी एवं अननुपद्रवार्थक है। चिकित्सा शास्त्र का यह अन्यतम अन्तिम सिद्धान्त किसी प्रणाली के लिए यदि कहीं एक बार भी अपवाद का विषय बना तो वह प्रणाली निश्चय ही निकृष्ट कोटि की है। इसमें भी सन्देह नहीं कि पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली में यह दोष केवल एक रोग तक ही सीमित न होकर अनेकों रोगों में दिखलायी पड़ती है।

हर्ष का विषय है कि हमारा आयुर्वेद इस दोष से सर्वथा मुक्त है।

स्वेदोपग वर्ग

वैद्य विश्वनाथ द्विवेदी, आयुर्वेदशास्त्राचार्य

पर्य्याय—स्वेदोपग, स्वेदल, घर्मकारक, डायाथोरिटिक्स, इसके पार्यायिक शब्द हैं ।

परिभाषा—जो औषधियाँ पसीने की ग्रन्थियों की क्रिया को उत्तेजना देकर स्वेद की उत्पत्ति कराती है । उन्हें स्वेदोपग या स्वेदल औषधियाँ कहते हैं । ये ही औषधियाँ स्वेद-क्रिया की गतिवृद्धि कर स्वेदाधिक्य उत्पन्न कर दें, तो उनकी संज्ञा अतिस्वेदकर स्यूडारिफिक या स्यूडारिफिकिरियसिज कहलाती हैं ।

महर्षि चरक के मत से घर्मकारक औषधियाँ निम्नलिखित दस हैं । यथा—सहिंजन, एरण्ड, पुनर्नवा दोनों, यव, तिल, कुलत्थ, उड़द, बेर और आक ।

अन्य—इनके अतिरिक्त प्रवालभस्म, कलमीशोरा, जवाखार, सप्तपर्ण, सहदेवी, वत्सनाभ, फिटकरी, अनन्तमूल, कर्पूर, वनप्सा, अंकोल, देवदारू, नागरमोथा, मालकांगनी, तुलसी, रोहिष, दालचीनी, सोंठ, चव्य, गर्म जल, शीतल मिर्च, गंधक, रास्ना इत्यादि ।

सुश्रुत के मत से—वृहत्पंचमूल, रास्नादिगण, चव्यकादिगण, सुरसादिगण की औषधियाँ भी उष्ण होकर स्वेदजनक होती हैं ।

स्वेद क्रिया—त्वचा स्वेद का उत्कृष्ट स्थान है । त्वचा के भीतर, स्वेद ग्रन्थियाँ अत्यधिक परिमाण में रहती हैं । और यह त्वचा का नियन्त्रण करती हैं । जो कि समान वायु या व्यानवायु की क्रिया के अधीन हैं और इन स्वेद ग्रन्थियों का क्षेत्र भ्राजकपित्त है । जिनका नियन्त्रण समान व व्यान वायु करते हैं । समान वायु व पित्त दोनों का स्थान स्वेद है । यथा—

स्वेदोदोषाम्बुवाहीनि स्रोतांसि समधिष्ठितः ।
अन्तरग्नेश्च पार्श्वस्थः समानोऽग्नि बलप्रदः ॥

—च० चि० अ० २८

पित्त स्थानों में स्वेद—

नाभिरामाशयः स्वेदे लसीका रुधिरं रसः ।
दृक्स्पर्शनं च पित्तस्य पंचधा चेष्टयत्यपि ॥

—वा० सू० अ० १२

यही विवरण अष्टांग संग्रह सू० अ० १२ तथा चरक सू० अ० २० में भी लिखा है । इन दोनों समानवायु व भ्राजक पित्त की क्रियाशीलता स्वेद प्रवर्त्तन के रूप में व्यानवायु की क्रिया द्वारा होता है । जो कि स्वेद स्रावनाड़ी केन्द्र की क्रिया को करता है । जिसका केन्द्र सुषुम्ना- शीर्षक व मेरुदण्ड में यत्र-तत्र अवस्थित हैं ।

व्यानवायु के पाँच प्रधान कार्यों में स्वेदस्रवण कार्य भी है, यथा—

कृत्स्नदेहचरोव्यानो रस संवहनोद्यतः ।
स्वेदासृक्स्रवणश्चापि पंचधा चेष्टयत्यपि ॥

—सु० नि०

त्वचा में रस व रक्त के बहाव के साथ ही स्वेद के स्राव का कार्य व्यानवायु के आधीन है । त्वचा में स्वेद की ग्रन्थियों से स्वेद बाहर आता है । ये ग्रन्थियाँ शरीर के दूषित पदार्थ जो कि त्वचा में पहुँचाते हैं और भ्राजकपित्त की क्रिया से बनते रहते हैं, बाहर निकालती है ।

स्वाभाविक स्थिति में स्वेद नियमित रूप से निकलता रहता है । वह मात्रा में न्यून वा अधिक होता रहता है ; किन्तु इनकी क्रिया में विघात तब पैदा होता है, जबकि शीत लग जाये और शरीर का ताप कम हो जाय तथा त्वग्गत 'रक्ताभिसरण' क्रिया मन्द हो जाय । अथवा समान वायु की क्रिया की कमी से रस-शोषण न होकर रस-संग्रह हो ; पाचन-क्रिया मन्द होकर आम संग्रह हो और स्रोतों के मुख में भर जाय । ऐसी दशा में स्वेदकारक औषधियों का प्रयोग करना पड़ता है ।

इन औषधियों के अतिरिक्त गरम जल, गरम चाय, कपूर,

कस्तूरी, सोंठ, दालचीनी, सुरा, ऑलकोहल इत्यादि का नियमित सेवन स्वेदकारक होता है। उष्ण स्वेदावगुण्ठन और उष्ण सेक भी स्वेदकारक होता है।

स्वेदजनक औषधियों का प्रयोग कब किया जाता है :—

१—शरीर अथवा त्वचा की ऊष्मा के निवारणार्थ। जैसे—सन्ताप और ज्वर-ताप में ताप-निवारण के लिए किया जाता है।

२—त्वचा की शुष्कता के निवारण के लिए—यथा, त्वग्गतवात, किटिभ, त्वक्सुप्ति, वातरक्त और कुष्ठ में त्वचा जब रूक्ष, फटी हुई तथा खुरण्ट युक्त हो।

३—शरीर से सेन्द्रिय तथा अन्य विषों के निकालने के लिए—जबकि विष प्रभाव से प्रदाह, प्रसेक व प्रलाप के लक्षण उपस्थित हो जाते हों।

४—शरीर के किसी भाग में तरल वृद्धि को कम करने के लिए स्वेदजनक औषधियों का प्रयोग करना पड़ता है। यथा—जलोदर, फुफ्फुसावरणीयद्रव, हृदयावरणीय द्रव, तथा आम संग्रह।

५—शरीर के शीत निवारणार्थ—उष्णता-वर्द्धक किसी औषध का प्रयोग करके शीत निवारण।

६—वृक्कों की कार्य-हानि होने पर शरीरगत दूषित मल निष्काशनार्थ—जैसे वृक्क संन्यास—वृक्कों द्वारा यूरिया के छानने की क्रिया उनकी अस्वस्थता में नहीं हो पाती, तब स्वेदल औषधि का प्रयोग करना पड़ता है।

७—त्वचागत रक्ताभिसरण की कमी में रक्त वृद्धि के लिए और रूक्षता निवारणार्थ, जैसा कि वाष्पस्वेद, उष्णजल स्वेदन आदि।

स्वेद की क्रियाओं से मूत्रल, शीतलकर व विरेचक औषधियाँ बाधा पहुँचाती हैं और उष्ण जल, उष्ण चाय, उष्ण वस्त्र, उष्ण वायु, उष्ण निवासस्थान, स्वेद बढ़ाने में सहायक होते हैं।

स्वेदवर्द्धक औषधियों की क्रिया

स्वेदवर्द्धक औषधियाँ कई प्रकार से अपना कार्य करती हैं। विशेष कर उल्लिखित अवस्थाएँ स्वेदवर्द्धक हैं। उष्ण और शीत-भेद से स्वेद भी दो प्रकार का होता है। त्वचा में रक्ताभिसरण की क्रिया बढ़कर जो स्राव होता है; वह उष्ण और त्वचा में बिना रक्ताभिसरण क्रिया के जो अधिक स्वेद निकल रहा हो तो प्रायः शीतल होता है।

१—स्वेद केन्द्र को प्रत्यक्ष रूप में उत्तेजित करके— पहले बतला चुके हैं कि स्वेदकेन्द्र सुषुम्ना केन्द्र में होता है, जो औषधियाँ अपने प्रभाव से स्वेद केन्द्र को उत्तेजित करती हैं वे सब स्वेद लाने वाली होती हैं। कर्पूर प्रधानवाली औषधियाँ, आम्लिक क्रियावाली औषधियाँ जैसे—नौसादर-मिश्रित औषधियाँ, कस्तूरी, केशर, तथा अम्बर-मिश्रित औषधियाँ ये अपने प्रभाव से रक्तवाही शिराओं के रक्त में उष्णता बढ़ाकर सीधे केन्द्र को उत्तेजित करती हैं और नाड़ी उत्तेजित होकर स्वेद क्रिया बढ़ाती हैं।

२—नाड्यन्त भागों को उत्तेजित करके—जो औषधियाँ नाड़ियों के प्रान्तभागों को त्वचा में रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ाकर उत्तेजित करती हैं वे नाड्यन्त भागों पर प्रभाव डालकर केन्द्र को उत्तेजित कर स्वेद लाती हैं। पंचपित्त-भावित रस, गोरोचन, लवण तथा क्षारमिश्रित औषधियाँ व्यायाम, उष्ण जल स्नान, वाष्प स्नान, उष्णद्रव क्वाथ, चाय फाण्ट आदि का पान।

३—त्वचा की रक्त-वाहिनियों का प्रसरण करके— जो औषधियाँ त्वचा के भीतर रक्त की प्रणालियों को फैला देती हैं, वे स्वेदकर होती हैं। सुरा-मद्य, आसव-अरिष्ट, अफीम और क्षारयुक्त औषधियाँ यह कार्य करती हैं। सूर्य का ताप, उष्णता, उष्ण स्वेद, उष्ण वस्त्रपरिधानादि भी रक्तवाहिनियों का प्रसारण करती हैं।

४—केन्द्र को अन्य औषधियों के प्रयोग द्वारा प्रतिफलित क्रिया द्वारा उत्तेजित करके स्वेद लाते हैं। स्वेदोत्पादक कुछ नाड़ी सुषुम्ना शीर्षक के अतिरिक्त कण्ठ, आमाशय में भी होती है। इनको उत्तेजित करने पर इनकी क्रिया से केन्द्र स्वतः उत्तेजित हो जाता है। यथा—कण्ठ, गाल और स्वर यन्त्र पर लगकर जाने वाली उष्ण, कटु, तीक्ष्ण वीर्य औषधियाँ इन स्थानों की नाड़ियों को उत्तेजित करती हैं, और उनका प्रभाव फिर केन्द्र पर होता है। पिप्पली, काली मिर्च, शुण्ठी, आर्द्रक जैसी औषधियों से युक्त औषधियाँ विशेष कर प्रतिफलित क्रियाएँ करती हैं।

कुछ औषधियाँ हृदय का अवसादन करके रक्तसंचालन को कम कर स्वेद लाती हैं, अथवा रक्तसंचालन की क्रिया से

भी स्वेद निकलता है। यथा—दुर्वलता में स्वेद आता है। कुछ रक्ताभिसरण की वृद्धि करके, कुछ सीधे केन्द्र को अपने प्रभाव से उत्तेजित करके कुछ अपनी क्रिया से नाड़ी केन्द्र को उत्तेजित करके इस तरह कई प्रकार से स्वेद लाती है। ऐसी कुछ औषधियों का विवरण नीचे दिया जाता है।

१—**स्वेदोपगकषाय**—शोभांजन, एरण्ड, श्वेतपुनर्नवा, यव, तिल, कुलत्थ, वेर, उड़द और आक इन दस औषधियों द्वारा निर्मित कषाय पाँच तोले की मात्रा में गरम-गरम पीने से स्वेदोत्पादक होता है।

२—**षड़ंगपानीय**—नागरमोथा, पित्त पापड़ा, उशीर, चन्दन, सुगन्ध वाला, और सोंठ इनका श्रृतशीत जल रुचिवर्द्धक और स्वेदकर होता है। गरम जल का पान भी स्वेदकर होता है। उष्ण वस्तु के प्रयोग से कण्ठ व गले की नाड़ियों पर प्रभाव पड़कर स्वेदकेन्द्र उत्तेजित हो पसीना आता है। उपरोक्त योग इसी प्रकार के प्रभाव करते हैं।

इसीतरह पंचतिक्त कषाय, अमृतादि कषाय, अमृताष्टक, गुडूच्यादि कषाय आदि प्रत्येक के ५-५ तोले की मात्रा में सुखोष्ण सेवन करने से स्वेदकर और ज्वरघ्न होते हैं।

कुछ स्वेदकर और ज्वरघ्न सिद्धौषधियाँ

१—**हिंगुलेश्वर**—२ रत्ती, खाकसीर १ माशे दोनों को एकत्र कर एक मात्रा बनावे—ऐसे ४-४ मात्रा इसके सेवन से पसीना आता और वेदना भी शान्त होती है।

२—**मृत्युञ्जय रस**—(भै० र०) विना जयपाल का योग २ रत्ती, पिप्पली चूर्ण २ रत्ती दोनों को एकत्र कर एक मात्रा बनावे, इस तरह इसकी ३-४ मात्रा गरम जल के साथ सेवन करने से पसीना आकर ज्वर निवृत्त हो जाता है।

चण्डेश्वर रस—की २ रत्ती की मात्रा में ४ मात्रा सेवन करने से स्वेदकर होता है।

महाज्वरांकुश रस—२ रत्ती, पिप्पली चूर्ण २ रत्ती की १ मात्रा बनावें; इस तरह ४-५ मात्रा सेवन करने से स्वेदकर और ज्वरघ्न प्रभाव करता है।

कस्तूरी भैरव-वृहत् कस्तूरी भैरव—की १-२ रत्ती की मात्रा में ४-५ मात्रा सेवन करने से लघुस्वेदकर प्रभाव करता है।

ज्वरारिअभ्र—१ रत्ती से ३ रत्ती तक, ५ मात्रा सेवन करने से स्वेदकर प्रभाव करता है।

त्रैलोक्य सुन्दर रस—२ रत्ती की मात्रा। ५ मात्रा सेवन करने से स्वेदकर प्रभाव करता है।

नोट—शीघ्र स्वेदकर योग बनाने के लिए खाकसीर, नौसादर, कल्मी सोरा, पिप्पली, गोदन्ती भस्म आदि इनमें से किसी एक या दो का मिश्रित योग शीघ्र स्वेद लाता है।

केवल खाकसीर ही देना हो, तो १-२ माशे चूर्ण या योगों के साथ २ माशे चूर्ण देने से लाभ होता है। अथवा—

काल्मी शोरा, नवसादर, पिप्पली, गोदन्ती भस्म और पिपलामूल का चूर्ण योग में मिलाना हो तो उपरोक्त योगों के साथ २-४ रत्ती मिलाकर या पृथक्-पृथक् भी देना चाहिए।

कुछ स्वेदल योग—

प्रवाल, सप्तपर्ण, वत्सनाभ, फिटकरी, कपूर, वनप्सा, देवदारु मालकांगनी, तुलसी, रोहिष, दालचीनी, सोंठ, चाय, शीतल मिर्च, और गंधक इनका उपयोग स्वेदकर होता है। इनमें से एक या एकाधिक प्रयोग करने पर स्वेदल होती हैं।

पारद, गंधक, वत्सनाभ मिली जितनी भी रसौषधियाँ हैं प्रायः उनका प्रभाव स्वेदल होता है। कालीमिर्च, पीपल, टङ्कण, नौसादर मिश्रित औषधें स्वल्प स्वेदकर होती हैं। रसशास्त्रोक्त ज्वरनाशक औषधों में प्रायः इन औषधियों का सम्मिश्रण अधिक है। वत्सनाभ मिश्रित औषधियाँ रक्तप्रवाह कमकर स्वेदल होती हैं।

चौंसठ प्रहरी पीपल—का $\frac{१}{२}$ माशा से १ माशे तक की मात्रा का प्रयोग स्वेदकर होता है।

पिप्पली वर्द्धमान—कल्प स्वेदकर होता है। इसके सेवन के बाद रोगी को प्रभूत स्वेद निर्गम होकर जीर्णज्वर शान्त होता है।

कर्पूर द्रव—पानी में कर्पूर डालकर क्वाथ की तरह पकाकर तैयार किया हुआ द्रव दीपन, पाचन और स्वेदल होता है।

कल्मीशोरा ४ रत्ती, गोदन्ती ४ रत्ती दोनों एकत्र मिला कर एक मात्रा बनावें। ऐसी ४ मात्रा के उपयोग से पसीना आने लगता है।

स्वर्ण भस्म—का प्रयोग स्वेदल होता है। जिस योग में स्वर्ण का अंश अधिक पड़ता है अर्थात् $\frac{१}{८}$ रत्ती एक मात्रा में उसके सेवन से स्वेदोद्गम होता है।

नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते

१७—छात्रोपयोगी निदान चिकित्सा

अथवा

निदान-चिकित्सा हस्तामलक

वैद्य रणजितराय

प्रमेह[1]

भूमिका

मूत्र-संबन्धी रोगों के दो वर्ग आयुर्वेद में वर्णित हैं प्रमेह तथा मूत्राघात। जिन रोगों में मूत्र के रासायनिक स्वरूप[2] में परिवर्तन (विकृति) पाया जाता है उन्हें आयुर्वेद में प्रमेह कहा है। जिन रोगों में मूत्र के निर्गमन-सम्बन्धी विक्रिया[3] होती है उन्हें मूत्राघात आदि वर्गों में परिगणित किया है।

प्रमेहों के दो भेद हैं। सहज तथा अपथ्यजन्य। सहज माता-पिता के बीजदोष से होता है, दूसरा अहिताहार-विहार से। सहज प्रमेह से आक्रान्त पुरुष कृश, रूक्ष, अल्पभोजी, वार-वार पिपासावाला तथा भ्रमणशील होता है। द्वितीय प्रमेही स्थूल, बहुभोजी, स्निग्ध तथा आराम पसन्द होता है। सहज रोगी की चिकित्सा संतर्पण प्रधान होती है तथा दूसरे की अपतर्पण-प्रधान।

प्रमेह में तीनों दोषों का कोप होता है, परन्तु कफ की प्रधानता से ये अधिक होते हैं।

निदान

आराम, बैठे रहने का जीवन, निद्रा, विशेषतः दिवस में, अव्यायाम, आलस्य, निश्चेष्टता, दही, ग्रामीण या जलचर जन्तुओं का मांस, मांसरस, दूध, इक्षुरस तथा गुड के बने द्रव्य, सुरा, नवीन धान्य तथा जल आदि शीत, स्निग्ध, मधुर, मेद्य (मेदो वृद्धिकर) तथा अन्य कफप्रकोपक एवं मेद और मूत्र की वृद्धि करनेवाले अन्नपान तथा विहार का अति सेवन प्रमेहों का सामान्य कारण है। पित्त-प्रमेहों में पित्त के सामान्य प्रकोपक कारण तथा वातजों में वात के सामान्य प्रकोपक कारण होते हैं।

संप्राप्ति

प्रमेहों में मेद, रक्त, शुक्र, जल (क्लेद), वसा में लसीका[1] मज्जा, रस (ओज) और मांस ये दूष्य होते हैं। तीनों दोष, विशेषतः कफ, स्वयं आम रहते हुए, मेद के साथ मिश्रित होते हैं तथा उसे विकृत करते हैं। पश्चात् वे शरीर के क्लेद (जलधातु), मांस आदि के सम्पर्क में आते हैं। मांस को विकृत करके वे दोष शराविका, कच्छपिका आदि

---

[1] १—देखिये च० नि० ४, च० सू० १७।७८-१०३, च० चि० ६, सु० नि० ६, सु० चि० ११, अ० हृ० नि० १०, माधव निदान।

[2] २—Chemical Composition—केमीकल कंपोजीशन। आगे प्रमेहों के सामान्य लक्षणों में जो मूत्र का आविल होना बताया है, वहाँ आविल का आशय मूत्र रासायनिक स्वरूप की दृष्टि से विकृत (Abnormal—एब्नॉर्मल, Pathological—पैथॉलॉजिकल) होना ही है।

[3] ३—Mechanical Obstruction—मिकेनिकल ऑबस्ट्रक्शन। मूत्रक्षय भी मूत्राघातों में वर्णित है। वहाँ एल्ब्यूमिन, रक्तदाब की न्यूनता आदि 'मिकेनिकल' कारणों से वृक्क में ही मूत्र के क्षरण का अवरोध होता है।

[1] १—Serum—सीरम। शरीरान्तर्गत जल-धातु (उदक) का यह एक भेद है, जो व्रणों से स्रुत होता है : 'यत्तु (उदकं) त्वगन्तरे व्रणगतं लसीकाशब्दं लभते (च० शा० ७-१५);

विभिन्न प्रकार की पिडकाएँ (विद्रधियाँ)[१] उत्पन्न करते हैं। क्लेद इत्यादि के साथ मिश्रित हो उन्हें साथ ले, मूत्रवह स्रोतों[२] में पहुँच वहाँ से (गवीनियों द्वारा) बस्ति में पहुँचते हैं। वहाँ से मूत्रप्रसेक[3] द्वारा स्वयं बाहर निकलते हुए जल, बसा इत्यादि को बाहर निकालते हैं, तथा उदकमेह, वसामेह, मज्जमेह आदि विभिन्न प्रमेहों को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार दोष जिस द्रव्य या जिस गुणयुक्त मूत्र का स्राव कराते हैं उसके अनुसार ही प्रमेहों के नाम होते हैं।

प्रमेहों की संख्या तथा विधि[४] *(भेद, प्रकार)*

प्रमेह कुल बीस होते हैं। कफज-दस ; पित्तज ६ तथा वातज चार।

उदकमेह, इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सान्द्रप्रसादमेह या सुरामेह, शुक्लमेह या पिष्टमेह, शुक्रमेह, शीतमेह, सिकतामेह, शनैर्मेह, लालामेह—ये दस कफज ; क्षारमेह, कालमेह, नीलमेह, लोहितमेह, माञ्जिष्ठमेह और हारिद्रमेह ये ६ पित्तज तथा वसामेह, मज्जमेह, हस्तिमेह और मधुमेह (क्षौद्रमेह) ये चार वातज प्रमेह हैं। (सुश्रुत में इनकी संख्या तो यही दी है, पर नाम और रूप में कुछ भिन्नता है।)[१]

प्रमेहों के सामान्य लक्षण

सभी प्रमेहों में मूत्र मिलन (आविल-सामान्य से भिन्न स्वरूप वाला)[२] तथा प्रचुर होता है-प्रभूता-विल मूत्रता। जिस पुरुष में प्रमेह के आगे कहे पूर्व रूप दीख पड़ें तथा मूत्र की मात्रा किंचित् भी अधिक हो उसे प्रमेह समझें। एवं ये पूर्वरूप संपूर्ण अथवा आधे देख पड़ें तथा मूत्र खूब आवे तो रोगी को प्रमेह पीड़ित जानें।

प्रमेहों के पूर्वरूप

तालु, गल,जिह्वा, दन्त तथा शरीर के छिद्रों (कर्ण, नासा इत्यादि) में मल की अधिकता ; नखों की वृद्धि, केशों की जटिलता, मुख की मधुरता, हथेली तथा तलुए की

इस चरक-वाक्य से लसीका नाम व्रण के स्राव अर्थात् सीरम का है। अतः स्थायी रस (रस धातु) के अर्थ में इसका व्यवहार योग्य नहीं है। प्रमेहों के दूष्यों में इसकी गणना का कारण प्रमेहियों को हुए व्रणों या क्षतों का कष्टसाध्यता (आगे देखिये) का कारण सूचित करने के लिए है कि, उनमें लसीका दूषित होने से (उसमें विशेषतः अप्रधान) ओज द्राक्षाशर्करा-जैसे कोथ-जनक द्रव्य की विद्यमानता के कारण पूयजनक जीवाणुओं की वृद्धि की अनुकूलता होने से व्रण दुःसाध्य होते हैं।

[१] —Carbuncles— कर्बंकल्स (गुजराती में पाठुं)। प्रमेह (विशेषतया मधुमेह) के अतिरिक्त अन्य भी कारणों से विद्रधियाँ होती हैं। पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र में भी इनके मधुमेह तथा अन्य कारण कहे हैं। साम्य दोनों में यह है कि दोनों विशाल फोड़े के सदृश परन्तु अधिक भयंकर, त्वचा के नीचे (Subcutaneous—सबकुटेनिअस) होने वाले तथा स्टेफिलोकॉकस (Staphylococcus) से होते हैं।

[२] —वृक्कों की मूत्रस्रावी नलिकाएँ—Renal Tubules रीनल ट्यूब्यूल्स।

[३] —Urethra—यूरेथ्रा।

[४] —भेद या प्रकार के लिए निदान पञ्चक के अन्तर्गत संप्राप्ति के प्रकरण में आयुर्वेद में विधि शब्द आता है। (देखिए यह लेखमाला—अक्टूबर, १९५०, पृष्ठ १८५)। वि+धा शब्द विविध, द्विविध, त्रिविध, नानाविध आदि शब्दों में प्रकार के अर्थ में पूर्व-प्रचलित है भी। 'विधि' शब्द को केवल संप्राप्ति के प्रकरण में बद्ध रखना योग्य नहीं।

[१] —गॉनोरिया के लिए भी सांप्रत वैद्यों में मेहान्त पूयमेह शब्द प्रचलित है। इसके व्रण के रोहण से हुए मूत्रकृच्छ्र को कभी पूयकृच्छ्र कहा जाता है (यथा, मुंबई राज्य के आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम में)। पूयमेह शब्द पुरुषों में सार्थक है। स्त्रियों में गॉनोरिया का प्रथम स्थान संश्रय योनि में होने से उनमें इसे मेह कहना संगत नहीं। विदित नहीं प्राचीनों ने इस रोग की गणना किस नाम से की है। डल्हन ने प्रश्न-परीक्षा के प्रकरण में गुह्य अङ्गों (शिश्न तथा योनि) से निकले पूय इत्यादि का ग्रहण मूलोक्त 'चकार' से करें ऐसा निर्देश किया है—चकारात् गुह्यदेशप्रवृत्तपूयादीनां ग्रहणम्—सु० सू० १०।५ पर डल्हन। प्राचीन काल में भारत में फिरङ्ग तथा तथाकथित पूयमेह न थे यह मानने में मुझे कुछ हिचक है। कदाचित् इनका अधिक उत्कृष्ट उपचार विदित होने से इन्हें कहीं क्षुद्र रोगों में स्थान दिया गया है।

[२] —Abnormal—एबनॉर्मल ; Pathological—पैथोलॉजिकल।

सुप्तता (संज्ञालोप) और दाह ; अवयवों की स्निग्धता, पिच्छिलता, गुरुता ; मुख, तालु और कण्ठ का शोष ; पिपासा ;[1] आलस्य ; अङ्गों में दाह[2] तथा सुप्ति ; शरीर और मूत्र पर भ्रमर (मक्खी ?) तथा चिऊँटी आना, मूत्र में दोषों के लक्षण (मधुरता, शुक्लता आदि) ; शरीर में दुर्गन्ध ; सदा निद्रा, तन्द्रा, साद (शैथिल्य), श्वास[1] ।

१—प्रमेहों में पिपासा—मधुमेह में द्राक्षाशर्करा का उपयोग न होने से उसके मल-रूप होने के कारण उसका बाहर निकलना अभीष्ट होता है ; जल में घुले बिना उसका निर्गमन शक्य नहीं । अतः उसे निकालने के लिए जल भी प्रचुर मात्रा में निकलता है । परन्तु, शरीर को उसकी जल की आवश्यकता तो रहती ही है । यह आवश्यलता जल की अधिक माँग (पिपासा) के रूप में प्रकट होती है ।

२—प्रमेहों में दाह तथा मूर्च्छा—आगे प्रमेह के उपद्रवों की गणना में पित्तज उपद्रवों में दाह तथा मूर्च्छा गिनाये हैं । पित्त का रस अम्ल है । इन बातों को लक्ष्य में रखकर नव्य मतानुसार इनका स्पष्टीकरण यों किया जा सकता है । स्नेहों के पाक की पूर्णता के लिए कार्बोहाइड्रेटों के पाक का पूर्ण होना आवश्यक है । मधुर प्रमेहों में कार्बोहाइड्रेटों का पचन पूर्ण न होने से अपर (अप्रधान) ओज या द्राक्षाशर्करा-नामक आम द्रव्य (अर्धपक्व द्रव्य–Intermediatet Produc—इंटरमीडियेट प्रोडक्ट ; विशेष के लिए देखिये आयुर्वेदीय क्रियाशारीर) की शरीर में वृद्धि होती है । यह द्रव्य मूत्रमार्ग से निकलता है । कार्बोहाइड्रेटों के पाक की इस अपूर्णता के कारण स्नेहों (घृतादि) का भी पूर्णतया पाक न होने से—उनका दहन होकर जो अन्तिम द्रव्य—कार्बन डाइऑक्साइड और जल—बनने चाहिए, वे न बनने से—स्नेहज आम द्रव्य बनते हैं । इन आम द्रव्यों को कीटोन बॉडीज़ या कीटोन्स (Ketone Bodies ; Ketones) कहते हैं । रक्त में इनकी अधिकता को कीटोसिस (Ketosis) या कीटोनीमिआ (Ketonemia; Hæma –हेमा=रक्त) कहते हैं । इन द्रव्यों के अम्ल होने से इस स्थिति को एक प्रकार का एसीडोसिस (Acidosis) या एसीडीमिआ (Acidœmia) भी कहते हैं । कीटोन-वर्ग में तीन द्रव्य हैं : बीटा-हाइड्रॉक्सी-ब्युटिरिक एसिड (Beta-Hydroxy-butyric acid) ; एसीटो-एसिटिक एसिड (Aceto-acetic acid ; पर्याय—डाईएसिटिक एसिड—Diacetic acid) तथा एसीटोन (Acetone) । आयुर्वेद में रक्त में अम्लपाक होने को 'रक्तविदाह' कह सकते हैं । विदाह शब्द अम्लपाक के लिए प्रसिद्ध है । मधुर प्रमेहों में तथा अन्य विकारों में उत्पन्न ये द्रव्य अपनी अम्लता के कारण जहाँ जाते हैं वहाँ दाह उत्पन्न करते हैं । रस-रक्त की अम्लता के कारण वमनादि अन्य भी लक्षण होते हैं। इन लक्षणों में एक मूर्च्छा भी है । आयुर्वेद में प्रमेहों में हुई मूर्च्छा को पित्तजन्य कहा है । उसका कारण भी नव्यमतानुसार उक्त 'कीटोन' ही होते हैं । नवीनों ने मधुमेह की मूर्च्छा को 'डायाबिटिक कॉमा' (Diabetic Coma) कहा है । इस तुलना का आशय यह है कि, वैद्यों को मधुमेहिक मूर्च्छा में पित्त विरोधी उपचार करने की प्रवृत्ति रखनी चाहिए ।

अनशन या उपवास को आयुर्वेद में पित्त का प्रकोपक कहा है । (देखिये—सु० सू० २१।२१) उसमें स्थिति यह होती है कि : अनशन के कारण नैत्यिक उपयोग के लिए कार्बोहाइड्रेट शरीर को सुलभ नहीं होते । उनके स्थान पर मेद के रूप में पूर्व-सचित स्नेहों का ही शरीर उपयोग करता है । परन्तु, कार्बोहाइड्रेटों के अयोगवश उनका पूर्ण पचन न होने से कीटोन-संज्ञक उल्लिखित आम द्रव्य ही बनते हैं, तथा अम्लताजन्य एवं आयुर्वेद में पित्ताधिकारोक्त तत्-तत् लक्षण उत्पन्न होते हैं ।

अर्थापत्त्या कीटोन-संज्ञक तीनों द्रव्य आयुर्वेद-मत से पित्त-वर्ग के अन्तर्गत हैं । पित्तवर्गीय अन्य द्रव्यों का तथा शेष दो दोषों के अन्तर्गत द्रव्यों का भी इसी पद्धति से अनुसंधान करना चाहिए ।

१—तमक श्वास और क्षुद्र श्वास—श्वास के आयुर्वेद में पाँच विधि (भेद) बताये हैं । उनमें दो ही साध्य होने से व्यवहार में स्मरणीय कहे जा सकते हैं—तमक और क्षुद्र । विभिन्न रोगों के उपद्रव या अङ्गभूत जिस श्वास का उल्लेख संहिताओं में आता है वह क्षुद्र श्वास है। इसमें तत्-तत् कारणवश रोगी अल्प भी श्रम से हाँफ जाता है । शेष श्वास जिसमें प्राणवह स्रोतों का कफ से अवरोध या वात से स्तम्भ होता है, वह तमक है । इस भेद की सूचना का प्रयोजन यह है कि 'श्वास चढ़ आना' इतना लक्षण रोगी के मुख से सुनकर ही सोम, पुष्करमूल, कुष्ठ, मनःशिला, समीरपन्नग, श्वासकुठार आदि द्रव्यों का निरर्थक

प्रमेहों के उपद्रव

श्लेष्मज प्रमेहों में :मक्खी बैठना, आलस्य, मांसपुष्टि, प्रतिश्याय, शैथिल्य, अरुचि, अजीर्ण, कफप्रसेक (मुख से कफ पड़ना), वमन, निद्रा, कास, श्वास ; पित्तजों में : वृषण में चीर. बस्ति में भेद, शिश्न में तोद, हृदयशूल, आम्लोद्गार, ज्वर, अतिसार, अरुचि, वमन, धूपन (अग्नि के समीप बैठे हों ऐसी प्रतीति), दाह, मूर्च्छा[1], पिपासा, निद्रानाश, पाण्डुरोग ; मल, मूत्र और नेत्र की पीतता ; वातजों में : हृद्ग्रह, लौल्य (जिह्वा की लोलुपता), अनिद्रा, स्तम्भ, कम्प, शूल, बद्धपुरीषता (मल विबद्ध होना, इसीसे कोष्ठ की क्रूरता)[2] ।

प्रमेह-पिडकाएँ

तीनों ही दोषों से उत्पन्न मेहों में मेद और वसा (मांसान्तर्गत मेद) के दूषित होने से इस प्रकार की पिडकाएँ होती हैं। इनके आकृति-भेद से शराविका, कच्छपिका, जालिनी[3], विनता, पुत्रिणी, मसूरिका, अलजी, विदारिका और विद्रधि ये दस नाम हैं। इनमें विद्रधि आभ्यन्तर और वाह्य दो प्रकार की होती हैं। ये पिडकाएँ प्रमेह के बिना भी हो सकती हैं[4] ।

साध्यासाध्यता

प्रमेह यदि सहज (कुलज) हो तो असाध्य होता है। अन्य भी सहज रोग इसी प्रकार असाध्य होते हैं। प्रमेहरोगी यदि उक्त उपद्रवों से पीडित हो, धातुओं (रक्त, वसा रस-ओज आदि) और मूत्र का स्राव अत्यधिक हो तथा चिर कालोत्थ पिडकाओं से रोगी युक्त हो तो प्रमेह असाध्य होता है। प्रमेह में बल-मांस का क्षय अत्यन्त हो जाय तो रोग असाध्य होता है। प्रमेहों कीउपेक्षा की जाय तो कालान्तर में सभी प्रमेह मधुमेह में परिणत होकर असाध्य हो जाते हैं। सुश्रुत के मत से प्रमेहों में पिडका तथा उपद्रवों के प्रादुर्भाव हो जाने का नाम ही मधुमेह है।[1] कफमेह तथा पित्तमेह यदि पूर्वरूपयुक्त हों तो असाध्य होते हैं। पित्तकृत प्रमेह पूर्वरूपों के बिना हों तो याप्य होते हैं। मेद दुष्ट न हों तो प्रमेह साध्य होते हैं। कफज प्रमेह साध्य होते हैं। वातज प्रमेह (वसामेह[2] मधुमेह आदि) असाध्य हैं।

प्रयोग चिकित्सक को न करना चाहिए। ऐसी स्थिति में मल या वात का विबन्ध, पाण्डुरोग, मेदस्विता आदि कारण का निदानकर तदनुरूप उपचार करना चाहिए। सोम आदि उक्त द्रव्य या योग प्राणवह स्रोतों के विकार में ही उपयुक्त है। कोई कफ का साम्य करते हैं तथा कोई स्तम्भ का निवारण। स्थिति देखकर इनका उपयोग करना चाहिए।

[1] —प्रमेह (विशेषतः मधुमेह) में होनेवाली मूर्च्छा का विवरण ऊपर देखिये।

[2] —अतएव मधुमेहियों में विबन्ध होने पर तीव्र विरेचन उपयोगी होता है।

[3] —जाल के सदृश अनेक छिद्रोंवाली—Multi-porous—मल्टीपोरस। यही विद्रधि अधिक देखी जाती है। विद्रधियों का कुछ विचार पहले टिप्पणी में किया है।

[4] —प्रमेह-पिडकाओं तथा विद्रधियों के निदान और चिकित्सा का विस्तार शल्यतन्त्र के ग्रन्थों में देखें।

[1] —प्रसिद्ध मधुमेह को सुश्रुत ने क्षौद्रमेह (क्षौद्र= मधु ; क्षुद्रा--मधुमक्षिका--द्वारा कृत होने से) नाम दिया है। चरकादि ने उसे मधुमेह कहा है। दोनों में संज्ञा का ही भेद है, अर्थ में नहीं। प्रमेहों में उपद्रव और पिडकाओं का प्रादुर्भाव होकर जब वे असाध्य हो जाते हैं, तब उन्हें मधुमेह यह विशेष नाम सुश्रुत ने दिया है।

[2] —वसामेह—जैसा कि नाम से सूचित है, इन रोग में मूत्रमार्ग से वसा का स्राव होता है। नव्य प्रत्यक्षानुसार यह स्थिति दो विकारों में देखी जाती है। एक तब जब कि स्नेहों का अति सेवन करने से वे मूत्रमार्ग से निःस्रुत होते हैं। निदान परिवर्जन—स्नेहों का त्याग—करने से अल्पकाल में ही यह विकार मिट भी जाता है। इसे लाइप्यूरिया (Lipuria ; लाइप=चर्बी) कहते हैं। यह आयुर्वेद का शुक्लमेह या पिष्टमेह प्रतीत होता है। कारण यह मेह कफजन्य कहा गया है, जिसका अर्थ पोषक-द्रव्य (यहाँ स्नेह) का अतिसेवन है। साथ ही, कफजमेह साध्य भी कहे गये हैं। म० म० कविराज गणनाथसेनजी ने जो आधुनिकों के काइल्यूरिआ (Chyluria) को पिष्टमेह कहा है, वह चिन्त्य है! कारण, काइल्यूरिआ

प्रमेहों के पृथक् लक्षण

कफज प्रमेहों के लक्षण—

उदकमेह[1]—इसमें कफ के प्रकोप के कारण रोगी का मूत्र स्वच्छ, अत्यधिक श्वेत, शीत, वेदना तथा गन्धरहित, जल-जैसा एवं कुछ मलिन और पिच्छिल होता है[2]।

इक्षुमेह—इसमें कफ-प्रकोपवश रोगी का मूत्र अत्यन्त मधुर, शीत, किंचित् पिच्छिल और मलिन तथा इक्षुरस के सदृश होता है[3]।

सान्द्रमेह—इसमें मूत्र पात्र में रखा जाने पर वासी होनेपर गाढ़ा (अत्यन्त मलिन, सान्द्र) हो जाता है[1]।

असाध्य माना जाता है। कभी अकस्मात् अच्छा भी हो जाता है। परन्तु पिष्टमेह तो कफज होने से साध्य ही माना गया है। कविराज जी ने वसामेह का उल्लेख ही नहीं किया है। वसामेह आयुर्वेद में असाध्य कहा गया है।

[1] —Diabetes Insipidus—डायाबिटीज़ इनसिपिडस। नव्यमतानुसार पोषणिका ग्रन्थि के पश्चिम खण्ड के अन्तःस्राव की क्रिया मूत्र-संग्रहण (Antidiuretic—एंटीडाइयूरेटिक) होती है। इस खण्ड की विकृति से मूत्र के निर्गमन पर अंकुश न रह जाने से यह रोग होता है। (मूत्र-संग्रहण नाम चरक-दशेमानि का है)। क्षौद्रमेह (या मधुमेह) का अंगभूत भी उदकमेह होता है। उसकी संप्राप्ति ऊपर पिपासा शीर्षक टिप्पणी में दी गयी है।

[2] —उदकमेह तथा हस्तिमेह—वातज मेहों में एक मेह हस्तिमेह है। उसमें और उदकमेह में भेद यह है कि, हस्तिमेह में वेग (मूत्र-विसर्जन की इच्छा) के बिना ही अनजाने निरन्तर मूत्रस्राव होता रहता है। वातज होने से वह असाध्य है। यह वृद्धावस्था में (वात प्रकोप के वय में) होता है। रोगी वात प्रकृति (वाचाल) होते हैं। कभी सुषुम्णा द्वारा संमोहन (स्पायनल एनेस्थीशिआ—Spinal anaesthesia) में मूत्राशय की शुषिर-पेशी को अंकुश में रखनेवाले नाड़ी सूत्रों के विद्ध या प्रभावित होने से भी न्यूनाधिक समय के लिए अथवा आजीवन यह विक्रिया होती देखी जाती है।

[3] —मधुर प्रमेह—संहिताओं में मधुर मूत्र का स्राव जिनमें होता है ऐसे तीन प्रमेह वर्णित हैं; इक्षुमेह, शीतमेह कफज होने से कफ प्रकोप का निदान (अति मधुरान्न सेवन) इनका कारण होता है। ये आधुनिकों के न्यूट्रिशनल डायाबिटीज़ (Nutritional Diabetes) हैं। कुछ काल आहार में परिवर्तन करने से स्वयं मिट जाते हैं। इसी से कफज मेह साध्य कहे हैं। नव्यमत से इक्षुमेह और शीतमेह में क्या भेद है, सो विचारणीय है। इतनी संतोष की बात है कि कफज मेहों में मधुरमूत्र के ये दो भेद चरक ने ही लिखे हैं, सुश्रुत ने नहीं। अस्तु। क्षौद्रमेह या मधुमेह वातज होने से असाध्य कहा गया है। चिकित्सा में यह साध्यासाध्यता ध्यान में रखनी चाहिए।

[1] —मूत्राशय में (सड़ांद Fermentative Changes—फार्मेण्टेटिव चैंजिज़) हो तो वहाँ क्षारीय (Alkaline—आल्केलाइन) प्रतिक्रिया होजे से फॉस्फेट्स (Phosphates) विलीन न रहकर नीचे बैठ जाते हैं। इनके कारण मूत्र गदला (सान्द्र) हो जाता है। कोई भी अम्ल (यथा शुक्ताम्ल, Acetic acid—एसिटिक एसिड) मूत्र में छोड़ने से फॉस्फेट विलीन होकर मूत्र निर्मल हो जाता है। सो, कदाचित् मूत्र में फॉस्फेट होना सान्द्र मेह है। प्रायः क्षारमेह को फॉस्फेट की प्रवृत्ति (Phosphaturia—फॉस्फेच्यूरिया माना जाता है।) यों, सभी मूत्र वायु में खुले रखे जायँ तो, माइक्रोकॉकस यूरीई (Micrococcus Ureae) नामक जीवाणुओं की वृद्धि तथा उनकी क्रिया से मूत्र का यूरीया (Urea) अमोनियम कार्बोनेट (Ammonium Carbonate) नामक क्षारीय द्रव्य में परिणत होने से, कुछ काल में (मूत्रमात्र की) प्रतिक्रिया क्षारीय हो जाती है। वासी मूत्र में जो विशिष्ट गन्ध होता है, वह इस अमोनियम कार्बोनेट के कारण (वायुपूर्ण विशुद्ध हो, यथा किसी हिम शिखर पर तो अलबत्ता यह क्रिया नहीं होती)। यूरिया प्रोटीनों के धातुपाक (विघटन) का परिणाम होता है। मांस, शिम्बीधान्य आदि के रूप में प्रोटीनों का अति सेवन किया जाय तो उनकी अनावश्यक विघटित होकर (Exogenous metabolism—एक्सोजिनस मेटाबॉलिज़्म होकर) समप्रमाण से अधिक यूरीआ के रूप में मूत्रमार्ग से प्रवृत्ति होती है। दाल आदि का अधिक सेवन किया जाय तो मूत्र शीघ्र ही अतिदुर्गन्धयुक्त हो जाता है, उसका एक कारण यूरीआ का अमोनियम कार्बोनेट में परिणत होना है, जो अधिक मात्रा में अधिक दुर्गन्ध छोड़ता है। सो प्रोटीन के अतिसेवन से जो वासी मूत्र में सम की अपेक्षया अधिक सान्द्रता आती है उसीसे उसकी प्रवृत्ति को

सान्द्र प्रसादमेह या सुरामेह—इसमें मूत्र वासी होने पर सुरा के समान कुछ सान्द्र (गाढ़ा-गदला, मलिन) होता है और कुछ निर्मल रहता है[१] ।

शुक्लमेह या पिष्टमेह—इसमें रोगी का मूत्र श्वेत, जल मिश्रित पिष्ट (आटे) के समान, बार-बार, पुष्कल तथा श्वेत होता है[२] । रोगी रोमाञ्चयुक्त होता है ।

शुक्रमेह—इसमें मूत्र शुक्र-सदृश या शुक्र मिश्रित तथा बार-बार होता है[१] ।

शीतमेह—इसमें मूत्र अत्यन्त मधुर, शीत तथा बार-बार प्रवृत्त होता है[२] ।

सिकतामेह—इसमें कफ के सूक्ष्म कण निकलते हैं । (जैसा कि नाम से सूचित है, ये कण सिकता-रेती के होते हैं । स्वस्थावस्था में शरीर के पोषक होने से इन्हें कफ के कण कहा गया है[३] ।)

शनैर्मेह—इसमें मूत्र थोड़ी-थोड़ी देर में, अल्प-अल्प, विना वेग, कठिनाई से, कफयुक्त तथा पिच्छिल होता है ।

लालामेह—इसमें मूत्र लम्बे तन्तुयुक्त, लाला सदृश तथा पिच्छिल होता है[४] ।

सुश्रुत ने कफज मेहों में शीतमेह तथा लालामेह का नहीं वर्णन किया । उसने फेनमेह तथा लवणमेह विशेष लिये हैं । इनमें—

फेनमेह—इसमें मूत्र थोड़ा-थोड़ा, फेनयुक्त और स्वच्छ होता है ।

लवणमेह—इसमें मूत्र स्वच्छ, लवणोदकतुल्य होता है ।

सान्द्रमेह कहा गया है । कई बार शुद्ध प्रोटीन एल्ब्युमिन के रूप में मूत्रमार्ग से प्रवृत्त होती है । वृक्कों के पाक (शोथ) में यह स्थिति देखी जाती है । मूत्र को गर्म करने से यदि वह मलिन (गदला या धुँधला) हो जाय और शुक्ताम्ल आदि कोई अम्ल द्रव्य डालने से भी मलिनता नष्ट न हो तो समझा जाता है कि, मूत्र में एल्ब्युमिन है । रोग की पराकाष्ठा में तो मूत्र बिना तप्त किये भी निकलते ही कभी इतना गदला और सान्द्र हुआ देखा जाता है जैसे 'आइसक्रीम' हो । सो सान्द्रमेह इस प्रकार प्रोटीन की प्रवृत्ति का सूचक है । सान्द्रप्रसादमेह या सुरामेह सान्द्रमेह की ही अवस्था का नाम हो सकता है ।

इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिये कि, वृक्क के शोथ (Nephritis—नेफ्राइटिस) में मूत्र से एल्ब्युमिन निकलती है । उधर, इसके कारण सर्वाङ्ग पर भी शोथ आयुर्वेदोक्त कफज शोथ के लक्षणों से साम्य रखता है । यह साम्य को दृष्टि में रखते हुए भी (कफज) सान्द्रमेह का एल्ब्युमिन की प्रवृत्ति से सम्बन्ध है या नहीं, इस बात का विचार करना चाहिये ।

तात्पर्यः कफजमेहों में तत्-तत् आहार्य द्रव्य के अतिसेवन से तत्-तत् प्रमेह होता है : स्नेहों के कारण पिष्टमेह या लाइप्यूरिआ; कार्बोहाइड्रेटों के कारण इक्षुमेह (और शीतमेह) तथा प्रोटीनों के कारण सान्द्रमेह ।

१—सान्द्रप्रसादमेह का विचार ऊपर की टिप्पणी में देखिये । फॉस्फेटकी प्रवृत्ति (Phospheturia—फॉस्फेच्यूरिया) कदाचित् यह हो ।

२—श्वेतवर्ण के मूत्र की व्यथा लेकर रोगी आया हो तो उससे पूछना चाहिये कि, मूत्र जल के समान श्वेत है या दूध के समान ? दूध के समान मूत्र प्रवृत्त हो तो पूछना चाहिये कि आरम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण मूत्र दुधियाला है कि इसका कुछ भाग (समझो आरम्भ या अन्त का स्वल्पांश) तथा शेष सामान्य वर्ण का? सम्पूर्ण मूत्र श्वेत वर्ण का हो तो पिष्टमेह या वसामेह (आगे देखिये) का ध्यान आता है । इन दिनों अति स्नेह सेवन का इतिहास पिष्टमेह का सूचक है । देश आनूप (श्लीपद के, जन्तुओं का आश्रयभूत) हो तो वसामेह के प्रति ध्यान जाता है ।

१—शुक्रमेह को नव्य चिकित्साशास्त्र में (Spermatorrhoea—स्पर्मेटोरीआ) कहते हैं ।

२—इसका विचार ऊपर टिप्पणी में देखिये ।

३—Renal sand—रीनल सैण्ड; या Renal gravels रीनल ग्रावल्स । इसमें यूरिक एसिड के कण (Uric acid particles) निकलते हैं ।

४—यह स्थिति मूत्राशय या मूत्रमार्ग में कफप्रधान पाक (शोथ-संरम्भ) होने पर कफ (Mucus—म्युकस) के निकलने से होती है ।

पित्तज प्रमेहों के लक्षण

क्षारमेह—इसमें मूत्र क्षार के द्रव्य के समान गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्शवाला होता है[1]।

कालमेह—इसमें मूत्र बार-बार, उष्ण और मसी (स्याही) तुल्य होता है[2]।

नीलमेह—इसमें मूत्र चाष (नीलकण्ठ) के पंख के समान वर्ण का तथा अम्ल होता है[3]।

रक्तमेह—इसमें मूत्र विस्र (कच्ची सड़ाँद के गन्ध का) लवणरस, उष्ण तथा रक्त के सदृश होता है[1]।

माञ्जिष्ठमेह—इसमें मूत्र मञ्जिष्ठा के जल के समान, बार-बार तथा विस्र होता है[2]।

हारिद्रमेह—इसमें मूत्र हरिद्रा के द्रव के तुल्य कटु और दाहकर होता है[3]।

क्रमशः

१—इसमें फॉस्फेट्स होते हैं, ऐसा समझा जाता है। इनके विषय में कुछ उल्लेख ऊपर टिप्पणी में आ गया है।

२—इस प्रकार का मूत्र विषमज्वर (Malaria—मलेरिया) के एक भेद 'ब्लैक वॉटर (Black water Fever—में निकलता है। इसमें रक्त का वर्णक हीमोग्लोबीन नष्ट होकर मूत्र के साथ बाहर आता है, जिसके कारण मूत्र का वर्ण काला-सा होता है। मूत्रमार्ग से हीमोग्लोबीन निकलने को हीमोग्लोबीन यूरिआ (Hæmoglobinnuria) कहते हैं। कहा जाता है कि, विषमज्वर के उपचारार्थ अति क्वीनाइन लेने से यह होता है। अधिक सम्मत कारण विषमज्वर के जन्तुओं का सहचारी कोई वायरस (Virus) माना जाता है। यह रोग उष्ण कटिबन्ध में—विशेषतया अफ्रीका में—होता है। यूरोपियन इससे अधिक आक्रान्त होते हैं। (वायरस ऐसे जीवाणु को कहते, जिसे अणुवीक्षण—Microscope—माइक्रोस्कोप से तो न देखा जा सके, पर लसीका आदि दूष्यों को फिल्टर-पेपर से छानकर यदि उसके ऊपर रहे द्रव्य को स्वस्थ प्राणी में सूचीबस्ति से प्रविष्ट किया जाय तब तो उसे रोग नहीं होता, पर नीचे छनकर आये द्रव्य के प्रवेश से प्राणी को भी वही रोग हो जाता है, जो रोगी को है—इस प्रत्यक्ष से जिसका अनुमानमात्र होता है। इन्फ्लुएञ्जा, पाषाणगर्दभ, (Mumps—मम्स), येलोफीवर, मस्तिष्क-शोथ (एनकेफेलाइटिस—Encephalitis), पॉलिओमायलाइटिस, मसूरिका (चेचक) आदि प्राणियों और उद्भिदों के रोग इनसे होते हैं। सच पूछा जाय तो वायरस प्रोटीन के बड़े-बड़े कण हैं, जिनका स्वभाव जीवाणुओं के समान वृद्धि का है। ये सेन्द्रिय तथा निरीन्द्रिय द्रव्यों के मध्य-सेतु-तुल्य माने जाते हैं।

३—अन्त्रों में कोथ होने के कारण इण्डोल (Indole) नामक पूतिगन्धयुक्त वायु उत्पन्न होता है। इसका विघटन और आचूषण होकर एक द्रव्य बनता है, जो मूत्रमार्ग से निकलता है। कई परीक्षा-द्रव्यों के मेल से यह नील (Indigo–इण्डिगो) में परिणत हो जाता है। अतः रासायनिक नाम के अतिरिक्त इसे इण्डिकन (Indican) भी कहते हैं।

१—रक्तप्रकोप में (हाई ब्लड प्रेशर) में मूत्रमार्ग से रक्त-प्रवृत्ति होती है। आघात, अर्बुद, सिकता आदि कारणों से भी हो सकती है। (रक्तप्रकोप का आयुर्वेद-मत से अध्ययन करने के लिये देखिये – विधिशोणितीय अध्याय—च० सू० अ० २४)।

मूत्र में रक्त की व्यथा लेकर आये रोगी से मूत्र कराके देखना चाहिये। कई बार किञ्चित् अधिक पीत मूत्र को ही अज्ञ रोगी रक्तयुक्त मान लेते हैं। रक्तमेह को अंग्रेजी में Haematuria—हीमेच्यूरिआ कहते हैं।

२—कामला में मूत्र गाढ़ा-भूरा (Dark-Brown—डार्क ब्राउन) तथा हरापन लिये होता है। उग्र अवस्थाओं लगभग कृष्णवर्ण भी हो सकता है। यह स्थिति मूत्र में याकृत पित्त (Bile—बाइल) के कारण होती है।

३—मूत्र के विभिन्न वर्णद्रव्य (Pigments—पिगमेण्ट्स) जल का प्रमाण न्यून होने पर उसे हरिद्रावर्ण कर देते हैं।

क्षय रोग का मानसिक कारण

प्रो० लालजीराम शुक्ल

नेचरोपैथी (प्राकृतिक चिकित्सा) के विशेषज्ञ श्री लिड़लहार महाशय अपनी 'नेचरोथराप्यूटिक्स' नामक पुस्तक में शारीरिक रोगों के मानसिक कारण पर विचार करते हुए लिखते हैं कि "आत्मसंताप (Self pity) आत्मा का क्षय रोग है। यह मानसिक क्षय शारीरिक क्षय में भी परिणत हो जाता है। अतएव हम जितना जल्दी इस रोग से अपने को मुक्त कर सकते हैं उतना ही हमारे स्वास्थ्य के लिए भला है। यदि अधिक देर तक मानसिक क्षय की उपस्थिति रही तो वह अपना भयानक परिणाम शारीरिक व्याधि में अवश्य दिखावेगी।

उक्त कथन की सत्यता लेखक के उपचार में आये कुछ मानसिक रोगियों की जीवनी से प्रमाणित होती है। लेखक का एक पुराना शिष्य इस समय बम्बई प्रान्त के एक सुप्रसिद्ध क्षय रोग के सेनीटोरियम में पड़ा हुआ है। उसे वहाँ रहते एक साल हो गया है। यह बड़ा ही सदाचारी और साधुवृत्ति का नवयुवक है। इसके आदर्श बड़े ऊँचे हैं। वह बड़ा उदार और समाजसेवी है; परन्तु वह सदा निराशा के विचारों से आक्रान्त रहता था। इस नवयुवक के क्षय रोग का भौतिक कारण उसका अपने शरीर पर अत्याचार था। उसने एक बार तेरह दिन का उपवास किसी साधु के आज्ञानुसार किया। साधु-महात्मा भी उसके साथ उपवास करते थे। इन तेरह दिन केवल नीम का रस पीकर रहना पड़ता था। इस उपवास के करने के पूर्व इस विद्यार्थी ने लेखक से कोई सलाह न ली थी। इस उपवास ने उसको इतना कमजोर कर दिया कि वह उठ-बैठ नहीं सकता था। इसके बाद ही उसे क्षय रोग हो गया। वह कुछ दिन घर रहकर फिर बम्बई के सेनीटोरियम में पहुँचाया गया।

लेखक को इस युवक के घर की परिस्थिति का पूरा परिचय था। वह अपने पिता के व्यवहार से संतुष्ट नहीं था। युवक की माँ जो कई दिनों से पागल है; जिसका कारण युवक की दृष्टि में माता के प्रति घर के लोगों का कठिन व्यवहार रहा। युवक का विवाह आज से पाँच वर्ष पूर्व हो चुका था; परन्तु तीन वर्ष पूर्व उसकी स्त्री की मृत्यु हो गई थी। इसके बाद उसने विवाह नहीं किया। युवक घर का सम्पन्न पढ़ा-लिखा और सुन्दर युवक है। अतएव उसके समाज के सैकड़ों लोगों ने चाहा कि वह विवाह करे; परन्तु उसने विवाह करना अस्वीकार किया। कुछ दिन तक वह विवाह यह कहकर टालता रहा कि जबतक वह अपनी शिक्षा समाप्त नहीं कर लेगा तबतक वह विवाह नहीं करेगा। परन्तु दो वर्ष पूर्व उसने बी० ए की परीक्षा पास कर ली और आगे पढ़ने का विचार न रहा। अब तो उसे घर ही रहना पड़ा और फिर पिता का विवाह का आग्रह भी बढ़ने लगा; परन्तु नवयुवक विवाह को टालना चाहता था। विवाह को टालने का अब रोग के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं रहा। लेखक जानता था कि युवक विवाह की जिम्मेदारी से बचना चाहता है। अतएव रोग का आवाहन कर रहा है और उसे रोग अवश्य हो जायेगा। आज से दस वर्ष पूर्व लेखक के एक मित्र को किसी अप्रिय जिम्मेदारी से बचने की भीतरी इच्छा के कारण क्षय रोग हो गया था। यह व्यक्ति एक ताल्लुकेदार के लड़कों का अभिभावक था। यह कार्य उसे अप्रिय था; परन्तु उसे बिना किसी संक्रामक रोग के हुए बच नहीं सकता था। उसका पिता भी इन्हीं ताल्लुकेदार के यहाँ नौकर था। अतएव उसकी आंतरिक इच्छा पूरी हुई। संक्रामक रोग के कारण वह अपनी जिम्मेदारी से सदा के लिए मुक्त कर दिया गया। यह व्यक्ति दो साल तक विभिन्न क्षय रोग के सेनीटोरियम में रहा और फिर रोग से मुक्त हो गया।

जिस प्रकार की मानसिक स्थिति उक्त मित्र की थी; उसी प्रकार की मानसिक स्थिति इस नवयुवक की भी थी। लेखक का उक्त नवयुवक से सदा पत्र-व्यवहार बना रहा। लेखक ने नवयुवक को एक बार लिखा कि वह अपने जीवन से घृणा करता है। इसलिए उसे क्षय रोग हो गया है। इसके

उत्तर में उसने एक रहस्यमय आत्मस्वीकृति लिखी जिससे स्पष्ट है कि रोगी अपनी पुरानी भूल के लिए भारी मानसिक संताप का अनुभव कर रहा है। उसका रोग पुरानी भूल के प्रायश्चित्त के रूप में है। जबतक रोगी की उस मानसिक ग्रन्थि का निराकरण नहीं हो जाता जिसके कारण उसे मानसिक संताप होता है तबतक उसके क्षय रोग की जड़ का जाना भी कठिन है। मनुष्य अपने अभिमान के कारण ही अपने आपको अनेक प्रकार की भूलों के लिए जिम्मेदार मान बैठता है। अतीत की सभी भूलों के दुःख से अपने आपको दुःखी बनाये रखना एक भारी नादानी है। इससे न हम अपने आपका और न दूसरों का कोई लाभ करते हैं। वास्तव में जो व्यक्ति अपने आपमें कोई सुधार करना नहीं चाहता, वही अतीत की भूलों से अपने-आपको दुःखी बनाये रखता है। पुरुषार्थवान व्यक्ति नये भले काम करके पुरानी-पुरानी भूलों का प्रायश्चित्त किया करते हैं। किसी प्रकार की कमी के लिए चाहे वह भौतिक हो अथवा नैतिक अपने आपको कोसते रहना आत्मा में क्षय रोग को स्थान देना है। उक्त नवयुवक का मन क्षय रोग को पकड़े हुए है। यह रोग उसे अकारण भय और चिन्ता से मुक्त करता है। वियना नगर के प्रसिद्ध मानसिक चिकित्सक स्टेकिल महाशय का कथन है कि शारीरिक रोग की उपस्थिति मनुष्य को जटिल मानसिक परेशानी से बचाती है। यदि मानसिक व्याधियों से पीड़ित नवयुवकों को शारीरिक रोग न होवे तो वे आत्महत्या कर डालें। शारीरिक रोग की उपस्थिति मनुष्य के मानसिक रोग को कम कर देती है। शारीरिक पीड़ा मानसिक रोगी को विशेष प्रकार का आत्मसंतोष प्रदान करती है। अतएव प्रकृति मानसिक रोगी को तबतक शारीरिक रोग प्रदान करती रहती है जबतक कि वह उसके लिए आवश्यक है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि उक्त नवयुवक की स्त्री भी क्षय रोग से मरी थी। वह एक रूपवती और सुशीला महिला थी। युवक को अपनी स्त्री के मरने का भारी दुःख हुआ। वह अपने को उसकी मृत्यु के लिए जिम्मेदार समझता था और यह उसकी मृत्यु की घटना को भुलाने की भरसक चेष्टा करता रहा। इससे उसके जीवन में एक स्मृतिह्रास का रोग हो गया और दूसरी ओर विषाद रोग की उपस्थिति हो गई थी। इसी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर युवक ने तेरह दिन का उपवास भी किया था।

प्रत्येक प्रकार का मानसिक क्लेश जबतक मनुष्य के सामने रहता है तबतक शारीरिक रोग का रूप धारण नहीं करता। जब हम किसी मानसिक रोग को भुलाने की चेष्टा करते हैं तब वह शारीरिक रोग का रूप धारण करता है। यह रोग उसी प्रकार का होता है जिस प्रकार के दोष से रोगी मानसिक क्लेश को मानता है। इस प्रयोग में एक दूसरे क्षय-रोगी के रोग का उल्लेख करना आवश्यक है।

लेखक की एक छात्रा को जो आज एक महिला कालेज में प्राध्यापिका है आज से चार वर्ष पूर्व क्षय रोग की बीमारी हुई। यह बीमारी प्लूरसी (उरस्तोय) से बढ़कर हो गई थी। यह महिला भी भुवाली के सेनोटोरियम में साल भर रही और फिर वहाँ से स्वास्थ्य लाभ कर आई। इस महिला का रोग उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार उसके पिता का रोग था।

महिला का पिता सत्तर वर्ष की अवस्था में प्लूरसी होकर क्षय रोग से मरा। महिला उस समय ट्रेनिंग कालेज काशी में पढ़ रही थी। वह पिता की सेवा के लिए एक मास की छुट्टी लेकर घर गई। पिता की प्लूरसी से मृत्यु हो गई। इससे महिला को भारी दुःख हुआ। महिला पिता की वृद्धावस्था में उसकी सेवा करना चाहती थी; परन्तु यह सम्भव न हुआ। वह अपने पिता की मृत्यु के लिए अपने को किसी प्रकार की दोषी मान ली थी। वह पिता की मृत्यु के दृश्य को भुलाना चाहती थी। परन्तु वह दृश्य भुलाये नहीं भूलता था। परन्तु उसके भुलाने के प्रयत्न करते-करते स्वयं उसे ही वही रोग हो गया जो उसके पिता को था।

महिला से प्रतिदिन बात करके उसका मानसिक भार उतारा गया। उससे शिथिलीकरण का अभ्यास भी कराया गया। पिता की मृत्यु के लिए अपने आपको जिम्मेदार मानना एक भारी भूल है। यह बात महिला के मन में बैठाई गई। इससे महिला का प्लूरसी से पीड़ा जाती रही। पीछे वह क्षय रोग से भी मुक्त हो गई। उसके जीवन में निराशा आ गई थी। उसके बदले आशा लाना भी आवश्यक था। अतएव अपने जीवन का नया लक्ष्य बनाना आवश्यक है। यह बात मन में बैठाई गई। कई दिनों के

अभ्यास के पश्चात् महिला का मानसिक परिवर्तन होने लगा और वह क्षय रोग से मुक्त हो गई ।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि क्षय रोग के लिए जो भौतिक उपचार होते हैं, उनको रोकना मानसिक बनावट को बदलने के लिए आवश्यक नहीं है । भौतिक चिकित्सा से लाभ अवश्य होता है ; परन्तु यह लाभ मानसिक बनावट को बदले बिना स्थायी नहीं होता । जब रोगी का भीतरी मन रोगसे मुक्त नहीं होता ; रोगी की चाहे जितनी चिकित्सा क्यों न की जाय रोग से रोगी का मुक्त होना असम्भव है ।

मानसिक चिकित्सा-शास्त्र का यह अटूट सिद्धान्त है कि मनुष्य के अधिक शारीरिक रोगों का जड़ उसके गम्भीर मन से रहता है । इस मन का मनुष्य को ज्ञान नहीं रहता । इस मन की इच्छाएँ बाहरी मन को इच्छाओं से कभी-कभी अनुकूल रहता है । और कभी-कभी उसके प्रतिकूल भी । मनुष्य बाहरी मन से किसी विशेष प्रकार के रोग से परेशान रह सकता है ; परन्तु भीतरी मन से वह उस रोग को चाहता हो यह असम्भव है । कितने ही शारीरिक रोग मनुष्य को अपनी कटु जिम्मेदारियों से बचा देते हैं और कितने ही प्रायश्चित्त के रूप में होते हैं । रोग रोगी को तब तक नहीं छोड़ता जबतक रोगी अपनी कठिन जिम्मेदारियों को वहन करने को तैयार नहीं हो जाता ; अथवा जबतक वह नहीं सोच लेता कि उसकी भूल का प्रायश्चित्त हो चुका अथवा जिस भूल को वह भारी पाप समझता था, उसके लिए वह जिम्मेदार ही न था ।

लेखक को हाल ही में दो और नवयुवक मिले जिन्हें हृदय का रोग हो रहा है । दोनों को विस्मृति का भी रोग है । दोनों नवयुवक अपनी स्त्री के प्रति भूल के लिए अपराधी मानते हैं । इनमें से एक नवयुवक हठी है । अतएव वह अपने भूल को सुधारने के लिए तैयार नहीं है । दूसरा अपनी भूल को अब सुधार ही नहीं सकता क्योंकि जिस व्यक्ति के प्रति उसका भूल था अब वह संसार में नहीं रहा । वह अपने भूल को पहचानता है । पर अब उसके प्रायश्चित्त के लिए वह क्या करे नहीं जानता । पहले नवयुवक ने अपनी प्रिय पत्नी को अपनी माता और बड़े भाई के कहने पर छोड़ दिया और दूसरा विवाह कर लिया । इस विवाह के पश्चात् उसे आत्म-भर्त्सना हुई । नववधू न तो योग्य है और न इतनी रूपवती जितनी पहली स्त्री थी । अतएव मन ही मन यह युवक कुढ़ता है ; परन्तु उसे अपनी भूल के सुधार का मार्ग दिखाई नहीं देता यदि उसकी यही मानसिक स्थिति रही तो वह अवश्य ही भारी शारीरिक व्याधि का शिकार बन जावेगा।

दूसरे नवयुवक की स्त्री घर के अत्याचार से क्षय रोग से पीड़ित होकर मर गई । वह उसे प्यार करता था ; परन्तु वह उसे घर के अत्याचार से नहीं बचा सका । उसके मरने के छः महीने के भीतर उसका दूसरा विवाह हुआ । यह स्त्री न तो इतनी रूपवती और शीलवती है जितनी पहली स्त्री थी । और न उसमें उतने विद्वत्ता के गुण भी हैं । अतएव युवक का मानसिक संतोष उससे होना सम्भव न था । अब उसे पुरानी स्त्री याद आने लगी और उसके किये गये अत्याचार कटु स्मृति के रूप में उसे बार-बार वेदना होने लगी ; परन्तु वह करे क्या, वह तो बेचारी स्वर्ग में जा बसी ।

युवक ने अपनी प्रेयसी की स्मृति भुलाने की चेष्टा की परन्तु इससे उसके हृदय में धड़कन उत्पन्न हो गई ; उसका जीवन नीरस और उसकी स्मृति का ह्रास हो गया । अब साधारण सी बातें भूल जाता है । युवक का कथन है कि वह अपनी पहली स्त्री की स्मृति में रोना चाहता है ; परन्तु उसके आँखों में आँसू नहीं आते । मालूम होता है कि हृदय भावहीन हो गया है । अब उसका जीवन भाररूप प्रतीत होता है । यदि इस युवक की यही मानसिक दशा बनी रहती तो उसका पागल होना या उसी रोग से ग्रस्त होना जिससे उसकी स्त्री की मृत्यु हुई स्वाभाविक है । यह संतोष की बात है कि यह युवक जिस अपराध में अपने आपको अपराधी समझ रहा था उसके लिए उचित प्रायश्चित्त करने लग गया है और उसकी मानसिक अवस्था में अब पर्याप्त सुधार हो गया है ।

आज से एक वर्ष पूर्व लेखक का एक पुराना शिष्य जिसकी अवस्था २४ वर्ष की है आया । इसे क्षय रोग हो जाने का भ्रम हो गया था । उसने अपने शरीर की अनेक डाक्टरों से परीक्षा कराई । उसे कुछ न कुछ शारीरिक रोग बना ही रहता था । उसे कुछ खांसी और बुखार रहता था, इसके कारण वह खाने-पीने पर परहेज भी प्रारम्भ कर दिया । इसके परिणामस्वरूप वह शरीर से कृषकाय हो गया । वह ठीक से चल-फिर भी नहीं सकता था । इस युवक ने लेखक के कुछ व्याख्यान शारीरिक रोगों के मानसिक कारणों पर सुने

थे। अतएव जब कई दिनों के डाक्टरी इलाज से उसे अपने स्वास्थ्य में कुछ लाभ होते न दिखाई दिया तो वह लेखक के पास इस आशय से आया कि संभव है कि इस रोग के कोई मानसिक कारण हों। जब स्वयं रोगी किसी मानसिक चिकित्सक के पास इस उद्देश्य से आता है कि उसके रोग का उपचार किया जाय तो रोग के उपचार होने में बड़ी सहूलियत हो जाती है। रोगी का इस प्रकार से चिकित्सक के पास आना यह दर्शाता है कि रोगी का आन्तरिक मन अब रोग को छोड़ना चाहता है। उसकी भूल का प्रायश्चित्त हो चुका है। ऐसी अवस्था में रोगी को रोग से मुक्त होने में पूरा सहयोग मिलता है। बिना इस सहयोग के किसी रोगी को उसके रोग से मुक्त करना असम्भव है। ऐसी अवस्था में उसके स्वप्न भी स्पष्ट होते हैं और उनमें रोग की चिकित्सा का मार्ग भी लक्षित रहता है।

रोगी के मानसिक अध्ययन से पता चला कि वह अपने को पुरुषार्थ-हीन मान बैठा था। उसकी जिम्मेदारियाँ भारी थीं। वह कई परीक्षाएँ पास कर चुका था; परन्तु उसे उचित आजीविका प्राप्त नहीं हो पाई थी। गाँव के लोग उसके पुरुषार्थ की भर्त्सना करने लग गये थे। उसे घर के लोग निकम्मा मानने लगे थे। घर के काम के भार से उसकी स्त्री लद गई थी। बेचारी क्या करे। कभी-कभी माता और स्त्री में झगड़ा भी हो जाता था। इससे स्त्री भारी दुःखी रहती थी। वह अपने पति की ओर ताकती परन्तु पति भी लाचार थे। उसकी आमदनी कुछ नहीं के बराबर थी। अतएव स्त्री की मूक भर्त्सना भी उन्हें सुनना पड़ता था। जिन लोगों से वे नौकरी दिलाने की आशा करते थे, उन्होंने कोई सहायता न दी। वह अपने भाग्य को कोसने लगा। जब मनुष्य अपने भाग्य को कोसने लगता है तो उसकी मानसिक दशा दयनीय हो जाती है। ऐसी दशा में उसका आन्तरिक मन किसी रोग का आवाहन करने लगता है जो उसकी इस दयनीय अवस्था पर आवरण डाल सके और जो उसे अपने जीवन की असह्य जिम्मेदारियों से मुक्त करा सके। रोगी व्यक्ति किसी का भार न उठा सकने के लिए अपने आपको नहीं कोसता, उसकी धर्म बुद्धि उसकी भर्त्सना नहीं करती। अतएव उक्त युवक के लिए रोगी होना आवश्यक था। यह उसके अचेतन मन की माँग थी। यदि उक्त युवक रोगी न होता तो उसका मन उसे और भी भास देता और वह आत्महत्या की ओर अग्रसर हो जाता है। कितने ही व्यक्तियों को शारीरिक रोग चाहे वे कल्पित हों अथवा वास्तविक, आत्म-हत्या की भावना से बचा लेते हैं। अतएव ये रोग प्रकृति की कठोरता का प्रतीक न होकर उसकी दया के प्रतीक हैं।

आज इस नवयुवक का मानसिक सुधार हो चुका है। अब वह ट्रेनिंग कालेज में शिक्षा पा रहा है। उसका दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया है। आज वह अपनी आर्थिक अवस्था के लिए अपने आपको दोषी नहीं मानता वह भगोड़ेपन की मनोवृत्ति से मुक्त होकर आज पुरुषार्थवान व्यक्ति बन गया है।

पिछले साल इस युवक ने एक विद्यालय में अवैतनिक अध्ययन-कार्य साल भर किया। वह अपने काम की कीमत समझने लगा। उसकी पढ़ाई से लड़के अधिक प्रसन्न रहते थे और वे उन लड़कों के मन पर विजय प्राप्त कर ली थी। उसे अपनी नई शक्ति का बोध हो गया। जिस गाँव में अनेक लोग उसके सामर्थ की निन्दा करते थे; उसी गाँव में उसके अनेक प्रशंसक पैदा हो गये। वह समाजवादी दल का एक प्रमुख संगठनकर्त्ता बन गया है। उसकी सचाई के कारण संस्था की भी प्रतिष्ठा बढ़ गई है। वह गाँव के सुधार के कार्य में हाथ बटाता है। वह जानता है कि वह यदि अधिक पैसा पानेवालों के समान जीवन की सुविधाएँ नहीं प्राप्त कर पाता तो उसका दूसरे धनी लोगों से सम्मान कम नहीं है। समाज की सेवा करना सभी के हाथ में है और इससे प्रत्येक व्यक्ति समाज का सम्मान प्राप्त कर लेता है। यह उसके जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव है। वह आज आशावादी है। उसका क्षय रोग उससे अब कोसों दूर हो गया है।

लेखक की चिकित्सा में आये अनेक रोगियों की जीवनी के अध्ययन से पता चलता है कि उनका रोग उनकी मानसिक व्याधि का आवरण मात्र है। जो लोग अपनी मानसिक झंझट को सुलझाने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं; उन्हें शारीरिक रोग भी देर तक नहीं सताते। इसके लिए मनुष्य को अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित करना पड़ता है। यह दृष्टिकोण का परिवर्तन होना बड़े भाग्य की घटना है। मनुष्य अनेक प्रकार का कष्ट उठाने के पश्चात् ही अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करता है। स्वयं रोग उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने में सहायक होता है।

कज्जली कल्प

वैद्यराज पु० वि० धामणकर, आयुर्वेदभूषण

प्रारम्भ में रोग की चिकित्सा आहार-विहार में परिवर्तन करके की जाती थी, लेकिन पथ्यापथ्य-चिकित्सा भी अपूर्ण प्रतीत होने के कारण इसमें—असात्म्य—विष का भी समावेश किया गया। विष के संयोग से औषधियों में वीर्य की वृद्धि हुई, वह बलवान बनी तथा दोषों का नियमन करने में भी सफल हुई। इस प्रकार की औषधियाँ अति तेजस्वी होती हैं, इसलिये इसकी योजना अत्यन्त विचार पूर्वक करनी पड़ती है, कालान्तर से वह भी सदोष सिद्ध होने लगी, तभी से पारद का औषधियों से संयोग किया जाने लगा। यह संयोग अति लाभप्रद सिद्ध हुआ। क्योंकि—

(१) औषधि कल्प टिकाऊ स्वरूप के बनने लगे। (२) औषधियों में वीर्य की वृद्धि हुई। (३) अल्पमात्रा ही कार्य क्षम सिद्ध हुई। (४) रुचि-अरुचि का प्रश्न ही नहीं रहा। (५) विष संयोग का भय नहीं रहा। इसलिये आज की चिकित्सा पद्धति में हम उपरोक्त परिवर्तनों का समावेश हुआ देखते हैं।

नागार्जुन ने पारद को औषधोपयोगी सिद्ध किया, परन्तु पारद के स्वाभाविक चापल्य गुण के कारण औषधि से मिश्रण करने के लिये उसे भी चरक प्रणीत सिल-लोढ़ी अनुपयोगी सिद्ध हुई तब इस प्राचीन यंत्र का नवीन संस्करण किया, जिसे 'खल्व यंत्र' कहते हैं।

कज्जली कल्प निर्माण में मर्दन क्रिया की ही प्रधानता है, मर्दन में रगड़ना (Press) और घिसना (Friction) ये दो क्रियाएँ होतीं हैं, दबाव (Pressure) से पदार्थ सूक्ष्म होते जाते हैं तथा घषर्ण क्रिया भी होती है, घर्षण (Friction) से उष्णता निर्माण होती है, जिससे औषधियाँ खराब न होकर उनका द्रव्यस्थ संयोग निर्माण होता है। और इससे योग की शक्ति बढ़ती है।

मर्दन की मात्रा—मर्दन क्रिया से औषधि मिश्रण में चिकनापन आकर मर्दन क्रिया में कठिनता आनी चाहिये। दूसरा लक्षण औषधि की गोली अरीठे के बीज के समान चिकनी होनी चाहिए।

इस कार्य को साध्य करने के लिये खरल दीर्घ—वर्तुलाकार होना चाहिये, उसकी गहराई भी इस प्रकार की होनी चाहिये जिससे औषध बाहर न निकले, रगड़ पूरी लगे, इसलिये खरल की लम्बाई, ऊँचाई, गहराई व चौड़ाई योग्य आकार की तथा मूसली भी उसके योग्य वजन की व पकड़ने में सरल होना चाहिये। मर्दन क्रिया मूसली पर ही निर्भर है, इसीलिये संस्कृत में मूसली को मर्दक, घर्ष, घर्षणी कहा है।

अर्धचन्द्राकृति खरल

ग्रन्थोक्त वर्णन—खरल ऊँचाई १० अंगुल, लम्बाई १६ अंगुल, चौड़ाई १० अंगुल, गहराई ७ अंगुल, ऊपर का चारों ओर का किनारा २ अंगुल चौड़ा व स्वरूप अर्धचन्द्र जैसा हो इसके लिये मूसली १२ अंगुल लम्बी होनी चाहिये। इसी आकार के खरल में पंचपल (२० तोले) पारद शुध्द्यर्थ मर्दन करें। इसी आधार से दूसरे खरलों की भी योजना करें, इसी आधार से अपेक्षानुसार छोटे-बड़े खरल भी तैयार कराये जा सकते हैं। साधारणतः ४० तोले औषधि मिश्रण भली भाँति खरल करने के लिये निम्न नाप योग्य प्रतीत होते हैं—

प्रचलित खरल की ऊँचाई इञ्चों में—ऊँचाई ६", खरल का ऊपरी भाग २०"×१०", बीच का पोलापन १६"×६"×४", मूसली की ऊँचाई १२", ऊपरी भाग की मोटाई २" नीचे की ओर ३"

कज्जली कल्पों में कज्जली, हिंगुल व सिंदूरयुक्त औषधियों का समावेश होता है।

कज्जली—पारा गन्धक के कज्जलवत् व धूसर जैसे मिश्रण को कहते हैं। कज्जली की कसौटी—

स्पर्श—श्लक्ष्ण, रंग—काला, धूसर।

चन्द्रिका—कज्जली को कागज में रखकर थोड़ा दबाकर

उसे धूप में देखने पर उसमें चमक दिखाई नहीं देना चाहिये, कज्जली को थोड़ा सा नाखून पर भी रगड़ कर परखा जा सकता है, खुला पारा होने पर वह नाखूनों की रेखाओं में भर कर वह स्थान सफेद दिखाई देता है।

पारा-गन्धक के मिश्रण से लाल रंग के तीन प्रकार के पदार्थ उपलब्ध होते हैं। (१) हिंगुल (२) गिरिसिन्दूर (३) रस-सिन्दूर। रसायनशास्त्र की दृष्टि से यह तीनों पदार्थ एक ही वर्ग में माने जाते हैं, लेकिन गुणधर्मतः यह भिन्न हैं। यथा—

१. हिंगुल—

हिंगुलः सर्वदोषघ्नो दीपनोऽति रसायनः।
सर्वरोगहरो वृष्यो जारणायाति शस्यते॥

—र० र० सा०

हिंगुलं मधुरं तिक्तं चोष्ण वात कफापहम्।
त्रिदोष द्वन्द्व दोषोत्थं ज्वरं हरति सेवितः॥

—राज निघंटु

२. गिरिसिन्दूर—

महागिरौ शिलान्तस्थो रक्तवर्ण च्युतो रसः।
सूर्यातपेन संशुष्को गिरीसिन्दूरमीरितम्॥

—र० प्र० सु० अ० ७

गुण—

रसबंध करं भेदि त्रिदोष शमनं तथा।
देह लोहकरं नेत्र्यं गिरीसिन्दूरमीरितम्॥

—र० प्र० सु० अ० ७

त्रिदोष शमनो भेदी रसबंधनमग्रिमम्।
देह लोह करं नेत्र्यं गिरि सिन्दूर मीरितम्॥

—र० र० स०

३. रससिन्दूर—

क्षुद्बोध कारकः प्रायः सद्यः कामाग्निदीपनः।
ज्वरादिकानयं दोषान् संयोगान्नाशयत्यपि॥

—आ० प्र०

हिंगुल और गिरिसिन्दूर दोनों खनिज पदार्थ हैं, भूगर्भ में अधिक गहराई में पारा गंधक के मिश्रण से एक प्रकार का रस तैयार होकर जो ऊपर आते-आते ठंडा होकर उसी रूप में प्राप्त होता है वह हिंगुल है और उससे भी ऊपरी सतह पर पत्थरों की छोटी-छोटी दरारों में जो एकत्र होता है उसे "गिरिसिन्दूर" या पत्री रससिन्दूर कहते हैं। यह उत्तर "गिरिसिन्दूर" और हिंगुल के विषय में रसायनशास्त्री देते हैं। रससिन्दूर यह पदार्थ भी खनिज है, लेकिन नैसर्गिक न होकर कृत्रिम है; कृति वही है लेकिन एक नैसर्गिक है तो दूसरी कृत्रिम (मानुषी) है।

औषधि की घटना, उसका कार्य व क्षेत्र परस्पर संबन्धित है, इस ओर ध्यान देकर कज्जलीकल्प के ज्वर-अतिसारादि रोग हर योगों में हिंगुल को प्रधानत्व देना हितावह है, लेकिन आजकल डेलीरूप (खनिज) हिंगुल उपलब्ध नहीं है, जो मिलता है वह कृत्रिम या तलस्थ रससिन्दूर होता है। यह एक बड़ी समस्या है, इसको दूर करने का एक ही मार्ग है खनिज हिंगुल प्राप्त करना या खनिज हिंगुल के गुणों का-सा पदार्थ निर्माण करना।

द्रव्यों का चुनाव

कज्जली कल्पों में खनिज, उद्भिज व प्राणिज, ऐसे तीन प्रकार के पदार्थ होते हैं। इनमें से कुछ को शुद्ध करना पड़ता है, शोधन-मरण की सामान्य व विशेष ये दो विधियाँ हैं। विशेष विधि का उपयोग विशिष्ट योगों में किया जाता है।

योगों के अनुसार शोध्य व शोधक पदार्थ व शोधन संस्कारों पर विचार करना चाहिये, अपेक्षित योगों के गुणधर्मवर्धन के हेतु विचार करना आवश्यक होता है। यह प्राचीनों को भी स्वीकार था। उसी के अनुभवाधार से दूसरे योगों में भी उनका उपयोग किया गया हैं। देखिये कुछ उदाहरण—

शोधन विधि

योग.	रोग.	शोध्य.	शोधक.	कार्य	ग्रन्थ
आनन्दभैरव	वातदोष,	गन्धक	दूधघृत.	बल्य,	र. प्र. सु.
एकांगवीर.	वातरोग	,,	एरंडतैल,	वातशमन,	र. ज. नि.
कनकसुन्दर.	आमदोष.	,,	बिजोरारस,	पाचन.	र. चि.
गंधकरसायन	कुष्ठरोग.	,,	भृङ्गराज.	रसायन	र. का. धे.
त्रिभुवनकीर्ति.	ज्वर,	हिंगुल,	अदरकरस.	दीपन.	आ. प्र.
पीयूषसागर.	शुक्रक्षीणता.	,,	गौ दुग्ध,	बृंहण.	र. त.
वसंतकल्प.	अवलत्व.	,,	निबूरस,	पाचन.	यो. त.
ज्वरांकुश.	ज्वर	,,	बच्छनाग. गौमूत्र.	आमपाचन	,,
लक्ष्मीविलास.	क्षय.	,,	बकरीदूध.	अस्थिपोषण.	र. त.
मृत्युञ्जय,	ज्वर.	,,	त्रिफला.	आमशोधन.	र. सा. सं.
त्र्यलोक्यचिंतामणि.	जराक्षय.	,,	गोदुग्ध.	रसायन.	र. चं.

दन्तोत्पाटन की प्राचीन कला

वैद्य किशोरीदास गुप्ता, आयुर्वेदिक दन्त चिकित्सक

आयुर्वेदीय साहित्य में दाँतों के रोग और उनकी चिकित्सा विधि का सुविस्तृत वर्णन है। प्रस्तुत लेख के लेखक महोदय एक अनुभवी दन्तचिकित्सक (डेण्टिस्ट) हैं। आपने अपना अनुभव का परिचय कई डेण्टिस्ट डाक्टरों के सामने बताकर आश्चर्यान्वित कर दिया है। प्रस्तुत लेख में गुप्ताजी ने अपना आनुभविक दन्तोत्पाटन क्रिया का वर्णन किया है। आशा है "सचित्र आयुर्वेद" के पाठक इस लेख को पढ़कर लाभ उठायेंगे।

—स० सम्पादक

विकसित विज्ञानवाद की चकाचौंध वाले इस युग में, इस लेख के शीर्षक ही देखकर कितने वाचक चौंक उठेंगे। परन्तु वास्तविक परिस्थिति इस कला की ऐसी है, कि प्रत्यक्ष देखने पर भी इस क्रिया पर पूरा विश्वास नहीं होता, जैसा कि स्वयमेव दन्तोत्पाटन करवाने पर विश्वास होता है। तथापि इसके प्रभावशाली महत्त्व को यथार्थ रीति से प्रतिपादन करने के लिए मैं भरसक प्रयत्न करूंगा।

एक सत्य घटना

इस कला का प्रथम प्रायोगिक प्रदर्शन-महाराष्ट्र प्रान्तीय चतुर्थ वैद्य सम्मेलन (चेम्बूर) में हुआ था, इस सम्मेलन के अध्यक्ष वैद्यराज पं० गणेशदत्तजी शास्त्री जोशी थे। श्रीयुत जोशीजी ने इसका जिक्र एक डेण्टिस्ट डाक्टर से किया, डाक्टर महोदय आलइण्डिया डेण्टल एसोसियशन के एक सदस्य भी थे। एक अनुभव वृद्ध डेण्टिस्ट डाक्टर को इस बात का विश्वास ही नहीं हुआ, कि बिना तकलीफ के मजबूत दांत सरलता से निकाला जाता है। डाक्टर महोदय कह उठे कि यदि ऐसा कोई प्रत्यक्ष करके दिखा दे तो मैं उसका पूना में जुलूस निकालूंगा।

जोशीजी से मुझे उक्त बातें मालूम होने पर, मैंने सहज भाव से उत्तर दिया, कि समय आने पर सब ठीक हो जायेगा। संयोगवश मुझे बम्बई से पूना दन्तोत्पाटन क्रिया के लिये जाना पड़ा, पूना जाकर जोशीजी के द्वारा उक्त डाक्टर महोदय को सूचना दे दी, सूचना पाकर डाक्टर महोदय आये, और कहने लगे, कि यदि आपकी प्राचीन पद्धति से इस प्रकार दांत-निकालना सफल हो सका तो, आज के दन्त विज्ञान के युग में एक क्रान्तिकारी कार्य होगा। मैंने उत्तर दिया कि इसका प्रत्यक्ष अभी आपके सामने हो जाता है। इतना कहते ही डाक्टर साहब के साथ एक और सज्जन (डाक्टर ही) थे, वे अपने एक मजबूत दांत उखड़वाने को तैयार हो गये, और मैंने अपनी क्रिया से उनका एक मजबूत दांत बहुत सरलता से निकाल दिया, दांत निकालते ही डाक्टर (जिनका दांत उखाड़ा गया था।) बोल उठे कि कुछ भी तकलीफ नहीं हुई। मेरी इस प्रक्रिया को देखकर अनुभव वृद्ध डाक्टर बड़े आश्चर्यान्वित हुए।

मैंने इस विद्या की शिक्षा सन् १९३६ में स्वामी ज्ञानानन्दजी द्वारा प्राप्ति की। उस दिन से मैं बराबर इस क्रिया का प्रचार-प्रसार में लगा हुआ हूँ। इस क्रिया के सम्बन्ध में मैं जो कुछ भी अन्वेषण कर सका हूँ, उसीका वर्णन नीचे है।

रुग्णासन

जिस कला के प्रयोग जनित परिणामों से बड़े-बड़े डेण्टिस्ट आश्चर्यान्वित हो जाते हैं, उस प्रयोग में स्थित प्रत्येक कृति का बहुत बारीकी दृष्टि से अवलोकन करना परमावश्यक है। इस कला के प्रयोग के समय रोगी और चिकित्सक दोनों का क्रमशः बैठना और खड़ा होना भी अत्यन्त महत्त्व का विषय है। चिकित्सक को अपने बल का उपयोग रोगी के दांत या दाढ़ निकालने में करना पड़ता है। अतः दांत दृढ़ या हिलता (चल) हो, उसके निकालने के समय बल का उपयोग न्यूनतम हो, और उत्पाटन क्रिया सुलभ साध्य हो, इस दृष्टि से रोगी को बैठाना चाहिए। इस दृष्टिविन्दु पर

लक्ष्य रखते हुए रोगी को जमीन पर या पटे अथवा उसके लिए विशिष्ट प्रकार से तैयार की गयी पीठिका पर बैठाया जाता है। तथा चिकित्सक (दन्तोत्पाटन कर्ता) को रोगी की पीठ के पास इस तरह खड़ा होना पड़ता है, कि उक्त किसी भी आसन की व्यवस्था में रोगी का शिर चिकित्सक के नाभि से नीचे हो रहे। क्योंकि वजन उठाने की कसरत करनेवालों की पद्धति से इस बात का स्पष्टीकरण ठीक तौर से हो जाता है, कि अधिक से अधिक वजन को नाभि के नीचे के भाग तक जितनी सरलता से उठा सकते हैं, उतनी सरलता से नाभि से ऊपर नहीं उठा पाते हैं। सारांश वजन के एक होते हुए भी उसको नाभि के निचले भाग में उठाने के लिए शारीरिक बल का जितना व्यय करना होता है, उससे कई गुना अधिक बल-व्यय नाभि के ऊपरी भाग में उठाकर ले जाने के लिए करना पड़ता है।

चिकित्सक (दाँत उखाड़ने वाले) कैसे खड़े हों

रोगी को उक्त प्रकार से बैठाकर चिकित्सक को रोगी के पीछे इस तरह खड़ा होना चाहिए, जिससे उसका दाहिना या बायाँ पैर, रोगी के दायें या बायें रहे और दूसरा पैर उसकी करोड़ रज्जु से सटा हुआ रहे, जिससे रोगी पीछे न हट सके। इस प्रकार दोनों पैरों को मजबूत जमाकर खड़ा होने के पश्चात् रोगी को अपना सिर इस प्रकार आगे को झुकाने के लिए कहे कि रोगी की दाढ़ी का स्पर्श कण्ठ के निचले भाग से हो जाये परन्तु गरदन सहित सिर का भाग ढीला रहे। ताकि सिर को सरलतापूर्वक हाथ से हिलाया-डोलाया जा सके। यह क्रिया नाड़ी मण्डल को ढीला कर उसकी गति विधि में अवरोध उत्पन्न करने में सहायक होती है। हठयोग-शास्त्रानुसार इसे "जालंधर बन्ध" भी कहा है। जो कि प्राणवायु का आवागमन या श्वासोच्छ्वास की क्रिया में अवरोध पैदा करने के लिए सहायक होता है। इस प्रकार नाड़ी-मण्डल के ढीले[1] हो जाने से दन्तोत्पाटन करते समय दांत को जो एकमात्र गति देनी होती है, उससे सम्बन्धित शिरा-धमन्यादि[2] पर अत्यन्त ही न्यून प्रभाव होता है। इस अवरोध के कारण रोगी को उसके दांत से सम्बन्धित शिरा-धमनी और वातवाहिनी के विभक्त होने के कारण रोगी को सम्वेदना का ज्ञान नहीं होता, इस प्रकार बिना दर्द के दांत बाहर निकल आता है।

रोगी को पकड़ने की विधि

रोगी की गरदन को झुकाने के साथ ही उसे ढीला करने के पश्चात् चिकित्सक अपने बायें या दाहिने हाथ की हथेली में रोगी की दाढ़ी (हनु) को पकड़ने के लिए नीचे को झुके। यदि दाहिना पैर करोड़ रज्जू से सटाकर रखा हो तो दाहिने हाथ को हथेली का हनु को पकड़ने में उपयोग करे। हनु को कुछ ऊपर की ओर उठाते हुए स्वयं भी इतना झुक[3] जाये,

---

[1] १—रस्सी को जितना भी हो सके ताना जाय, और उसमें नाममात्र के लिए सिर्फ एक ही गति दी जाये, तो इसके प्रतिफलस्वरूप निर्माण होनेवाली अनेक गतियों के क्षेत्र प्रमाण की मर्यादा भी उतनी ही अधिक बढ़ जायेगी, जितना रज्जू के तनाव को अधिकाधिक बढ़ाया जायेगा, किन्तु उसी रज्जू को ढीला छोड़ देने पर उपरोक्त दोनों ही बातें परिमित सीमा में रहती हैं। अतएव दन्तोत्पाटन के समय दांत को दी जानेवाली केवलमात्र एक ही गति का प्रभाव सीमित होने के लिए सम्बन्धित नाड़ी-मण्डल को यथा समय ढीला रखना परमावश्यक है।

[2] २—आयुर्वेदानुसार मर्मस्थान की जो व्याख्या है, उसकी रचना की तुलना में दांत की रचना सम्बन्धी पर विचार करने से वह उस मर्मस्थान की रचना से बिलकुल ही विपरीत सिद्ध होती है। क्योंकि दांत के पोषणादि कर्म के लिए उसके मूल के अग्रभाग की शिरा-धमनी और वातवाहिनी या संज्ञा वाहिनी इन तीन नाड़ियों से ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। मूल के अग्रभागातिरिक्त दांत का भाग तो ऊखल में मूसल की तरह अथवा जमीन में गड़ा हुआ स्तम्भ की तरह मसूड़े में सटा हुआ है। इसलिए उक्त तीनों नाड़ियों के साथ के सम्बन्ध को यदि सरलतापूर्वक विच्छेदित कर दिया जाय, तो रहे हुए बाकी के भाग के सम्बन्ध को विच्छेदित करने में कोई विशेष हानि की सम्भावना नहीं रहती।

[3] ३—इस प्रकार झुकने में यदि बायें हाथ की हथेली से रोगी की दाढ़ी पकड़ी गयी होगी, तो चिकित्सक की बायीं छाती रोगी के शिर पर होगी और बायीं बाँह बायीं तरफ से रोगी के सिर का पूरा भाग घेर लेगी, जिससे छाती, हथेली, और बाँह इन तीनों से जकड़ा हुआ रोगी का शिर यदि रोगी

कि जिससे निकालनेवाले दाँत पर उसकी दृष्टि अच्छी तरह पड़सके और रोगी को मुँह खोलने के लिए कहे। ध्यान रहे इन दोनों क्रियाओं के करने-कराने में शिरा-स्नायु आदि का तनाव जहाँ तक हो सके न्यून ही रखना चाहिए। पश्चात स्वस्तिक यन्त्र से (सड़सी से) दाँत को इतनी सरलता से किन्तु दृढ़तापूर्वक[४] पकड़े कि जिससे दाँत का पकड़ा जाना भी रोगी को ज्ञात न हो[५]।

दन्तोत्पाटन के समय दाँत की रचना का उपयोग

दाँत निकालने से प्रथम दाँत की नैसर्गिक रचना, जो कि एक कमानी जैसी होती है, उसका विचार करना परमावश्यक है। प्रसंगवश जब दाँत के मसूढ़े कम होने लगते हैं, तब सामने के ऊपरवाले दाँत मुँह के बाहर की तरफ कमल की पंखुड़ियाँ जैसे खिलने लगते हैं। अन्य दाँत व दाढ़ों को भी यदि अवकाश मिला, तो वे भी उस कमानी के बाहरी भाग के तरफ ही झुकने लगते हैं, किन्तु सामने के निचले दाँतों के अतिरिक्त अन्य लघु और बृहत् हानव्य-दाढ़ों को गले के अवरोध के कारण प्रायः वैसा करने का प्रसंग बहुत कम ही आता है। दाँतों का इस प्रकार से बाहर की ओर झुकते जाना नैसर्गिक रीति का ही द्योतक है। इस नैसर्गिक सिद्धान्त का विचार जब इस उक्त रचना के साथ-साथ करते हैं, तो पकड़ कर बाहर के तरफ नीचे या ऊपर को खैंचने के बजाय, उनकी जो नैसर्गिक गति है, उसके तरफ यदि उन्हें तिरछे पने के साथ गति दी जाय, तो दन्तोत्पाटन का कार्य अत्यन्त सुगमता से किया जा सकता है।

इस प्रकार इस प्राचीन दन्तोत्पाटन की कला में इसी गति का उपयोग होता है। उसे इतनी चपलता के साथ व दाँत के अवस्थानुसार बलपूर्वक करनी होती है कि गतिमात्र से तत्क्षण दाँत निकलकर बाहर आ जाता है। इस प्रकार दाँत के तिरछी गति से बाहर दाँत निकालने में उसकी मूल गति की रचना से दूसरा लाभ यह होता है, कि मूल में सम्बन्धित शिराधमन्यादि में पर्याप्त तनाव[१] या खिंचाव निर्माण होने से पूर्व ही वे ऊलूखल की दीवाल से घिसकर दाँत से शीघ्रातिशीघ्र विमक्त हो जाती है। तीसरा लाभ यह है कि उलूखल की अस्थि पतली होती है, अतः उसमें स्थिति स्थापकता भी विशेष प्रमाण में है, दाँत की इस तिरछी गति के कारण उसके मूल से उसमें तनाव या खिचाव निर्माण होता है, जिससे दाँत तीर की तरह कमान पर चढ़ जाता है। अतएव वह बाहर को फेंक दिया जाता है। सारांश यह कि इस प्रकार दाँत को बाहर निकालने से उलूखल उसके मूल को पीछे से धक्का देती है, जिससे दन्तोत्पाटन क्रिया शीघ्र हो जाती है।

छुड़ाना या हिलाना चाहे तो किसी प्रकार छूट नहीं सकता। इस तरह दृढ़ता के साथ पकड़ना भी आवश्यक है। अन्यथा भय के कारण रोगी का मन चल-विचल होना स्वाभाविक है। जिससे दाँत निकालते समय जो एकमात्र गति देना आवश्यक होता है। उसमें तथा यथार्थ परिणाम में भी बाधा पहुँच सकती है।

४—दाँत या दाढ़ को दृढ़ पकड़ने के लिए प्रथम तो यन्त्र की रचना, दाँत और दाढ़ की रचना के अनुकूल हो, पश्चात् दाँत या दाढ़ का वह भाग स्वस्तिक यन्त्र (सँड़सी) के मुँह में पकड़ा जाना आवश्यक है, जहाँ से दाँत के सिर और मूल दोनों की ही ओर उसका ढालूपन आरम्भ होता है जिसे दन्त ग्रीवा कहते हैं। इस प्रकार से दाँत को दृढ़ पकड़ने का मतलब दाँत के मसूढ़े के भीतर जो लम्बाई है (मसूढ़ों की रोग रहित स्थिति में दाँत की यह भीतरी लम्बाई, बाहरी भाग से कम-से-कम द्विगुणित और अधिक से अधिक त्रिगुणित होती है। तथा समूचे दाँत की लम्बाई मनुष्य की ऊँचाई और हनु की रचना के प्रमाण में आधा इञ्च से सावा इञ्च तक की प्रायः पायी जाती है)। वह बाहरी लम्बाई से अधिक हुआ करती है। अतः बाहरी लम्बाई में स्वस्तिक यन्त्र की लम्बाई का योग देने से वह बढ़ जाती है। अतः ऐसे यन्त्र से दाँत ठीक तरह से पकड़ा नहीं जाता।

५—शस्त्र-यन्त्र प्रयोगकर्ता के हाथ में इतनी लाघवता होनी चाहिए—जिससे रोगी को दन्तोत्पाटन जन्य पीड़ा का ज्ञान न होने पाये। अथवा बहुत कम (सह्य करने लायक) पीड़ा मालूम हो।

१—पर्याप्त तनाव से अर्थ यह है कि किसी धागे या तार आदि में अधिक से अधिक वजन सहन करने की जो शक्ति रहती है, उसे "टेन्शन पावर" कहा जाता है। यह मर्यादित शक्ति बट जाने पर ही वह टूटता है। अतएव टूटने की स्थिति-पर्यन्त जब तक वह नहीं पहुँच पाता तब तक उस पर लटके हुए वजन के कारण उसमें तनाव का प्रमाण बराबर बढ़ता ही जाता है। इससे टूटने की स्थिति तक पहुँचानेवाले तनाव को ही पर्याप्त तनाव कहा जा सकता है।

व्यावहारिक वैद्यक वर्ग

आयुर्वेद वृहस्पति पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, राजवैद्य

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के जन्मदाता स्वर्गीय पं० शंकरदाजी शास्त्री पदेने जो आयुर्वेदिक शिक्षण का पाठ्यक्रम तैयार किया था उसमें व्यावहारिक वैद्यकवर्ग का भी पाठ्यक्रम था। उसका उद्देश्य था कि जनसाधारण को स्वास्थ्य रक्षा और आयुर्वेद की मोटी बातें बतलाकर अपना स्वास्थ्य ठीक रहने और अन्य नागरिकों को भी अपने ज्ञान और अनुभव के बलपर सहायता पहुँचाने योग्य तैयार किया जाय। उनके स्वर्गवास के पश्चात जब सम्मेलन का पुनः प्रवर्तन हुआ तब इस योजना को शिक्षणक्रम से अलग कर दिया गया। उस समय वैद्य संगठित अवस्था में नहीं थे और आयुर्वेद सम्बन्धी संस्थाएँ भी पर्याप्त नहीं थीं। अतएव उस समय उसका चलना सरल नहीं था। किन्तु अब वह समय आ गया है कि नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन इस सम्बन्ध में मार्ग प्रदर्शन करे तथा प्रान्तीय सम्मेलन भी इस पर विचार कर कार्यवाही आरम्भ करने का प्रयत्न करे। इसमें स्वास्थ्य रक्षा, घरों और ग्रामों की सफाई, आहार, निद्रा, व्यायाम, सन्तान पालन आदि के नियम सामाजिक स्वास्थ्य आदि विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये। इसका शिक्षण प्रतिदिन एक घण्टा दिया जाय तो एक साल में पूरा हो सके ऐसा बनाना चाहिये। इसका प्रबन्ध स्थानिक सभाएँ कर सकती हैं। इससे भी अधिक एक बात और है। इस समय जो वैद्य यत्र-तत्र काम करते और कोई परीक्षा पास नहीं हैं। उन्हें ढर्रे पर लाने योग्य शिक्षण देना आवश्यक है। हमारे कुछ आलोचक आलोचना करते हैं कि इनमें से कुछ वैद्यों को हृदय, यकृत, फुंफ्फुस, वृक्क आदि का भी ज्ञान नहीं है। समुचित निदान और चिकित्सा के सिद्धान्त की जानकारी नहीं है और आक्षेप के योग्य बात तो यह है कि इनमें से कुछ रजिस्टर्ड भी हैं। हम समझते हैं कि आलोचना करने से तो उनकी अयोग्यता दूर नहीं होगी। हमारा प्रयत्न होना चाहिये कि जो भी वैद्य चिकित्सा कार्य में प्रवृत्त हैं उनकी अयोग्यता यथा सम्भव दूर की जाय और उन्हें इस योग्य बनाया जाय कि वे अपना कर्तव्य पालन करने में समर्थ हों। इसके लिये आवश्यक है कि एक छः महीने में पूर्ण होने योग्य पाठ्यक्रम तैयार किया जाय जिसे वे किसी संस्था या अपने घर में तैयार करें और उसके लिये बाध्यता हो कि एक महीने किसी संस्था या प्रसिद्ध वैद्य के पास रहकर प्रत्यक्ष कर्माभ्यास और व्यावहारिक शिक्षा भी प्राप्त करें। इसकी परीक्षा यदि प्रान्तीय सम्मेलन की ओर से हो सके तो प्रतिष्ठान की दृष्टि से अच्छा होगा। अन्यथा स्थानिक संस्थाएँ भी परीक्षा ले सकें। इससे वैद्यों का व्यावहारिक ज्ञान काम चलाऊ अच्छा हो सकेगा। इस सम्बन्ध का एक दिग्दर्शक पाठ्यक्रम हम नीचे देते हैं। अनुभवी लोगों के परामर्श से उसमें उचित संशोधन हो सकता है।

आवश्यक नियम

(क) कोई भी काम करता हुआ वैद्य इस परीक्षा में प्रविष्ट हो सकता है।

(ख) आयुर्वेद की सेवा करने की इच्छा रखने वाले कोई भी सज्जन जिनकी योग्यता कमसे कम मिडिल या तत्सम योग्यता की हो या अनुभव और शिक्षण के कारण इस परीक्षा में बैठने योग्य हों, वह इस परीक्षा में सम्मिलित हो सकते हैं।

(ग) इस परीक्षा की तैयारी किसी संस्था या अनुभवी वैद्य के यहां रहकर की जा सकती है। कमसे कम छः

महीने के शिक्षण और एक महीने तक प्रत्यक्ष कर्माभ्यास का प्रमाण उपस्थित करना आवश्यक होगा ।

(घ) इस परीक्षा में (१) स्वास्थ्य रक्षा (२) शरीर परिचय (३) द्रव्यगुण परिचय (४) निदान और चिकित्सा (५) शल्य चिकित्सा (६) ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा और (७) भेषज निर्माण सम्बन्धी सात प्रश्न पत्र होंगे। प्रत्येक प्रश्नपत्र १०० अंकों का होगा और प्रत्येक प्रश्नपत्र के कर्माभ्यास तथा मौखिक चिकित्सा लिये ५० अंक होंगे ।

(ङ) कुल १०५० अंकोंमें से ६३० या अधिक अंक प्राप्त करने पर प्रथम श्रेणी, ४५० या अधिक प्राप्त करने पर द्वितीय श्रेणी और ३२० या अधिक अंक प्राप्त करने पर तृतीय श्रेणी में उत्तीर्णता समझी जायगी। प्रत्येक विषय के १५० अंकों में से ३० अंक प्राप्त करना अनिवार्य होगा ।

(च) अनुत्तीर्ण विषय या विषयों में परीक्षार्थी अगले वर्ष परीक्षा दे सकेगा ।

१. स्वास्थ्यरक्षा

स्वास्थ्य का महत्त्व, तैल मर्दन, स्नान, व्यायाम, वस्त्रपरिधान, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, निद्रा, ब्रह्मचर्य, वेगधारण, मकान की सफाई, स्वास्थ्यकर मकान, नाली, पाखाना, नाबदान की व्यवस्था, ग्राम की सफाई, जलाशयों की सफाई, जलशुद्ध करना, आहार की आवश्यकता, आहार द्रव्यों के घटक, जीवनतत्त्व, विटामिन, भोजन के नियम, प्रज्ञापराध, जनपदोध्वंस, संक्रामक व्याधियों की रुकावट, संक्रामक व्याधियों से बचाव, मैलेरिया, शीतला, प्लेग, बेरी-बेरी, विसूचिका रोगियों की परिचर्या, रोगीगृह, परिवार के कर्तव्य, रोगी सुश्रूषा, रोगी के प्रति कुटुम्ब वालों का कर्तव्य थर्मामीटर लगाने, वस्ति लगाने, स्टेथस्कोप (आकर्णनयन्त्र) लगाने, मालिस करने, वर्फ या गरम पानी की वर्फ की थैली रखने, लेप लगाने, एएटीफ्लोजिस्टिन चढ़ाने, पलस्तर लगाने, पेशाब निकालने के यन्त्र का उपयोग, मूत्रपात्र का उपयोग, मलपात्र का उपयोग, स्पंजिङ्ग करने, बफारा देने आदि की शिक्षा।

२ शरीर परिचय

शरीर की उत्पत्ति, अंग विभाग, अस्थिविवरण, त्वचा, कला, सन्धि, पेशी, स्नायु, कण्डरा, सिरा, धमनी, मर्म, मस्तिष्क, नाड़ीमण्डल, नेत्र, कान, नाक, मुख, जिह्वा, दाँत, रक्त, फुफ्फुस, हृदय, स्वरयन्त्र, अन्ननलिका, आमाशय, ग्रहणी, छोटी आँत, यकृत, प्लीहा, क्लोम, वृक्क, अग्न्याशय, वस्ति, मूत्रमार्ग-जननेन्द्रिय आदि का परिचय, बनावट और कार्य, त्रिदोष, सप्तधातु, त्रिमल, अग्नि, कोष्ठ, आरोग्यता, रोग, शरीरदेश, भूमिदेश, आदि का परिचय ।

३. द्रव्यगुण परिचय

नित्य व्यवहार और औषधि योजना में अधिक काम में आनेवाले औषध द्रव्यों का परिचय—

(क) ओषधिवर्ग

आमलकी, हर्रे, बहेड़ा, सोंठ, मिर्च, पीपल, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, अजवाइन, अजमोदा, सफेद जीरा, स्याहजीरा, सौंफ, मेथी, बायबिडंग, बंशलोचन, समुद्रफेन, मुलेठी, अमलतास, कुटकी, मैनफल, मकोय, कूट, काकड़ासिंगी, कायफल, रसौत, केवांच, असगन्ध, शतावर, मुण्डी, अपमार्ग गुर्च, नीम, घृतकुमारी, पुनर्नवा, भृङ्गराज, अडूसा, बला, नागबला, अतिबला, काकजङ्घा, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, द्रोणपुष्पी सेमर, सहिजन, विधारा, अर्जुन, खैर, बबूल, रीठा, जियापोता रोहितक, नवसार, कलमीशोरा, सोहागा, फिटकरी, कपूर, कस्तूरी, पद्माख, चन्दन, लालचन्दन, अगर, तगर, खस, शीतलचीनी, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, शिलाजीत, छरीला, लौंग, इलायची, तेजपात, दालचीनी, सुगन्धवाला, कपूर, गूलर, पीपर, बरगद, पाकर, अर्क (मदार), महुआ, आम, नागफेनी, कलिहारी, कनेर, कोचिला, सींगिया, धतूरा, सफेद घुँघची, भिलावा, संखिया, पलास, नीम, बकायन, कचनार, गुलाब, चमेली, मौलसिरी, कमल, कुमुदनी, धव, कदम्ब, मुचकुन्द, अगस्त, गुड़हर, गुलबनफ्शा, उन्नाब आदि का परिचय और गणदोष ज्ञान ।

फल-धान्य-शाकादि का परिचय

आम, जामुन, अमरूद, कटहल, लसोढ़ा, केला, अनार, नारियल, कूष्माण्ड, ककड़ी, खीरा, खरबूजा, तरबूजा, बेल, कैथा, नींबू, सन्तरा, मुसम्बी, अंगूर, सेव, नासपाती, दाख, फालसा, शहतूत, टमाटर, छुहारा, खजूर, ताड़, खिरनी, चिरौंजी, सिंघाड़ा, कमलगट्टा, इमली, करौंदा, कमरख, बड़हर, चावल, कोदो, सावाँ, गेहूँ, जव, मूँग, उरद, अरहर, चौरा, मटर, कुलथी, सोयाबीन, तिल, सरसों, राई, एरण्ड, अलसी, मूँगफली, चौराई, बथुआ, पालक, मूली, सेम, परवल आलू, फूलगोभी, बन्दगोभी, गाँठगोभी, कुलफा, नेनुआं, तरोई, लौकी, करेला, कुंदरू, शकरकन्द, घुइयाँ, रतालू, भण्टा, गाजर, मानकन्द, मेथी, सोया, दूध, घी, मट्ठा, दही, मक्खन, शहद, ऊख, गुड़, चीनी, राब, मिश्री, सिरका, रायता, मुरब्बा, गोमूत्र आदि का परिचय और गुणदोष ज्ञान।

४. निदान और चिकित्सा

सामन्यज्वर, विषमज्वर, सन्निपात, मन्थरज्वर, कांस्यक्रोड, फुफ्फुस शोथ, अतिसार, संग्रहणी, उदररोग, यकृत, प्लीहा, हृदय के रोग, क्षयरोग, शोथ, जलोदर, गुल्म, कासश्वास, उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, वातरक्त, आमवात, शूल, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, सूजाक, उपदंश, प्रमेह, मधुमेह, सोमरोग, प्रदर, अम्लपित्त, योनिरोग, सूतिकारोग, बालरोग, आदि का निदान, चिकित्सा, उपद्रव, और पथ्यापथ्य ज्ञान। स्नेहकर्म, स्वेदनकर्म, विरेचनकर्म, वस्तिकर्म, नस्यविधि, धूम्रपान, गंडूष आदि का ज्ञान। रसायन और बाजीकरण ज्ञान।

५. शल्य-चिकित्सा

(क) यन्त्रविधि और यन्त्रों का परिचय, शस्त्रविधि और शस्त्रों का परिचय, यन्त्र शस्त्रादि का शोधन और अष्टविधि शस्त्रकर्म का प्रयोग, शिराव्यध चिकित्सा, शल्याहरणविधि, अग्रोपहरण, व्रणितोपासन, सामान्यव्रण-सद्योव्रण-भग्नादि का ज्ञान और चिकित्सा, व्रण का आलेपन, व्रणबन्धन भगन्दर, अर्श, ग्रन्थ्यर्बुद, श्लीपद, अपची, गण्डमाला, क्षतज-विसर्प, भ्रूण चिकित्सा, मूढ़गर्भ चिकित्सा, रक्तगुल्म, अश्मरी आदि की चिकित्सा, जलौकाकर्म, अग्निकर्म, क्षारकर्म, शृङ्गी, तुम्बी आदि का प्रयोग, व्रण धोना, टीके लगाना, शैयाव्रण, उपचार, प्लास्टर लगाना, जलोदर का पानी निकालना, इंजेक्शन देने का ज्ञान, टीका लगाना, रक्त-मूत्र-मल-स्तन्य-शुक्र आदि की परीक्षा, सूक्ष्मदर्शक यन्त्र का उपयोग और स्लाइड बनाना आदि तथा विषचिकित्सा और विषरोगी का उपचार आदि।

६. ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा

(क) कर्णरोग परिचय, कर्णशूल, कर्णशोथ, कर्णनाद, कर्णक्ष्वेड, कर्णस्राव, कर्णबाधिर्य, कर्णकृमि, कर्णार्बुद का परिचय और चिकित्सा, कान का धोना, कर्णशल्यनिष्काशन, कान में तेल डालना, कान का मैल निकालना तथा पथ्यापथ्य ज्ञान।

(ख) नासारोग परिज्ञान, प्रतिश्याय, पीनस अवीनस, नासापाक, नासारोध, नासाकृमि, नासार्बुद, नासार्श नासारक्तपित्त, नासाभंग, नासाशल्य आदि का ज्ञान और चिकित्सा। धूम्रपान, नस्य, कवल, धूनी, स्वेद, तैल डालना, नासाधोवन, नासागत शल्यनिष्काशन, शिरोविरेचन आदि की विधि और पथ्यापथ्य ज्ञान।

(ग) मुखरोगों का परिचय, ओष्ठरोग, मुखमण्डल के बाह्यरोग, जिह्वागत रोग, तालुरोग, कण्ठगत रोग, मुखपाक, मुखस्राव, मुखदुर्गन्ध, दन्तरोग, मसूड़ों के रोग का ज्ञान, चिकित्सा और पथ्यापथ्य ज्ञान। मुख में दवा लगाना, दन्तमञ्जन, गण्डूष, दन्तोत्पाटन, गलप्रतिसारण, जिह्वास्तम्भ प्रयोग, फुरेहरी लगाने का ज्ञान आदि।

(घ) नेत्ररोगों का परिचय, आँखों का उठना, वर्त्मगत रोग, शुक्लगत रोग, कृष्णमण्डल रोग, दृष्टिगत रोग, सर्वंग नेत्ररोग आदि का परिचय और चिकित्सा, शलाका प्रयोग, लेप, वर्तिका, अञ्जन, सुर्मा, नेत्रबिन्दु आदि तैयार करने और प्रयोग करने की विधि, आँखों को धोना, नेत्ररोग और पथ्यापथ्य।

(ङ) शिर के रोगों का परिचय, वातज-पित्तज-कफज-त्रिदोषज शिरोरोग, रक्तज-क्षयज तथा कृमिजन्य शिरोरोग, सूर्यावर्त अर्धावभेदक, शंखक, अनन्तवात, शिरःकम्प, नाड़ीविकारजन्य शिरोरोग आदि का ज्ञान, चिकित्सा, रक्तचाप का ज्ञान और चिकित्सा रक्तचाप नापने का ज्ञान, तैलमर्दन, नस्य, शिरोवस्ति, शिरःस्नेह आदि की विधि का ज्ञान।

७. भेषज-निर्माण

(क) मानपरिभाषा, मागधमान, कलिंग मान, प्रचलित मान, रसतन्त्रोक्त मान, यूनानी मान, एलोपैथिक मान, द्रव्य-ग्रहण विधि, औषधि संग्रहसूत्र, अनुक्त अङ्गादि, पुनरुक्त औषध, ऋतु के अनुसार औषधि खनन, औषध प्रतिनिधि, गीली-सूखी भेद से औषधि ग्रहण, द्रव द्रव्यग्रहण।

(ख) गुणक्रिया परिभाषा, अनुलोमन, दीपन, पाचन प्रमाथी, भेदन, छेदन, लेखन, लङ्घन, ग्राही, मदकारी, अभिष्यन्दी, वयः संस्थापक, वर्ण्य, विरेचन, विकासी, व्यवायी विशद, विष, विबन्ध, विष्टम्भी, विश्राव्य, बृंहण, वृष्य, रसायन, बाजीकरण, शमन संशोधन, संस्कार, स्रंसन, संग्राही, स्तम्भन, स्तन्य, सद्यःप्राणहर, सन्तर्पण, सात्म्य, शुक्रल, धातुवर्धक, रस-वीर्य-विपाक-प्रभाव, ऋतुजन्य संचय, प्रकोप, शमन, रोपण, दारण, आनाहकर, विरुद्धाहार, ऋतु-सन्धि, स्नेहन, रूक्षण आदिकी परिभाषा, औषध भक्षणकाल, सम्यक् योग, हीनयोग, मिथ्यायोग, अतियोग आदि की परिभाषा।

(ग) उष्णजल, वासीजल, कूपजल, नदीजल, सरोवरजल का गुणदोष, पञ्चविधि कषाय कल्पना, औषधिग्रहण क्रम, द्रव्यसंरक्षण विधि, क्षीरपाक, यवागू, मन्थ, तण्डुलमण्ड, ताण्डुलोदक, अवलेह, शर्बत, तैलपाक, घृतपाक, चूर्णनिर्माण, वटीनिर्माण, आसव, अरिष्ट, अर्क, पाक, मोदक, पथ्यनिर्माण, सींगिया, कोचिला, भिलावा, धत्तूर; कनेर; जयपाल आदि का शोधन।

(घ) रसशोधन; हिंगुल से पारद निकालना; गन्धक शोधन; कज्जली; रसपर्पटी; रससिंदूर; मकरध्वज, चन्द्रोदय, कूपीपक्व रसायन, पारद के षड्गुण- गन्धक, जारण, रसकपूर, लौह, ताम्र, नाग, वंग, रजत, यशद, सुवर्ण आदि का शोधन और मारण, निरुत्थीकरण, मित्रपञ्चक और उसका प्रयोग, मुक्ता, प्रबाल, शुक्ति, कपर्दी, गोदन्ती आदि का शोधन मारण, अभ्रक, हरताल, संखिया, तूतिया, मैनसिल, मुरदाशंख, रसमाणिक्य, मण्डूर सुवर्ण-माक्षिक, खपरिया अंजन, हीराकसीस अदि का शोधन और औषधियोग, गजपुट, महापुट, कुक्कुपुट, डमरूयन्त्र, वालुकायन्त्र, वैकयंत्र आदि का ज्ञान और प्रयोग विधि।

(ङ) औषधि मिश्रण पद्धति, औषधिदान व्यवस्था सांकेतिक चिह्नों का ज्ञान, नुसखे लिखने का ढङ्ग; औषधालय आलमारी, यंत्रशास्त्रादि तथा शीशियों के रखने की व्यवस्था उनकी सफाई और सजावट का ढंग जानना आवश्यक है।

कर्कटश्रृङ्गी

रानीखेत (अल्मोड़ा) के कविराज भोलादत्तजी पाण्डेय आयुर्वेद के प्रचार और अपने प्रदेश में वैद्यों के शिक्षण तथा संगठन-सम्बन्धी प्रयत्नों के कारण "सचित्र आयुर्वेद" के वाचकों को सुविदित हैं। सितम्बर १९५१ के सचित्र आयुर्वेद के पृष्ठ १८४ पर कर्कटश्रृङ्गी का जो परिचय दिया है, उसके विषय में भ्रम-संशोधन करते हुए आपने एक पत्र मेरे नाम भेजा है। उसका आशय देता हूँ।

"कर्कटश्रृङ्गी (काकड़ासिंगी) के वृक्ष में चैत्र महीने में सुन्दर मौर आता है, जो आम्रमंजरी के समान विशेष सुगन्धित होता है। उसीपर पुनः श्रृङ्ग सदृश फल उत्पन्न होते हैं। फलों के भीतर कोटर होता है और क्षुद्र मशक के समान कृमि उत्पन्न होकर स्वयं नष्ट भी हो जाते हैं। सितम्बर-अक्तूबर में ये फल पक जाते हैं। इन फलों की उपयोगिता अधिक है और उत्पत्ति बहुत ही कम है।"

श्री पाण्डेयजी का आशय यह है कि "कर्कटश्रृङ्गी पत्र-वृन्त पर कीट-विशेष द्वारा बनाया गया…गृह नहीं, किन्तु स्वयं फल होता है।"

श्री पाण्डेयजी ने आगे "सितम्बर के चौथे सप्ताह में यहाँ आकर वनौषधियों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो मेरी समस्त सेवाएँ आपको समर्पित हैं" इन शब्दों में उद्भिद्-परिचय का आमन्त्रण दिया है। मैं समझता हूँ, वाचकों में अन्य कोई बन्धु, जो देश की निकटता के कारण अल्मोड़ा जा सकते हों, उनको अपने ज्ञान का लाभ देने के लिए श्री पाण्डेयजी प्रस्तुत रहेंगे आपने द्रव्यगुण के ग्रन्थों में भी कर्कटश्रृङ्गी तथा अन्य द्रव्यों का साक्षात् परिचय करके योग्य संशोधन करने का सुझाव देते हुए अन्य एक भ्रान्ति का उल्लेख किया है कि : पद्मक वृक्ष को लेखक फलहीन लिखते हैं।

[—वैद्य रणजितराय

प्राकृतिक चिकित्सा से लाभ या हानि ?

श्री रामकुमार गोयनका

हमारे देश में इस समय जो प्राकृतिक चिकित्सा (नेचर क्योर) याने कुदरती इलाज जारी हुआ है ; यह एक नई चीज है। नई चीज सभी को प्यारी और अच्छी लगती है। इसी से लोग इसे अपना रहे हैं। जिनको इससे लाभ हुआ है वे इसका गीत गाते और प्रचार करते हैं, यह स्वाभाविक है। पर इससे जो हानि हुई है, हो रही है या हो सकती है, यह बात बहुत कम लोग ही जानते हैं। उन्हें भी इसी समय जान लेना बहुत जरूरी है।

यह चिकित्सा विदेशी है। भारत में इसका शुभागमन पहले-पहल मद्रास प्रान्तों में हुआ। इसके जन्मदाता लूईकूने नामक एक जर्मन महापुरुष थे। उन्होंने अपने अनुभवों पर इसे प्रकट किया और "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की। इसकी इतनी ख्याति हुई कि २५ वर्षों के भीतर ही जर्मन भाषा में एक सौ आवृत्तियाँ निकल गईं और २५ भाषाओं में अनुवाद भी निकले। उन्होंने सब रोगों का एकीकरण किया ; और कहा कि सब रोग एक ही कारण से पैदा होते हैं ; निदान की जरूरत नहीं। इस सिद्धान्त को सभी प्राकृतिक चिकित्सकों ने मान लिया है। उन्होंने यह भी बताया कि मेरी चिकित्सा से जो रोग मिटते हैं ; वे जड़ से उखड़ जाते हैं फिर कभी उभड़ते नहीं। उन्होंने सब रोगों को मिटाने का एक ही उपाय भी बताया।

मद्रास प्रान्त के पादरी लोग जिनमें जर्मन अधिक थे। इस पुस्तक की सहायता और जर्मनी से लाये हुए अनुभवों पर वहाँ चिकित्सा करने लगे। यह चिकित्सा बिना दवा-दारू और बिना खर्च की होने के कारण लोगों को बड़ी प्रिय हुई और इसका प्रचार बढ़ने लगा। पादरियों के धार्मिक भाव और धर्म प्रचार में भी यह सहायक हुई ; क्योंकि उनके धर्मावतार महात्मा ईसामसीह प्राकृतिक जीवन और रहन-सहन के अनुयायी थे और वे प्राकृतिक मिट्टी और थूक से लोगों का इलाज भी करते थे। इसी से वे बड़े प्रेम और लगन के साथ इसका प्रचार बढ़ाते रहे। वहाँ इसका अच्छा प्रचार होने पर धीरे-धीरे इसकी हवा भारत के दूसरे प्रान्तों में भी पहुँची। सन् १९१३ ई० में मुरादाबाद से श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप (अब स्वर्गवासी) महोदय ने इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद ऊपर लिखे नाम से प्रकाशित किया। इससे पहले वे इसका उर्दू अनुवाद निकाल चुके थे। इनके द्वारा सारे भारत में प्रचार होने लगा। इस चिकित्सा में कई तरह के स्नानों की विधि होने के कारण इसका नाम जल-चिकित्सा भी पड़ गया। मुझे इस चिकित्सा से बहुत लाभ हुआ और मेरा विश्वास है कि प्रायः ३५ वर्ष पहले सन् १९१६ ई० में इसी चिकित्सा द्वारा मैं मौत के मुँह से निकला। पर इसके बाद भी प्रायः ३५ वर्षों में जो कड़ुवे मीठे अनुभव हुए इसकी कुछ खराबियाँ देखने-सुनने में आईं, जिनके कारण कितने ही को मौत के मुँह में जाते देखा-सुना भी गया।

प्राकृतिक चिकित्सा पर प्रेम होने के कारण मेरी कामना है कि खराबियाँ मिटाने के लिए इसमें कुछ सुधार किये जायें। इसके चिकित्सक और प्रेमियों से जो इसके प्रचार में लगे हुए हैं, बड़ी नम्रता के साथ अपने विचार उनके सामने रखूँगा और प्रार्थना करूँगा कि बड़ी शान्ति और धीरज के साथ उस पर ध्यान दें और विचार करें। मैंने उनमें से किसी के सामने अपने विचार रखे थे पर ध्यान नहीं दिया गया। उनका कहना था कि लूईकूने की पद्धति

पुरानी पड़ गयी, हम इस समय की नई पद्धति से काम लेते हैं। पर वे जिन नई पद्धतियों को अपनाते हैं ; वे सब विदेशी हैं और उनमें नित नये परिवर्तन होते रहते हैं। उदाहरण रूप दही को ले लीजिये। पचास वर्ष पहले विदेशी विज्ञान पर चलनेवाले डाक्टर दही का नाम सुनते ही चमक उठते थे और कहते दूध को सड़ाकर खाना बड़ी मूर्खता है। यह रोगों का घर है। पर आज उनका विज्ञान बिलकुल उलट गया। वे कहते हैं दूध के बदले दही खाना ही अच्छा है। इसमें दूध के सभी गुण होते हुए हाजमा है। बुखार के रोगी को भी दही का मठा बनाकर देना बुरा नहीं समझते। पाठक, सोचें इतने बड़े फेर-बदल होनेवाले सिद्धान्त पर किसी के जीवन की बाजी कैसे रखी जा सकती है। अस्तु !

इस समय भी एक महानुभाव महाप्रचारक और अखिल भारत प्राकृतिक चिकित्सा संघ के सभापति श्री महावीर प्रसाद पोद्दार ; लूईकूने की चिकित्सा के ही पक्षपाती हैं और उसी का प्रचार करते हैं।

देखा जाता है कि इस समय प्राकृतिक चिकित्सा के जितने चिकित्सक हैं, वे अपने-अपने ढंग से चिकित्सा करते हैं। सब का रास्ता एक नहीं है। किसी को भीगी हुई पट्टी बाँधने की धुन है तो किसी को पेट सेकने की। किसी को स्टीमबाथ देने की तो किसी को एनिमा (डूस) की। कोई गरम पानी में पाँव रखकर रोगी को ठंडे पानी से नहलाता है। कोई लोभ के वश में तो कोई अज्ञान के। या कोई रोग शीघ्र मिटाने की बहादुरी लूटने के लिये रोगियों को हैरान करते हैं।

सबसे बड़ी भयङ्कर एक बात और पैदा हुई है, वह है सबको शाक खिलाने का प्रचार। चाहे रोगी हो या भोगी सब को शाक भरपूर जरूर खाना चाहिए। इन्होंने एक महावाक्य या नारा ईजाद किया है—"रोटी को आधा करो और करो साग को दूना" और कहते हैं दिन में दो-तीन-चार बार जब जो कुछ खायें उसके साथ-साथ शाक जरूर रहना चाहिए। इस प्रकार शाक ही को आहार में प्रधानता देते हैं। पर इसके विपरीत जब हम आयुर्वेद को देखते हैं तो माथा ठनक जाता है। उसमें शाक को बड़ा भयानक और घातक बताया है। कहा है :—शाक खाने से आदमी अन्धा होता है। शरीर का बल, वीर्य, रक्त, बुद्धि, स्मरणशक्ति और चलने की ताकत का नाश होता है और समय से पहले बाल सफेद हो जाते हैं और हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं। उस जमाने में शाक के दोष सर्वविदित सिद्धान्त थे ; इसी से चाणक्य नीति में भी उसे स्थान दिया गया :—

"शाकेन रोगावर्द्धन्ते" (शाक से रोग बढ़ते हैं)।

—चा० नीति अ० १० (२०)॥

अब प्रश्न उठता है कि किसकी बात मानी जाय और किसका सिद्धान्त ठीक समझें। एक तरफ तो आयुर्वेद एक ऐसा शास्त्र जिसके रचनेवाले भारत के गौरव ऋषि-मुनि आचार्य थे ; उनमें एक भगवान धनवन्तरि तो अवतार ही माने गये। भारत के दर्शनशास्त्र, गीता आदि और आयुर्वेद के सामने सारा संसार सिर नवाता है। इनकी तुलना के शास्त्र संसार में नहीं पाये जाते। इनके सिद्धान्त उलटने और बदलनेवाले नहीं हैं। दूसरी तरफ बहुरूपी की तरह नित नये बदलनेवाले सिद्धान्त की भारी उलझन है। इस उलझन को सुलझाने के लिए वर्त्तमान एक बड़े चिकित्सक से पूछा गया, उत्तर मिला कि हम तो महात्मा गांधी के चलाये पथ पर चलते हैं। उनकी आरोग्य की कुञ्जी पढ़ी है।

मैं अपने आपको बापू का भक्त और अनुयायी किसी से कम नहीं समझता। मेरे तो हृदय के एकमात्र देवता वे ही थे। यद्यपि बापू के लेख शाक खाने के पक्ष में हैं पर एक शंका यह होती है कि उनसे जब-जब पूछा गया उन्होंने एक स्वर से यही कहा कि आयुर्वेद बहुत अच्छा है पर अच्छे वैद्य नहीं मिलते। उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि आयुर्वेद के शाकवर्ग को छोड़कर बाकी का अच्छा है। संभव है कि शाकवर्ग की तरफ उनका ध्यान नहीं गया या किसी ने

(शेषांश पृष्ठ ४४८ में पर)

आयुर्वेदीय चिकित्सा का चमत्कार

उमाशंकर प्रसाद सिंह, ए० एम० एस०

दिनाङ्क १२-९-५१ को एक रोगी जिसे बद्ध गुदोदर (intestinal obstruction) कह कर पटना जाने के लिए बेगूसराय सरकारी अस्पताल से मुक्त कर दिया गया था । अ० शि० आ० महाविद्यालय के आतुरालय में आया और उसकी सफल चिकित्सा हुई । जिसका विवरण निम्न प्रकार है:—

वर्तमान कष्ट—रोगी को एक सप्ताह से अधिक से मलबद्धता थी । उक्त सरकारी अस्पताल में बस्ति आदि अनेक प्रयत्न करने पर भी कोष्ठबद्धता दूर नहीं हुई । अपितु दिनोदिन कोष्ठबद्धता के कारण उदर प्रदेश आध्मानयुक्त होता गया और उदर की पीड़ा बढ़ती गयी । रोगी उक्त पीड़ा से उद्विग्न था । यहाँ आने पर यहाँ के औषधालय के चिकित्सक ने पुनः निरूह बस्ति का प्रयोग किया जिससे कुछ मल निकला परन्तु विशेष लाभ नहीं दृष्टिगोचर होने पर औषधालय के चिकित्सक ने महाविद्यालय के अध्यक्ष को उसकी सूचना दी । अध्यक्ष ने उस रोगी की परीक्षा की ।

परीक्षा से यह पता लगा कि रोगीकी (मल के सूखने से) आँतों में अनेक गाँठें पड़ गई हैं । ये गाँठें उदर को स्पर्श परीक्षा से स्पष्ट प्रतीत होती थीं । रोगी का पूर्ण वृत्तान्त लेने पर यह पता चला कि रोगी इस आतुरालय में आने के ७-८ रोज पहले मकई का भुट्टा खाया था और उसके बाद रोटी और भैंस का दूध भी खाया था । जिसके परिणाम-स्वरूप उसे कोष्ठबद्धता हुई । प्रश्न से यह भी पता चला कि रोगी क्रूरकोष्ठ का है और इस प्रकार से मलबद्धता की शिकायत कुछ मास पहले भी हुई थी । किन्तु उस समय इसका रूप उतना भयंकर नहीं था और वह सामान्य प्रतिकार से ही ठीक हो गया था । अस्तु, उसके इन लक्षणों को देखकर अध्यक्ष महोदय ने उसे पुरीषज उदावर्त निश्चित किया और पुरीषज उदावर्त की चिकित्सा की व्यवस्था कर दी ।

रोगी की अवस्था अधिक दिनों तक पेट में मल जमा रहने से बहुत खराब हो रही थी और उदावर्त के विकार होने पर भी मल के गाँठों के अधिक बन जाने के कारण बद्ध गुदोदर का लक्षण प्रारम्भ हो गया था । अतः ऐसी परिस्थिति में मल को निकालने के लिए तथा आँतों को मुलायम करने के लिए साथ ही उदावर्तजन्य वायु की वृद्धि से शरीर में उत्पन्न हुए रुक्षता को दूर करने के लिए सर्वप्रथम अनुवासन बस्ति के अतिरिक्त और कोई सद्यः प्रतिकार न समझ कर हिंगुत्रिगुण तेल की अनुवासन बस्ति की व्यवस्था की गयी । साथ ही उदर भाग को शैत्य और प्रवात से बचाने के लिए कपड़े से सदा आवृत रखने की व्यवस्था की गयी । परिणाम यह हुआ कि प्रथम अनुवासन बस्ति के बाद ही २०-२५ गाँठें नकलीं । इस विचार से कि बस्ति द्वारा बृहदान्त्र के ही मल निकल सकेंगे । अतः रोगी को हिंगुत्रिगुण तैल की एक मात्रा (२ औंस) पिला भी दिया गया । पुनः जब दूसरी बार ६ घंटे के बाद बस्ति दी गयी तो प्रचुर मात्रा में मल की गाँठें तथा मल निकला । हिंगुत्रिगुण तैल के आभ्यन्तर प्रयोग से आँतों के मुलायम हो जाने पर तथा शुष्क मल की गांठों के स्निग्ध हो जाने से एवं वायु के अनुलोमन होने पर स्वयं ही मल की प्रवृत्ति हुई और दो-तीन घंटा बीच दे देकर ६ बार में अनेक गाँठें निकलीं तथा प्रचुर मल भी निकला । इसके बाद रोगी स्वस्थ अनुभव करने लगा और पेट उसका मुलायम हो गया । पुनः दूसरे दिन भी स्वयं उसे ४-५ बार दस्त हुए और रोगी का पेट पूर्ण मुलायम तथा हल्का हो गया । रोगी पूर्ण स्वस्थ अपने को अनुभव करने लगा ; परन्तु कई दिनों तक रोगी को भोजन न मिलने से उसे दुर्बलता अधिक हो गयी थी ; अतः रोगी को संसर्जन कराना आवश्यक था । अध्यक्ष महोदय ने जब रोगी को देखा और उसके पेट को पूर्ण मुलायम तथा मल-विहीन पाया तो उसे द्राक्षा से सिद्ध दूध का प्रथम पथ्य दिया और बाद में साबुदाना तथा मूँग की खिचड़ी आदि क्रमशः देकर ८ दिनों के पश्चात् स्वस्थ होने पर मुक्त कर दिया गया ।

विवेचन—आचार्यों ने इस तथ्य पर सदा चिकित्सकों

का ध्यान आकृष्ट किया है कि उसे अपने गुणों में परम प्रयत्नशील रहना चाहिए जिससे किसी प्रकार का प्रमाद न होने पावे। यही कारण है कि चिकित्सक को प्राणदाता कहा गया है। चिकित्सक की थोड़ी सी असावधानी रोगी के लिए प्राणघातक हो सकता है। उक्त विवरण में पाठकों को यह स्पष्टरूपेण संकेत मिलेगा कि किस प्रकार एक उदावर्त के रोगी की उचितरूप से चिकित्सा न होने से वह बद्ध गुद्धोदर का रूप धारण कर लिया और उसके बाद भी पूर्ण सावधान न होने से उसे मरणोन्मुखी बना दिया। यदि उक्त रोगी को चिकित्सा-व्यवस्था सावधानी पूर्वक नहीं होती तो यह निश्चय था कि उसे अकारण ही शस्त्र-क्रिया पथ पर (Operation Table) जाना पड़ता और यह कौन कह सकता था कि उसके उदर विपाटन (Leporotomy) के बाद वह बच ही जाता। दुष्ट मलों का संचय विपाटित उदरों को असूचि (Septic) बनाने के लिए पर्याप्त था। इस परिस्थिति में रोगी चिकित्सक के थोड़ी असावधानी से यम-सदन की तैयारी कर देता; परन्तु अयोध्या शिवकुमारी महाविद्यालय के चिकित्सा विभाग के अध्यक्ष पं० राधाकृष्णनाथ की सुबुद्धि तथा महाविद्यालय के अध्यक्ष श्री पं० रामरक्ष पाठक जी की सुव्यवस्था ने उस रोगी के प्राण की रक्षा की।

शरीर के अन्दर पाकादि क्रियाओं के परिणामस्वरूप जो मल पदार्थ निर्मित होता है और जब वह अनुपादेय हो जाता है तब उसको बाहर निकालने के लिए शरीर के विविध अवयव सदा प्रयत्नशील रहते हैं। अवयवों का यह प्रयत्न मनुष्य के वेग के रूप में ज्ञात होता है। अतः आचार्यों ने "न वेगान्धारयेत्" तथा 'न वेगितोऽन्यकार्यस्यात्' इस सूत्र के द्वारा वेग धारण को निषेध किया है। ये ही वेग सब किसी प्रकार से अभिहत हो जाते हैं तो इनसे नाना प्रकार के विकार मानव शरीर के अन्दर उत्पन्न होते हैं। उन सभी विकारों को आयुर्वेद के आचार्यों ने एक वर्ग में रखकर उनकी 'उदावर्त' संज्ञा दी है। इन वेगों का अभिघात दो प्रकार से हो सकता है।

(१) परिस्थिति वश मनुष्य जब उक्त वेगों को रोकता है।

(२) या जब दोष विकृति वश रोकता है। यथा—

भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति हि ॥
स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत् ॥
ततो हृद्बस्ति शूलार्तो गौरवारुचि पिड़ितः।
वात मूत्र पुरीषाणि कृच्छ्रेण कुरुते नरः ॥
श्वास-कास प्रतिश्याय दाहमोह वमिज्वरान्।
तृष्णाहिक्का शिरोरोग मन श्रवण विभ्रमान्।
लभते च वहून्यान् विकारान् वात कोपजान् ॥

—सुश्रुत

(३) पुरीषज उदावर्त :—

"आटोपशूलौपरिकतनञ्च सङ्गःपुरीषस्यतथोर्द्ध्ववातः।
पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहतेनरस्य ॥

—सुश्रुत

सापेक्षनिदान :—

इस विकार में गुल्म तथा बद्ध गुदोदर का भ्रम हो सकता है। अतः इसका निराकरण निम्न लक्षणों से कर लें।

गुल्म कारण भेद :—जिन कारणों से जैसे मल-मूत्रादी अति स्राव से तथा रुक्षान्न पान सेवन से गुल्म होता है। उन्हीं कारणों से उदावर्त नहीं होता। उदावर्त में मल-मूत्रादि के वेगों का आघात प्रधान कारण है। **लक्षण भेद :**—इनके ५ स्थान हैं; जहां ये गुल्मरूप से दिखाई देते हैं। इसमें शूल प्रधान लक्षण होता है।' गुल्मः तिष्ठति रोधेषु"। **प्रकार भेदः**—यह वातादि दोषों की प्रधानता से ५ या ८ प्रकार का होता है। (देखें, चरक निदान)।

बद्धगुद्धोदरः कारण भेदः—यह निम्न कारणों से होता है।

(क) आन्त्र पास।

(ख) द्रवोनाकार आँतों का होजाना।

(ग) ग्रन्थि या नया उभार का हो जाना।

(घ) मलों की गाँठ आँत में रुक जाना।

(ङ) फिरंग तथा प्रवाहिका के कारण आँन्त्र संकोच हो जाना।

(च) आन्त्र का वाताघात।

(छ) कृमि

(ज) शल्य प्रवेश।

उदावर्त के कारण बद्ध गुद्धोदर हो सकता है। अतः उदावर्त के लक्षण तो प्रायः बद्ध गुद्धोदर में मिलते हैं। परन्तु बद्ध गुद्धोदर के सभी लक्षण उदावर्त में मिलना सम्भव नहीं। आयुर्वेद में बद्ध गुद्धोदर के लक्षण इस प्रकार हैं। साथ ही यह आशुकारी है।

यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वावालाश्मभिर्वासहितैःपृथग्वा।
संचीयते तत्र मलः सदोषःक्रमेणनाड्यामिवसंकरोहि॥
निरुध्यतेचास्यगुदेपुरीषं निरेति कृच्छ्रादपिचाल्पमल्पम्।
हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति यच्चोदरंविट्समगन्धिकञ्च॥

—सुश्रुत

प्रच्छर्दयन् वद्धगुदी विभाव्य

प्रतिकार :—

'पुरीषजे तु कर्तको विधिरानाहिकोभवेत्।
उदावर्त क्रियाऽनाहे सामे लंघन पाचनम्॥
तं तैल लवणाभ्यक्तं स्निग्धं स्विन्नं निरूहयेत्।
दोषतो भिन्न वर्चस्कं भुक्तं चाप्यनुवासयेत्॥
न चेच्छान्तिं व्रजत्येवमुदावर्तः सुदारुणः।
अथैनं वहुशः स्विन्न प्रयुञ्ज्यात् स्नेह विरेचनैः॥
पाययेतत्रिवृत्पीलु यवाजीराम्ल पानकैः।
हिंगु कुष्ठ वचा सर्पिं विडंगं वा द्विरुत्तरम्॥
योगावेतावुदावर्तं शूलंचापि नियच्छतः॥

—सुश्रुत

इसके लिए हिंग्वादि चूर्ण, वचादि चूर्ण, पंचलवण चूर्ण, वैद्यनाथ वटी, नाराच रस, हिंगु त्रिगुण तैल, नाराच घृत का यथा योग्य उपयोग करना चाहिए।

(शेषांश पृष्ठ ४४५ वें का)

ध्यान नहीं दिलाया नहीं तो वे इस शंका का निवारण जरूर करते। वे जान-बूझकर किसी को छिपाने या उपेक्षा करनेवाले नहीं थे। जो हो, इस विषय पर अनुसन्धान और अधिक विवेचन की जरूरत है। इस लेख में भी उचित स्थान पर विशेष विवेचन करने की चेष्टा की जायगी।

यदि वर्त्तमान चिकित्सक सबको शाक खाने पर जिस तरह जोर दे रहे हैं, वैसा न करके किसी खास रोगी को, किसी खास शाक को, किसी नियत समय तक खाने की सलाह देते तो बुराई नहीं थी। वैसे तो आयुर्वेद में भी सभी शाकों के गुण दोष दिये हैं जिससे उसका भी यही उद्देश्य है।

वर्त्तमान चिकित्सक मुझे यह कहने के लिए क्षमा करें कि उनमें व्यवहारिकता का अभाव ही मालूम होता है। एक बिच्छू के अंगुली पर काटने पर सारे हाथ पर दो बाल्टी मिट्टी थोपना और आध घण्टे तक रोगी को रुलाना जो कि दो बूँद "लिकर अमोन फोर्ट" नौशादर-चूने के लगाने से एक मिनट में छूमन्तर हो जाता है, दूसरी बात उपचार के लिये दो-तीन घण्टे तक रोगी को अटकाये रखना व्यवहारिकता नहीं हो सकती। बहुत लोग प्राकृतिक चिकित्सा करना चाहते हैं, पर इतना समय नहीं दे सकते इसीसे प्रचार में कमी होती है। इसके सिवाय जिस चिकित्सा का जन्म बिना खर्च के लिये हुआ उस पर अनाप-सनाप खर्च करना चिकित्सा के नाम को बट्टा लगाना है। बहुत लोग पूछते हैं स्टीमबाथ और एनिमा (डूस) प्राकृतिक चिकित्सा कैसे हुए इसका जवाब उनके पास कुछ नहीं है।

इन सब बातों पर भारी विवेचना की जरूरत है और वे उचित स्थानों पर की जायगी। सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा क्या है और वह बिना खर्च और बिना आडम्बर के कैसे हो सकती है; यह भी बताया जायगा।

कामला की चमत्कारिक चिकित्सा

डा० सूर्यदेव प्राणाचार्य

अगस्त मास की १६ तारीख को सायंकाल एक अत्यन्त गम्भीर रोगी निरीक्षणार्थ मैं बुलाया गया। रोगी का नाम लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव था। आयु ३२ वर्ष। रोगी को निरन्तर तीव्र वमन हो रहा था। यहाँ तक कि जल भी आमाशय में नहीं ठहरता था। हृदय अत्यन्त निर्वल हो गया था। शिरोभ्रम, बेचैनी और मांस पेशियों में तीव्र संकोचन हो रहा था। आँखें अत्यन्त पीतवर्ण (हरिद्रावत्) थीं। मूत्र में भी अत्यधिक पित्त जा रहा था। जल शोष के लक्षण स्पष्ट प्रतीत हो रहे थे।

रोगी का पूर्व इतिवृत्ति निम्न था। इस रोगी को प्रथम दिन ज्वर हुआ। स्वयं विज्ञापन की दवा देख कर इसने चार टिकिया प्रतिदिन पैल्यूडरीन की दो दिन ली। ज्वर में कोई लाभ नहीं हुआ। दूसरे दिन एक वृद्ध रिटायर्ड असिस्टेण्ट सर्जन बुलाये गये। इन्होंने १० ग्रेन कुनीन का मांसान्तर सूची-वेध दिया। जिससे ज्वर में तो कोई लाभ नहीं हुआ प्रत्युत तीव्र रूप में दूसरे दिन से कामला वमन के साथ प्रारम्भ हो गया। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि रोगी को विषम ज्वर नहीं था। उसको प्राकृत या फसली बुखार था। प्रथम तो पैल्यूडरीन जैसी यकृत विकारकारी औषधि हो उसे नहीं लेनी चाहिये। उस पर डाक्टर ने कुनैन जैसी तीव्र और यकृत प्रभावक औषधि का सूची वेध दिया जिसके परिणाम स्वरूप कामला का उपद्रव हुआ। इस बीच में ज्वर जो स्वयं साधारण चिकित्सा से भी शांत हो जाता, समाप्त हो गया। परन्तु रोगी वमन, बेचैनी और कामला से अत्यन्त चिन्तित था अतः एक होमियोपैथ बुलाये गये। उन्होंने वमन बन्द करने की औषधि दी। परन्तु पथ्य में दूध रोटी दिया जिससे वमन और तीव्र हो उठा। पुनः एक बंगाली एम० बी० बी० एस० डाक्टर को बुलाया गया उन्होंने रोगी देख कर मैगसल्फ का मिश्रण पीने को दिया। इससे रोगी को दो रेचन अवश्य हुये परन्तु वमन और तीव्र हो गई। ऐसी परिस्थिति में मैंने रोगी को देखा। इस सारी प्रक्रिया में से गुजरते हुए रोगी को दश दिन व्यतीत हो चुके थे।

सारी परिस्थितियों को ध्यानपूर्वक सुनने के पश्चात् मैंने यह निश्चय किया कि रोगी का यकृत और आमाशय तीव्र औषधियों तथा अपथ्य सेवन से क्षोभ युक्त हो गये हैं पित्त आँत में न जाकर आमाशय में आकर क्षोभ उत्पन्न कर रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप वमन हो रहा है तथा अत्यन्त वमन से शरीर में जलशोष (Dehydrotion) होने से बेचैनी, मांस पेशी का संकोच आदि लक्षण उत्पन्न हो गये हैं। अतः निम्न व्यवस्था की गई :—

१. सरपुंखाक्षार
४ मात्रा उष्णजलसे १।२ घंटे पर

२. कर्पूरासव १० बिंदु
जल ३० बिंदु
ऐसी ४. मात्रा

पर्य्याय से–संख्या १ और २ की औषधि घंटे $\frac{१}{२}$ घंटे पर दी गई।

प्रथम संख्या की औषधि देने से ही प्रथम मात्रा से ही वमन बन्द हो गया। एक-एक घण्टे में उपर्युक्त ४-६ मात्रायें दी गई। दूसरे दिन मूत्र परीक्षा की गई। मूत्र में पित्त की उपस्थिति प्रभूत मात्रा में पाई गई तब निम्न औषधि की व्यवस्था की गई।

३. संशमनी १ बटी
४. मात्रा उष्ण जलसे

तीन तीन घंटे से। नं० एक की औषधि भी दी जाती रही। पथ्य में केवल परवर का रस, अनार का रस, अंगूर और मुसम्मी का रस क्षुधा के अनुसार। कामला अर्थात् नेत्र तथा मूत्रादि पीतिमा में कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। दुर्बलता वैसी ही बनी रही अतः पुनः निम्न प्रयोग दिया गया :—

१. सर्व ज्वरहर लौह १ र.
मुक्ता भस्म १ र.

ऐसी ३ मात्रा

हरीतकी और निम्ब पत्र के स्वरस से। हरीतकी को चदंन के समान घिसकर जलमें १ तोला और निम्ब पत्र का स्वरस और मधु १-१ तोला। इस अनुभूत औषधि से आशातीत लाभ हुआ। इससे पूर्व भी अनेक रोगियोंपर यह औषधि प्रयुक्त की गई थी और पूर्ण सफल रही थी। उपर्युक्त रोगी १० दिन में इस चिकित्सा से पूर्ण रोगमुक्त हो गया।

परिणाम विवेचन

रेचनं कामालार्तस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत्,
ततः प्रशमनी कर्या क्रिया वैद्येन जानता।
त्रिफलायागडूच्या वा तथा निम्ब रसोऽथवा
प्रातर्माक्षिक संयुक्तः शीलितः कामलापहः।

उपयुक्त चिकित्सा सूत्र का रोगी भी अवस्था के अनुसार अनुसरण किया था।

रोगी को संचित पित्त निकालने के लिये हल्का रेचन (हरीतकी) हृदय की दुर्बलता के शमनार्थ मुक्ताभस्म तथा लौह भस्म और दूषित पित्त के निराकरण के लिये निम्ब स्वरस दिया गया। रोगी को और तीव्र रेचन दिया जाता तो लाभ होता परन्तु रोगी का पूर्णतया जलशोष हो गया था अतः संग्रहक औषधि दी गई थी। जिससे अधिक जलशोष बढ़ने की सम्भावना न रहे। ज्यों-ज्यों रोगी की पाचन शक्ति ठीक होती गई चिकित्सा काल में ही उसे अन्न दिया जाने लगा।

यह प्रसङ्ग लिखने का एकमात्र उद्देश्य यह है कि आज के युग के लोग देखें कि साधारण-सी आयुर्वेदीय औषधियां कितना चमत्कार रखती हैं। यदि उनका विचार पूर्वक विनियोग किया जावे।

सचित्र आयुर्वेद

१—रोगी की चिकित्सा विशुद्ध आयुर्वेदीय ढँग से कैसे हो, इस प्रश्न का हल निकालना इस पत्र का एक उद्देश्य है, (अपनी आयुर्वेदीय शैली से आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर कसकर)।
२—इस पत्र का एक उद्देश्य यह भी है कि अपनी आयुर्वेदीय शैली से आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर कसकर वनौषधियों के अन्वेषण का प्रश्न हल करना।
३—हम चाहते हैं कि जो गम्भीर लेख 'सचित्र आयुर्वेद' में प्रकाशित हों, उनको चित्रों के द्वारा ज्यादा-से-ज्यादा सरल और स्पष्ट बनाया जाय। इस उद्देश्य से इसमें अनेक इकरंगे-बहुरंगे चित्र देने की ओर हमारा पूरा ध्यान रहना है।
४—जैसी कि हमारी अभिलाषा थी, शुरू से ही "सचित्र आयुर्वेद" को देश-प्रसिद्ध आयुर्वेदीय विद्वानों एवं स्वास्थ्य-अधिकारियों का सहयोग एवं आशीर्वाद मिला। फलस्वरूप इसका देशव्यापी सम्मान भी हुआ।
५—आर्ट पेपर पर छपे अनेक इकरंगे-बहुरंगे चित्रों से विभूषित ८० पृष्ठ के पत्र का मूल्य केवल ४) चार रुपये वार्षिक, एक प्रति का ।≶) छ आने मात्र।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,
१, गुप्ता लेन (जोड़ासांकू) कलकत्ता - ६

ज्वरांकुश रस

वैद्य सभाकान्त झा शास्त्री, स० सम्पादक

शुद्धसूतं विषंगन्धं धूर्त्तबीजं त्रिभिःसमम् ।
चतुर्णां द्विगुणंव्योषं चूर्णगुञ्जाद्वयं हितम् ॥
जम्बीरस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम् ।
ज्वरांकुशरसोनाम्नाज्वरान्सर्वान्प्रणाशयेत् ॥

अर्थात्—शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्धबच्छनाग प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध धत्तूर बीज ३ तोला, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च प्रत्येक ४-४ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना लें, फिर शेष औषधियों को कूट-कपड़छन कर महीन चूर्ण बना कज्जली में मिलाकर अदरख और जम्बीरी नीबू के रस से (१-१ दिन) मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली अदरख के रस और मधु से दें। कफज्वर में पीपल चूर्ण और मधु से। पित्तज्वर में सितोपलादि चूर्ण के साथ। मलेरिया में सुदर्शन अर्क अथवा गुडूच्यादि क्वाथ के साथ देने से आशातीत लाभ होता है।

गुण और उपयोग—यह रसायन ज्वर में होनेवाली वेदना नाशक तथा वात-पित्त और कफ तथा विषमज्वर-(मलेरिया) से उत्पन्न होनेवाले ऐकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक और सन्ततादि ज्वर, ज्वर के साथ होनेवाले पतले दस्त, अनपच, पेट में वायु भर जाना तथा पेट फूलना आदि विकारों को दूर करने के लिए यह बहुत प्रसिद्ध दवा है।

वातप्रधानज्वर—ज्वर का वेग कभी कम कभी ज्यादा हो जाना, निद्रा न होना, शरीर जकड़ जाना, हाथ-पैर में दर्द होना तथा जोड़ों में विशेष पीड़ा होना, शरीर काँपना, माथे में दर्द, देह में आलस्य बना रहना, कण्ठ एवं होठ का सूखना, छींक न आना, मुख में फीकापन, बार-बार रोंगटे खड़े हो जाना, बद्धकोष्ठ होना, पेशाब का रंग लाल, काला होना और पेट में दर्द तथा वायु भर जाना, सूखी खाँसी आना, अण्ट-सण्ट बोलना आदि लक्षण उपस्थित होने पर ज्वरांकुश रस देने से अच्छा लाभ होता है।

कफप्रधानज्वर में—शरीर जकड़ जाना, ज्वर भीतर-ही-भीतर बना रहना, शरीर में आलस्य, अङ्ग टूट रहा है—ऐसा अनुमान होना, कुछ-कुछ ठण्ड मालूम होना, जी मिचलाकर मुँह में पानी भर जाना, वमन होना, पेट में भारीपन और आग के पास या धूप में बैठने की इच्छा होना आदि लक्षण होने पर ज्वरांकुश रस देने से कफ-विकार शान्त हो उससे उत्पन्न ज्वरादि उपद्रव भी नष्ट हो जाते हैं।

वात-कफज्वर में—शरीर गीला बना रहना, सन्धियों (जोड़ों) में दर्द होना, निद्रा ज्यादा, देह भारी, मस्तक भारी हो जाना, नाक से पानी गिरना, खाँसी आना, पसीना न निकलना और शरीर में दाह आदि लक्षण उत्पन्न होने पर ज्वरांकुश रस से अत्युत्तम लाभ होता है।

इसी योग में त्रिकटु के स्थान पर 'चोक' मिला देने से यह 'महाज्वरांकुश रस' तैयार होता है। शार्ङ्गधरसंहिता में ऐसा ही पाठ है। इस 'महाज्वरांकुश' के विषय में स्व० हरिदासजी वैद्य ने चिकित्सा चन्द्रोदय में अपना अनुभव बतलाते हुए लिखा है—

"हमने सैकड़ों बार अजमाया है, पर हम इससे शीत-पूर्वक विषमज्वरों—यानी जाड़ा देकर आनेवाले ज्वरों को ही आराम कर सके हैं। जाड़ा लगकर आनेवाले इकतरा, तिजारी और चौथिया प्रभृति में यह सचमुच ही अचूक दवा है। अच्छी से अच्छी तेज डाक्टरी दवा इसकी बराबरी नहीं कर सकती।"

महाज्वरांकुश बनाने की आनुभविक विधि बताते हुए लिखते हैं—'हम उपरोक्त सब दवाओं को घोटकर गोलियाँ बनाते हैं। अगर चोक सूखा होता है तो जम्बीरी नीबू का रस डालकर घोटते हैं और खूब घुट जाने पर सरसों के बराबर गोली बनाते हैं। हम ताकतवर को दो तथा कमजोर

को एक गोली ताजा पानी से देते हैं। चढ़े हुए ज्वर की हालत में हम इसका प्रयोग नहीं करते। यद्यपि विषमज्वर सर्वथा शरीर के बाहर नहीं जाता तथापि अपने समय पर एक तरह से उतर ही जाता है। जब रोगी का शरीर गरम नहीं रहता तब रोगी कहता है अब ज्वर नहीं है ; थर्मामीटर से भी टेम्प्रेचर या तापमाप ९८ या ९८॥ या ९९ तक रहता है। तब हम रोगी को ज्वर आने के समय से १२ घण्टे या ६ घण्टे पहले हर दो-दो घण्टे पर एक-एक गोली ताजा जल से देते हैं। अगर गोली खिलाते-खिलाते ज्वर चढ़ आता है तो गोली देना बन्द कर देते हैं। ज्वर उतर जाने पर पारी के दिन अगर ज्वर नित्य आता हो तो ६ या ८ घण्टे पहले फिर उसी तरह गोली देते हैं। इस तरह करने से हठो से हठी जाड़ा देकर बढ़नेवाला बुखार २-३ पारी में अवश्य रुक जाता है।

गोली का प्रयोग—इस प्रकार करें, मान लें किसी रोगी को दिन के २ बजे बुखार आनेवाला हो तो आप रोगी को रात के २ बजे २ गोली, फिर ४ बजे १ गोली, सवेरे ६ बजे, ८ बजे, १० बजे और १२ बजे १-१ गोली दें। अगर २ बजे भी ज्वर न चढ़े तो १ गोली देदें तो उसी दिन ज्वर विदा हो जायगा। अगर उस दिन समय टालकर ज्वर ३-४ या ५-६ बजे आ जाये तो दूसरे दिन या दूसरी पारी को उपरोक्त विधि से; जिस समय ज्वर चढ़े उससे १२ घण्टे पहले गोली खिलावें। अगर रोगी कमजोर हो तो ३-३ घण्टे पर १-१ गोली खिलावें।

जाड़े के ज्वरों का यह कायदा है कि रोगी को एक-दो हल्के विरेचन दे देने से ज्वर फौरन ही दूर हो जाता है। इसके लिए "पंचसकार चूर्ण" की १ मात्रा रोगी को रात में सोते समय गरम जल से खिला देना अच्छा होगा। अगर यह न हो तो 'हरड़ का मुरब्बा' (गुठली निकालकर) एक पाव गरम दूध के साथ देना चाहिए अथवा और कोई हल्की दवा देनी चाहिए। इस तरह दस्त करा देने से एक या दो पारी में जाड़ा देकर आनेवाला बुखार चाहे वह तिजारी और चौथिया क्यों न हो अवश्य दूर हो जाता है।

वैद्य विनोद में लिखा है :—

विषमन्तु निहन्त्यूदूर्ध्वमधोवाशोधनं परम्।
एकैका मधुनाहन्ति त्रिवृत्कृष्णा हरीतकी॥

अर्थात्—वमन—विरेचन से विषमज्वर नाश हो जाता है। निशोथ, पीपल और हरड़ इनमें से एक को शहद के साथ चाटने से भी विषमज्वर चला जाता है। दस्त कराने के लिए ज्वर में और खासकर विषमज्वर में शहद के साथ निशोथ का ३-४ या ८-१० माशे चूर्ण चटाना बहुत अच्छा है। चरक में कहा है—दस्त करानेवाले पदार्थों में 'निशोथ' सर्वोत्तम है।

सावधान—

यह रसायन गर्म होता है क्योंकि इसमें विष पड़ा हुआ है, अतः रोगी की ताकत देखकर कम या ज्यादा इस दवा का सेवन कराना चाहिए। जल्दी रोग आराम हो जाय ; इस ध्येय से इसकी अधिक गोलियाँ नहीं खिलानी चाहिए। बलवान को ६ गोली और कमजोर को ३ गोली तथा १४-१५ वर्ष वालों को बुखार आने से पूर्व ही आधी-आधी गोली देनी चाहिए। दिन भर में ३ बार या तीन-तीन घण्टे पर देना अच्छा है।

अगर रोगी को गरमी ज्यादे लगे, प्यास जोर हो, तो मिश्री खिलानी चाहिए तथा ऊपर से शीतल जल पिलावें। इससे रोगी की प्यास कम होती तथा बेचैनी दूर हो जाती है। यदि शिर में दर्द या उबकाईयाँ आती हों, इसका उचित उपचार करें। यदि ज्वर न चढ़ा हो और शरीर में गर्मी बहुत ज्यादा हो तो मिश्री या चीनी का शर्बत रोगी को पिलावें।

पथ्य—इस दवा से ज्वर छूट जाने या उतर जाने पर दूध, भात और मिश्री खिलानी चाहिए। यदि ज्वर छोड़ा न हो तो साबूदाना-मिश्री मिलाकर दें।

बहुत बार ऐसा होता है कि एक-दो रोज इन गोलियों के खिलाने से ही जाड़ा लगना बन्द हो जाता है। पर शरीर में कुछ-कुछ हरारत किसी-किसी को बनी ही रहती है। ऐसी स्थिति में—

शर्करोदक—शुद्ध जल में मिश्री या सफेद खाण्ड घोल कर उसमें अन्दाज से छोटी इलायची, कपूर, लौंग और कालीमिर्च पीसकर मिला दो और खूब मिल जाने पर छानकर पी जाओ। यही "शर्करोदक" है।

यह वीर्य को पैदा करता है। शीतल होने से जलन मिटाता है।

मलेरिया ज्वर में करंज की उपयोगिता

डा० क्षेत्रमोहन चट्टोपाध्याय एल० एम० एस०

मैं एक देहाती डाक्टर हूँ। अधिकतर गरीब-दुःखी और साधारण मनुष्यों की चिकित्सा करता हूँ। डाक्टरी दवाओं का मूल्य अधिक बढ़ जाने से मैं बहुत दुःखी हो गया हूँ। मेरा कार्यक्षेत्र देहात है। बराबर मलेरिया से आक्रान्त स्थानों में रहने के कारण मुझे मलेरिया की चिकित्सा करने का सबसे अधिक काम पड़ा है। पहले मेरा विश्वास था कि कुनैन मलेरिया की एकमात्र औषध है। पर अब मेरा यह विश्वास जाता रहा।

कुनैन का दाम आजकल इतना बढ़ गया है कि बेचारे देहात के गरीब लोगों से उसका मूल्य वसूलन हीं कर सकता। मैं बड़ी चिन्ता में पड़ गया था। इतने में मेरे मन में एक नया विचार उत्पन्न हुआ। वह यह कि जब इस देश में कुनैन का व्यवहार नहीं हुआ था, तब क्या इस देश के मनुष्यों का ज्वर दूर नहीं होता था। जो कुनन के समान ज्वर दूर कर सके; ऐसी औषधि क्या इस भारत-भूमि में दुर्लभ है? जिस देश में चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट की गवेषणारूपी संहिताएँ अब भी अपने अतीत गौरव की घोषणा कर रही हैं, जिस देश में ज्वरनाशक औषधियों में नीम, सम्भालू, गिलोय, पित्तपापड़ा, चिरायता, सतिवन, पटोल और कुटकी आदि औषधियाँ आयुर्वेदज्ञ महर्षियों की प्रतिभा का अपूर्व विश्लेषण संसार को इस समय भी दिखा रही है। वह देश क्या हमेशा कुनैन की ही उपासना करता रहेगा?

अचानक करंज की बात याद आ गई, छोटे-छोटे गांव में, मार्ग में, वन और जंगलों में करंज के पेड़ बहुतायत से देखे जाते हैं। मैंने उनका संग्रह करना शुरू कर दिया। आयुर्वेद के कौन-कौन ग्रंथों में करंज के गुण वर्णन हैं; वैद्य महाशयों के पास जाकर मैं इस बात की खोज करने लगा, किन्तु दुःख है कि वैद्यराजों से मेरी आशा पूर्ण न हो सकी। हाँ, करंज ज्वरनाशक है; इस बात का समर्थन सब करते थे। इसी आधार पर हमने अंग्रेजी भाषा के "मेटेरिया मेडिका ऑफ इण्डिया" और "फार्मा कोग्राफिया इण्डिया" नामक दोनों ग्रंथों में खोजने लगा। मैं बड़े आश्चर्य में हूँ कि वैद्य महाशय करंज के गुणों का केवल पुस्तक में ही जान लेने से उसकी समाप्ति कर निश्चिन्त बैठ जाते हैं। डीमक, क्षोरी आदि डाक्टर महोदय, उसी करंज के गुणों की भिन्न-भिन्न प्रकार से परीक्षा करके पुस्तकें लिख गये हैं। अस्तु—

मैंने मलेरिया के ऊपर करञ्ज की परीक्षा प्रारम्भ की और मुझे आशातीत सफलता भी मिली। अब मैं जिस रोगी को कुनैन देना उपयोगी समझता हूँ उसको करंज ही सेवन कराता हूँ। थोड़े दिनों में ही मुझे मालूम हो गया कि करंज में ज्वरनाशिनी शक्ति अद्भुत है। करंज की २-३ गोली सेवन कराते ही अनेक रोगियों के ज्वर दूर हो गये। करंज ज्वर के पुनराक्रमण रोकती है। इससे रोगी फिजूल खर्चा से बच जाते हैं। इससे मेरा और रोगी दोनों का उपकार होता है। इस मंहगी के दुर्दिन में करंज जैसे मलेरिया के लिए महौषधि बिना कोई विशेष परिश्रम से मिल जाती है। देहात में रहने के कारण पैसा देकर मोल नहीं लेनी पड़ती, केवल थोड़ा-सा परिश्रम करके करंज के बीजों का खूब बारीक चूर्ण करके शीशी में भर कर रख लेते हैं।

पहले मैंने करंज के अंकुरों को पीस कर गोलियाँ बनाईं, फिर करंज की जड़ की छाल को पीस कर प्रयोग किये; किन्तु इस प्रकार देने से यथेष्ट लाभ नहीं हुआ; अन्त में करंज के बीजों का चूर्ण व्यवहार करना प्रारम्भ किया, तो मालूम हुआ कि करंज के वास्तविक ज्वर-नाशक गुण उसके बीजों में ही अधिक परिमाण में स्थित हैं।

करंज के बीजों के चूर्ण १० ग्रेन परिमाण में एकबार में सेवन कराने से उसी दिन ज्वर का वेग कम हो जाता है। दूसरे दिन पुनः एकबार उपरोक्त मात्रा में खाने से ज्वर का वेग नहीं बढ़ता है। तीसरे दिन तो क्वचित ही प्रयोग करने की आवश्यकता होती है।

मैं जिस विधि से करंज का व्यवहार करता हूँ, वह निम्न लिखित है।

करञ्ज के फल काँटों से परिपूर्ण और धूसर वर्ण के होते हैं। इसके फलों में एक या दो किसी-किसी में तीन बीज होते हैं। बीज के ऊपर का छिलका बहुत सख्त होता है। बीज देखने में बिल्कुल कौड़ो के समान मालूम होते हैं। ऊपर के छिलके को उतार देने से भीतर से सफेद रंग की गिरी निकलती है। यह गिरी कुछ तैलयुक्त होता है। गिरी को धूप में खूब सुखा कर इमामदस्ते में डाल कर खूब बारीक चूर्ण कर लें, यह चूर्ण तीन भाग और पीपल का चूर्ण १ भाग दोनों को जल के साथ एकत्र पीस कर गोलियाँ बना धूप में सुखा कर रखने से बहुत दिनों तक बिगड़ती नहीं है। सबसे अधिक सुभीता इसमें है कि शहद डालकर गोली बना लें। इस गोली को जल के साथ खाने से ही इसकी उपयोगिता देखी जा सकती है।

जो ज्वर सर्दी देकर आता है, जिस ज्वर में शिर में पीड़ा, प्यास, हाथ-पैरों में ऐंठन आदि उपद्रव हों और ज्वर की गरमी अधिक हो, ऐसे ज्वर के उतरने पर अथवा ज्वर के कम होने पर करंज की गोली सेवन करावें। करंज को सेवन कराने से पहले रोगी को कुछ गरम दूध पिलाना चाहिए। क्योंकि खाली पेट में करंज का सेवन कराने से रोगी प्रायः वमन कर देता है। करंज, बालक, वृद्ध और स्त्री-पुरुष सबको सेवन करना चाहिए। उदर रोग, मूर्च्छा और गर्भावस्थादि सभी अवस्थाओं में करंज का उपयोग किया जाता है। इससे किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं रहती। प्रलापयुक्त पैत्तिक जीर्ण-ज्वर में भी करंज अत्यन्त हितावह है। मैंने लगभग ४ महीने तक अनेक रोगियों को करंज का सेवन कराया और सभी जगह लाभ हुआ। मैंने करञ्ज के निम्नलिखित गुणों का परिचय किया—

१—करंज विशेषकर ज्वरनाशक है। इसको एकमात्रा सेवन करते ही फायदा मालूम होने लगता है। यह तत्काल ज्वर को दूर करता है।

२—करंज सभी को सेवन करनी चाहिए। उदर रोग और गर्भावस्थादि में भी इसका निषेध नहीं है।

३—करञ्ज के सेवन करने से ज्वर दूर हो जाने पर प्रायः रिलैप्स (ज्वर का पुनः आक्रमण) नहीं होता है।

४—करञ्ज के सेवन करने से सिर में चक्कर आना, कानों में आवाज होना आदि कोई भी उपद्रव नहीं होता।

५—करञ्ज के सेवन करने से पहले रोगी को एक विरेचन (जुलाब) देना अच्छा होता है।

६—करञ्ज का व्यवहार नये-पुराने दोनों प्रकार के ज्वरों में करना चाहिए।

७—करञ्ज के बीजों की दुर्गन्धि दूर करने के लिए १-२ बूँद सौंफ या दालचीनी का तैल मिलाकर सेवन कराते हैं।

८—करञ्ज का स्वाद कड़वा अवश्य होता है, परन्तु कुनैन जैसी नहीं।

९—करंज प्लीहा और यकृत के विकारों को दूर करती है। विशेषकर वृद्धिका ह्रास करती है और शरीर में नवीन रक्त का संचार करती है।

१०—करंज पसीना और मूत्र को लानेवाली तथा कोष्ठगत वायु का नाश करने वाली है।

लोगों में प्रायः यह भ्रान्ति धारणा फैली हुई है कि कुनैन के सिवाय मलेरिया ज्वर के लिए कोई दूसरी दवा नहीं है। जो मलेरिया के पंजे से रक्षा करने के लिए रोगी को क्रमानुसार कुनैन देते हैं। उनके लिए मैं डाक्टर मेजर रस की युक्तियों का उद्धृत करता हूँ।

इण्डियन मेडिकल सर्विस के खास अंग्रेज डाक्टर मेजर रस कहते हैं—"मलेरिया ज्वर के निरोधक होने से बहुत से मनुष्य कुनैन का व्यवहार करते हैं, किन्तु उससे उल्टा फल होता है। कुनैन खाने से मलेरिया ज्वर कितने ही दिनों में शमन होता है; परन्तु एकबारगी दूर नहीं होता। राख में ढकी हुई अग्नि के समान वह मनुष्यों के शरीर में वर्तमान रहता है।"

इस पर भी आप कहते हैं कि कुनैन से ही मलेरिया ज्वर नष्ट होता है। मैंने स्वयं कितने ही रोगियों को कुनैन की गोलियाँ सेवन कराई थी। अनेक रोगियों के शरीर पर मैंने कुनैन का कार्य प्रत्यक्ष देखा है। परन्तु अब मेरा सिद्धान्त बदल गया है। करंज की ज्वरनाशिनी शक्ति को देखकर मैं आश्चर्यान्वित हो गया हूँ।

(बंगला आयुर्वेद से)

द्रोणपुष्पी (गूमा)

वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह रसायनाचार्य

द्रोणा च द्रोणपुष्पी च फलेपुष्पी च कीर्तिता

यह क्षुप जाति की वनस्पति भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों में पाई जाती है। विशेषकर बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा, तिरहुत और चम्पारन आदि स्थानों में अधिकता से मिलती है। यह प्रायः सब ऋतुओं में मिलती है, परन्तु वर्षा में विशेष रूप से उत्पन्न होती है और वसन्त ऋतु तक अधिक मिलती है। गरमी में प्रायः सूख जाती है। परती जमीन और खेतों में ही विशेष रूप से यह उत्पन्न होती है। इसके क्षुपों की ऊँचाई प्रायः आधा फीट से १॥ फीट तक होती है परन्तु कहीं-कहीं तीन फीट तक ऊँचा देखने में आता है। इसकी जड़ भूरे अथवा श्वेत रङ्ग की होती है। और सूतली अथवा पेन्सिल के समान मोटी तथा २ से ६ इञ्च लम्बी होती है। इस पर छोटे-छोटे बाल अथवा पतली रेशें होती हैं। जड़-कठिन, पतली छाल वाली और स्वाद में चरपरी होती है।

इसके पुष्पों की आकृति द्रोण के आकार की होती है। इसीसे इसे द्रोणपुष्पी कहते हैं। पुष्पों का वर्ण श्वेत और लम्बाई १/८ इञ्च के लगभग होती है। पुष्प बीजकोष पर ही निकलते हैं। बीजकोष मध्यमाकृति सुपारी के बराबर मोटा गुम्बज़ के आकार का अनेक कोषों का पुञ्ज होता है और देखने में बड़ा सुन्दर मालूम होता है। इस गुम्बज के ऊपर केवल दो पत्र निकलते हैं, यह इस क्षुप की विशेषता है। इसी कोई देखकर कोई भाषाविद् ने कहा था—

"एताल वाजा वाजिया पैताल आई जान।
राजा बूटी पहचान जिसके ठोर के दो पान॥"

इसका उल्लेख मैं गत सितम्बर के "सचित्र आयुर्वेद" में "स्नायुक" शीर्षक लेख में कर चुका हूँ।

इसके बीज राई जैसे सूक्ष्म-कृष्णवर्ण और असम होते हैं। इसे बोटॉनिकल शास्त्र में "ल्यूकस सिफेलोटस" कहते हैं। एक शाखा में एक से अधिक बीजकोष होते हैं।

गूमें की अनेक जातियाँ होती हैं। इनमें सबसे सुलभ और सब जगह उत्पन्न होनेवाली दो हैं। एक में शाखा के प्रत्येक पर्व पर बीजकोष और पुष्प लगते हैं। और दूसरे की शाखा के अग्रभाग में एक बीजकोष होता है। यही औषधि गुण सम्पन्न होती है। इसके पत्र मरुवक के पत्ते से मिलते-जुलते हैं। २-३ इञ्च लम्बे १/२ इञ्च चौड़े होते हैं। यह उष्ण ऋतु में सूख जाता है।

आयुर्वेदीय मतानुसार गुण-दोष—द्रोणपुष्पी, मधुर, रूक्ष, चरपरी, कड़वी और पचने में भारी, वातबर्द्धक, पित्तकारी, रेचक तथा कफ, आम, कामला, शोथ, श्वास, अरुचि, मन्दाग्नि, पक्षाघात और कृमिनाशक है। मात्रा—६ माशे से १ तोला।

यूनानी मतानुसार—दूसरे दर्जे में गरम और रूक्ष प्रकृति को मृदुकारक और वात-कफनाशक पाण्डु, शोथ, उदर-कृमि और बवासीर में लाभदायक है। इसका शाक पकाकर खाना क्षुधावर्द्धक है। इसके बीजों का नाभि पर लेप करने से स्तम्भक होता है। गरम प्रकृतिवालों के लिए हानिकारक है।

नोट—इस समय इस पर विशेष अनुसन्धान करने की आयोजन राजस्थान सरकार के मेडिकल विभाग द्वारा स्नायुक रोग पर कराई जा रही है।

यहाँ के ग्राम्य वैद्य सर्पदंश के रोगियों पर सफलता से इसका प्रयोग करते हैं। मात्रा—२ से १० तोला तक पत्रस्वरस या क्वाथ रोगी और रोग के बलाबल को देखकर किया जाता है। यह उष्ण वीर्य है, अतः शीतल, स्नेहन और लघु पथ्य देना चाहिए।

प्रयोग

इस का पंचांग विशेषकर इसके पत्ते और पत्तों का स्वरस औषधि के काम में आता है। ज्वर में इसके कोमल पत्तों का पुटपाक बनाकर नमक के साथ भुरता बना कर खाने से लाभ होता है तथा क्षुधा बढ़ती है। शिरः शूल और सर्दी पर इसके पत्तों का ताजा'रस पिलाना चाहिए। विषमज्वर में द्रोणपुष्पी के पत्तों के रस में काली मिर्च का चूर्ण मिला कर सेवन करने से लाभ होता है। इसके पत्तों के रस का अंजन करने से चातुर्थिक ज्वर का नाश होता है। कामला में भी यह प्रयोग लाभदायक है। द्रोणपुष्पी के क्वाथ में पीपल का चूर्ण मिलाकर पिलाने से सन्धिवात की पीड़ा शान्त होती है। खाँसी में इसके पत्तों के रस में बहेड़े के

छिलके का चूर्ण मिलाकर पान करने से खाँसी दूर होती है। प्रतिश्याय में इसके सूखे पत्तां के समान भाग वनफशा और मुलैठी का काढ़ा बनाकर उसमें मिश्री मिला करके सेवन करने से लाभ होता है।

बालकों के उदरशूल और प्रतिश्याय में इसके स्वरस में सुहागे की खील और मधु मिला कर पिलाना चाहिए। वातज या कफज शिरदर्द में इसके पंचांग को समभाग मरीच के साथ पीस कर लेप करने से शिरदर्द शान्त होता है। कामला में द्रोणपुष्पी, गेरु और आमले के चूर्ण को गूमा के रस में खरल कर अंजन करने से लाभ होता है। सर्पविष पर इसका स्वरस पिलाया जाता है।

द्रोणपुष्पीका सत्त्व बनाना—सत्त्व बनाने के लिए गूमा के पत्तों का स्वरस लिया जाता है। पत्तों को लोहे के इमादस्ता में कूटकर स्वरस नहीं निकालना चाहिए, बल्कि साफ किये हुए कोल्हू में डाल कर स्वरस निकालना चाहिए। ऐसे निकाले हुए स्वरस के समभाग जल मिला १२-१४ घण्टे तक स्थिरता पूर्वक रख छोड़े। फिर दूसरे दिन ऊपर का जल धीरे से नितार दे और नीचे बैठे हुए गाद को एक थाली में यत्न से रख लेना चाहिए। तदनन्तर एक चौड़े मुख के पात्र में तीन हिस्सा पानी भर, चूल्हे पर चढ़ा, नीचे साधारण अग्नि लगावे और पानी गरम होने पर उक्त थाली को इस जल वाले पात्र के ऊपर रख दे। पानी के वाष्प की गरमी से जब थाली का जल सूख कर सत्व मात्र रह जाय, तब थाली को उतार शीतल होने पर सत्व को यत्न से खुरच कर कागदार शीशी में रख लेना चाहिए। इसकी मात्रा ४ रत्ती से १ माशा तक है।

द्रोणपुष्पी के सत्त्व का प्रयोग

सर्पदंश में मूर्च्छा की हालत में नली द्वारा इसके सत्त्व को नाक में फूँकने से चैतन्यता प्राप्त होती है। फिर इस सत्त्व में से १ माशे की मात्रा में लेकर पानी में घोल कर पिलाने से सर्पविष का नाश हो जाता है। अफीम के विष में इसके सत्त्व को पानी में घोल आध घण्टे के अन्तर से पिलाया करते हैं। बारी-बारी से आने वाले बुखार, शीतपूर्वज्वर, विषमज्वरादि पर एक माशे द्रोणपुष्पी का सत्त्व' २५ दाने कालीमिर्च, तुलसी के पत्ते ५ नग और लता करंज के बीज की मींगी को एक साथ खरल कर गरम जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है। कामला में इसके सत्त्व को मधु में घिसकर नेत्र में अंजन करने से लाभ होता है।

द्रोणपुष्पी की जड़के चूर्ण में चतुर्थांश पिपलका चूर्ण मिला कर २-३ रत्ती की मात्रा में दिन भर में ३ बार खाने से शीतज्वर, यकृत और प्लीहा वृद्धि में लाभ होता है। एक तोला पित्तपापड़े का चूर्ण, २ तोला नागर मोथे का चूर्ण; और २ तोले चिरायते के चूर्ण को ३० तोले गूमा स्वरस में घोंट १-१ माशे की गोलियाँ बना सुखाकर रखें। इसमें से १-१ गोली दिनभर में आवश्यकता नुसार देने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं।

द्रोणपुष्पी का अर्क

इन्फ्लुञ्जा में—२ सेर गूमे का पंचांग और आधा सेर धतूरे के पत्ते को कूट कर ६ गुने पानी में संध्या समय डाल दे। प्रातः काल भव के द्वारा अर्क निकाल कर बोतल में सुरक्षित रख लें। इसकी मात्रा युवा के लिए ६ माशे, प्रातः-सायं और दुपहर को दें। बालकों के लिए ३-३ माशे की मात्रा में आवश्यकतानुसार दें।

द्रोणपुष्पी के फूल और काले धतूरे के फूल को चिलम में रख कर धूम्रपान करने से तमक श्वास में अच्छा लाभ होता है। गूमा के पंचांग, पित्तपापड़ा, गुर्च, चिरायता और सोंठ सब को एकत्र कर अर्क विधानानुसार अर्क खीच लें। विषमज्वर में इसके उपयोग से आशातीत लाभ होता है।

लाल फिटकरी भुनी ६ माशे और कालीमिर्च १ तोला को गूमा स्वरस में घोटकर चना प्रमाण की गोलियाँ बनाकर रख लें। मात्रा—१ से ३ गोली। इससे मलेरिया ज्वर शर्तिया दूर हो जाता है।

यदि कोई अफीम खा गया हो तो ६ माशे गूमे का रस पिला देना चाहिए। अफीम के जहर को नष्ट करने वाली इसके मुकाबले दूसरी दवा नहीं है।

श्वास रोग में—गूमे का स्वरस, अदरख का स्वरस, और मधु समान भाग मिलाकर ६ माशे की मात्रा में प्रातः-सायम् पीने से दमे का दौरा अवश्य रुक जाता है।

द्रोणपुष्पी को पत्ती को २-३ कालीमिर्च के संग पीस कर नस्य लेने से आधा शीशी की पीड़ा दूर हो जाती है। पीनस के लिए भी यह प्रयोग बहुत उपयोगी है।

बदरीफल या बेर

श्रीयुत भानु देसाई

इस देश में होनेवाले अनेक फलों में बेर की गणना कनिष्ठ कक्षा के फलों में होती है। यह ठीक है कि आम का आकर्षक रूप अथवा सौरभ-भरा रस किंवा चीकू का मक्खन-सरीखा मुलायम या केले-जैसा पोषक तत्त्वों से पूर्ण गर्भ बेर में नहीं होता। तथापि काम से मुक्त हुआ दरिद्र श्रमजीवी किसी वृक्ष की छाया में बेर और चने खाता ही दृष्टि-गोचर होगा।

रामायण में वर्णित शबरी ने श्रीराम को इन बेरों की ही भेंट दी थी। अन्य स्थलों पर भी संस्कृत वाङ्मय में बेरों की बहुत महिमा गायी गई है। इससे अनुमान होता है कि सहस्रों वर्षों से बेर एक-न-एक प्रकार से भारत में सुगमता से होता चला आया है।

चीन में भी लगभग चार सहस्र वर्ष से बेर की कृषि प्रचलित है। इतिहास से ज्ञात होता है कि पश्चिम में ईसवी सन् के प्रारम्भ में बेर का रोम में प्रवेश हुआ। वहाँ यह भूमध्य समुद्र में लगे देशों में प्रसृत है। अमरीका में भी बेर की कृषि होती है। भारत में उत्तम कोटि के बेरों की कृषि अन्य फलवृक्षों की तुलना में अति न्यून होती है। चिरकाल पूर्व भारत में बेरों की व्यवस्थित कृषि नहीं-जैसी होती थी; परन्तु सुनते हैं, एक कृषक ने अपनी वाटिका के अच्छी जाति के कलमी बेर राजा राघोजी राव को भेंट धरे। उसने भी इच्छा व्यक्त की कि यह फल अधिक प्रचार के योग्य है तब से बेर की कृषि के प्रति लोगों का लक्ष्य गया।

संप्रति, बेर की कृषि विशेषतः बड़ौदा राज्य के महेसाणा प्रान्त में तथा उत्तरप्रदेश में कालपी के निकटवर्ती ग्रामों में अच्छे प्रमाण में होती है। वैसे जंगली बेरियाँ खेतों में जहाँ-तहाँ उगी देखी जाती हैं और निंदाई में प्रतिवर्ष उखाड़ देनी पड़ती हैं। कई कृषक इन बेरियों का उपयोग बाड़ बनाने में करते हैं और जब-जब खेत में बेरी उगी देखते हैं; उसे उखाड़ कर खेत या बगीचे के किनारे बाड़ बनाने के लिए लगा देते हैं। यह कहना असत्य न होगा कि बेर की कृषि जितनी चीन और भारत में है उतनी अन्य देशों में नहीं।

बेरी को यों कोई भी जलवायु अनुकूल है; परन्तु यह अधिक शीत सहन नहीं कर सकती। कम से कम १२° फे० तक जलवायु ठंडा हो जाय तो बेरी से सहन नहीं होता। उष्ण जलवायु को यह भलीभाँति सह सकती है। कम वृष्टि तथा पानी की तंगी वाले प्रदेशों में यह अच्छी पनपती है।

बेरी को रेतीली, दोमट या रसहीन भूमि बहुत अनुकूल होती है। काली चिकनी मिट्टी या क्षार भूमि बेर की कृषि के लिए बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती। तथापि ऐसी भूमि में भी बेरी उगी देखी जाती है। कम परतोंवाली जमीन भी इसकी कृषि के लिए योग्य नहीं। कारण इसके मूल बहुत गहरे जानेवाले होने से ऐसी भूमि उसके लिए अनुकूल सिद्ध नहीं होती। मूलों को गहरा भेजकर पुष्टि प्राप्त करने का बेरी का स्वभाव प्रकारान्तर से उसे बहुत उपयोगी होता है—ऊँची-नीची भूमि बेरी को इसी कारण अनुकूल होती है। अन्य फलवृक्षों को जल आदि देने की विशेष सावधानी रखना आवश्यक होने से उनके लिए कदाचित् निम्नोन्नत (ऊँची-नीची) भूमि अनुकूल सिद्ध न हो। परन्तु बेरी के लिए तो ऐसी परती भूमि भी अनुकूल होने से उसका बेरी की कृषि के लिए उपयोग किया जा सकता है। विशेषतया नदी के किनारे जहाँ ऊँचे-नीचे ढालवाले खेत हों और जहाँ अन्य फलवृक्ष लगाना शक्य न हो, वहाँ बेरी की

कृषि की जाय तो सिद्धि मिलती है। बेरी के मूल गहरे जाते होने से वृक्ष बह जाने की भीति भी कम रहती है।

बेरी की दो मुख्य जातियाँ हैं। एक वह जो खेतों में निंदाई के रूप में उगती है। यह क्वचित् ही तीन-चार फुट ऊँची होती है। इसका केवल बाड़ बनाने में उपयोग होता है। दूसरी जाति लगभग बीस से चालीस फुट तक जाती है। इसके काण्ड पर काले-मटमैले रङ्ग की तरेड़ों-वाली छाल होती है। पहली जाति को झड़बेरी कहा जाता है।

देशी बेरी का काण्ड स्थूल तथा शाखाएँ खूब फैलकर घटादार हुई होती हैं। आँख लगाकर उत्पन्न की हुई बेरी का घेरा अपेक्षया कम होता है। बेरी के पत्ते छोटे-छोटे गोलाकार होते हैं तथा छोटी डंडियों पर निकलते हैं। पत्र के मूल में एक या दो कण्टक होते हैं। इनमें एक सीधा और दूसरा नीचे को जरा झुका हुआ (अङ्कुश-तुल्य) होता है। पत्रों के मूल में हरापन लिए पीले वर्ण के फूलों के छोटे गुच्छक निकलते हैं। इनमें मीठी महक होती है।

फलों के अनुसार भी बेरी की दो प्रमुख जातियाँ हैं। खेतों में निंदाई के रूप में फूटनेवाली बेरी पर जो फल लगते हैं वे रंग में लाल अथवा हलका पीलापन लिए तथा कद में बड़े चने जितने किंवा उससे कुछ बड़े होते हैं। इनमें गुठली बड़ी तथा गर्भ नहीं-जैसा होता है। त्वचा लाल और पतली होती है। रस अम्ल होता है, जिससे खानेपर गला जकड़ जाता है। इस जाति की कृषि नहीं की जाती। यह जहाँ-तहाँ स्वयं उग निकलती है।

दूसरी जाति की बेरी के फल बड़े, मांसल, गोल तथा अण्डाकृति और मधुर-रस होते हैं। बड़े फलवाली बेरी के भी दो मुख्य प्रभेद हैं। एक भेद रंग में लाल, स्वरूप में गोल, उसकी गुठली छोटी और गोल तथा गर्भ मधुर होता है। इसे इस ओर 'रांदेरीबेर' कहते हैं। दूसरे भेद के बेर आकार में बड़े, अंण्डाकार, मांसल तथा उनकी गुठली भी अण्डाकृति होती है। रांदेरी-बेर की कोई जाति गुठली रहित भी देखी जाती है। सूरत में गुठली-रहित एक वृक्ष अब भी विद्यमान है। जिस मार्ग पर यह खड़ी है उस का नाम इसी के नाम पर रखा गया है। अण्डाकार बेर के भी दो उपभेद हैं। इनमें एक पकने पर भी हरा रहता है। दूसरे का रंग पकने पर लाल हो जाता है। गुजराती में बेर की जातियों के खारेकिआ (छुहारे-जैसा) जमरुखिया (अमरुद-जेसा) आदि नाम बेर के रस के अनुसार तथा अजमेरी, महेसाणा, काश्मीरी, नागपुरी, राजपुरी, कलकत्ता लंबे और कलकत्ता गोल आदि नाम उनके उत्पत्ति-स्थानों के नाम पर रखे गये हैं।

इनके अतिरिक्त एक वेल (बदरवल्ली) नाम से प्रसिद्ध जाति भी है। इसके पौधे ऊँचे नहीं जाते पर चारों ओर फैलते हैं। इस बेरी के फल छोटे तथा रस में अति मधुर होते हैं। इनका शोषण या सुखाने की प्रक्रिया बहुत अच्छी होती है।

अन्य फलवृक्षों के समान बेरी की कृषि के लिए भी भूमि को दो-तीन बार खड़ी, पड़ी तथा तिरछी जोतकर, ढेले तोड़कर पश्चात् उसमें भूमि के सार के अनुसार ११ से १५ या २०-२० फुट के अन्तर पर ४×४×४ फुट के गड्ढे बनावें। इन्हें भरने के पूर्व मिट्टी में चार से छ टोकरी सड़ी हुई गोबर की खाद मिला दें। फिर गड्ढे भर दें। अन्य फलों के समान बेरी को बहुत पानी पिलाना नहीं पड़ता तथापि फल आने पर सिंचाई की व्यवस्था करनी चाहिए। इस [illegible] नालियाँ बनाकर थामलों के साथ जोड़ रखनी चाहिए।

अच्छी बेरियों की कृषि के लिए आँख लगाने की पद्धति से पौधे तैयार करना आवश्यक है। कारण बेर में वर्ण-संकरता होने से अच्छी जाति के बेर की गुठली लगाने से अच्छी ही बेरी उत्पन्न होना निश्चित नहीं। बेरी को स्थायी जगह पर बोकर उस पर आँख लगाई जाय अथवा क्यारी में पौधा तैयार कर उसे गमले में लगा उस पर आँख लगायें—दोनों में विशेष अन्तर नहीं पड़ता। बड़े पैमाने पर आँख लगाई हुई बेरियों के पौधे तैयार करने हों तो चार फुट चौड़ी और कोई दस फुट लम्बी क्यारियाँ

यथावश्यक संख्या में तैयार कर, उनमें एक-एक बालिश्त के अन्तर से, पके बेर ले ऊपर की छाल हटाकर, चौमासे के प्रारम्भ में बो दें।

बेर की गुठलियाँ बहुत कठिन होने से उन्हें उगने में समय लगता है। परन्तु गुठलियों को तोड़कर अन्तर्गत बीज बोये जायँ तो बहुत शीघ्र उगते हैं। इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि निकाले हुए बीज के ऊपर स्थित पतला आच्छादन छिल न जाय। गुठली तोड़कर निकाले बीज बोये जायँ तो वे एक सप्ताह में उग आते हैं। इन बीजों से निकले पौधे दो फुट ऊँचे होने पर अर्थात् लगभग एक वर्ष पश्चात् दूसरे चौमासे के प्रारम्भ में बेरी के पौधे को स्थायी जगह पर पहले से बनाकर रखे, गढ़े में बो दें। यथावश्यक सिंचाई करते रहें। बेरी का पौधा स्थायी जगह पर लगाने के बाद दूसरे वर्ष चौमासे के प्रारम्भ में कलम करने योग्य होता है। उस समय उस पर अच्छी जाति के बेर की आँख लगानी चाहिए। विशेषतया चौमासे के जुलाई-अगस्त महीनों में जब बेरी के पौधे में नया रस वेग से बह रहा होता है; वह समय अधिक अनुकूल होता है। इस काल बेरी की छाल सुगमता से छीलकर नई आँख लगाई जा सकती है। आँख का चुनाव करते हुए देखना चाहिए कि वह कुछ उभरी हो परन्तु फूटकर बाहर निकलने न लगी हो। शाखा तथा पत्र का जहाँ संगम होता है; उस स्थान पर ऐसी न उभरी आँख होती है।

धरती से लगभग एक हाथ ऊँचे काण्ड के कोई एक से दो इञ्च लम्बाई और आध इञ्च चौड़ाई के चौरस भाग से अन्दर के काष्ठ तथा अन्तरछाल को क्षति न पहुँचे; इस प्रकार छाल ले लें। जिस जाति के बेर की आँख लेनी हो उसके वृक्ष से इतनी ही लम्बाई-चौड़ाई की छाल आँख सहित निकाल लें। सावधानी इस बात की रखें कि छाल फट न जाय। इस प्रकार प्राप्त आँख को मूल पौधे के छाल निकाले भाग पर भली-भाँति जमा दें। पश्चात् आँख के अङ्कुर जिस स्थान पर फूटने हैं वह भाग खुला रखते हुए केले के पुष्पकोश (फूलों का जामनी आवरण) से अथवा सुतली से कस कर बाँध दें।

अन्य रीति आँख बैठाने की यह है कि मूल पौधे की छाल से चौरस चकत्ती निकालने के स्थान पर अंग्रेजी अक्षर 'टी' के आकार का काट करें। बाद में छाल को लकड़ी की खपची या चक्कू की खुण्डी धार से उठाकर उसके अन्दर आँखवाली छाल जमा दें और केले के पुष्पकोश या सुतली से अङ्कुर के उद्गम स्थान को खुला रखते हुए बाँध दें। दोनों पद्धतियों में आँख निकालने की रीति समान ही है। केवल उसे जमाने के लिए एक में चौरस छाल निकाल दी जाती है जबकि दूसरी में अंग्रेजी 'टी' अक्षर के आकार का छेदन करके उसमें आँख जमा दी जाती है, यही अन्तर है।

कभी-कभी एक अन्य भी प्रकार से आँख लगाई जाती है। इसे 'रिंग बडिङ्ग'[1] कहते हैं। इस पद्धति में मूल पौधे को जमीन से लगभग एक हाथ ऊँचाई पर काट दिया जाता है। पश्चात् इसके शिखर से लगभग डेढ़ इञ्च लम्बाई की छाल चारों ओर से छील दी जाती है। इसके बाद मूल पौधे के छीले गये तने का जितना घेरावा (परिधि) हो उसी घेरावे की आँख-सहित छाल की नलिका उस वृक्ष से लें, जिसकी कलम लगाना अभीष्ट हो। सावधानी रखें कि नलिका निकालते हुए उसके अन्दर के भाग पर खुरचन न हो, अन्तरछाल को भी क्षति न पहुँचे तथा लम्बाई की दिशा में यह फट न जाय। इस प्रकार नलिका निकालकर मूल पौधे के शिखर भाग पर जहाँ से छाल उतार दी थी; उसे (नलिका को) पहना दें। ऊपर केले का कोश या सुतली आँख का अङ्कुर अनावृत रहे, इस प्रकार बाँध दें।

इस पद्धति से आँख जमाने में अधिक निपुणता तथा सावधानी की अपेक्षा रहती है। इसके सिवाय चौमासे में शिखर से आँख की छाल और पौधे के काष्ठ के अन्तराल में जल उतरने का सम्भव रहता है। जल यदि अन्दर उतरे तो

---

[1] —Ring Budding.

आँख और शाखा का संयोग ठीक नहीं होता। बेरी में आँख लगाने का कार्य सामान्यतया चौमासे में किया जाता है। सो आँख को पानी न लगे, इस हेतु केले का कोश किंवा सुतली अच्छे प्रकार से बाँधनी चाहिए जिससे पानी लगने की सम्भावना न रहे। यदि मधूच्छिष्ट (शहद का मोम) मिल सके तो पुष्पकोश या सुतली लगाने के बाद उस पर लगा देना चाहिए। इससे पानी लगकर हानि होने का सम्भव कम हो जाता है, जिससे आँख जमाने का परिश्रम व्यर्थ नहीं होता। नलिकावाली पद्धति से आँख जमाई जाय तो आँख अंग्रेजी अक्षर 'टी' वाली पद्धति की अपेक्षया शीघ्र जम जाती है; परन्तु उस पद्धति में अधिक कौशल और हस्तलाघव अपेक्षित होने से अधिकांश आँख जमाने का काम अंग्रेजी अक्षर 'टी' की पद्धति से किया जाता है।

गमले में तैयार किये पौधों के भी आँख इसी पद्धति से जमानी चाहिए। आँख जम गई हो तो आठ दिन में अङ्कुरित हो जाती है। कोंपल फूटने पर मूल पौधे पर लगे अन्य छोटे अङ्कुर चूँट लेने चाहिए, जिससे सारा बल लगाई आँख पर केन्द्रित हो जाय और उसकी वृद्धि सवेग हो।

आँख लगाने के पश्चात् उससे जो शाखाएँ फूटेंगी; उन पर आगामी वर्ष फूल आकर फल लगेंगे; अर्थात् गुठली से लेकर पौधा दो वर्ष का होने पर उसमें फसल आती है।

बेरी में चौमासे के प्रारम्भ में जुलाई-अगस्त में फूल लगने पर फल दिसम्बर-जनवरी में परिपक्व होते हैं। फसल अच्छे प्रमाण में प्राप्त करने के लिए ग्रीष्मकाल में अप्रैल-मई मास में, जब सामान्यतया पत्ते पीले पड़कर झड़ जाते हैं, तब वृक्ष के मूल खुले करके विश्राम लेने में सहायता की जाय तो पीछे से अच्छे प्रमाण में फल आते हैं। इस काल सूख गई निरर्थक शाखाओं को काट डालना चाहिए एवं काण्ड के मूल में अङ्कुर हों तो उन्हें भी छाँट देना चाहिए।

इसके सिवाय फसल अच्छी प्राप्त करने के लिए खाद डाली जाय तो भी अच्छा लाभ होता है। सामान्यतया प्रतिवृक्ष चार-पाँच टोकरी अच्छी गली हुई गोबर की खाद डालकर मिट्टी में ठीक से मिला दें। वृक्ष के विस्तार के अनुसार हड्डी का चूर्ण पाँच से दस पौंड और एरण्ड की खली दो से पाँच पौंड मिट्टी में अच्छी प्रकार मिलाकर उसकी खाद दें। इसके अतिरिक्त कई स्थानों पर कृषकों में प्रतिवृक्ष दो से तीन पौंड नमक छोड़ने का भी प्रचार है।

खाद देने के बाद वृष्टि न हो तो भी पानी पिलाने की आवश्यकता नहीं होती पर चौमासा समाप्त होने के बाद दिसम्बर-जनवरी में बेर पकने तक फलों की पुष्टि के लिए जल पिलाया जाय तो अच्छा लाभ होता है।

सामान्यतया प्रतिवर्ष प्रत्येक वृक्ष से पौने मन से एक मन (कच्चा मन) तक फल मिल सकते हैं। अतः वृक्ष यदि १५×१५ फीट के अन्तर से बोये हों तो एक एकड़ में १२० वृक्ष तथा २०×२० फुट के अन्तर से बोये हों तो एक एकड़ में १०८ वृक्ष होने से लगभग प्रति एकड़ १६० मन बेर लगते हैं। बेरी कोई दस-पन्द्रह वर्ष ही अच्छी फसल देती है। अतः आम या ऐसे ही फलवृक्ष के बाग में फलवृक्षों के बीच-बीच बेरी बोकर आम तैयार होने तक बेरियों से अच्छी मजे की फसल पाई जा सकती है।

बेरों का बड़ा शत्रु इल्ली है। लाल और श्वेत इल्लियों में अधिकतम हानि श्वेत इल्ली करती है। फूल खिलते हैं तो श्वेत जाति की इल्ली की फुदी फूल के गर्भाशय में अण्डे देती है। बेर पककर बड़ा हो जाता है तब यह इल्ली भी अन्दर ही अन्दर बेर का गर्भ खाकर बड़ी होती जाती है। अन्त में बेर में छिद्र करके बाहर निकलती है। यह इल्ली पृथ्वी पर गिरकर उसके ऊपर के एक-दो इञ्च के स्तर में सुषुप्त अवस्था में विश्रान्ति लेकर फुदी के रूप में बाहर आती है। इस प्रकार बेरी पर फूल आने से लेकर फूल तैयार हो चुकने तक फुदी की दो-तीन पीढ़ियाँ हो जाती हैं और बेर को हानि पहुँचाती हैं। इल्ली का उपद्रव विशेषतया जुताई तथा उत्तम परिचर्या के अभाव से होता है। इल्ली को सुषुप्तावस्था में भूमि से निकालने की सावधानी रखी जाय और उष्णकाल

में बेरी पर इल्ली के निर्वाह के लिए फल न रहें; ऐसी व्यवस्था की जाय तो इल्ली के उपद्रव को अङ्कुश में रखा जा सकता है। उष्णकाल में बेर पकने के बाद जो भी फूल या फल बेरी पर शेष हों उन्हें नष्ट कर दिया जाय तथा जमीन खुली कर दी जाय तो अधिकांश इल्लियाँ कोश में ही मर जायँगी। इस प्रकार अगली फसल को उनसे नुकसान न होगा। चौमासे में भी समय-समय पर वृक्ष की गुड़ाई की जाती रहे तो कोश मर जाने से वे फुदी में परिणत होकर अण्डे न दे पायेंगे।

हमारी ओर जिसे 'धनेड़ा' कहते हैं उस कृमि की जाति के श्वेत चित्तियोंवाले कृमि तथा अन्य एक-दो प्रकार की इल्लियाँ कोमल शाखाओं का रस चूसकर तथा पत्तों को खाकर बेरी को हानि पहुँचाते हैं। ऐसी हानि का उपाय इसके सिवाय एक नहीं कि अण्डे, इल्ली या कोश हाथ से बीन-बीन कर नष्ट कर दिये जायँ। बेरी के पत्ते खाकर जो कीट रेशम का कोश बनाता है उससे रेशम निकालने का लोभ न रखकर उसका नाश करने का ही ध्येय रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त लाख के कीड़ों से भी बेरी की शाखाओं की क्षति होती है। उनका भी उक्तरीत्या विनाश करना चाहिए। तथापि यदि बेरों का भाव अच्छा न उपजता हो तो इन कीटों का लाख की उत्पत्ति के लिए उपयोग किया जा सकता है।

कई बार आम के समान बेरी पर भी बांदा देखा जाता है। यह बांदा बेरी पर फैलकर उसे दुर्बल बनाता है। अतः इसके पत्ते या शाखा दिखाई पड़ें कि तत्क्षण उसे शाखा-समेत काट डालना चाहिए। बेरी या उसके फलों के कोई रोग ज्ञात नहीं हैं।

बेरी का काष्ठ बहुत दृढ़ और स्थिर होने से कृषि के यंत्र बनाने के काम आता है। इसके अतिरिक्त जहाँ-जहाँ दृढ़ लकड़ी के उपयोग की आवश्यकता हो, वहाँ-वहाँ बेरी का काष्ठ अच्छा काम देता है।

पकने पर सरस होने से बेर ताजे खाये जाते हैं। भारत में साधारणतया इनका यही उपयोग होता है। वैसे कोई-कोई झड़बेरों को सुखाकर भी रखते हैं। इन्हें वर्षों तक सुखाकर रखा जा सकता है तथा खाने के काम में भी लाया जा सकता है। झड़बेरों का अचार भी बनाया जाता है। नमक में अथा कर भी अचार बनाये जाते हैं। इस प्रकार बनाया अचार बहुत स्वादिष्ट होता है। ब्रह्मदेश में बेरों का मुरब्बा भी बनाया जाता है। कई बार उन्हें सुखा, आटा बना और उसमें गुड़ मिला उत्तम पेय भी तैयार किया जाता है। सुखाये हुए चीनी बेर छुहारों के समान होते हैं। उन्हें चीनी खजूर कहा भी जाता है।

बेरी के पत्ते भेड़-बकरियों को चारे के रूप में खूब खिलाये जाते हैं। पत्ते रेशम के कीड़ों को खिलाने के काम भी आ सकते हैं। बाड बनाने में बेरी की शाखाओं का सर्वत्र पुष्कल उपयोग होता है। लाख बनाने के लिए बेरी काम आती है। आयुर्वेदीय उपयोग में भी पीपल और बेरी की लाख अच्छी मानी जाती है। गरीब लोग मुहर मारने में बेरी की ताजी लाख को ही उपयोग में लेते हैं। वृक्ष की छाल चमड़ा पकाने के काम में भी लाई जा सकती है। आयुर्वेदीय दृष्टि से भी वृक्ष की छाल बहुत काम की है। आयुर्वेद-प्रकाशकार[1] ने अभ्रक की शुद्धि के लिए बेरी की छाल के क्वाथ का उपयोग रसमञ्जरी से उद्धृत कर लिखा है :—

अथवा बदरीक्वाथे ध्मातमभ्रं विनिक्षिपेत्।
मर्दितं पाणिना शुष्कं धान्याभ्रादति रिच्यते ॥

अभ्रक को तपा-तपाकर बेर की छाल के क्वाथ में (सात बार) बुझाकर हाथ से मसलकर सुखा ले। यह धान्याभ्रक से भी बढ़कर होती है। वैद्यों में यह पद्धति अद्यापि व्यवहृत है।

(शेषांश पृष्ठ ४६५ पर)

---

[1] —वैद्य यादवजी त्रिकमजी, आचार्यद्वारा सम्पादित आयुर्वेद ग्रंथमाला का एक पुष्प।

स्वच्छता-सफाई

वैद्य रवीन्द्र शास्त्री

मानव जीवन में सफाई की उतनी ही जरूरत है—जितनी भोजन और पानी की। सफाई के बिना कोई आनंद नहीं है—न अपने लिये और न दूसरों के लिये। स्वास्थ्य रक्षा के साधनों में सफाई का महत्त्वपूर्ण स्थान है—और बिना सफाई के स्वास्थ्य की तो क्या जिन्दगी की भी रक्षा नहीं हो सकती। न केवल खुद के लिये ही, बल्कि समाज और देश के लिये भी सफाई की आवश्यकता है। सफाई के बिना—शरीर और मन में ही नहीं, घर और अड़ोस-पड़ोस में भी हानिकर विकारों की उत्पत्ति होती है।

सफाई का ही दूसरा नाम है शुद्धि अर्थात् अनावश्यक एवं हानिकर विकारी तत्त्वों की सफाई। संसार की सभी चीजों के लिये सफाई की जरूरत होती है और खुद प्रकृति भी इसमें अपना सहयोग देती है।

आरोग्य शास्त्र का यह स्पष्ट मत है कि शरीर को स्वस्थ रोग-रहित रखने के लिये आवश्यक शुद्धि यानी जरूरी सफाई का होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। जीवन के प्रत्येक पहलू में सफाई की जरूरत है। तन्दुरुस्त रहने के लिये भी सफाई चाहिये और रोग से छुटकारा पाने के लिये भी सफाई की आवश्यकता है। नैतिक जीवन में सफाई के बिना काम नहीं चलता—गन्दे शरीर और मलिन मनवाला मनुष्य अपने जीवन में नीति और न्याय का पालन कर ही नहीं सकता।

सामाजिक जीवन में बिना सफाई के न केवल अनादर ही होता है बल्कि मनुष्य के विकास का रास्ता ही रुक जाता है।

सफाई अर्थात् पवित्रता और गन्दगी यानी अपवित्रता स्वयं अपने आप में आनन्द और अशान्ति का वातावरण रखती है।

स्वच्छ—साफ-सुथरे पवित्र स्थान, शरीर या मन के आसपास शान्ति, संतोष, उमंग और उत्साह की प्रकाशमयी किरणें बिना किसी बाधा के बनी रहती हैं और गन्दे—अस्वच्छ स्थान, शरीर या मन के चारों तरफ दरिद्रता, घृणा, आलस्य और अशान्ति का अन्धेरा बना रहता है।

स्वास्थ्य-सौन्दर्य और मनोबल के लिये सफाई की कितनी आवश्यकता है इसका उल्लेख स्वास्थ्य शास्त्र ही नहीं प्रत्येक धर्मशास्त्र करते हैं। आध्यात्मिक उपदेशकों का यह स्पष्ट निर्देश है कि मन की शुद्धि के बिना न मनुष्यत्व का ही विकास हो पाता है न जीवन के धार्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ने का रास्ता ही मिलता है और न आत्मा को परमात्मा के साथ मिलने का स्वर्ण सुयोग ही मिलता है। सौन्दर्य-विज्ञान—सफाई के बिना कोई कीमत नहीं रखता। गन्दे शरीर पर सौन्दर्य की आशा करना एकदम निराधार ही है।

मानव मन की चार कामनाएँ होती हैं—धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष। इन चारों ही कामनाओं की पूर्ति सफाई के बिना नहीं हो सकती। धर्मानुष्ठान-न्याय और नीति संगत जीवन के लिये निर्विकार स्वच्छ मन की जरूरत है—जो गन्दे शरीर में नहीं रहता। अर्थ—रुपये-पैसे की प्राप्ति गन्दे—गलीज आदमियों को नहीं होती, बल्कि लक्ष्मी का स्थान तो शुद्ध—स्वच्छ शरीर धारी लोगों के घर में ही होता है। काम और मोक्ष की कल्पना तो सफाई—पवित्रता के बिना करनी ही नहीं चाहिये। अस्वच्छ घर या शरीर वाले मनुष्य के लिये काम देवता का दरवाज़ा बन्द ही रहता है—और मोक्ष जैसे परमोत्कृष्ट पद की प्राप्ति तो संसार में ऐसे विरले ही महापुरुषों को होती है। जो जन्म

भर तक सांसारिक गन्दगी से दूर रह के अपने मन को लोक सेवा या वैराग्य की आग से शुद्ध कर लेते हैं।

सफ़ाई क्या है ?

आज कल सफ़ाई से मतलब सिर्फ़ इतनी ही सफ़ाई से समझा जाता है जो नगर पालिकाओं (म्यूनिसिपल्टियों) द्वारा सड़कों और गली कूचों में होती हैं। जिस कस्बे या शहर की गलियों और सड़कों पर अच्छी तरह झाडू लग जाती है—और कूड़ा कर्कट नहीं पड़ा रहता उसी म्यूनिसपल्टी को अच्छी—काम वाली नगर पालिका कहा जाने लगा है—और किसी अंश में यह है भी ठीक। किन्तु केवल इतने में ही सफ़ाई का पूरा मतलब नहीं आता और न सफ़ाई का उद्देश्य ही पूरा होता है।

सफ़ाई का मतलब है शरीर-मन और आस पास की सफ़ाई, और तभी सफ़ाई का उद्देश्य भी पूरा होता है। खाली कपड़े साफ़ कर लेने से ही सफ़ाई का पूरा मतलब हल नहीं हो जाता—जब कि शरीर का चमड़ा गन्दा है और घर में कूड़ा कर्कट भरा पड़ा है।

शरीर की सफ़ाई से मतलब है—कान-नाक-आंख-गुदा आदि शरीर के सभी अंग-प्रत्यंगों की सफ़ाई—और मन की शुद्धि का अर्थ है मन को मलिन करने वाले काम-क्रोध-लोभ आदि विकारों की सफ़ाई। घर की सफ़ाई से मतलब है घर के प्रत्येक हिस्से से कूड़े-कर्कट और मलिनता को दूर करना। इस तरह घर-शरीर और मन की सफ़ाई होना ही सच्चे अर्थों में सफ़ाई या शुद्धि कहा जा सकता है।

ज्ञानेन्द्रियों की सफ़ाई

मानव देह में दस इन्द्रियां हैं जिन में पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं और पांच कर्मेन्द्रियां। ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा भिन्न-भिन्न विषयों का ज्ञान होता है और ज्ञान का होना मनुष्य के लिये बहुत ही आवश्यक भी है। शब्द या स्पर्श का ज्ञान यदि मनुष्य को न हो तो उसके लिये संसार का कोई आनन्द ही नहीं रहता। सूर्य के प्रकाश और प्रिय मूर्ति का दर्शन आंखों द्वारा नहीं हो तो जीवन में रह ही क्या जाता है ? सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिये पांचों ज्ञानेन्द्रियों का आरोग्य होना नितान्त आवश्यक है। नेत्र, कान, जिह्वा, नासिका और त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियां हैं और इन पाँचों से भिन्न-भिन्न विषयों का ज्ञान होता है। नेत्रों के द्वारा दर्शन होता है, कान से शब्दों का ज्ञान होता है, जिह्वा रस का ज्ञान कराती है, नाक से गन्ध का ज्ञान होता है, और त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होता है।

यहाँ पाचों ज्ञानेन्द्रियों के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आवश्यक बातों का उल्लेख करना है।

नेत्रेन्द्रिय

नेत्र या आँख शरीर की सबसे प्रधान ज्ञानेन्द्रिय है, जिसके रोगी होने पर न तो सुन्दर चीजों का दर्शन हो सकता है, और न पढ़ने लिखने का कार्य ही हो सकता है तथा अन्य कर्मेन्द्रियों के व्यापार में भी बाधा पहुँचने लगती है। शेर और सांप के आक्रमण का ज्ञान आंखों से ही होता है। अंधे आदमी के हाथों में ताकत होने पर भी वह दुश्मन का मुकाबला नहीं कर सकता।

आंखों को स्वस्थ रखना बहुत अंशों में मनुष्य के हाथ में है, और प्रत्येक समझदार का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी इस प्रधान इन्द्रिय के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रक्खे—

१—प्रातः काल नियमित रूप से आंखों को धोना चाहिये। आईग्लास में शुद्ध जल भर के रोज आंखों को स्नान कराना बहुत आवश्यक है।

२—गर्द, गुब्बार और धुएँ से आंखों को हानि पहुँचती है, ज्यादा ठंडी हवा, गन्दा जल, तेज धूप, लू की लपट और आग की तपन से आंखों को बचाना चाहिये।

३—सूर्य की तरफ़ देखना, बारीक अक्षरों का ज्यादा पढ़ना और सिनेमा देखना आंखों को नुकसान पहुँचाता है। लालरंग आंखों को प्रिय नहीं होता नीला और हरा रंग ठीक होता है। आंखों से ज्यादा काम नहीं लेना चाहिये : पेट के बल सोने, और नाक के बाल उखाड़ने से भी आंखें कमजोर हो जाती हैं।

सभी तरह के नशे—भांग, शराब आदि दृष्टिशक्ति को हानि पहुंचाते हैं। रात्रि का जागरण, तेज मसाले की चाट तथा वीर्यपात होते रहने से आंखों में कमजोरी आती है।

पढ़ने के समय शरीर सीधा रहना चाहिये और पुस्तक ठीक आंखों के सामने रहनी चाहिए। दायें-बायें पुस्तक रख के और झुक के बैठ के पढ़ना ठीक नहीं होता।

पढ़ने के समय प्रकाश या तो बायें हिस्से से आना चाहिये या पीछे से। सामने या दायें भाग में प्रकाश रहने से आंखें जल्दी थक जाती हैं। जब आंखे थकने लगें तो तत्काल काम छोड़ के खुली हवा में घूमना चाहिये या चुपचाप बैठ के दूर की चीजें देखनी चाहिये।

आंखों के लिये घी-दूध का खाना बहुत जरूरी है। जिन्हें घी-दूध नहीं मिलता उनकी आंखें जल्दी खराब हो जाती हैं।

कर्णेन्द्रिय-कान

कान श्रवणेन्द्रिय है। बादलों की गड़गड़ाहट और संगीत की मीठी ध्वनि का ज्ञान कानों से ही होता है। कोई कुछ कह रहा है इसका पता कानों से चलता है—और जब कानों में खराबी आ जाती है—तो किसी का कहना सुनना सब व्यर्थ हो जाता है।

कानों में तेल डालना बहुत लाभप्रद होता है। सप्ताह में २ बार सरसों का शुद्ध तेल कानों में जरूर डाल लेना चाहिए।

कान को पकड़के खींचने से पर्दे में खराबी आ जाती है। गालपर चाँटा मरना भी कान की शक्ति में कमी कर देता है।

कलम, सलाई आदि चीजों से कान को कभी नहीं खुजाना चाहिये। कनमैलियों से कान साफ कराने में बहुत खतरा रहता है अतः जब कान में मैल मालूम देता हो तो पिचकारी से सफा करा लेना चाहिये।

कान में दर्द होने पर गर्म तेल की २-४ बूंदें डाल देनी चाहिये।

घ्राणेन्द्रिय-नाक

शरीर विज्ञान से हमें इस बात का पता चलता है कि फेफड़ों द्वारा रक्त शोधन का कार्य होता है और फेफड़ों को गति देने वाली है शुद्ध हवा। जब तक शुद्ध हवा फेफड़ों को मिलती रहती है तब तक वे अपना कार्य ठीक तरह से करते रहते हैं और जब तक इनका कार्य ठीक होता है, तब तक शरीर और व्यापार भी ठीक होता रहता है। नाक के द्वारा इन फेफड़ों की आवश्यक खुराक हवा को पहुँचाने का काम होता है। नाक की रचना ही इस ढंग से हुई है कि यह फेफड़ों को जीवन देने का कार्य करता रहे। नाक के दो छिद्र प्राण वायु के द्वार हैं, और इन छिद्रों में एक ऐसी चलनी भी लगी है जो हवा को छानती रहती है—जिससे धूल के कण और कीटाणु फेफड़ों के पास नहीं पहुँच सकें। हवा पहुंचाने के साथ ही श्वासनलिका के विकार को यह छींक के द्वारा बाहर निकालता है। गन्ध के परमाणुओं का ज्ञान भी नाक से ही होता है, फूलों की सुगन्ध और पेट्रोल की बदबू का पता नाक से ही चलता है।

१—नाक की आरोग्यता के लिये सबसे पहिली चीज है प्राणायाम। प्राणायाम से श्वासोच्छ्वास की गति बढ़ती है जिससे नासारन्ध्रों की सफाई हो जाती है।

२—नाक के द्वारा पानी पीना श्वास यन्त्र के लिये बहुत लाभदायक है, और इससे जुखाम तो हमेशा के लिये बिदा हो जाता है। यह एक तरह का नासिका स्नान भी है जिससे नाक की अच्छी तरह सफाई हो जाती है।

३—कभी कभी नासाछिद्रों में सरसों के तेल की मालिश भी कर देनी चाहिये। तेल की स्निग्धता से नाक में सूखापन नहीं आता—नरमाई बनी रहती है।

४—नाक के बाल कभी नहीं उखाड़ने चाहिए, इससे चलनी का कार्य बिगड़ जाता है तथा नाक और आंख में विकार होते हैं।

५—तेज गन्ध से नाक को बचाना चाहिए। गन्दगी तीव्र हवा और तेज सर्दी तथा गर्मी की हवा नाक को हानि पहुँचाती है। नाक में अकारण अंगुली देना ठीक नहीं और न हर चीज को सूंघना ही उचित है।

हमेशा नाक से ही श्वास लेनी चाहिए—जो लोग मुंह से श्वास लेते हैं उनके नाक और गले में विकार पैदा हो जाते हैं।

रसनेन्द्रिय (जिह्वा)

खट्टे-मीठे रसों का ज्ञान ज़िह्वा से ही होता है। जीभ से मनुष्य के स्वास्थ्य का भी ज्ञान होता है, बदहजमी के कारण जीभ मैली रहती है और तन्दुरुस्त मनुष्य की जीभ साफ-सुथरी रहती है। जीभ के साथ दाँतों का पूरा सम्बन्ध है अतः एक के साथ दूसरे की सफाई होना जरूरी है।

दांत साफ करने के वक्त दंतौन को चीर कर जीभ साफ करना चाहिए या चांदी की जीभी बना लेनी चाहिए। जीभ के स्वाद को अपने आधीन रखना—स्वास्थ्य के लिहाज से अत्यन्त आवश्यक है, चूँके आज-कल जीभ के जायके के लिये ही नई-नई चाट चाटी जाती है और कई तरह के पदार्थ खाये जाते हैं जो परिणाम में अत्यन्त हानिकर होते हैं। स्वास्थ्य कामी मनुष्य को उचित पदार्थों का ही सेवन करना चाहिये और जीभ के स्वाद के लिये चटपटी चीजों का अभ्यास नहीं डालना चाहिए।

सफ़ाई न करने से हानियाँ

सफाई के अभाव में होने वाली हानियों का अनुभव हमें हमेशा ही होता रहता है फिर चाहे हम उसे ईश्वर का कोप समझें या तक़दीर का खेल। साफ सुथरे घर में रहने से तबियत हर वक्त प्रसन्न रहती है जब कि गन्दे घर की गन्दगी के कारण आलस्य—दरिद्रता और बिमारियाँ बनी रहती हैं। स्वच्छ शरीर में खून की हरकत नियमित रूप से होती रहती हैं—जब कि गन्दे शरीर में खाज-खुजली आदि विकारों के साथ ही अनुत्साह और अकर्मण्यता भी बनी रहती है। गन्दे घर और मैले शरीर को देखकर स्वतः ही घृणा उत्पन्न होती है खुद को भी और दूसरों को भी। छूत की बिमारियां सफाई के न रखने के कारण ही होती है—कब्ज प्रमेह-मन्दाग्नि आदि रोग शरीर की शुद्धि के न होने पर ही होते हैं। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि संसार में रहने वाले सभी स्त्री-पुरुषों के लिये सफाई सम्बन्धी ज्ञान का होना अत्यन्त आवश्यक है। आज सिर्फ सफाई न रखने की वजह से ही—सफाई के विषय की पूरी जानकारी न होने के कारण ही, हमारा शरीर और घर रोगों का अड्डा बन गया है। दाँतों में मैल जमते रहने से क्या हानि होती है, इसका ज्ञान कितने लोगों को है? नाखूनों में मैल भरे रहने से क्या नुकसान है—इसकी जानकारी कितनों को है—और घर के आँगन में कूड़ा कर्कट पड़े रहने से क्या खराबी होती है—इसका अन्दाजा कितनों को है?

चमड़ी को अच्छी तरह साफ करना क्यों जरूरी है, दतोन न करने से क्या हानि होती है, गुदा के इर्द-गिर्द गन्दगी रहने से क्या कष्ट होता है? आदि साधारण सी बातों की जानकारी ही हम लोगों को नहीं है इसी का यह परिणाम है कि आज कल की हमारी जिन्दगी का सारा आनन्द किरकिरा हो गया है और कोल्हू के बैल की तरह ही हमारी जीवन यात्रा समाप्त होती है।

सफाई—हानिकर तत्त्वों की शुद्धि स्वयं एक विज्ञान है—और मानव जीवन में इस विज्ञान की जानकारी होना उतना ही जरूरी है जितना भोजन करना या पानी पीना।

(शेषांश पृष्ठ ४६१ वें का)

बड़े बेर को प्राचीनों ने सौवीर आदि नाम दिये हैं। ये उन्नाब नाम से प्रसिद्ध हैं। विशेपतया हिकमत में इनका उपयोग होता है। मध्यम प्रमाण के बेर को प्राचीनों ने कोल या बदर (भाषाओं में बेर) कहा है। एकदम छोटे बेरों को प्राचीनों ने कर्कन्धु या क्षुद्र बदर कहा है। हिन्दी में इन्हें झड़बेर (पौधा झाड़ी जैसा होने से) तथा गुजराती में चणीबोर कहते हैं। उन्नाब, कश्मीर, उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्त, ईरान, अफ़गानिस्तान और चीन में होते हैं। हकीम लोग नये-पुराने कास तथा प्रतिश्याय के क्वाथों में उन्नाब का पुष्कल उपयोग करते हैं। उन्नाब का शर्बत भी कास, रक्तप्रदर, दाह आदि में दिया जाता है। गुठली की मज्जा (मग्ज) हिक्का तथा वमनहर योगों में डाली जाती है। स्वतन्त्र भी उपयोग किया जा सकता है। यह जयपाल की विवमिषा (उत्क्लेश) में भी हितकर है। स्वतन्त्र या उपद्रवरूप दाह में बेर की कोमल पत्तियों का कल्क लगाते हैं। प्रवाहिका में इनकी गोली बनाकर दी जाती है। लाख का उपयोग विशेषतया उरःक्षत तथा सामान्यतया किसी भी मार्ग से प्रवृत्त रक्त के तत्काल स्तम्भन के लिए वैद्यों में सुप्रचलित है। संहिताओं में भी इसकी बहुत प्रशंसा है। शास्त्रों में अन्य भी प्रयोग बेरी के विविध अङ्गों के लिखे हैं। व्यवहार कर उनका निर्णय करना चाहिए। जो हो, उक्तानुक्त अनेक प्रकार के उपयोगों को देखते हुए बेरी भी एक आश्रय पाने योग्य वृक्ष है।

खुजली से छुटकारा कैसे हो ?

वैद्य रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार

बहुत बड़े जनपदोध्वंसों के बाद प्रायः कोई व्यापक रोग फैला करता है। १९१४-१८ के युद्ध के बाद मारक रूप में फैलनेवाले इन्फ्लुएन्जा के बुरे परिणामों को अन्य देशों के साथ भारत ने भी भुगता। अब इस महायुद्ध के बाद खुजली का रोग बहुत देखने और सुनने में आ रहा है। कुछ साल पूर्व हमारे में से अधिक परिवार इस रोग से केवल नाम द्वारा परिचित थे; परन्तु अब वे सामूहिक रूप में इसके चंगुल में फंस रहे हैं। मित्रों में, घरों में, गाड़ियों में, सड़कों और अखबारों के विज्ञापनों में हम खुजली की चर्चा इन सालों में जितनी पाने लगे हैं, पहले उतनी नहीं थी, प्रायः तीस साल से निकलने वाले एक वैद्यक मासिक ने मुझे कुछ समय पूर्व खुजली पर लिखने के लिए आग्रह-पूर्वक लिखा था। उसके बाद एक साप्ताहिक और एक अन्य मासिक की भी जब इसी विषय पर लेख लिखने की मांग आई तो उनके कहने को मुझे ध्यान देना पड़ा। क्योंकि इस रोग से कष्ट पाने वाले उन पत्र-पत्रिकाओं के हजारों पाठकों को इससे परिचित कराना और इससे बचने के सरल उपाय समझाना हमारा कर्तव्य है।

सब प्रकार के व्यक्ति शिकार हैं

चिकित्सा की प्रारम्भिक पुस्तक हमें खुजली लगने के कारणों में सफाई से न रहने की आदत भी बताते हैं। पहले यह बात कितने ही सन्तोषप्रद तरीके से स्वीकार कर ली जाती होगी। परन्तु आजकल के रोगियों की स्थिति का विश्लेषण करने पर हम इस कारण को उतना महत्त्व नहीं दे पाते।

एक बड़ी संस्था से सम्बन्धित सेवाश्रम में चिकित्सा के इरादे से मेरे एक मित्र पहुँचे। अपने रोग की परेशानी की कहानी वे मुझे सुना रहे थे। उनकी यह बात सत्य थी कि सेवाश्रम के डाक्टर ने उन्हें कहा मैं स्वयं और मेरा परिवार इस नामुराद रोग से दुःख पा रहा है। आपको इसका कुछ उपाय पता चले तो मुझे भी बता देना। रोज सैकड़ों बीमार इसके आ रहे हैं। एक प्रोफेसर ने जब अपने कुछ चिकित्सक मित्रों को, बम्बई और दूसरे स्थानों में परिवार को खुजली मिटाने के उपाय जानने के लिए लिखा तो एक चिकित्सक का उत्तर था कि उचित पोषण के अभाव में हमारे देश में यह रोग बुरी तरह फैल रहा है। पत्र लिखते हुए मुझे भी अपने हाथों की खाज मिटाने के लिए कलम को हटात विश्राम देना पड़ रहा है।

एक उग्र उदाहरण

लाहौर से आये विस्थापित परिवार की एक देवी की बात सुनिये; मालूम नहीं यह बुरे नाम की बीमारी हमें कहाँ से लिपट गई। हम लोगों ने तो इसकी सूरत भी नहीं देखी थी। कुलीन पोशाक में पांच बरस का एक खूबसूरत बच्चा इसकी बगल में बैठा हुआ मुझे देख रहा था। रोग का यह एक उग्र उदाहरण था। उसकी हथेलियाँ और उंगलियाँ छालकों (छाले की शक्ल वाले फोड़ों) से पटी पड़ी थीं। उनमें से निकलते हुए सेक को मैं अपने उलटे हाथ से उस समय भी अनुभव कर रहा था। कोहनियों, बगलों, और नितम्बों की फुन्सियाँ भी हाथ की फुन्सियों की होड़ करती थीं। पेट, पीठ और गरदन तक सारा शरीर छोटी-बड़ी फुन्सियों से भरा हुआ था। बच्चा रात को सो नहीं पाता। अब तक की गई चिकित्साओं में होम्योपैथिक की कोई सात दवाएँ (सल्फर, हिपर सल्फ की बड़ी छोटी शक्तियां मिजीरियन, आर्सेनिक इत्यादि) थी। ऐलोपैथिक के सिबजोल, दूध के इंजेक्शन इत्यादि असफल परिणामों के साथ दिये जा चुके थे। पहले साधारण खुजली थी। ज्यों-ज्यों दवा करते गये मरज बढ़ता गया। रोग के जोर के कारण तापमान भी रहने लगा था। रोग आरम्भ हुए कोई तीन महीने हो गये थे। अब कोई एक मास से बच्चे के भाई-बहिन और माता-पिता भी इस रोग से आक्रान्त हो गये हैं।

कृमि कैसे रोग उत्पन्न करता है

अन्तर्गामी कन्डू पराश्रयी के कारण पैदा होने वाला रोग है। खाज का कृमि त्वचा में घुसता है, और नालियाँ बनाता जाता है। इस कृमि के स्राव बहुत क्षोमक होते हैं; जिससे छाल के फोड़े, पिडिकायें और फुन्सियाँ बन जाती है। त्वचा के नीचे क्षोभ को शान्त करने के लिए खुजलाना पड़ता है, जिससे खरोंचे और फोड़े पैदा हो जाते हैं।

सामान्य लक्षण

उँगलियों पर, उँगलियों के पार्श्वों, कलाइयों, कोहनियों, बगलों, घुटनों, सन्धियों और पैरों पर रोग का अधिक आक्रमण होता है। लगातार और खूब देर तक खुजली होना बहुत तंग करने वाला लक्षण है। सरदियों में रात को बिस्तर में जब कुछ गरमी आती है तो खुजली अधिक होती है, क्योंकि त्वचा के गर्म होने पर कृमि अधिक क्रियाशील हो जाता है नाखूनों या किसी दूसरी चीज से रगड़ने या खुजलाने से ही आराम आता है, तब भी आराम थोड़ी देर के लिए ही होता है। इससे त्वचा पर क्षत हो जाते हैं।

चिकित्साएँ

निम्नलिखित इलाजों के लिए सिफारिश की जाती है। ६ माशा साडा बाइकार्ब में आधा कागजी निबू का रस निचोड़ लें। डेढ़-दो तोले सरसों का तेल मिलाकर सारे शरीर पर मल लें। धूप में दो घंटे बैठे रहने के बाद स्नान कर लें। सूखी खुजली के लिए यह लाभदायक है। फोड़े बन गये हों तो इसका उपयोग करने की मैं सलाह नहीं दूँगा, क्योंकि जख्मों पर यह बहुत लगता है।

गोमूत्र और गोबर

गोबर में जरा सा नमक और निम्बू का रस मिला कर सारे शरीर पर उबटन करें, सरदी हो तो धूप में बैठे रहें। दस-पन्द्रह मिनट बाद स्नान करें। गरम पानी में समान भाग गोमूत्र मिलाकर तैयार रखा रहना चाहिये। इससे स्नान करने की सलाह दी जाती है।

चीड़ का तैल सर्वोत्तम चिकित्सा

बाजार में पंसारी की दूकान पर यह इसी नाम से या खुजली की दवा के नाम से बिकता है। चीड़ देवदार आदि कोन्फिरस वृक्षों से प्राप्त किया जाने के कारण पंसारी इसे देवदार का तेल भी कहते हैं। काले रंग का यह अर्द्धद्रव तेल तीव्र गन्ध देता है, आयुर्वेदिक, होम्योपैथी, ऐलोपैथी आदि प्रचलित सब पद्धतियों की चिकित्सा की तुलना में मैंने चीड़ के तेल को खुजली का सब से प्रभावकारी इलाज पाया है।

सब प्रकार की खुजली में मैंने इससे लाभ होते देखा है। खुजली की बढ़ी हुई अवस्थाओं में जब त्वचा फोड़ों से फट जाती है तब भी मैंने इससे आश्चर्यजनक लाभ देखा है ऐसे रोगियों को मैं धूप में (सरदियों में) नंगा करके फोड़ों (चकत्तों) तथा दूसरे आक्रान्त भागों पर रुई की फुरैरी से तेल पोत देता था, सरदियों के दिनों में रोगी इसी तरह तेल लगा कर धूप में घूमता फिरता रह सकता है, शरीर पर तेल कितनी देर तक लगे रहना चाहिये, इस बात का भी महत्त्व है, सरदियों में बादल वाले दिन तो बन्द कमरे में दस-पन्द्रह मिनट लगाये रहना चाहिए। धूप अच्छी हो तो धूप में बैठ कर एक दो घन्टे लगे रहने देना अच्छा है।

चीड़ के तेल में त्वचा के अन्दर प्रविष्ट होने की शक्ति अच्छी प्रतीत होती है, इसलिये यह प्रभावकारी तरीके से काम करता है, क्षत त्वचा, फटी हुई फुन्सियां और फोड़ों पर खुजलाने में नाखूनों को रगड़ से बने छोटे-छोटे जख्मों पर यह तेल लगता है, अंडकोषों पर काटता है, सूखी खुजलीवाले को तेल का प्रयोग करते हुए कोई कष्ट नहीं होता।

स्नान

चीड़ का तेल सादे पानी से छूटता नहीं, सरदियों में गरम पानी में रोगी को स्नान करना चाहिए, साबुन से खूब अच्छी तरह मल-मल कर अंग-प्रत्यंग को धोते हुए तेल छुड़ाना होता है। पहले एक-एक अंग को साफ कीजिये, बाद में सारे शरीर पर एक बार ही साबुन लगा कर अच्छी तरह रगड़िये, जब आप देखें के साबुन की झाग का रंग साफ है तो समझ लीजिये कि त्वचा पर से तेल उतर आया है। खुले पानी से नहा कर नरम तौलिये से शरीर सुखा लीजिये, अब सरसों के तेल को शरीर पर मालिश कीजिये। चीड़ का तेल त्वचा को रूक्ष कर देता है, इसलिये इसके प्रयोग के साथ सादे तेल की मालिश आवश्यक हुआ करती है।

'देश के आयुवर्द्धन के लिए जनता आयुर्वेद को अपनावे और वैद्यगण इसकी उन्नति की सतत चेष्टा करें'

श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव पर

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के जमुई बिक्रिकेन्द्र में

विद्वानों के भाषण

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की शाखा-प्रशाखाओं में सम्पन्न श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव का कुछ विवरण हम 'सचित्र आयुर्वेद' के गत अंक में प्रकाशित कर चुके हैं। उसके बाद इस अंक में केवल यह जमुई बिक्रीकेन्द्र के आयोजन का समाचार प्रकाशित करके हम इति कर रहे हैं। अपने एजेन्ट महानुभावों से हम क्षमाप्रार्थी हैं कि उनके भेजे हुए समाचारों में से बहुत ही कम हम 'सचित्र आयुर्वेद' में प्रकाशित कर सके और वह भी बहुत ही संक्षेप में। सभी एजेन्सियों और बिक्रीकेन्द्रों के पूरे समाचार प्रकाशित करने के लिए तो 'सचित्र आयुर्वेद' के कई विशेषांक हमें निकालने पड़ते।

—स० सम्पादक

जमुई बिक्री केन्द्र

मिति २८-१०-५१ को १ बजे दिन में स्थानीय बिक्री केन्द्र में श्री भगवान धन्वन्तरि का पूजन सबडिविजन भर से आये वैद्यों के द्वारा ससमारोह सम्पन्न हुआ। वैद्य वृन्द भगवान को पुष्पाञ्जलि प्रदान करने के लिए अपने साथ कमल का पुष्प लेकर आये।

पश्चात वैद्यों की एक गोष्ठी बैठी। सभी दल के कुल सबडिविजन भर से आये ३५ वैद्यों ने इसमें भाग लिया और सर्वसम्मति से यह निश्चय किया कि गोष्ठी की बैठक स्वतन्त्र रूप से महीनेमें एक बार बैठा करे, जिसमें विभिन्न निर्धारित विषयों पर वैद्य लोग अपने-अपने विचार व्यक्त किया करें। आगामी बैठक जमुई में ही ९ दिसम्बर १९५१ को करने का निश्चय हुआ तथा इस बैठक के लिये विषय रखा गया "मलेरिया।" सम्प्रति आगामी बैठक को बुलाने का भार श्री वैधनाथ आयुर्वेद भवन के जमुई बिक्री केन्द्र के व्यवस्थापक को ही दिया गया।

आम सभा जिसमें वैद्य वृन्द तथा शहर के गण्यमान्य सज्जन और गाँव से आये लगभग ३५० व्यक्तियों ने भाग लिया कि कार्यवाही ४ बजे से प्रारम्भ हुई। बिक्री केन्द्र के भवन के सामने ही सभा-स्थान था और वहाँ स्थानाभाव के कारण सड़क पर लोग खड़े हुए शान्त भाव से सभा की कार्यवाही के सञ्चालन में योगदान दे रहे थे। ध्वनि विस्तारक यन्त्र द्वारा सभागत वैद्यों और सज्जनों का भाषण दूर-दूर पर खड़े लोग भी सुन रहे थे। मनोनीत सभापति की अनुपस्थिति में शहर के रईस और नगरसेठ श्री बाबू हरवंश प्रसाद भगतजी के प्रस्ताव और श्री प्रभुदयाल भालोटिया द्वारा समर्थन के बाद सभापति का आसन जमुई के प्रसिद्ध वयोवृद्ध कांग्रेसी नेता एवं स्थानीय वोर्ड के चेयरमैन श्री बाबू जमुना प्रसाद सिंहजी वकील ने सुशोभित किया। स्वागत भाषण के पश्चात आगन्तुक वैद्यों और सज्जनों ने आयुर्वेद की महत्ता एवं भगवान धन्वन्तरि की जयंती पर भाषण दिया। श्री [illegible] मिश्र ने धन्वन्तरि अवतार

पर स्वरचित कविता का पाठ किया। भाषण दाताओं में सर्वश्री बल्देव मिश्र, शुकदेव प्रसाद मिश्र, डा० जी० के० मण्डल, शिवनन्द मिश्र, नरेशचन्द्र मिश्र, अनिरुद्ध लाल दास आदि के नाम प्रमुख हैं। प्रायः सभी वक्ताओं ने आयुर्वेद को पूर्ण दार्शनिक, जनोपयोगी और आंग्ल चिकित्सा पद्धति से उत्कृष्ट बताया और कहा कि आयुर्वेद की दार्शनिकता को मापने के लिये आयुर्वेदीय पद्धति अपनायी जाय न कि आंग्ल चिकित्सा पद्धति। सभापतिजी ने भी आयुर्वेद की अभिवृद्धि की मंगलकामना की तथा श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के व्यवस्थापक इसकी तरक्की के लिये जो आयोजन कर रहे हैं इसकी तारीफ की और उन्हें इस सद्प्रयत्न के लिये धन्यवाद दिया साथ ही जनता से उन्होंने अपील किया कि वे आयुर्वेद की अभिवृद्धि के लिये श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के इस सत्प्रयत्न में सहयोग देकर आयुर्वेद का और अपना कल्याण करें।

श्री रमावल्लभ चतुर्वेदीजी ने अपने धन्यवाद भाषण में आये अतिथियों को धन्यवाद दिया और आयुर्वेद के महत्व की रक्षा के लिये राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद को आशिर्वाद दिया कि उन्होंने राष्ट्रपति की चिकित्सा के लिये एक राजवैद्य की नियुक्ति के लिये सफल सत्याग्रह किया। जो लोग आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कहते हैं उनकी वैज्ञानिकता पर ही चतुर्वेदीजी ने शंका की। उन्होंने कहा कि विज्ञान तर्क सम्मत और बुद्धिग्राह्य होता है। आयुर्वेद कार्य कारण सम्बन्ध का विचार कर रोग की चिकित्सा करता है, इसलिये यह पूर्ण वैज्ञानिक चिकित्सा है। आयुर्वेद का नाम ही बतलाता है कि अन्य चिकित्सा पद्धतियों से इसमें अन्तर है। जहाँ और पद्धतियाँ उत्पन्न रोगों का इलाज करती है आयुर्वेद आयु की रक्षा के लिये रोगों का निराकरण करता है। आहार शास्त्र (Dietics) आज का विज्ञान बनाना चाहतां है जब कि आयुर्वेद का आधार आहार शास्त्र ही है।

आज का विज्ञान आछर है इसलिये उसे विज्ञान कहना भी धृष्टता है। जिस विज्ञान ने अखाद्य और अपाच्य तेलों का विद्रूप कर वेजीटेबुल (Vegetable) नामक नकली घी बनाया और आज के डाक्टर जिसका समर्थन करते हों उसे विज्ञान कहना विज्ञान शब्द की हँसी उड़ाना है। अन्त में उन्होंने कहा कि देश के आयुवर्द्धन के लिये जनता आयुर्वेद को अपनावे और वैद्यगण इसकी उन्नति की सतत चेष्टा करें।

◆ श्रीधन्वन्तरि जयन्ती उत्सव पर कलकत्ते के यामिनी भूषण अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय में आयुर्वेद-संग्राम-परिषद् द्वारा आयजित विराट् सभा में वक्ताओं ने कहा कि "जहाँ देश के नेतागण आयुर्वेद की उपयोगिता को स्वीकार करते हैं वहाँ उसके यथोचित विकास में क्यों बाधा डालते हैं। इसको समझना मुश्किल है। संग्राम-परिषद् चुनाव में आयुर्वेद-प्रेमियों को विजयी बनाने के लिये स्थापित की गयी है।"

◆ सरदार शहर में श्रीधन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव पर स्वास्थ्य सप्ताह खूब धूमधाम से मनाया गया। २२ अक्टूबर से २८ अक्टूबर तक नित्य प्रातः एक घण्टा नगरपालिका भवन में रोगियों का निःशुल्क निदान एवं औषध-व्यवस्था की गयी। मध्याह्न में ४०० विद्यार्थियों का स्वास्थ्य-निरीक्षण किया गया। सार्वजनिक सभाओं में स्वास्थ्य पर भाषण हुए, व्याधियों से बचने के उपाय बतलाये गये तथा मैजिक लालटेन से चित्र दिखलाये गये।

◆ रतनगढ़ (राजस्थान) में श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव श्री धन्वन्तरि मन्दिर के स्थान के समीप 'मणि-भवन' में श्री पं० गंगाधरजी ज्योतिषाचार्य के सभापतित्व में बड़े समारोह के साथ मनाया गया। सभा में शहर के सभी प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित थे। श्री धन्वन्तरि के जीवन-चरित्र एवं श्री धन्वन्तरि-मन्दिर (रतनगढ़) की उपयोगिता के विषय में श्री पं० घनश्यामजी आचार्य, श्रीरामजी शास्त्री एवं सभापति महोदय के सारगर्भित भाषण हुए।

◆ जिला आयुर्वेदमण्डल (जौनपुर) ने अपने जिले के वैद्यों के नाम अपील निकाली है कि वे तथा उनके प्रभाव की जनता जिला-वैद्यसभा के नेतृत्व में मतदान करे।

◆ विहार प्रान्तीय वैद्य सङ्घ ने वैद्यों के नाम अपील निकाली है कि 'परदुःखेन दुःखितः' वैद्यों को सच्चे आयुर्वेद-हितैषियों को ही मतदान करना और कराना चाहिये।

श्री बैद्यनाथ वैद्य समिति (देवघर) ने भी उपरोक्त आशय का प्रस्ताव पास किया है।

◆ १४ नवम्बर को झुंझनु जिला वैद्यसभा की कार्यकारिणी की बैठक हुई जिसमें वैद्यों से अपील की गयी कि वे चुनावों में ज्यादा से ज्यादा खड़े हों और वैद्यों तथा आयुर्वेद-प्रेमी उम्मीदवारों को मतदान करें तथा करावें।

इन्डियन फार्मास्यूटिकल एसोसिएशन

ता० ९ से ११ दिसम्बर तक जयपुर में इण्डियन फार्मास्युटिकल एसोसिएशन का चौथा वार्षिक अधिवेशन होने जा रहा है। इस अधिवेशन में आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष; आयुर्वेद-मार्त्तण्ड वैद्यवाचस्पति वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य बम्बई होंगे।

चुनाव के लिए कुछ उम्मेदवार वैद्य

हमें मालूम हुआ है यू० पी० के कुछ वैद्य व्यक्तिगत रूप से अथवा किसी दल के सदस्य रूप से उम्मेदवार हो रहे हैं। सीतापुर जिले से आयुर्वेदाचार्य पण्डित शिवराम द्विवेदी वैद्य और पं० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित उम्मेदवार हो रहे हैं। द्विवेदीजी पहले कांग्रेस की ओर से एम० एल० ए० रह चुके हैं और उस चुनाव में आपको जितने वोट मिले थे उतने प्रान्त में किसी भी उम्मेदवार को नहीं मिले थे। इस बार भी आपका प्रभाव देखते हुए हमें आशा है कि आप सफल होंगे। इस बार आप कांग्रेस की ओर से नहीं, किन्तु रामराज्य परिषद् की ओर से खड़े हो रहे हैं। सीतापुर जिले के परगना हरगाँव रामकोट एवं परगना सीतापुर (देहात) से आयुर्वेदाचार्य पं० गुरुप्रसाद तिवारी, बी० आई० एम० एस० खड़े हो रहे हैं। आप जिला वैद्यसभा के प्रधान मन्त्री, सरकारी वैद्य रजिस्ट्रेशन समिति के सदस्य, उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेद कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य हैं। सामाजिक क्षेत्र में भी आप काम करते रहते हैं। पंचायत अदालत परसेहरा के सरपंच, ग्रामसभा रम्योरा के सभापति और खैराबाद केनडेवलपमेण्ट यूनियन के डाइरेक्टर हैं। अखिल भारतीय बी० आई० एम० एस० सङ्घ के प्रधान मन्त्री भी हैं। सीतापुर के वैद्यों ने आपका समर्थन भी किया है। हमारी समझ में वैद्यों के अतिरिक्त प्रभावशाली जनता का समर्थन भी अपेक्षित है। पता लगा है कि बाँदा जिले के राजापुर क्षेत्र से पण्डित कृष्णदत्त मिश्र भी उम्मेदवार थे और मेरठ के पण्डित दयानिधिजी शर्मा भी उद्योग परायण थे। जितने भी वैद्य असेम्बली में पहुँच सकें उतने अभीष्ट हैं। सम्मेलन संगठन की ओर से यह भी प्रयत्न होना चाहिये कि जो उम्मेदवार हों उनसे आयुर्वेद की उन्नति करने का आश्वासन अवश्य ले लिया जाय। --सुधानिधि

◆ पश्चिम बंगाल में नवद्वीप प्रान्त से कविराज विमलानन्दजी तर्कतीर्थ रत्न धारा सभा के लिये खड़े हो रहे हैं, आप कलकत्ता स्थित आयुर्वेदीय फेकेल्टी के अध्यक्ष तथा श्यामादास वैद्य शास्त्रपीठ के सञ्चालक हैं।

◆ उदयपुर में वैद्य भवानीशंकरजी आयुर्वेदाचार्य, अध्यक्ष आयुर्वेद रिसर्च इन्स्टीट्यूट नीमकुंज—उदयपुर डिवीजन से, सरदार शहर (बीकानेर) से चन्दनमलजी वैद्य तथा जहाजपुर (मेवाड़) से पं० मथुरा प्रसादजी वैद्य और वाड़ी (भरतपुर धौलपुर) से डा० मंगल सिंहजी और जोधपुर तथा पीपाड़ स्थान से राजवैद्य पं० जसराज जोशी धारासभा के लिए खड़े हो रहे हैं।

नोट—आगामी चुनाव में भाग लेने के लिये अबतक जितने वैद्यों के नाम मेरे पास आ गये हैं प्रकाशित कर दिऐ हैं, "सचित्र आयुर्वेद" के वाचकों से निवेदन है कि अपने-अपने प्रान्त से उन्मेदवार वैद्यों के नाम "सचित्र आयुर्वेद" कार्यालय में शीघ्रातिशीघ्र भेजें।--स० सम्पादक

अन्वेषण का विशाल आयोजन

अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेद महाविद्यालय के तृतीय वर्ष के छात्रों का एक दल अपने उपाध्याय समेत दुर्गापूजा के अवसर पर हिमालय-वनौषधि अन्वेषण, परिचय तथा संग्रह के लिये रानीखेत पहुँचा, इस दल ने सरस्वती यात्रा को

सफल बनाते हुए, सम्मेलन के प्रधान मन्त्री कविराज भोलादत्त पाण्डेयकी संरक्षणता में पर्वतीय श्रेणियों और घाटियों में वनौषधि अन्वेषण-संग्रह किया। इस दल का विचार पिण्डारी ग्लेशियर-वैली आफ फ्लावर-द्रोणागिरि प्रभृति, केन्द्रीय हियालय स्थित श्रेणियों में भी यात्रा करने का था, किन्तु लखनऊ-काठगोदाम के मध्य रेलवे पाकिटमारों द्वारा लगभग ४००) रु० लुट जाने के कारण यह विचार स्थगित करना पडा। हिमालय आयुर्वेद; सम्मेलन रानीखेत में वनौषधि उद्यान तथा संग्रहालय स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है। अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन इसका संरक्षणत्व स्वीकार किया है।

नीमाड जिला वैद्यमण्डल का प्रथमाधिवेशन

गत दिवस १६-९-५१ की रात्रि को ८॥ बजे पूर्वायोजित नीमाड जिला-वैद्य मण्डल का प्रथमाधिवेशन स्थानीय माध्यमिक शाला में बड़ी सफलता के साथ मनाया गया। कार्यवाही स्वागताध्यक्ष के स्वागत-सम्भाषण के साथ प्रारम्भ हुई। नीमाड प्रदेश में वैद्यों का यह अपना सर्वप्रथम सङ्गठन अथवा सम्मेलन है। अतः इसके ऐतिहासिक गौरव के अनुरूप ही आज की समस्त कार्यवाही होनी चाहिए। प्रधान मंत्री महोदय ने गत १२-८-५१ से लगाकर आजतक की कार्यवाहियों का दिग्दर्शन कराया तथा उप-प्रधानमन्त्री महोदय ने अस्थायी समिति द्वारा प्रस्तुत मण्डल के उद्देश्य एवम् नियमावली पढ़कर सुनायी। नियमों में उचित परिवर्तन, परिवर्धन एवम् संशोधन पर्याप्त वादविवाद के साथ किये जाकर पश्चात् सर्वसम्मति से स्वीकृत किये गये। तत्पश्चात् अस्थायी समिति भंग की जाकर नियमानुसार पदाधिकारियों एवम् सदस्यों का चुनाव किया गया।

पश्चात् अध्यक्ष महोदय ने अपने सारगर्भित भाषण द्वारा आयुर्वेद चिकित्सा को प्रोत्साहन मिले एवम् राष्ट्रीय चिकित्सा में आयुर्वेद को मुख्य स्थान प्राप्त हो, इसपर पर्याप्त प्रकाश डाला।

—प्र० मंत्री

आयुर्वेद बोर्ड के मंत्री प्रेस कान्फ्रेंस में

जयपुर, १४ नवम्बर। कल जयपुर में राजस्थान सरकार द्वारा निर्मित राजस्थान आयुर्वेदिक बोर्ड के मन्त्री राज वैद्य श्री सीतारामजी मिश्र आयुर्वेदाचार्य ने एक प्रेस कान्फ्रेंस में अपना वक्तव्य देते हुए कहा कि पहले जयपुर राज्य के जमाने में यहाँ एक आयुर्वेदिक बोर्ड था, राजस्थान सरकार ने संघ बनते ही एक बोर्ड इस काम के लिए सारे राजस्थान के लिए बना दिया। अब पुनः नया बोर्ड बनाया गया है।

बोर्ड का उद्घाटन स्वास्थ्य-मंत्री श्री माथुर ने विगत दो अगस्त को किया था। ३ और ४ अगस्त को बोर्ड की बैठकों में १४ प्रस्ताव पास हुए। वे आजकल सरकार के विचाराधीन हैं। सरकार को भेजे गये प्रस्तावों में दो प्रस्ताव बोर्ड के विधान एवं आयुर्वेद स्कूल व कालेजों के नवीनतम पाठ्यक्रमों के बारे में हैं। सरकार द्वारा संचालित आयुर्वेद विद्यालय, ३४८ औषधालयों, रसायनशालाओं तथा इन्डोर दवाखानों एवं सरकार से सहायता पानेवाले कुछ गैर सरकारी औषधालयों आदि सब के कामों का निरीक्षण-कार्य यह बोर्ड करेगा।

यह बोर्ड सरकार को इनके कामों के बारे में अपनी रिपोर्ट देगा और इनकी उन्नति के बारे में सरकार को सुझाव दिया करेगा।

इस समय बोर्ड में श्री भट्टारक चाणोद गुरांसा (जोधपुर) सभापति हैं। मैं मन्त्री हूँ। अन्य सदस्य २२ और हैं। बोर्ड का अपना काम अब प्रारम्भ हो रहा है। अपने आगामी कार्यक्रम और सालाना बजट आदि पर बोर्ड शीघ्र ही निर्णय करनेवाला है। विधान उपसमिति एवं पाठ्यक्रम उपसमितियों का काम प्रगति पर है। सरकार की स्वीकृति और अन्तिम निर्णय होनेवाला है।

मैं चाहता हूँ कि हमारा काम चाहे धीरे हो, किन्तु हमारी प्रगति ठीक दिशा में हो। हमारा काम ठोस और निरन्तर चालू रहेगा। सरकार की ओर से सहायता का

और आर्थिक समस्या को हल करने का पूरा-पूरा आश्वासन बोर्ड को प्राप्त है। —राष्ट्रदूत से

आयुर्वेद की उपयोगिता—

पूना, १६ नवम्बर। सेठ ताराचन्द रामनाथ दातव्य आयुर्वेद औषधालय की रजत जयन्ती समारोह के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए श्री मावलंकर ने कहा कि ऐसी आलोचनाएँ निन्दनीय हैं कि आयुर्वेद-पद्धति अवैज्ञानिक है। आयुर्वेद पद्धति कई शताब्दियों से चली आ रही है। इसे कलम की चोट से समाप्त नहीं किया जा सकता। इस पद्धति को अपना साहित्य है। इसके विचार स्वतन्त्र हैं। और स्वतन्त्र भारत में इसका अपना स्थान है। आम जनता को आयुर्वेद में विश्वास है और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस विश्वास को समाप्त नहीं किया जा सकता।

शिक्षा माध्यम के प्रश्न पर प्रकाश डालते हुए श्री मावलंकर ने कहा कि मातृभाषा ही माध्यम होना चाहिए। जिस तरह हमलोगों ने जनता को स्वतन्त्रतापूर्वक मत देने का अधिकार दिया है ठीक उसी प्रकार मातृभाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा ग्रहण करने की व्यवस्था होनी चाहिये।

पुत्र वा कन्या

न्यूयार्क, २५ अक्टूबर। इटली निवासी एक महिला डाक्टर ने प्रजनन विज्ञान के क्षेत्र में वर्षों के अध्ययन और अनुसन्धान के बाद यह नतीजा निकाला है कि गंजे मनुष्यों के पुत्र अधिक होते हैं। इसी प्रकार आपने यह मत प्रकट किया है कि एक गठिया पीड़ित मनुष्य के कन्याएँ अधिक होती हैं। आपने अपनी जाँच के सिलसिले में हजारों अमेरिकन परिवारों की परीक्षा की थी।

आपका कहना है कि हारमोन्स जिनके शरीर में पैदा होने के कारण गंजापन पैदा होता वही पुत्र सन्तान के पैदा होने के कारण बनते हैं। इसी प्रकार 'इण्डोक्वाइन ग्लैण्ड' में गड़बड़ी होने से हारमोन्स का नाश हो जाता है और उसी कारण कन्याएँ अधिक पैदा होती हैं।

इसके अलावा आपका मत है कि मनुष्य के पेशे का भी प्रभाव उसकी सन्तान पर पड़ता है। सिपाहीगीरी, किसानी आदि बड़े काम करनेवाले लोगों के पुत्र अधिक होते हैं और साहित्य, कलाकार आदि कोमल भावुकतावाले कार्यों को करनेवाले व्यक्तियों के कन्याएँ ही अधिक होती हैं।

मोहता आयुर्वेद सदन की दूसरी नई योजना

उदयपुर, मोहता आयुर्वेद सदन राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर की ओरसे प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष की "धन्वन्तरि महोत्सव सप्ताह" मनाया गया। इस वर्ष समारोह में स्थायी काम करनेका निश्चय किया गया। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का वैज्ञानिक आधार पर पुनर्निर्मित तथा विकसित करने के लिये उसमें शोध-खोज की अनिवार्य आवश्यकता अनुभव की गई। और एक प्रस्ताव द्वारा वैद्यों और डाक्टरों को मिली-जुली समिति का निर्माण किया गया।

धन्वन्तरि महोत्सव में इस वर्ष डाक्टरोंने विशेष उत्साह पूर्वक भाग लिया और आयुर्वेद के विकास में पूरा सहयोग देने का निश्चय किया। आयुर्वेद के शोध-खोज के लिये बनाई गई समिति में सर्व श्री० डा० बी० एन० शर्मा, डा० पी० के० माथुर, कविराज प्रताप सिंह, आयुर्वेदाचार्य प्रेमशंकर, आयुर्वेदाचार्य भागीरथ जोशी एवम् अन्य कई प्रतिष्ठित और विद्वान् वैद्य डाक्टर सदस्य हैं। समिति ने शोध-खोज की एक योजना भी स्वीकार की है, इस समिति का नाम "आयुर्वेद अनुसन्धान समिति" दिया गया है। —राष्ट्रदूत से

श्रीबनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय की

विशेष विज्ञप्ति

१—इस वर्ष सन् १९५१ से प्राइवेट परीक्षाएँ बन्द कर दी गयी हैं।

२—शिक्षा का माध्यम संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं द्वारा रखा गया है। संस्कृत माध्यम के उत्तीर्ण छात्रों को आयुर्वेदाचार्य तथा हिन्दी माध्यम द्वारा उत्तीर्ण छात्रों को भिषगाचार्य की उपाधि दी जायगी।

३—प्रवेश के लिये संस्कृत माध्यम के छात्रों का कम-से-कम प्रथमा तथा हिन्दी माध्यम के छात्रों का मैक्ट्रिक संस्कृत द्वारा पास होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त योग्यता के आधार पर शिक्षा समिति की आज्ञा से प्रवेश किया जा सकेगा।

—मन्त्री

श्रीबनवारीलाल आ० विद्यालय

आवेदन-पत्र

—:००:—

श्रीयुत व्यवस्थापक 'सचित्र आयुर्वेद'
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
नं० १, गुप्ता लेन (जोड़ासाँकू),
पो० ब० ६८३५, कलकत्ता।

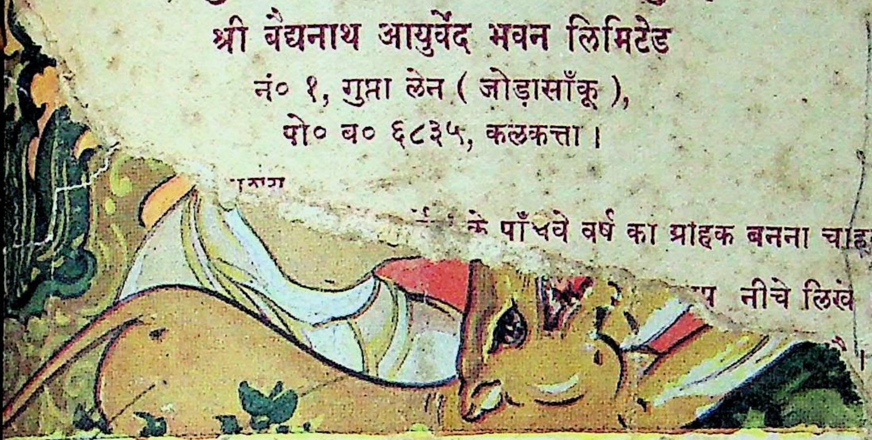

के पाँचवे वर्ष का ग्राहक बनना चाहता हूं। इसके वार्षिक मूल्य के

नीचे लिखे पते पर रजि० डाक / वी० पी०* से 'सचित्र

हस्ताक्षर—

गुरुकुल कांगड़ी

फैजाबाद निवासी श्रीयुत मदनगोपाल जी वैद्य काशी विश्वविद्यालय से ए० एम० एस० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर स्वर्णपदक विभूषित हैं। आप जैसे विद्वान् और सफल चिकित्सक हैं, वैसे ही सच्चे कांग्रेस-कर्मी तथा समाजसेवी भी हैं। आयुर्वेद के हितसाधन के लिए आप सतत प्रयत्नशील रहते हैं। आपकी सेवा का ही फल है कि गत चुनाव में उत्तर प्रदेश विधान सभा के फैजाबाद पूर्वी क्षेत्र से कांग्रेस की सीट से वहाँ की जनता आपको एम० एल० ए० निर्वाचित किया है। बधाई। आशा है आयुर्वेद के हितसाधन के लिए आप अधिकाधिक प्रयत्न करते रहेंगे।

अप्रैल ५२

आयुर्वेदाचार्य श्रीमदनगोपाल वैद्य, क

ह' मंगाने पर ।≡) डाक
ो काट दें और यदि

ार्षिक मूल्य के
से 'सचित्र

हस्ताक्षर—

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन
कलकत्ता

।≡)
और

अप्रैल, १९५२

और आर्थिक समस्या को हल करने का पूरा-पूरा आश्वासन बोर्ड को प्राप्त है।

—राष्ट्रदूत से

आयुर्वेद की उपयोगिता—

पूना, १६ नवम्बर। सेठ ताराचन्द रामनाथ दातव्य आयुर्वेद औषधालय की रजत जयन्ती समारोह के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए श्री मावलंकर ने कहा कि ऐसी आलोचनाएँ निन्दनीय हैं कि आयुर्वेद-पद्धति अवैज्ञानिक है। आयुर्वेद पद्धति कई शताब्दियों से चली आ रही है।
कलम की चोट से समाप्त नहीं किया जा
पद्धति को अपना साहित्य है। इसके
और स्वतन्त्र भारत में इसका अप
जनता को आयुर्वेद में विश्वास है औ
इस विश्वास को समाप्त नहीं किय

शिक्षा माध्यम के प्रश्न प
मावलंकर ने कहा कि मातृभाषा
जिस तरह हमलोगों ने जनता
का अधिकार दिया है ठीक उ
द्वारा शिक्षा ग्रहण करने की

पुत्र वा कन्या

न्यूयार्क, २५ अक्टू
डाक्टर ने प्रजनन विज्ञान
अनुसन्धान के बाद यह न
के पुत्र अधिक होते हैं।
किया है कि एक गठिया
होती हैं। आपने अ
अमेरिकन परिवारों की

आपका कहना है
होने के कारण गंजापन
होने के कारण बनते हैं
में गड़बड़ी होने से
उसी कारण कन्याएँ

इसके अलावा

प्रभाव उसकी सन
आदि बड़े काम
मे
ाहित्य, कला
करनेवाले व्य

मोहता आयुर्वेद सदन की दूसरी नई योजना

उदयपुर, मोहता आयुर्वेद सदन राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदरपुर की ओरसे प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष की “धन्वन्तरि महोत्सव सप्ताह” मनाया गया। इस वर्ष समारोह में स्थायी काम करनेका निश्चय किया गया। आयुर्वे
पद्धति
का वैज्ञानिक आधार

द् के वर्तमान वर्षीयअधिवेशन
६) के आलोच्य विषय (द्रव्य के) **रस, गुण, वीर्य,**
थव साधन क्या है ? की रूपरेखा “सचित्र आयुर्वेद” के मार्च
गई है। जहाँतक हो सकेगा, व्यक्तिगत रूपसे भी रूपरेखा विद्वानोंकी सेवामें
शा है विज्ञान चर्चा के गरिष्ठतम साधक हमारे विद्वान् पाठक रूपरेखापर अवश्य
करेंगे और ३० अप्रैल १९५२ तक परिषद् कार्यालय में स० संयोजक के नाम से
को लेखबद्ध कर भेजेंगे। आपके सारगर्भ युक्तिमूलक एवं ज्ञानगर्भ वैज्ञानिक लेख
आलोचना का आधार होगा और आप से लेख प्राप्त करने पर ही हम जून १९५२
वेशन बुला सकते हैं। इसलिए परिषद् की आयोजना में लेख प्रधान है। लेखों के
सी प्रकार वाद-प्रतिवाद स्वतन्त्र रूप से नहीं होगा, विद्वानों से जितने लेख प्राप्त होंगे,
की वैज्ञानिक विद्वत्ता ही आयुर्वेद का भविष्य निर्माण करेगी, इसीलिए विद्वानमहानु-
री प्रार्थना पर विशेष ध्यान देवें।

त वर्ष पटना में प्रथम अधिवेशन हुआ था, और उसमें कुछ प्रमुख विद्वान ही भाग
न ढंग से त्रिदोष तथा पंच महाभूत के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विवेचन किये थे, उससे हमें
ज लग गया है कि वैज्ञानिक चर्चाओं में वैद्यसमाज पीछे रह नहीं सकते, गताधिवेशन
आयुर्वेद ज्ञाता प्रमुख डाक्टर एवं वैज्ञानिकों से भी हमें बड़ी सहायता मिली है, इसीलिए
पार्षिक अधिवेशन को व्यापक ढंग से सफल बनाने के लिये हम प्रयत्नशील हैं।

वर्तमान वर्षीय आलोच्य विषय को हम Science of Modern life या जीवन के
क वैज्ञानिक विषयों में अन्यतम समझते हैं। यह विषय केवल Medical Science
कित्सा विज्ञान का विषय नहीं है, बल्कि दैनिक भोजन और स्वास्थ्य रक्षण में भी
बड़ी आवश्यकता है। चिकित्सा का कार्य रोग और रोगी से सन्बन्धित है, परन्तु
य विषय का सम्बन्ध नीरोग से भी है। इसीलिए यह विषय समग्रमानव जाति के दैनिक

(शेष कवर के ३ रे पृष्ठ पर)

पण्डित रामनारायण शर्मा वैद्य (१, गुप्ता लेन, कलकत्ता) के लिए जनवाणी प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स लि०
(३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता-७) में मुद्रित।

आवेदन-पत्र

—:००:—

श्रीयुत व्यवस्थापक 'सचित्र आयुर्वेद'
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
नं० १, गुप्ता लेन (जोड़ासाँकू),
पो० ब० ६८३५, कलकत्ता।

प्रिय महाशय

मैं 'सचित्र आयुर्वेद' के पाँचवे वर्ष का ग्राहक बनना चाहता हूं। इसके वार्षिक मूल्य के लिए चार रुपये मनिआर्डर से भेज रहा हूं। आप नीचे लिखे पते पर रजि० डाक / वी० पी०* से 'सचित्र आयुर्वेद' भेज दीजिए। मेरा गत वर्ष का ग्रा० नं०.........है।

हस्ताक्षर—

श्री..................................(पूरा पता)
मुकाम..............................
पो०.......................
जि०...................

---

* मनिआर्डर द्वारा पेशगी न भेजकर वी० पी० से 'सचित्र आयुर्वेद' मंगाने पर।≡) डाक खर्च अधिक लग जायगा। यदि मनिआर्डर से मंगाएँ तो 'वी० पी०' को काट दें और यदि वी० पी० से मंगाएँ तो 'रजि० डाक' शब्द काट द।

आवेदन-पत्र

—:००:—

श्रीयुत व्यवस्थापक 'सचित्र आयुर्वेद'
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
नं० १. गुप्ता लेन (जोड़ासाँकू),
पो० ब० ६८३५, कलकत्ता।

प्रिय महाशय

मैं 'सचित्र आयुर्वेद' के पाँचवे वर्ष का ग्राहक बनना चाहता हूं। इसके वार्षिक मूल्य के लिए चार रुपये मनिआर्डर से भेज रहा हूं। आप नीचे लिखे पते पर रजि० डाक / वी० पी०* से 'सचित्र आयुर्वेद' भेज दीजिए। मेरा गत वर्ष का ग्रा० नं०......है।

हस्ताक्षर—

श्री..................................(पूरा पता)
मुकाम..........................पो०..........................
जि०...................

---

* मनिआर्डर द्वारा पेशगी न भेजकर वी० पी० से 'सचित्र आयुर्वेद' मंगाने पर।≡) डाक खर्च अधिक लग जायगा। यदि मनिआर्डर से मंगाएँ तो 'वी० पी०' को काट दें और यदि वी० पी० से मंगाएँ तो 'रजि० डाक' शब्द काट दें।

BOOK POST.

)॥। पैसे का
टिकट लगाइए

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
पोस्ट बक्स नं० ६८३५
कलकत्ता

BOOK POST.

)॥। पैसे का
टिकट लगाइए

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
पोस्ट बक्स नं० ६८३५
कलकत्ता

आपका सहयोग

सचित्र आयुर्वेद के पाँचवे वर्ष की विशेषता

"सचित्र आयुर्वेद" के चौथे वर्ष का दसवाँ अंक अपने आदरणीय ग्राहकों-अनुग्राहकों और आयुर्वेद प्रेमी पाठकों के पास भेजते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। आगामी दो अंकों (मई-जून १९५२) के बाद आपका "सचित्र आयुर्वेद" पंचम वर्ष में पदार्पण करेगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि अब तक जिस प्रकार आयुर्वेद प्रेमी जनता, सरकार तथा वैद्य समाज का अधिकाधिक सहयोग मिलता रहा है, वह हम भविष्य में भी इसी क्रम से प्राप्त करते रहेंगे।

स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद ही हो सकती है और अवश्य होनी भी चाहिये, ऐसी दशा में आयुर्वेद का स्वास्थ्योपदेश, आयुर्वेद की महत्ता, आयुर्वेद से भारतीय सर्वसाधारण जनता का लाभ, गरीब जनता की आयुर्वेदीय चिकित्सा द्वारा कठिन से कठिन बीमारी हम कैसे दूर कर सकते हैं, आदि बातों को भारत के कोने-कोने में "सचित्र आयुर्वेद" द्वारा किस तरह हम पहुंचा सकते हैं, जिससे सर्वसाधारण को आयुर्वेद की आवश्यकता के साथ-साथ "सचित्र आयुर्वेद" की भी आवश्यकता प्रतीत हो। पाँचवें वर्ष के लिए हम इस तरह की एक नयी योजना बना रहे हैं। इसके लिए हम अपने माननीय लेखकों से भी पत्राचार कर रहे हैं और हम आपका भी विचार जानना चाहते हैं कि "सचित्र आयुर्वेद" में आप क्या संशोधन परिवर्तन करना चाहते हैं, सूचित करें।

परन्तु यह गुरुतर कार्य बिना आपके सहयोग से पूरा होना असम्भव है. किन्तु मुझे विश्वास है, कि "सचित्र आयुर्वेद" को सहयोग देकर आप आयुर्वेद शास्त्र, वैद्य समाज, और जनता की सेवा में अवश्य हाथ बटायेंगे। यह कार्य आप कई प्रकार से कर सकते हैं। यथा आप अपने मित्र-वैद्यों या आयुर्वेद प्रेमियों के पते लिखकर भेज सकते हैं, जिनके पास हम "सचित्र आयुर्वेद" का नमूना-साहित्य भेजकर उन्हें ग्राहक बनने के लिए आग्रह करेंगे या आप उन्हें स्वयं ही ग्राहक बनाकर चन्दे का रुपया मनियाडर द्वारा—"सचित्र आयुर्वेद कार्यालय कलकत्ता" को भेज सकते हैं। यदि आपने ५ ग्राहक बना एकमुश्त २०) भेज दिये, तो आपको उपहार स्वरूप एक वर्ष तक "सचित्र आयुर्वेद" मुफ्त दिया जायगा।

आवश्यक निवेदन

जिन ग्राहकों का चन्दा आगामी जून १९५२ में पूरा हो जाता है, वे इस अंक में अन्यत्र लगे आवेदनपत्र द्वारा आगामी (पंचम) वर्ष में ग्राहक बने रहने तथा वार्षिक शुल्क भेजने की तो सूचना देंगे ही, किन्तु इसबार मैं अपने पुराने ग्राहकों से २-२ नवीन ग्राहक बनाकर इस आवेदनपत्र द्वारा सूचित करने का भी अनुरोध करूँगा, साथ ही यह (चतुर्थ) वर्ष समाप्त होने के पूर्व ही आगामी (पंचम) वर्ष का अपना और नवीन बनाये हुए ग्राहकों का चन्दा कार्यालय में अवश्य भेज दें। आशा है कृपालु ग्राहक हमारी इस विनम्र प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे और अपने जिन मित्रों को वे ग्राहक बनायेंगे, उनका भी ध्यान इस ओर आकृष्ट करके उनकी सेवा करने का हमें अवसर देंगे।

—व्यवस्थापक।

सम्पादक-मण्डल

निर्देशक—आ० म० म० पं० भागीरथ स्वामी, रसायनाचार्य
प्रधान सम्पादक—पं० रामनारायण शर्मा, वैद्य शास्त्री
सहायक सम्पादक—वैद्य सभाकान्त झा, आयुर्वेद शास्त्री

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
प्रधान सम्पादक का वक्तव्य	प्र० सम्पादक	६८३
सम्पादक की डायरी	... ...	६८४
सामयिक टिप्पणियाँ	... ...	६८७
आगम कालिक ब्रह्मचर्य	वैद्य रणजित राय	६८८
यथार्थ उत्तरम् (संस्कृत)	वा. वा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य	६९२
जठराग्निःपाचक पित्त	आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी वैद्य आयुर्वेदाशास्त्राचार्य	६९८
आधुनिक जन्तुवाद और आयुर्वेद	वैद्य किशोरीदास गुप्ता	७०३
निदान चिकित्सा हस्तामल	वैद्य रणजितराय	७०५
दन्तरक्षा के पाँच नियम	वैद्य भूषण पं. ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य	७११
मानसिक आरोग्य में विश्वास की आवश्यकता	प्रो० लालजीराम शुक्ल	७१३
श्वास के प्रकार	वैद्य रणजित राय	७१८
श्लीपद ज्वर	कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय	७२२
मातारोग	वैद्य लक्ष्मीनारायण चौरासिया	७२५
आ० चि० के व्यापक सिद्धान्त०	वैद्य रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य	७२९
असाध्य रोगों में सर्प विष	वैद्य रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार	७३४
वायुरोग और उसकी चिकित्सा	भिषगाचार्य पं० मोहनलाल वैद्य शास्त्री	७३७
बताइये मैं कौन हूँ	कविराज वत्रा वैद्य	७३८
अभिन्यास ज्वर	वैद्य रामादर्श सिंह आयुर्वेदाचार्य	७४०
शोथ	कविराज सत्यनारायण शास्त्री साहित्यायुर्वेदाचार्य	७४३
मोती पिष्टी	वैद्य सभाकान्त झा शास्त्री	७४५
आचार और स्वास्थ्य	वैद्यरत्न कविराज प्रताप सिंह रसायनाचार्य	७४७
मनुष्य और उसकी श्वास क्रिया	श्री शिवशंकर "भारती"	७४९
वत्सनाभ और हारिद्रक	आचार्य सी. डी. ध्यानी वी. आई. एम. एस.	७५१
विहार की वनस्पतियाँ	प्रो० ठा० बलवन्त सिंह, एम० एस० सी०	७५३
आम्र	श्री भानुदेशाई	७६१
औषध निर्माण शास्त्र	श्री चरणतीर्थ	७६५
मलनाद आ० महासम्मेलन	... ...	७६९

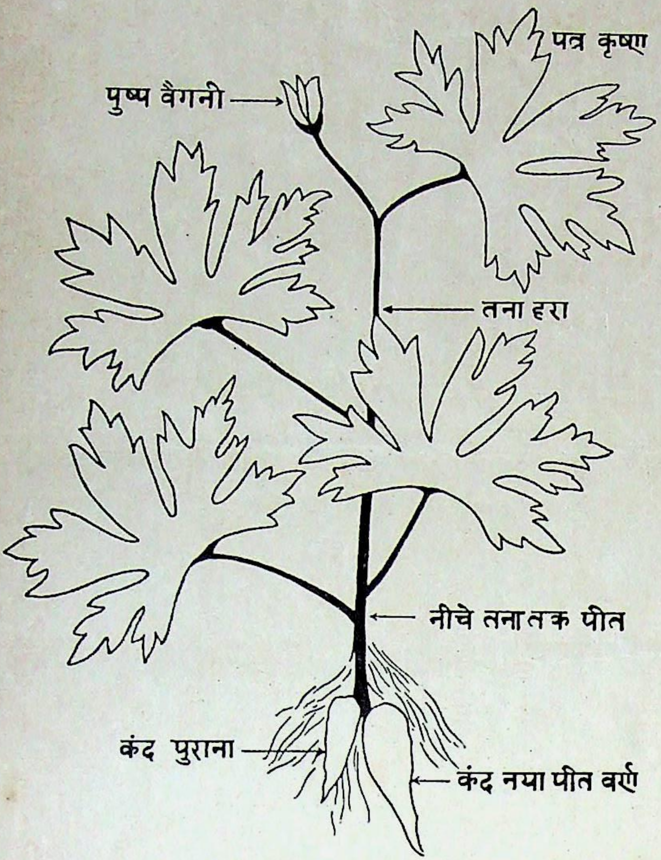
पत्र कृष्ण
पुष्प वैगनी
तना हरा
नीचे तना तक पीत
कंद पुराना
कंद नया पीत वर्ण

हारिद्रक विष

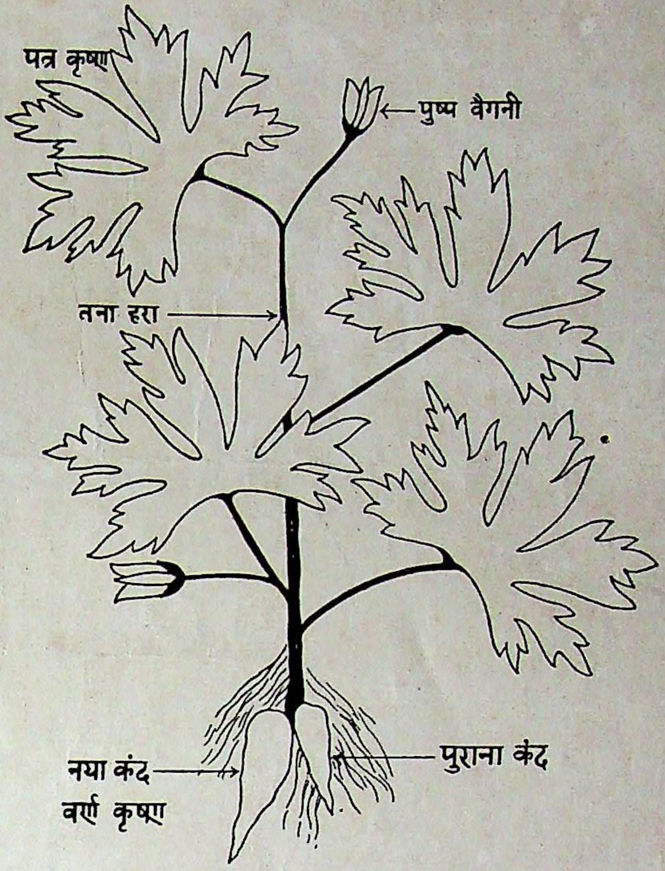
पत्र कृष्ण
पुष्प वैगनी
तना हरा
पुराना कंद
नया कंद
वर्ण कृष्ण

वत्सनाभ विष

(विशेष विवरण पृष्ठ ७५१ पर देखें)

❀ श्री धन्वन्तरये नमः ❀

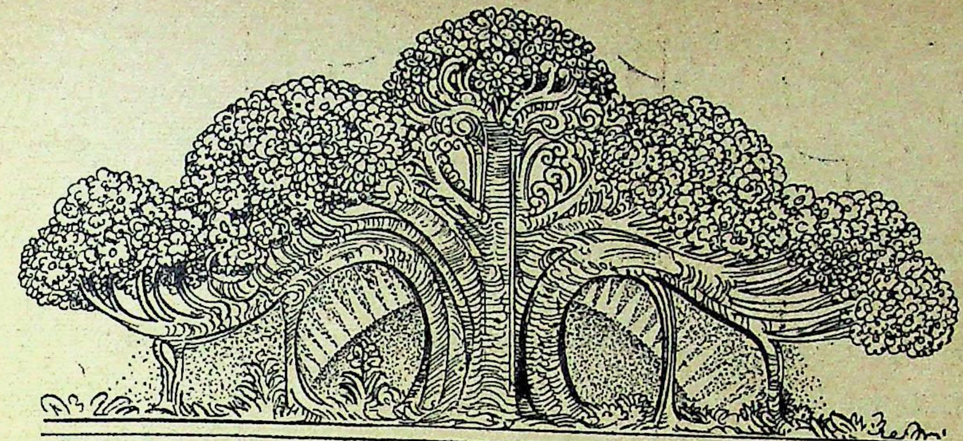

सचित्र आयुर्वेद

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्। आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

वर्ष ४ | कलकत्ता, अप्रैल, १९५२ | अङ्क १०

प्रधान सम्पादक का वक्तव्य

जहाँ संस्था है वहाँ मतभेद, दलबन्दी आदि का रहना जैसे अनिवार्य है, वैसा ही हिलमिल कर रहना भी अनिवार्य-सा है, फिर यदि संस्था निजी हो तो नीतिशास्त्र के अनुसार तो बिना सोचे-समझे गृहछिद्र को भी प्रकाश में लाना उचित नहीं है। इधर कुछ दिनों से नि० भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के वातावरण में कुछ चंचलता की वार्ताएँ सुनने में आ रही हैं, परन्तु निजी संस्था के कारण तथा "सचित्र आयुर्वेद" एक वैज्ञानिक पत्र होने के हेतु संस्था सम्बन्धी चंचल वार्ताएँ प्रकाशित कर मित्रवर्गों के वाद-विवाद में सहायता पहुंचाना "सचित्र आयुर्वेद" की नीति के विरुद्ध है, परन्तु, आयुर्वेद संसार के एकोनिष्ठ साधक पूज्य स्वामी मंगलदासजी महाराज के प्रति विशेष श्रद्धा के कारण मेरी गैर जानकारी में ही सहायक सम्पादक महोदय ने जो स्वामीजी की तथा अन्य मित्रों की विज्ञप्तियों का प्रकाशन किया है, उसके लिए मुझे दुःख है। मुझे आशा है, हमारे महामान्य मित्रवर्ग अन्तःसलिला-फल्गू की अन्तस्थ जलराशि को बालूकणों को हटाकर अनावृत करने के पहले उत्तम रीति से सोच-विचार करेंगे। संस्था हमारी है, उसके पदाधिकारी और सदस्य भी संस्था के ही हैं, दोनों के मिलन से ही संस्था बनी रहती है। हम जानते हैं, वातावरण में चञ्चलता जितनी तेजी से आई है, उतनी ही तेजी से वह शान्त भी हो जायगी, इसीलिए मान्य महानुभावों से प्रार्थना है कि महासम्मेलन के मतभेद सम्बन्धी समाचार हमारी नीतिपर ध्यान रख कर ही भेजें, क्योंकि आगे हम उन मतभेद-सम्बन्धी समाचारों को प्रकाश में नहीं लायेंगे, क्योंकि उस ढंग के समाचारों से संस्था का अहित ही होता है।

—प्र० सं० रामनारायण शर्मा वैद्य

सम्पादक की डायरी

संस्कृत सम्मेलन : डा० भगवानदास : दैनिक हिन्दी पत्र और आयुर्वेद

भारत की राजधानी दिल्ली में काशी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् महात्मा डा० भगवानदास जी के सभापतित्व में विशेष समारोह के साथ अखिल भारतीय संस्कृति सम्मेलन का चौथा अधिवेशन अभी हाल ही में सुसम्पन्न हुआ है। सभापति महोदय ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में अनेकों महत्त्वपूर्ण बातें बताई हैं, दिल्ली से प्रकाशित प्रमुख हिन्दी दैनिक पत्र जिन पत्रों को हम सदैव भारत की व्यापक संस्कृति (सभ्यता, संस्कार, धर्म, भाषा, भोजन, वस्त्र, और आयुर्वेद) के रक्षक समझते थे, उन पत्रों पर दृष्टि दौड़ाकर दंग रह गये, सभापति के ९३ पृष्ठ के भाषण से अपने-अपने ढङ्ग से पत्र-सम्पादकों ने विषय ले लिये हैं।

जैसे—आर्य भारतीय संस्कृति और सभ्यता की उद्गम भूमि ब्रह्मावर्त-सिन्धुतट की “आर्यसभ्यता पर देश के विभाजन से कैसी चोट पहुँची है, विदेशी भाषा के कारण कैसे हमारे संस्कार की परम्परा टूट गई है, विदेशी भाषा की शिक्षासे संस्कृत और हिन्दी की उपेक्षा कैसी होती गई, सेक्यूलर स्टेट में धर्म को मझधार में छोड़ देने से कैसा नैतिक पतन हो रहा है, राशनिंग सिस्टम की बदौलत भोजन-वस्त्र की स्थिति में कैसा संकट उपस्थित हुआ है, वृहत्तर संस्कृति के सात अङ्गों में छह अङ्गों के बारे में तो मार्मिक वर्णन किये हैं। परन्तु :—

भाषण का विशेष अङ्ग आयुर्वेद को किसी ने स्पर्श नहीं किया

विद्वान् सभापति ने अपने दीर्घ भाषण के प्रारम्भ में ही बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से आयुर्वेद के सम्बन्ध में बोले कि—“पुराण, इतिहास, मनुस्मृति, आयुर्वेद और वेद ये चार बहुत वृद्धों की आज्ञा के सदृश हैं इनको मान लेना चाहिए, तर्कों से इनका विरोध नहीं करना चाहिए। नये शब्दों में स्टाँन्डर्ड बुक आफ हिस्टरी, स्टाँट्यूट बुक आफ लॉज, मेडीकल सायन्स (सायन्स ऑफ लाइफ ?) स्क्रिप् चार, पर, नई-शिक्षा पाया हुआ किसकी आज्ञा मान सकता है ? हाँ, पाश्चात्य वैज्ञानिक की आज्ञा को तो वह आँख बन्द और सिर झुकाकर मानता है, पर, ये वैज्ञानिक स्वयं अपने मत आये दिन बदलते रहते हैं।

अङ्गरेजी में लोकोक्ति बन गई है—डॉक्टर्स डिफर एण्ड पेसेन्टस् सफर

डाक्टरों में मतभेद होता है और रोगी की दुर्दशा होती है............। मेरा निजी अनुभव है कि उग्र रोगों से ग्रस्त कई आतुर, आयुर्वेदीय चिकित्सा से अच्छे हुए, जिनको पाश्चात्य वैज्ञानिक चिकित्सकों ने असाध्य कह दिया था। आयुर्वेद का उज्जीवन हो रहा है, पर, इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। यह उज्जीवन भारतीय-संस्कृति के उद्धार के लिए नितान्त आवश्यक है। औषधों के लिए दूसरे देशों का मुख देखना यह तो भारी परतन्त्रता है हाँ, जो वस्तु यहाँ नहीं ही मिले या न बन सकती हो उसे तो दूसरे देश से लाना उचित ही होगा.............. एक चिकित्सक को अनेक शास्त्रों की बातें जाननी चाहिए......। आयु, आरोग्य आदि के लिए आयुर्वेद के उपदेशानुसार रात्रि चर्या, दिन चर्या, ऋतु चर्यादि के नियमों का पालन करना चाहिए, नहीं तो फल उल्टा होगा.....” (डा० दास के भाषण के २३, २४, ३२, ३३, पृष्ठ से)। हम सहयोगी दैनिक हिन्दी पत्रकारों से निवेदन, डाक्टर भगवान दास जी की वाणी की पुनरुक्ति द्वारा ही कर रहे हैं।

आयुर्वेद का उज्जीवन भारतीय संस्कृति के उद्धार के लिए अत्यावश्यक है, क्योंकि—

भूत, वर्तमान और भविष्य संस्कार के मूल में आयुर्वेद ही है

इस तत्त्व के विश्लेषण में अधिक युक्ति देने की आवश्यकता नहीं, कारण वेद, दर्शन और आयुर्वेद के सभी आकर ग्रन्थों में (चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, अष्टांग संग्रह आदि में) बार-बार संस्कार बनने और विगड़ने में आयुर्वेद का क्या हाथ है, प्रगट में आया है। विद्वान लोग इस तत्त्व से परिचित हैं कि जीव के मातृगर्भ में प्रवेशकाल में आयुर्वेद है, जन्म परिग्रह के मूल में आयुर्वेद है, संसार में सुख और चैन से रहने में आयुर्वेद है और मृत्युकाल में भी आयुर्वेद है, इसीलिए जीव का सम्बन्ध आयुर्वेद से तब-तक बना रहता है जबतक वह जन्म लेता रहता है। डाक्टर भगवानदासजी ने अपने भाषण में कहा कि प्रकृति की दी हुई वस्तु को अधिक सुन्दर बनाना ही संस्कृति है, परन्तु आयुर्वेद के उपदेश के अनुसार न चलने से ही प्रकृति की दी हुई वस्तु शिशु में विकार या विकृति उत्पन्न होती है, उसी से वह संस्कार भ्रष्ट हो जाता है और संस्कार के अभाव से अच्छी कृति या संस्कृति नष्ट हो जाती है।

शिक्षा प्रणाली में भारतीय करण की सरकार से मांग

हमें पता नहीं डा० मङ्गलदेव जी शास्त्री का मूल भाषण डा० भगवानदास जी के भाषण की भाँति कहाँतक काँट-छाँट के बाद दैनिक-पत्रों में प्रकाशित हुआ है। इसीलिए पत्रों में प्रकाशित भारतीय संस्कृति सम्मेलन में दिये हुए उनके भाषण पर ही हम अपना मन्तव्य प्रगट कर रहे हैं। उन्होंने अपने भाषण में कांग्रेस सरकार की उपेक्षा पूर्ण नीति की बड़ी आलोचना करते हुए कहा कि "शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मचेतना होनी चाहिए और शिक्षा में प्रमुख स्थान ब्रह्मचर्य, तप, सत्य, सयंम (इन्द्रिय निग्रह), सादगी, भ्रातृभाव और कर्त्तव्य बुद्धि को मिलना चाहिए। वर्त्तमान शिक्षा पद्धति में सो बात नहीं है, वह तो विदेश की उपज है, भारत की भूमि में यह प्रणाली पनप नहीं सकती।" हमारी समझ में बात ठीक ढङ्ग से समाई नहीं, क्योंकि शास्त्री जी के स्पष्टीकरण में और कुछ रह गया है, प्राचीन भारत में दो प्रकार से आचार्यों द्वारा समाज का नैतिक और चारित्रिक शासन होता था। समाज, राष्ट्र और राष्ट्रीय धरोहर संस्कृति के रक्षक के रूप में साधारण विद्यालयों के शिक्षागुरुओं को जितनी प्रमुखता दी जाती थी, उससे कहीं अधिक प्राणाचार्य या आयुर्वेद के आचार्यों का मान था, क्योंकि प्राणाचार्य द्वारा पाठ्यक्रम या शिक्षाक्रम मातृगर्भ से ही चालू होता है इसीलिए प्राणाचार्य को सर्वश्रेष्ठ गुरु कहा गया है।

ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में विदेशी चिकित्सा-विज्ञान को यदि भारत में स्थान दिया जावे, जैसा कि भारतीय एलोपैथी डाक्टरों में से अनेकों विद्वान भी आग्रहशील हैं, तो वैद्यकीय शिक्षा में कहाँ तक शास्त्रीजी की शिक्षा के उद्देश्यों की मर्यादा सुरक्षित रहेगी, और आत्म-चेतना की जागृति कहाँ तक होगी, कहना कठिन है। अभी हाल ही में भारतीय चिकित्सक संघ के प्रधान डाकृर टी० एन० बनर्जी साहब ने नाड़ी विशेषज्ञों के सम्मेलन (हैदराबाद) में भाषण देते हुए कहा कि "राष्ट्र को आज और की अपेक्षा अधिक स्वस्थ बनाने के लिए देहातों में डाक्टरी सुविधा पहुंचाने के वास्ते 'भोर कमेटी' की रिपोर्ट पर शीघ्र अमल शुरू कर देना चाहिए। भारत के पास साधन सीमित है; इसीलिए यहाँ विविधचिकित्सा-प्रणालियों का चलना कठिन है, अतः केन्द्रीय व राज्य सरकारें तथा सम्पूर्ण विश्व जिस चिकित्सा प्रणाली को (एलोपैथी ?) सर्वाधिक श्रेष्ठ समझती है उसे (यानी मॉडर्न मेडीकल सायन्स के बहुव्ययसाध्य प्रणाली को) भारत के देहातों में भी फैलावें।" पत्र प्रतिनिधियों के समक्ष डा० बनर्जी साहब के साथ अन्य डाक्टरों ने भी सम्मिलित वक्तव्य द्वारा भोर कमेटी की सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिए उपरोक्त शब्द कहे हैं।

सर जोसेफ भोर और उसकी कमेटी

सर जोसेफ भोर, हमारी स्वतन्त्रता और कांग्रेस विरोधी साम्राज्यवादी जितने मुखिया लोग भारत में थे, उनमें वह व्यक्ति प्रमुख था, जो कि कांग्रेस का कट्टर दुश्मन था और हमारी स्वतन्त्रता की भावना को कुचल देना चाहता था, जिसकी भावना थी कि भारत के कोने-कोने में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को फैलाकर भारतवासी को मजबूर, परमुखापेक्षी सम्पूर्णतया बना देना, जो जानता था जैसे किसी जमाने में भारतवासी तन ढकने के लिए मैंचेस्टर और लिवर पुल आदि विलायत के मिलों की ओर ताकते थे, उसी भाँति चिकित्सा के मामले में भी भारतीय जनता यूरोप, अमरीका आदि की दासता या वश्यता स्वीकार करें, वह जानता था—मॅडर्न मेडीकल सायन्स की महंगी प्रणाली का स्वावलम्बन योग्य व्ययभार, आजाद होने पर भी भारत नजदीक के भविष्य में बरदाश्त नहीं कर सकेगा और मजबूर होकर विदेश की ओर नज़र दौड़ाता रहेगा, उसी दृष्टिकोण से भोर कमेटी का निर्माण हुआ था। आज उसी व्यक्ति के सुझाव को कार्यान्वित करने के लिए हमारे साथी डाक्टर लोग सरकार पर जोर डाल रहे हैं, इसलिए हमें एक प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो गया है।

हमारी दृष्टि में शिक्षा अविच्छिन्न है

उसे खण्ड-खण्ड करके देखने से शिक्षा अधूरी रह जायगी। साधारण शिक्षा और वैद्यकीय शिक्षा के मूल सिद्धान्त नैतिक और चारित्रिक आधार में न रहा तो, हमारे सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में भ्रष्टाचार का प्रवेश होता ही रहेगा। यूरोप-अमरिका में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के शिक्षार्थी और साधारण शिक्षार्थी भी एक ही राह चलते हैं, इसीलिए कि उनका उद्देश्य एक ही है, परन्तु, भारत में साधारण एवं वैद्यकीय दोनों प्रकार की शिक्षा में तो देशी भाषा और संस्कार की बदबू का सम्बन्ध रहने के कारण, साधारण शिक्षा द्वारा हमारी स्थिति जैसी हो रही है वे वैद्यकीय शिक्षा द्वारा इससे भी अधिक पतन की ओर हम जा रहे हैं, इसीलिए जैसे विदेशी साधारण शिक्षाप्रणाली भारत भूमि में पनप नहीं सकती, वैसे ही वैदेशिक वैद्यकीय शिक्षा प्रणाली भी भारत में नहीं पनप सकती। इस प्रकार की शिक्षा से वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद, दर्शन, धर्मशास्त्र और आयुर्वेद में वर्णित नैतिक और चारित्रिक पाठ न गर्भस्थ शिशु के कानों में ही पहुंच सकता और न प्रसूत बालक के संस्कार में ही समा सकता है, न युवकों में ही पनप सकता है। पिछले दो-ढाई शतक के इतिहास के पन्नों में हम यही देख पाते हैं कि पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान द्वारा तथा उसकी शिक्षा द्वारा भारतीय युवकों में आत्मचेतना के स्थान पर देहात्म बोध की चेतना अधिक से अधिक जागती रही है, यहाँ तक कि "नात्मार्थं नापि कामार्थ मथभूतदयां प्रति" ही जिन वैद्यों की भावना थी उन वैद्यों के वंशधरों (बंशजों) में भी संक्रामक रोग की भाँति त्याग, सत्य, संयम, सेवा, भूतदया और तपस्या के स्थान पर अब वैदेशिक शिक्षा ने घर कर लिया है, इसीलिए शास्त्रीजी के भारतीयकरण की मांग में इतना तो कम से कम स्पष्टीकरण होना चाहिये था।

आयुर्वेद के चारित्रिक और नैतिक सिद्धान्तों पर शिक्षा का संस्कार हो

सभी विद्यालयों में आयुर्वेद के सिद्धान्त के अनुसार बालक और युवकों में आत्म-चेतना जागृत की जाय, नहीं तो जड़ काटकर पत्तों में पानी छिड़कने से कोई लाभ न होगा। क्योंकि यह तो आज भारत के प्रमुख नेता मान रहे हैं कि—यन्त्रवाद की शिक्षा द्वारा बुद्धिवाद का नाश हो रहा है और विज्ञान के विकास से मानव मूलस्तर खो रहा है (माननीय नेहरू)। आधुनिक भौतिक विज्ञान ने अनेकों वस्तुएँ दी हैं, चिकित्सा के मामले में भी ऐशो-आराम रोग-रोगी दोनों को ही पहुंचाया जा रहा है, इसीलिए न रोगों में ही कमी देखी जाती है, न रोगी ही चैन का सांस ले पता है, इसका कारण यही है कि हमारी शिक्षा में यन्त्रवाद की प्रधानता हो गई है, और उसके विकास से बुद्धिवाद पंगू होता जा रहा है, इसीलिए विज्ञान के विकास से उदबुद्ध मानव आत्म-चेतना की शिक्षा से ही दूर भागता जा रहा है। आज के यन्त्रवादी युग में जहाँ हवाईजहाज, रेलगाड़ी, मोटर, मोटर-साईकिल या साईकिल मौजूद है, वहां आचार्य विनोवा भावे को पैदल यात्री देखकर यन्त्रवादी बनाम विज्ञानवादी जरूर उन्हें समय और शक्ति के अपव्ययकारी समझते होंगे, परन्तु-परम बुद्धिवादी विनोबाजी अपनी बुद्धि की उपज एवं गान्धी-दर्शन के ज्ञान से जान गये थे कि बगैर पैदल यात्रा के भूमि प्राप्ति यज्ञ सफल नहीं हो सकता। आयुर्वेद के बुद्धिवाद और पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के यन्त्रवाद में भी ऐसा ही फ़र्क है।

इसीलिए सम्पूर्ण शिक्षा प्रणालियों में भारतीयता की आवश्यकता है। नैतिक शिक्षा को अविच्छिन्न रूप से सभी विद्यालयों में लागू करने के लिए आयुर्वेद की आवश्यकता है। वैद्य समाज के प्रमुख विद्वान देश के सांस्कृतिक विद्वानों से सम्पर्क स्थापित कर इन तत्त्वों से उनको परिचित करावें। राष्ट्र की उन्नति में इस प्रकार नैतिक शिक्षा ही सहायक साबित हो सकेगी।

जस्टिस् बी० के मुकर्जी ने अभी अपने दिल्ली के भाषण में भारतीय शिक्षा-पद्धति में सुधार के बारे में कहा कि "शिक्षा के ढांचे का भौतिक आधार राष्ट्र की आध्यात्मिक विरासत पर आधारित होना चाहिए।"

कुछ हद तक उनका कहना ठीक है, परन्तु हम देख रहे हैं, स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा के ढांचे का भौतिक आधार अब राष्ट्र की आध्यात्मिक आत्मा को हत्या करने के लिए उद्योग कर रहा है।

शिक्षाहीन, नीतिहीन, पौष्टिक भोजनहीन,रोगग्रस्त इस भारतीय मानव समाज को भगवान धन्वन्तरि बचावें।

सामयिक टिप्पणियाँ

डाक्टर लोग निरन्तर सत्य की खोज करें

प्रिन्स आफ वेल्स मेडीकल कालेज (पटना) की रजत जयन्ती के उद्‌घाटन करते हुए पश्चिमी बंगाल के प्रधान मंत्री माननीय डा० वी. सी. राय ने डाक्टरों को कहा—

"डाक्टर लोग निरन्तर सत्य की खोज करें और असत्य से बचें, अपने आप को मानव जाति का सेवक समझें, सत्य की खोज में अगर उन्हें धोखा ही हो जाय तो कोई हर्ज की बात नहीं।"

बात तो उन्होंने मार्के की बताई है,'जैसी कहनी, वैसी करणी' डाक्टर राय ने भाषण दिया २६ फरवरी को और ४ मार्चको ही डाक्टरों ने एक खास सत्य को ढूंढ़ नकाला है।

सरकार भी जानती है और जननायक भी जानते हैं कि विलायती साम्राज्यवादी सर जोसेफ भोर कांग्रेस, भारत और जननेताओं से कैसा मधुर सम्पर्क रखने वाला था, लेकिन डाक्टर लोग सदा सत्यं ब्रूयात्,··· ··· झूठ तो बोल ही नहीं सकते, वे कहते हैं, 'भोर कमेटी' की रिपोर्ट में जो सत्य है, उसे शीघ्र भारत भर में फैला दीजिये,—और वैद्यकादि प्रणालियों को गोरस्तान में पहुंचाइये,—और उस महान सत्य को फैलाने के लिए गरीब भारतीय जनता के मत्थे पर डाक्टरों की सेवा के लिए सेवा टैक्स लगाया जाय यानी—देश के प्रत्येक व्यक्ति पर एक आना स्वास्थ्य-कर लगा दिया जाय। डाक्टर लोग धोखे की ओर जा ही नहीं सकते, क्योंकि वे सेवा में भी पक्के हैं और मेवा भी खूब खाते हैं; लेकिन जनता धोखे में आ गई है, कृपा करके बतावें कि यह एक आना टेक्स—दैनिक, पाक्षिक, मासिक या वार्षिक क्या है ?

हिन्दुस्तानी डाक्टरों में कुछ तो सत्यं ब्रूयात् को ज्यादा पसन्द करते हैं, कुछ प्रियं ब्रूयात् को और 'अप्रियं सत्यं ब्रूयात्' बोलने वाले इने-गिने सज्जन भी मौजूद हैं। उनमें कर्नल रामनाथ चोपड़ा और डा. सी. जी. पण्डित को हम लेते हैं। हमारे साथी डाक्टर लोगों ने सर जोसेफ भोर को देखा, भोर के सपने देखें; भोर की कमेटी देखी, सिफारिशें भी समझी, लेकिन अपने नाते-रिश्ते की ओर देखने के पहले ही आँखें बन्द करके कानों में रूई से दीवार बनाकर अनसुनी कर दी,—इसीलिए कि चोपड़ा कमेटी में अप्रियं सत्य है, वैद्य-आयुर्वेद की बातें हैं और पंडित साहब आयुर्वेदिक रिसर्च चाहते हैं इस कारण हमें "भोर का सुनहरा सपना पसन्द है कहकर 'भोर' में ही समा गये हैं, लेकिन सोचा नहीं कि, परतंत्र भारत का भोर स्वतंत्र भारत में मर चुका है।

छाया लोक और काया लोक

सरकारी फिल्म प्रदर्शनी में वैद्यकीय इलाज का फल

केन्द्रीय सरकार के प्रचार प्रसार और सूचना विभाग की ओर से 'डाक्यूमेन्टरी फिल्म' दिखलाई जा रही है, फिल्म के कुछ अंश वैद्य और आयुर्वेद की मर्यादा में चोट पहुंचाने वाले हैं, सीधी भाषा में मानहानि कर मो है, फिल्म को कहानी में सुरसिक कहानीकार ने चित्रण किया है, "अतिश्रम के कारण एक श्रमिक बीमार पड़ गया था और इलाज के लिये उसे वैद्य को ही बुलाना पड़ा, वैद्य जी पधारे और लौटते वक्त वजाय एक रुपया फीस के दो रुपये के लिए हठ करने लगे" फिल्म का उद्देश्य—वैद्य कितना वेदर्दी है, जो मुर्दाघर जाने वालों से भी कौड़ी-कौड़ी अदा कर पिंड छुड़ाते हैं।

अंग्रेजों का पुराना इतिहास—अंग्रेज लोग भी इस

देश में एलोपैथी के प्रचार और आयुर्वेद के विनाश के लिए वैद्य और आयुर्वेदको नीचा दिखलाया करते थे, इसलिए नवीन बात नहीं,—

फिल्म क्यों बनी—(अनुमानशास्त्रा- नुसार) ? वैद्य समाज को यह जान लेना उचित होगा कि सरकार के श्रम विभाग द्वारा जितने आतुरालय खोले गये हैं, उनमें वैद्य या वैद्यक का नाम भी नहीं है, पैर से सिर तक एलोपैथी और सच्चे सेवक डाक्टर लोग ही हैं, ऐसी स्थिति में हमारी सर्व प्रधान संस्था नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन ने मांग की कि श्रमिकों की सेवा के लिए कुछ आतुरालय आयुर्वेद के भी सरकार खोले, ताकि श्रमिक भाई वैद्य से भी सेवाप्राप्त कर सकें।

मांग पत्र जब स्वास्थ्य विभाग के डायरेक्टरेट में पहुंची तो खलबली मच गई, क्योंकि वहाँ भी तो वही भोर के सपने वाले थे और अन्त में निर्णय हुआ कि—

डाक्टर और एलोपैथी कायालोक में ही श्रमिकों की सेवा करें ? और वैद्य लोगों को पहले छायालोक में ही सेवा के लिए लिया जावे ? महा सम्मेलन पत्रिका में कहा गया है कि, एलोपैथ डाक्टरों का व्यवहार एक वैद्य की अपेक्षा अधिक घृणित, और क्रूर है।

यदि ऐसा न होता तो, कायालोक में वैद्य भी रहता डाक्टर भी, क्रूरता के कारण ही तो भोर के सपनों में विभोर साथी लोग हमें कायालोक से छायालोक में ढकेल देते हैं। हम स्वदेश में भी परदेशीहैं, हमारी स्वदेशी (आयुर्वेद प्रणाली) वस्तु भी परदेशी की भांति अवज्ञा पा रही है, समय रहते वैद्य समाज जागे और वैज्ञानिक उपायों द्वारा इस अन्याय का प्रतिकार करे।

दिल्ली और क्षय रोग

दिल्ली स्वास्थ्य विभाग की विज्ञप्ति में स्वास्थ्य पदाधिकारी ने कहा है कि, दिल्ली में तपेदिक को बीमारी बढ़ती जा रही है, इसका कारण—गन्दा मकान, गरीबी, और उससे उत्पन्न खुराक का अभाव है। सहयोगी नवभारत टाइम्स ने अपने सम्पादकीय में लिखा है कि "कुछ समय से इस रोग के प्रसार को रोकने के लिये बी. सी. जी. नामक औषधि के टीके अधिकाधिक संख्या में स्वास्थ्य मंत्रालय लगवा रहा है, ये टीके कुछ काल तक रोग को रोकते होंगे ? परन्तु, यह अत्यन्त सन्दिग्ध है कि जो बालक या युवक पौष्टिक तो क्या भर पेट भोजनतक भी नहीं कर पाते, क्या वे आयु भर केवल बी.सी. जी. की सूई के सहारे रोग से विजयी होते रहेंगे ? हमारी स्वास्थ्य मंत्राणी राजकुमारी अमृत कौर बी. सी. जी को संजीवनी बूटी समझती हैं, परमात्मा ही जाने प्रधान मंत्री नेहरू जी भी ऐसा ही समझते हैं या नहीं। राजकुमारी का विश्वास है बी. सी. जी. यक्ष्मा को हमेशा के लिए दफना देगा, लेकिन उन्हीं के आस्तीन के नीचे बी. सी. जी. की उपेक्षा हो रही है और यक्ष्मा पनप रहा है ? भोर के सपने वाले हमारे साथी भी ऐसा ही मानते हैं !

नीति, चरित्र, स्वच्छ मकान, गरीबी, पुष्टिकर भोजन ये यक्ष्मा की वृद्धि को रोक नहीं सकते, परन्तु विदेशी वैज्ञानिक, डाक्टर, और जननेता भी कहते हैं कि भारत में यक्ष्मा के विकास का प्रधान कारण गरीबी, गन्दगी, और भोजनाभाव है। मिसेज रुजवेल्ट ने भी सत्य को छिपाया नहीं, (World Health Organization के Director General Dr. CHISHOLM ने P. T. I. के प्रतिनिधि से कहा, कि गरीबी ही भारत में अस्वस्थता का मूल कारण है (Poverty is the root of ill health in India) लेकिन न सरकार ही इन बातों पर ध्यान देती है, न जननायक ही सुनते हैं, जो लोग सुननेवाले हैं, वे वे जन्मना भारतीय ज्ञेयः कर्मणा विदेशी परः और वैद्य तथा आयुर्वेद तो कायालोक में अस्पृश्य ही है, ईश्वर जाने आगे क्या होगा।

व्यक्तिगत और समूहगत मानस चिकित्सा की आवश्यकता

राष्ट्र-मंडल और अमेरिका के स्वास्थ्य इतिहासज्ञों के समक्ष मा० प्रधान मंत्री नेहरू जी ने कहा कि "यदि आप मानव मानस की व्यक्तिगत तथा समुदायगत चिकित्सा में किसी आरोग्यकामीकला का समावेश कर सकते हैं तो अवश्य ही चिकित्सा-शास्त्र मानव जाति की एक महान् सेवा कर सकेगा।"

भौतिक साधनों से या आध्यात्मिक साधनों से पंडित जी ने बताया नहीं,—पर, आध्यात्मिक वैद्य गान्धी जी ने जीवनभर व्यक्तिगत और समूहगत मानव-मानस की चिकित्सा के लिए भारतीयजनता और जननेताओं को पुकारते रहे लेकिन, कोई पहुँचा नहीं, इसीलिए भारत में मानस-इलाज अधूरा रह गया है, अतः उनके उत्तराधिकारी ने उसे सागर पार से संशोधन के उपरान्त मंगाने के लिए राष्ट्र मंडलीय चिकित्सकों के हाथों दे दिया होगा ?

आगमकालिक ब्रह्मचर्य

वैद्य रणजितराय

"सचित्र आयुर्वेद" के गत मार्च के अङ्क में मैंने गृहस्थोचित वैदिक ब्रह्मचर्य का विवरण दिया है। यह विषय अपूर्ण रहेगा, यदि आगमकालिक—विद्याभ्यासकालिक—ब्रह्मचर्य का भी उल्लेख न कर दिया जाय। सामान्यतया, ब्रह्मचर्य शब्द से इसी का ग्रहण होता है। अतः सविस्तर विवेचन इसका आकर ग्रन्थों में देखा जा सकता है।

सिद्धान्त-कौमुदी में 'ब्रह्मचारी' शब्द की व्युत्पत्ति भानुजि दीक्षित ने यह दी है।—ब्रह्म वेदः, तदध्ययनार्थं व्रतमपि ब्रह्म; तच्चरतीति ब्रह्मचारी। ब्रह्म का अर्थ है वेद, उसके ग्रहणार्थ जो व्रत वह भी ब्रह्म कहाता है। उस का जो आचरण करे वह ब्रह्मचारी। इस ब्रह्मचारी का आचार ब्रह्मचर्य कहाता है। ब्रह्म या वेद तीन, दो या एक जितने पढ़ने हों, उनके अनुसार ब्रह्मचर्य का काल भी भिन्न कहा गया है।—

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा॥

—मनुस्मृति ३।१

इसका अर्थ यह है कि, आठवें वर्ष गुरुकुल में प्रविष्ट होने के अनन्तर तीनों वेद साङ्गोपाङ्ग पढ़ने हों तो छत्तीस वर्ष अर्थात् वय के चवालीस वर्ष अध्ययन करे। यदि दो वेद पढ़ने हों तो उसके आधे नाम अठारह वर्ष किंवा वय के छब्बीस वर्ष पर्यन्त और एक ही वेद ग्रहण करना हो तो प्रथम काल के चतुर्थांश काल तक, नाम नौ वर्ष पर्यन्त किंवा वय सत्रह वर्ष की होने तक वेदाध्ययन करे। अथवा तीनों के लिए कोई सामान्य नियम न रखते हुए अभ्यासपूर्ण हो जाय तब तक व्रताचरण करे। इस काल का व्रत बताते हुए मनु कहते हैं—

वर्जयेन् मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्॥
द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथाऽनृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च॥
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः॥
स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः।
स्नात्वाऽर्कमर्चयित्वा त्रिः 'पुनर्मामि' त्यृचं जपेत्॥

मनु २—१७७—१८१

ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी को मद्य, मांस, गन्धद्रव्य माला, रस (स्वादु भोजन की लोलुपता), स्त्री को पुरुष का और पुरुष को स्त्री का संग, सर्वप्रकार के सिरके आदि अम्ल द्रव्य जो संधानपूर्वक बनायेगये हों, प्राणिहिंसा, अभ्यङ्ग, अञ्जन, जूते और छतरी, काम, क्रोध, लोभ, नृत्य, गीत, वाद्य, द्यूत, लोगों के सम्बन्ध में चर्चा, परनिन्दा, असत्य भाषण, स्त्रियों का दर्शन, स्पर्शन, परहानि—इनका त्याग करना चाहिए। वह सदा एकाकी शयन करे। कभी शुक्र-स्खलन न करे। यदि कामुक होकर उसने शुक्रच्युति कर दी तो उसके व्रत का भङ्ग हो गया समझना चाहिए। यदि काम के विना भी (गर्हित विचारों का उदय न होते हुए ही) स्वप्न में (सोते हुए) शुक्रपात हो तो प्रातः स्नान तथा सूर्याराधन करके उसे आगे कही 'पुनर्मामैतु' इत्यादि ऋचा का तीन वार जप करना चाहिए।

ऊपर जिस 'पुनर्माम्' इत्यादि ऋक्का निर्देश किया है, वह वृहदारण्यक उपनिषद् का वचन है। यह संपूर्ण इस प्रकार है—

पुनर्मामैत्विन्द्रियं, पुनरात्मा, द्रविणं, ब्राह्मणं च, पुनरग्नयो धिष्ण्याया यथास्थां कल्पन्तामिहैव। ऋक् तदभिमृशेद् अनु वा मन्त्रयेत, यन्मेऽद्य रेतः पृथिवीमस्कान्त्सीत्, यदोषधीः अपि असरद्, यदपः, इदमहं तद् रेत आददे पुनर्मामैत्विन्द्रियं, पुनरोजः, पुनर्भगः, पुनरग्निः, धिष्ण्याया यथास्थानं कल्पन्ताम् ॥

अर्थात्—मेरी जो इन्द्रिय, आत्मा, द्रविण (सामर्थ्य) और ब्रह्मचर्य व्रत चला गया वह पुनः लौट आवे। मेरी अग्नियां और मेरी बुद्धि पुनः आ जावे। ये फिर अपने स्थान पर प्रतिष्ठित हो जायँ। जो मेरा शुक्र पृथिवी में चला गया, जो ओषधियों (अन्नों) में गया, जो जल में गया उस अपने शुक्र कों मैं पुनः लौटा लेता हूँ। मेरी इन्द्रिय मुझे पुनः प्राप्त हो, मेरा ओज मुझे पुनः प्राप्त हो, मेरा भग, मेरी अग्नि और मेरी बुद्धि मुझे पुनः प्राप्त हो। ये सब अपने-अपने स्थान में पुनः स्थिर हो जायँ।

मनु-संहिता के अन्तिम पद्य में स्वप्नदोष नाम से प्रसिद्ध विकार का विचार है। आयुर्वेद में इसका निर्देश नहीं। आधुनिक कामशास्त्री इसे अमुक मर्यादा तक अहानिकर मानते हैं। उलटे इसे इस बात का गमक (द्योतक) होने से कि पुरुष के जननावयवों की पुष्टि संपूर्ण हो गयी है, उसके स्वास्थ्य का चिह्न समझते हैं। परन्तु, प्राचीन आचार्यों का इस दिशा में क्या विचार है यह इस पद्यसे तथा ऋचासे विदित है। आयुर्वेद में 'स्वप्नदोष' का निर्देश न होने पर भी 'परमतमप्रतिषिद्धमनुमतम्'—अन्य शास्त्र के मत का अपने शास्त्र में निषेध न किया हो तो वह भी अपना सिद्धान्त समझना चाहिए—इस न्याय से उक्त मत को आयुर्वेद का मन्तव्य समझने में कोई क्षति नहीं है।

छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक ३, खण्ड १६ में त्रिविध ब्रह्मचर्यों के पालन का सङ्कल्प कैसा होना चाहिए यह उपमा से बताया है।—

पुरुषो वाव यज्ञः। तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत् प्रातः सवनम्। चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री, गायत्रं प्रातः सवनम्। तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः। प्राणा वाव वसवः। एते हीदं सर्वं वासयन्ति।

—ब्रह्मचर्य पूर्वोक्त प्रकार से तीन प्रकार का है—कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। यह पुरुष (शरीर ; जीवन)[1] मानो यज्ञ है। इसके जो प्रथम चौबीस वर्ष हैं वह यज्ञाङ्गभूत प्रातः सवन है। इस उपमा का कारण यह संख्या-साम्य है कि गायत्री में चौबीस अक्षर होते हैं और प्रातः सवन में गायत्री छन्द का प्राधान्य होता है। इस काल उसके अधिदेवता वसु होते हैं। पुरुष-पक्ष में वसु नाम प्राणों का है। इस लिए कि ये सबको बसाते हैं—सबका जीवन धारण कराते हैं।

तञ्चेदेतस्मिन् वयसि किंचिदुपतपेत्, स ब्रूयात्—प्राणा वसव इदं मे प्रातः सवनं माध्यन्दिनमनुसंतनुतेति ; माऽहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥

—इस काल में यदि कोई विकार (शारीर-मानस) उसे (ब्रह्मचारी को) पीड़ित करे तो वह प्राणों को संबोधन कर कहे—हे वसु-संज्ञक मेरे प्राणो, मेरे इस प्रातः सवन को अक्षुण्ण दशा में माध्यन्दिन-सवन पर्यन्त पहुँचाओ। वसु प्राणों के काल में मैं अपने यज्ञ का भङ्ग न होने दूँगा। इस संकल्प के परिणाम-स्वरूप वह उन्नत होता है। उसका विकार नष्ट होता है।

अथ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनं सवनम्। चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनं, तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः। प्राणा वाव रुद्राः। एते हीदं सर्वं रोदयन्ति।

—पुरुष (जीवन) के चवालीस वर्ष यज्ञ के मध्याङ्गभूत माध्यन्दिन सवन हैं। इस उपमा का हेतु यह संख्या-

---

१—प्राचीन आयुर्वेदीय तथा दार्शनिक मत में 'पुरुष' शब्द का यह अर्थ जानने के लिए देखिए—

आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान—वैद्यनाथ प्रकाशन।

साम्य है कि, माध्यन्दिन सवन में त्रिष्टुभ् छन्द होता है। उसके चवालीस अक्षर होते हैं। इस सवन के अधिदेवता रुद्र होते हैं। पुरुष में प्राण ही रुद्र हैं। इन्हें यह नाम देने का कारण यह है कि, ये जब विकृत होते हैं तो सबको रुलाते हैं। (रुद्=रोना)।

तं चेदेतस्मिन् वयसि किंचिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिन ँ सवनं तृतीय। माऽहं प्राणाना ँ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति।

—इस काल में यदि कोई (शारीर-मानस) विकार उसे (मध्यम ब्रह्मचर्य के व्रती को) पीडित करे तो वह अपने प्राणों को सम्बोधित कर कहे (संकल्प करे)—हे रुद्र-संज्ञक मेरे प्राणो, मेरे इस माध्यन्दिन सवन को तुम तृतीय सवन तक ले जाओ। रुद्र प्राणों के रहते मैं अपने यज्ञ को मध्य में ही खण्डित न होने दूँगा। इस संकल्प के परिणाम रूप वह उन्नत होता है। उसका विकार नष्ट होता है।

अथ यान्यष्टाचत्वारि ँ शद् वर्षाणि तत् तृतीय सवनम् अष्टाचत्वारि ँ शदक्षरा जगती। जागतं तृतीय सवनम्। तदस्यादित्या अन्वायत्ताः। प्राणा वावादित्याः। एते हीद ँ सर्वमाददते।

पुरुष (शरीर, जीवन) के जो अड़तालीस वर्ष हैं, वह यज्ञ का पिछला अङ्गभूत तृतीय सवन है। दोनों में साम्य यह है कि तृतीय सवन में जगती छन्द का प्राधान्य होता है और इस छन्द में अड़तालीस ही अक्षर होते हैं। इसके (सवन और पुरुष के) अधिदेवता आदित्य होते हैं। पुरुष-पक्ष में आदित्य का अर्थ है प्राण। इन्हें आदित्य इस कारण कहते हैं कि सब शुभगुण-कर्मों का सदा आदान (ग्रहण) करते हैं।

तं चेदेतस्मिन् वयसि किंचिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीय सवनमायुरनुसंतनुतेति। माऽहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो है व भवति।

इस काल में यदि कोई विकार (शारीर-मानस रोग) उसे (उत्तम ब्रह्मचारी को) पीडित करे तो वह अपने आदित्य-संज्ञक प्राणों को सम्बोधन कर कहे—हे मेरे आदित्य संज्ञक प्राणो, तुम मेरे इस तृतीय सवन को आयुपर्यन्त पहुँचाओ। आदित्य प्राणों के रहते—उनके काल में—मैं अपने माध्यन्दिन यज्ञ का भङ्ग न होने दूँगा। इस संकल्प के वश वह उन्नत होता है। उसका विकार शान्त होता है।

इस प्रकरणों में जो प्राण शब्द आया है, उसका सुश्रुतोक्त अर्थ लेना चाहिये।

> अग्निः सोमो वायुः सत्त्वं रजस्तमः,
> पञ्चेन्द्रियाणि भूतात्मेति प्राणाः॥
>
> सु० शा० ४।३

अर्थात्—पित्त, कफ, वायु ये शारीर गुण; सत्त्व, रज, तम ये मानस गुण, पांच ज्ञानेन्द्रिय और आत्मा इन बारह का नाम प्राण है। कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम ब्रह्मचर्य द्वारा इन प्राणों का उत्तरोत्तर उत्कर्ष सिद्ध किया जाता है। आगम काल में और आगे गृहस्थाश्रम में भी ऋतुगमनरूप ब्रह्मचर्य का आचरण करते हुए, दो काल किंवा त्रिकाल सन्ध्या करते समय अङ्गस्पर्शादि विधियों में उनके उत्कर्ष को सिद्ध करने का लक्ष्य सदा मनोगत रहे यही आशय होता है। इसीसे मनु ने कहा है—

> ऋषयो नित्यसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः।

ऋषियों ने नित्य सन्ध्या के कारण ही दीर्घायु प्राप्त की।

यथार्थ-उत्तरम्

वा० वा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

[कुछ दिन पूर्व मद्रास राजकीय भारत चिकित्सा महाविद्यालय (Govt. College of Indian Medicine) स्थित रिसर्च (गवेषण) विभाग द्वारा मद्रास के विद्वान वैद्यों से आयुर्वेद के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछे गये थे। उन प्रश्नों का युक्ति और प्रमाण के साथ उत्तर माननीय वा० वा० नटराज शास्त्री आयुर्वेदाचार्य ने निम्नलिखित रूप में दिया है। श्रीयुत शास्त्रीजी संस्कृत और अंग्रेजी के प्रकाण्ड विद्वान होते हुए आयुर्वेद के भी गम्भीर विद्वान हैं। आपके अध्ययन का परिचय प्रस्तुत लेख (उत्तर) से स्पष्ट हो जाता है। संस्कृत के आप इतने प्रिय हैं, कि इस लेख को संस्कृत में ही प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की है। आशा है कि "सचित्र आयुर्वेद" के विद्वान वैद्य-पाठक वृन्द के लिए यह लेख ज्ञानवर्द्धक होगा।

—स० सम्पादक]

Question—1. Please state the object of research and the general principles on which research in Ayurveda is to be carried out.

उत्तरं—

आदाविदं स्मर्त्तव्यं–यदायुर्वेदशब्दो यौगिकव्युत्पत्त्या निखिल–प्रकारचिकित्साशास्त्रग्राहक एव। तथाऽपीह चरक, सुश्रुत, वाग्भट, नागार्जुन प्रभृतिभिः प्रपञ्चितं अस्मद्भारतीयंप्राचीनं चिकित्साशास्त्रमात्रं आयुर्वेदशब्देन व्यपदिश्य इति।

आयुर्वेदे गवेषणायाः प्रयोजनलक्ष्यसमासोऽयम्

१. साङ्गोपाङ्गस्य समूलाधारदर्शनस्य अद्योपलभ्यमानस्य समस्तायुर्वेदोपदेशस्य यथार्थतः अवगमः।

२. आयुर्वेदः स्वमूलतत्त्वसिद्धान्ते, जनतायाः स्वास्थ्य परिपालन व्याधिपरिमोचनकर्मणोश्च सम्पूर्णो न्यूनोवेतिपरीक्षणम्।

३. न्यूनश्चेत्, आयुर्वेदसिद्धान्तानुसारेण न्यूनतापूरण प्रक्रिया विनिश्चयः।

४. अनुपयोगिभाग परित्यागपूर्वकं कालोपयोगिनामपेक्षितविषयाणां एकान्ततः स्वतन्त्राभिवर्धनात्मकतया पूरणम्।

५. नव्यविज्ञानि जगति आयुर्वेदस्य विशुद्ध विज्ञानमूलसिद्धत्वख्यापनं च।

एषां लक्ष्याणां फलप्रदायिनी गवेषणापद्धतिः कल्पनीया, यैव आयुर्वेदस्य तत्त्वतः समुद्धरणात्मिका भवेत्।

आयुर्वेदे गवेषणा--आयुर्वेदादुपयोगिनो भागानुद्धृत्य नव्यालोपाथिक वैद्यकेन तेषां संयोजनाभिसन्धिना यदिक्रियते, यदि वा भुविसमुचितैकरूपचिकित्साशास्त्र प्रतिष्ठामनोरथेन प्राच्यप्रतीच्य सर्ववैद्य सारसंमिश्रणरूपस्य नूतनप्रकार चिकित्साशास्त्रस्य आविष्कारणाभिसन्धिना क्रियते तर्हि आयुर्वेदादपहरणात्मिकया तादृश्या गवेषणया नेषदप्यायुर्वेदस्योपकारो भवितुं पार्यते।

मैवंशङ्का—यत् संप्रति सर्वाङ्गसम्पूर्णं वैज्ञानिक संसिद्धं विश्वव्यापकञ्च नव्यवैद्यकं (Allopathy) यथा स्वस्थातुरपरित्राणक्षमं भवति न तथा आयुर्वेदः स्यात्, स तु प्राक्कालोपकारकोभूतोऽपि अधुना प्रणष्टप्रचारः। अत आयुर्वेदे स्वतन्त्रोन्नत्यै गवेषणा दुस्संपादा व्यर्थफला च स्यादिति, बहुकालाद्गवेषणा विरहक्लशोऽपि राजकीयानाश्रयादेव मन्दप्रभोऽपि

अद्यापि जीवन्नेष आयुर्वेदो भारते भूयिष्ठजनताया आर्त्तिनिवर्त्तको वर्त्तत इति प्रत्यक्षात्। यथावद्भूयो गवेषणोपबृंहितश्चेदायुर्वेदः पुनः पूर्ववत् सम्पूर्णसर्वाङ्गः शोभेततरामेव।

(Q. 1. a) The order in which the Research problems are to be taken, may also be stated.

उत्तरं—

बाह्यवैद्यके बाह्यैर्यादृशी गवेषणा पद्धतिरनुष्ठीयते, आयुर्वेदे एकान्ततस्तदनुवर्त्तनमसाधु। गवेष्य शाखानां सर्वासां युगपद्-प्रारंभश्च व्याकुलयेत् कार्याणि। आयुर्वेदस्याधुना तनीं स्वरूप-परिस्थितिमनुसन्धाय क्रमारोहः कर्त्तव्यः। सिद्धौषधानां नियतैकरूपतानिर्णयोपायान्वेषणादौ न प्रथमं श्रान्तव्यम्। प्रथम-प्रश्नोत्तरघट्टोक्ते लक्ष्यपञ्चके यथोत्तर क्रमस्वीकारः शुभः। साहित्यं, चिकित्सा, मूलदर्शनमिति त्रेधा गवेषणाधिकरणानि विभज्य कर्त्तव्यानि। सर्व प्रथम कार्यन्तावत् देश विदेशेषु उपलभ्यमान निखिलायुर्वेद-साहित्यस्य सङ्कलनं, विषय विभागशस्तद्विभजनं, परिभाषा व्याकुल पुनरुक्ति दोषवर्जं विषयानुसारेणग्रन्थनिर्माणम्। अथायुर्वेदे अनुक्तानां यूनानिसिद्धवैद्यकयोर्विद्यमानानामुपयोगि भागानां आयुर्वेदीये तत्तदङ्गे यथावदायोजनं कर्त्तव्यम्। सुकरमिदं त्रयाणां भूयिष्ठं सामान्यात्। आयुर्वेदानुपदिष्टानां बाह्य नव्यवैद्यकेभ्य उपादेयानां विषयाणां आयुर्वेदीये तत्तदङ्गे स्वीकरणं तावत् आयुर्वेद मूलदर्शनैः परीक्ष्य समन्वयीकरणात् परमेव कर्त्तव्यम्। आयुर्वेद नव्य बाह्य वैद्यकयो भूयो भिन्न प्रस्थानत्वात्। न्याय व्याकरणादीनि शास्त्राणि यथा स्व-स्व-प्रमेयानुरोधेन प्रमाणानां प्रक्रियाणां च विस्तरं स्वातन्त्र्येण कृतवन्ति तथा आयुर्वेदश्च कृतवान्। इदमायुर्वेद मूल दर्शन मिति व्यपदेशमर्हति। गवेषणायां आयुर्वेद मूल दर्शन विभागोऽवश्यं पृथगुपकल्पनीयः। अत्र आयुर्वेदे, भारतीय प्राचीनषड्दर्शनेषु, Physics-Chemistry, Biology, Botany, Engineering प्रभृति नव्य विज्ञानेषु निष्णातानां संभूय कर्त्तव्यं बह्वस्ति।

मूर्धन्यगवेषणाकेन्द्रस्थलात् काचिन्मासिकी पत्रिका विमर्श्याणां विमृष्टाणां च विषयाणां प्रकाशनाय अवश्यं सम्पादनीया, यन्मुखेन विदूरस्था अपि विद्वांसः स्वगृहस्था एव गवेषणा कार्येषु बहूपकर्त्तुं प्रभवेयुः। पत्रिकेयं आयुर्वेद विषय विचारसौकर्यात् निखिल भारत व्यापकत्वाच्च संस्कृत भाषायां प्राधान्येन प्रकाशनीया।

Q. 2. Please state which of the Institutions namely teaching Institutions, Hospitals, Dispensaries, Consulting Rooms of individual practitioners etc. are suited for such Research ?

उत्तरं—

अस्मिन् मद्रासमण्डले अधुना विद्यमानेषु आयुर्वेद विद्यालयेषु, आरोग्य शालासु, औषध वितरणालयेषु, स्वतन्त्रवृत्तिभिषजां परीक्षाभवनेषु च न किमपि स्थानं आयुर्वेदस्यैकस्मिन्नप्यङ्गे गवेषणायै सम्भृतपर्याप्तसंभारमित्येतत्तु सत्यम्। तथाऽपि निम्ननिर्दिष्टस्थानेषु तत्तदुचितगवेषणार्थमावश्यकं संविधान लघुप्रयासेनोपकल्पयितुं शक्यते।

1. Government College of Indian Medicine, Madras.
2. Venkataramana Ayurvedic College and Hospital, Mylapore.
3. Venkateswara Ayurvedic College, Vijayawada.
4. Government Ayurvedic College, Mysore.
5. Government Ayurvedic College, Trivandrum.
6. Arya Vaidya Patasala, Kottakkal.
7. Arya Vaidyasala, Kottakkal.
8. Jaya Chamarajendra Institute of Indian Medicine, Bangalore.
9. Keraliya Ayurveda Samajam, Shoranur.
10. The Madras Provincial Indian Medical

Practitioners' Co-operative Pharmacy and Stores Ltd, Adayar.

11. Ayurvedacharya V. B Nataraja Sastri's Atreya Ayurveda Sala, Tiruchirapalli.

एकस्मिन्स्थले सर्वेष्वङ्गेषु गवेषणायाः संविधानात् सर्वेषां गवेषणास्थलानामनुग्राहकमनुशासकञ्च प्रधानकेन्द्रं मद्रास महानगरे स्थापयित्वा, कर्मानुरोधेन साधनसंपन्नेषु विभिन्न स्थलेषु गवेषणाङ्गनिविशनं धनव्ययदृष्ट्या साधीयः । तदर्थं उपर्युक्तानि स्थानानि गणनार्हाणि भवन्ति ।

Q. 3. What is the plan for Research, to clarify the Tridosha and Panchabhuta Theories ?

उत्तरं—

प्रश्नाशय एव विशदनीयो भवति । आयुर्वेदस्य यथावदध्ययनेन त्रिदोषपञ्चभूतवादे चिकित्सायै पर्याप्तं ज्ञानं प्राप्नोति ।

न्याय साङ्ख्यादि दर्शनानां भूयः परिशीलनेन वादोपयोगि सामर्थ्यं पुष्कलं प्राप्नोति । एवं बहोः कालात् सम्प्रदायसिद्धे वस्तुतत्वे, त्रिदोष-पञ्चभूतवादः पुनरद्य कीदृशं विशदीकरणमपेक्षत इति विशदनीयम् । नव्यविज्ञानपरिपाट्या त्रिदोष-पञ्चभूत वादो विज्ञेय इत्यभिसन्धिश्चेत्, कार्यन्तन्नव्य वैज्ञानिकानां, नायमायुर्वेदीयविषयः । अथ त्रिदोष-पञ्चभूतवादस्य विज्ञानमूलसिद्धत्वं नव्यवैज्ञानिकानां पुरतः आयुर्वेदीयैः स्थापनीयमिति चिन्ता तर्हि, आयुर्वेदन्याय दर्शनादि कुशलेभ्य आदौ नव्यविज्ञानं सम्यक् शिक्षणीयम् । ततस्तैरुभयनयेन त्रिदोष-पञ्चभूतवाद समन्वयः कार्यः । ततो व्याख्येयो नव्यपरिभाषया परेभ्यः ।

अयं पन्था नूनमायुर्वेदस्य च यथार्थतो महदुपकारी स्यात्, उपयोगिनां नव्यविज्ञानांशानामायुर्वेद सात्करणाय मार्गोद्घाटनात् । अन्यथा नव्यविज्ञानमात्रनिष्णातैः स्वनयेन त्रिदोष-पञ्चभूतवादस्य बोधाय समन्वयाय वा क्रियमाणः प्रयत्नः तद्दृष्ट्या सफलो निष्फलो वा भवतु, न तत्र नश्चिन्ता, आयुर्वेदस्योपकारको भवितुं नार्हतीति निश्चयः ।

Q. 4. Do you think that a knowledge in the Modern Basic Sciences as Physics, Chemistry, Biology and Medical subjects (Preclinical and Clinical) is necessary for the student of Ayurveda ? If so what are the best methods of imparting their knowledge to the students ?

उत्तरं—

आयुर्वेद गवेषणा विषयेऽस्मिन् प्रश्नवर्गे आयुर्वेद विद्यार्थिभ्यः आलोपाथिक वैद्यक शिक्षाप्रदानस्य प्रणालीजिज्ञासाया अन्तर्भावः अस्थानिको भाति, अस्तु, तथापि विचार्योत्तरयामः ।

Physics, Chemistry, Biology आख्य नव्यमूलाधार विज्ञानेषु आलोपाथिक वैद्यके च आयुर्वेद छात्रेभ्यः शिक्षासम्प्रदाने उद्देश्यं किम् ? आयुर्वेदस्यापर्याप्तत्वादापूरणार्थमिति चेत्, आयुर्वेदापर्याप्ति स्वरूपं तदा पूरण प्रकारञ्चापरीक्ष्य, नव्यमूलाधार विज्ञानालोपाथिकवैद्यकानां तथैवायुर्वेद छात्रेभ्यः सम्प्रदानेन आयुर्वेदस्य न्यूनतापहरणं नैव सम्भवार्हं स्वतन्त्राभिवृद्धिकारणाभावात् । अत आयुर्वेदस्य स्वतन्त्राभ्युन्नतेर्यथार्थोपायान्वेषणमेव गवेषणा केन्द्र विदुषां प्रथमकर्त्तव्यं भवति ।

नेदं क्षणमपि विस्मर्त्तव्यं यत्—केवलायुर्वेदमात्राध्ययनेन स्नातकस्य, सकलामयध्वंसन प्रतिषेधयोः प्रकारान्तरवैद्यकानपेक्षं सम्पूर्णं सामर्थ्यं, नव-नव विज्ञान—कलोपज्ञानान्वेषः । राजकीयारोग्य-विभागे उत्तमपदालंकरण योग्यता च यथा भविष्यति तथा आयुर्वेद प्रतिसंस्करणमेव गवेषणा केन्द्रस्य लक्ष्यं प्रयोजनं कर्त्तव्य सर्वस्वञ्चेति ।

वस्तुतः पुनरालोपाथिकज्ञानं आयुर्वेद वैद्याय अद्य कथमपि नोपकरोति । अवधीयतां किञ्चित् । आलोपाथिक पद्धतिः Widol शोणितपरीक्षया Enteric Fever इति निश्चित्य Chloromycetin

ददाति। अत्रायुर्वेदभेषजं प्रयोक्तुं न शक्यति, यत आयुर्वेद भेषजं प्रयुञ्जानेन दोषदूष्याणां प्रकृति विकृति समविषम स्वरूपमेवानुसन्धातव्यं भवति। एवं वातकफोल्वण सन्निपातलक्षणं परीक्षया प्राप्य षडूषण दशमूलचटितेर्ज्वरहरद्रव्यैः प्रतिविधेयमायुर्वेद भिषजा। न Penicillin वा Sulfanilamide दातुमत्र युज्यते तद्दानावश्यक निदानस्याकृतत्वादनेनायुर्वेदेन। इत्थं आलोपाथिक पद्धत्या क्रियमाणां चिकित्सां प्रत्येव नव्यविज्ञानसाधनमुपकरोति नायुर्वेदचिकित्सामिति सिद्धत्वात् नव्यविज्ञानस्य आलोपाथिक वैद्यकस्य च शिक्षणमिदानीमायुर्वेद छात्राणां-आयुर्वेद चिकित्सायां नोपकारकमिति सिद्धम्।

अतः कर्त्तव्यमित्थं—Physics, Chemistry, Biology, Botony, Engineering प्रभृति नव्यविज्ञानानां तदाविष्कृत यन्त्र-तन्त्राणाञ्च चिकित्सां प्रत्युपयोगितां आलोपाथिक वैद्यकं यथा सम्यग् सम्पादितवत्, तथा एतेषां सर्वनव्यविज्ञान यन्त्रादीनां आयुर्वेदचिकित्सोपयोगितया संपादनाय यावदावश्यकं—(आयुर्वेद मूल दर्शन सिद्धान्तेन समन्वय संयोजनादिकं) तत् सर्वमायुर्वेद गवेषणा स्थले प्रथमं समापनीयम्। तत स्तत्र सिद्धान्ती कृतानां पाठनमायुर्वेद विद्यार्थिभ्यः कर्त्तव्यम्। एवं न केवलमालोपाथिक वैद्यकात् होमियोपाथिकादि विविध नव्य वैद्यकेभ्यः शास्त्रं कर्माभ्यास कौशलं वा यद्यदावश्यकं स्वीकर्त्तव्यं भवति, तस्य सर्वस्य आयुर्वेद सिद्धान्तेन समन्वयमेकीकरणञ्च गवेषकैः प्रौढपण्डितैः प्रथमं कारयित्वैव ततःसम्पादेयं छात्रेभ्यः। उपायोऽयं वस्तुतत्वतः आयुर्वेदाभिवर्धनः। आयुर्वेदमात्राध्ययनेन सर्वगुणसंपूर्णाभिषक्तमाः प्रकाशेरन् छात्राः।

शास्त्रीय समन्वये गुरुभिः प्रयत्नमप्यकृत्वा आयुर्वेदालोपाथिकयोः भूयष्ठं भिन्नप्रस्थानयोरुभयोरपि छात्रेभ्यः चतुः-पञ्चवर्षपरिमिते पाठकाले पूर्णतया सम्प्रदानं सुतरां दुःसाधम्। आचार्याणामपि व्यामोहकं किं पुनश्छात्राणाम्? राजकीय भारतचिकित्सा विद्यालये (Government School of Indian Medicine) एवं मिश्रपाठनेन किं फलितम्? उभयस्मिन्शास्त्रे स्वल्पस्थूल ज्ञानवन्तः स्नातकाः वृत्त्यर्थमन्ते आलोपाथिकौषधमात्र प्रयोक्तारो दृश्यन्ते। अतः संमिश्रण पाठनेन आयुर्वेदाय प्रयोजनाभावात् दोषावहत्वेन अनुभूयमानत्वाच्च साधारण विद्यार्थि दशायां परित्याज्यमेतत्। अथ मन्यते अद्य जगति आलोपाथिक वैद्यकस्य भूयः प्रचारात् लौकिक व्यवहारबोधाय आलोपाथिकवैद्यकस्वरूपज्ञानं आयुर्वेदाभ्यासिनामप्यावश्यकमिति तर्हि छात्राणां आयुर्वेदाध्ययनसमाप्तेः परं आलोपाथिक होमियोपाथिकादि नव्यवैद्यकेषु व्यवहारयोग्यताऽऽधायकः पाठ्यक्रमः पृथक् कल्पयित्वा पाठनीयः।

Q. 5. Please state how the Rasa, Guna, Veerya, Vipaka, Prabhava theories could be availed of for testing the drugs; How could this theory be applied with regard to compound preparations?

उत्तरं—

द्रव्ये रसगुणवीर्य विपाक प्रभावाणामेव परीक्ष्यत्वात्तेषां साधनत्वशङ्का अनुचिता। प्रतिद्रव्यमेषां विनिश्चयः आभ्यन्तरप्रयोगेणैव साध्यः। आयुर्वेद वर्णिता रसगुणवीर्य विपाक प्रभाव प्रक्रिया पूर्वाचार्य वर्णित द्रव्यगुणादिषु भूयो विज्ञानाय बहुधा उपकरोति। अनुक्तनूतनद्रव्यगुणादीनां परीक्षायै रसादीनां प्राचुर्येण साहचर्यानुसन्धानं मार्गदर्शनाय पर्याप्तं भवेत्। भूयोऽन्ततः प्रयोगेणैव अध्यवसेयः द्रव्यप्रभावः।

बहुद्रव्योपादानानां सिद्धौषधानां सम्भूयशक्तेर्विशिष्यमाणत्वात् प्रतिद्रव्यगतरसादिविचारो नातीवोप-

कारकः। अंशतएवोपकारकः स्यात्। बहुद्रव्यौषधस्य गुणमाभ्यन्तरप्रयोगएव निश्चिनुयात्।

एकद्रव्यस्य स्वरूपगुणादिनिर्धारणाय बहुद्रव्यसिद्धौषधस्य गुणादिपरीक्षायै, शुद्धिप्रमाणनिर्धारणाय च (Standardise) पूर्वाचार्यकृतो द्रव्यगुणपाठो नैकान्ततः पर्याप्तः। नव्यविज्ञानपद्धतिरत्र यद्यनुकूला भवति तर्हि सा आयुर्वेदेन स्वीकार्या। किन्तु पद्धतिः सा आयुर्वेदपोषकमूलदर्शनेषु समन्वयितव्या। कार्यमिदमायुर्वेदमूलदर्शनगवेषणा विभागे।

Q. 6. How should the Research be planned in Rasa-Sastra; how to assess the value of the Sodhana and Marana of Metals after such treatments.

उत्तरं—

रसशास्त्रगवेषणापद्धतिरपि अङ्गान्तरेष्विवैव। संस्कृते तामिलादिदेशभाषासु च मुद्रितामुद्रितेभ्यः उपलभ्यमानेभ्यो रसशास्त्र ग्रन्थेभ्यो विषयाणां विभागेनोपदेशान् संकलय्य पुनरुक्त्यादिवर्जं ग्रन्थनिर्माणमेव प्रथमकर्त्तव्यम्। धातूपधातु रसोपरसमहारसानां कृतकाकृतक खनिजानां संस्कारकदिव्यौषधिद्रव्याणां च स्वरूपनिर्धारणं ततः कर्त्तव्यम्। प्राचीनशास्त्रोपदिष्ट सरण्यैव धात्वादीनां शोधनमारणादि संस्कारान् विधाय, प्रतिद्रव्यस्य, बहुद्रव्यभेषजस्य च मनुष्यान्तः प्रयोगेण फलान्वेषणं कर्त्तव्यम्।

प्राचीनरसशास्त्रस्य प्रतिसंस्करणे नव्यं Chemistry शास्त्रं यथावदपरिगृहीतं भूयः उपकुर्यात्। अतस्तदुपादेयमेव। किन्तु नव्य Chemistry शास्त्रस्य कीदृश संस्कारापन्नस्य स्वीकृतिरायुर्वेदरसशास्त्रस्य वास्तविकमुपकारमादध्यादिति। आयुर्वेदमूलदर्शनगवेषणाधिकृतविद्वद्भिरादौ व्यवसेयोऽयं विषयः।

Q. 7. How to determine the value of Ghrithams. Thylams, Lehyams and Rasa preparations, as seen in the Ayurvedic Pharmacopoeia ?

उत्तरं—

सिद्धौषधगुणविनिश्चयोपायो वर्णितः आयुर्वेदे—"सम्यक् प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्याति कर्मणां" इति। एवमाभ्यन्तर ग्रहण फलनिर्धारणमन्तरा औषधानां सम्पन्निर्धारणोपायो न दृश्यत आयुर्वेदे। अन्तः सेवनं विनाऽपि तादृशोपायो नव्यविज्ञानाविष्कृतोऽस्तिचेत् तस्य स्वीकृतिरिष्यत एव मूलदर्शन समन्वयपूर्वकम्।

Q. 8. What is the scheme to be adopted in editing Text-books in Ayurveda a fresh? Have they to be written in Sanskrit, Hindi English or regional languages ? What is the basis on which the subjects for study in Ayurveda are to be classified from the stand-point of a student and a practitioner?

उत्तरं—

आयुर्वेदे-अभिनव पाठग्रन्थनिर्माणं विद्यार्थिदृष्ट्याकथं कर्माभ्यसिदृष्ट्या च कथं कार्यमिति प्रश्नस्यावसरो नाद्य प्राप्तः। सर्वेऽधुना विद्यार्थिदशायामेव सन्तीति मत्वा आदौ नूतनग्रन्थाः पाठोपयोगिनो निर्मातव्याः कालक्रमेणोत्तरत्र विद्यार्थिनां वृत्तिप्रवृत्तानां च पृथग् ग्रन्थविस्तरः स्वयं भवेत्।

नूतनपाठग्रन्थाः संस्कृतभाषायामेवादौ विलेखितव्याः। अथावश्यके सति प्रान्तीयभाषासु तेषामनुवादो विवरणरूपेण कार्यः। भाषान्तरी करणेऽपि सर्वे पारिभाषिकशब्दाः संस्कृतात्मकाएवैकरूपाः प्रकल्पयितव्याः। अन्यथा भारतवर्षेभिन्नप्रान्तीयभिषजां मिथः संव्यवहारो दुर्घटः स्यात्। हिन्दी भाषाया अद्य निखिलभारतव्यापकत्वाभावात् सर्वशास्त्र व्यवहारावश्यक शब्दसंपदभावाच्च हिन्दी न युज्यते। आंग्लभाषा च विदेशीया इति मात्रं न, अपितु 'वा गतिगन्धयोरिति वायुः' इत्याद्यायुर्वेदतत्त्वस्वारस्य प्रतिपादनाय नैव प्रभवति आंग्लभाषा। संस्कृतं तु आयुर्वेद दृष्ट्या सर्वभाषापेक्षया अद्यापि निखिल

भारत व्यापकमिति मानं न, अपितु संस्कृतमेकैव भाषा आयुर्वेदादि शास्त्रतत्त्वप्रतिपादनाय सर्वगुण सम्पन्नेत्येतत् सर्वसम्मतम् ।

नूतनपाठावल्यां पूर्वाचार्य कल्पितस्य-अष्टसंख्याकस्यैव आयुर्वेदाङ्गविभागस्य अद्यतथैवानुवर्त्तनं नावश्यकम् । मूलदर्शनं (सूत्रं वा), द्रव्यगुणं, शारीरं, प्रसूतितन्त्रं, निदानं, शल्यं, मानसरोगः, कायं, अगदं, चक्षुर्वेदः, दन्तभैषज्यं इत्यादि प्रकारैरावश्यकतानुसारेण भूयसामङ्गानामुपकल्पनं साधीयः ।

ग्रन्थनिर्माणे अनुसार्यःक्रम एवं

प्रथमकार्यं-मुद्रितायुर्वेदग्रन्थेभ्यः निखिलेभ्यःपृथगङ्ग विभागशो विषयान् संकलय्य, परिभाषाक्लेशपुनरुक्ति दोषवर्जं प्राचीन संस्कृत साहित्येनैव ग्रन्थविरचनम् । अतीव सन्दिग्धानामधुना अनुपयोगिनां वा भागानां सङ्कलनं न कार्यम् ।

द्वितीयं कार्यं—केरलतामिलादिप्रान्तीयभाषासु विद्यमानानायुर्वेद-विषयान् सिद्धवैद्यकं यूनानी सम्प्रदाय वैद्यकं च तद्विद्यानां साहाय्येन सम्यग् विमर्श्य, आयुर्वेदानुपदिष्ट आयुष्या अंशा यदि तत्रोपलभ्येरंस्तर्हि तेषामायुर्वेदस्य तत्तदङ्गेषु संस्कृत भाषायां विलिख्य संयोजनं कार्यम् । एतेन प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धत्याः कल्पितः आयुर्वेद-सिद्धवैद्यक प्रभेदः राजकीय व्यवहार्थं जीवन्नपि, विज्ञान विषये प्रणश्येत् । भारतीयं चिकित्साशास्त्रमायुर्वेदाख्यमेकमद्वितीयं जयेत् ।

तृतीयं कार्यं—आलोपाथिकादि बाह्यनव्यचिकित्सा शास्त्राणि आयुर्वेदनयेन संशोध्य, आयुर्वेदानुपदिष्ट चराणां तत उपादेयानामायुष्यविषयाणां च आयुर्वेदाङ्गेषु प्रतिग्रहः आयुर्वेदमूल सिद्धान्तपरिभाषया संस्कृतभाषायां विलिख्यकर्त्तव्यः ।

उपवर्णिते ग्रन्थनिर्माण क्रमे प्रथमं द्वितीयं च कार्यं सुकरम् । अतस्तदनुपदं कृत्वा निखिले भारते आयुर्वेद विद्यालयेषु एकरूपं पाठ्य क्रममनुष्ठातुंशक्यते । तृतीयं तावत कार्य भूयो गवेषणाभिः कालक्रमेण साध्यम् ।

परमिदं सत्यं यदायुर्वेद सिद्धान्तेन अपरीक्षितस्य असमन्वयीकृतस्य वा आलोपाथिकादि वैद्यकस्य तथैव बालानामायुर्वेद छात्राणां पाठनेन आयुर्वेदस्य स्वातन्त्र्येण उत्तरोत्तरोन्नतिमार्गः पूर्णतया निरुद्ध्येतैवेति ।

आयुर्वेद गवेषणाया नाना कार्यजातं नाना प्रान्तेषु पृथक्-पृथक् चाल्यमानमपि कृत्स्नं कार्यजातं निखिल भारत व्यापक तया अनुष्ठातव्यमित्येतत् सर्वदा अनुस्मर्त्तव्यम् ।

वैद्यनाथ चन्द्रप्रभा वटी

लौह, शिलाजीत और गुग्गुल के प्रधानयोग से बननेवाली यह वटी मूत्रेन्द्रिय और वीर्य—विकारों के लिए सुप्रसिद्ध औषध है। यह बल को बढ़ाती है और शरीर का पोषण करने की शक्ति भी रखती है। सब तरह के प्रमेहों और उनसे पैदा हुए उपद्रवों पर इसका धीरे-धीरे स्थायी प्रभाव होता है। स्त्री पुरुषों के जननेन्द्रिय के विकारों में "चन्द्रप्रभावटी" से बहुत लाभ होता है।

१-१ गोली सुबह-शाम खाकर ऊपर से धारोष्ण दूध पीना चाहिये। कीमत—दो तोला ।-) एक तोला ॥=)॥

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, कलकत्ता, पटना, झाँसी, नागपुर।

जठराग्नि : पाचकपित्त

(Comparative study of Digestion)

आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी वैद्य, आयुर्वेद-शास्त्राचार्य

आहार—हिताहार ही शरीर का प्रधान आधार है, यही बल, वर्ण व ओज प्राप्ति का प्रधान आधार[1] है; ऐसा प्राचीन चिकित्सक मानते हैं। उनका विचार है कि अन्न जो उचित प्रकारसे इच्छित गन्ध, द्रव्य, मसाले इत्यादि के साथ तैयार किया जाता है, वह इन्द्रियों को प्रसन्न करनेवाला व गतिशील बनानेवाला होता है; यह महर्षि चरक कहते हैं (च० चि०[2] अ० १५-१२)। पुराण व स्मृतियों ने तो आहार को ब्रह्म तक की संज्ञा प्रदान की है। यथा—"अन्नं वै ब्रह्म।"

अतः उचित आहार जीवन-यात्रा परिचालन का प्रधान साधन है, यह प्राचीन चिकित्सक मानते हैं। यही बातें आधुनिक चिकित्सक भी मानते हैं। लीबिग[3] (Leebig) ने कहा है कि आहार, शरीरधातु-निर्माण एवं शक्ति का स्रोत है, अतः आहार अत्यावश्यक वस्तु है।

किन्तु यह आहार उपर्युक्त गुण तभी कर सकता है जब कि वह उदराग्नि द्वारा सम्यक् प्रकार से पचकर सात्म्य होने योग्य हो जाय। अग्नि ही आयु, बल, वर्ण, स्वास्थ्य, उत्साह, प्रभाव व ओज और तेज प्राप्ति का प्रधान आधार[1] है।

शारीरिक गर्मी इसी से मिलती है और इसी गर्मी के उचित मात्रा में बने रहने पर मनुष्य का जीवन निरवच्छिन्न चलता है, अग्नि की शान्ति होनेपर शरीर की मृत्यु हो जाती है और इसकी विषमता से व्याधि उत्पन्न[2] होती है।

आधुनिक काल में भी आहार के दो प्रधान कार्य माने जाते हैं। शारीरिक क्षय की पूर्ति और शरीर की गर्मी की उत्पत्ति। यथा, एंजिन को उचित कार्य के लिये कोयला व पानी की आवश्यकता होती है और वह कोयले को जला कर जल के सहयोग से उष्णता की उत्पत्ति करके कार्यशील बनता है। इसी प्रकार आहार शरीर में जाकर उदराग्नि से पचता है और शोषित होकर, रस बनकर अन्य शारीरिक धातुओं की पुष्टि करता है। यही जठराग्नि, पाचकाग्नि, पाचकपित्त इत्यादि कई नामों से व्यवहृत होता है। यद्यपि पित्त आग्नेय तत्त्व प्रधान होने से शरीर में ऊष्मा की वृद्धि करके शरीर को तापयुक्त रखता है और शरीर की प्रत्येक स्थिति में यह उष्णता अभिप्रेत है। यथा महर्षि चरक ने स्पष्ट कहा है—

"सज्वरा एव जायन्ते, सज्वरा एव म्रियन्ते।"

---

[1] —प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसां च।
सु० सू० अ० १-२८

[2] —अन्नमिष्टं ह्युपकृत-मिष्टैर्गन्धादिभिः पृथक्।
देहे प्रीणाति गन्धादीन् घ्राणादीनिन्द्रियाणि च॥

[3] —Food is necessary to build up tissue and to act as source of energy (Hand book of Physiology & Biochemistry by Walb, Ch.24.)

[1] —आयुर्वर्णोबलं स्वास्थ्य मुत्साहोपचयौप्रभा।
ओजस्तेजोऽग्नयःप्राणाश्चोक्ता देहाग्नि हेतुकाः॥
च० चि० अ० १५-१-२

[2] —शान्तेऽग्नौ म्रियतेयुक्ते चिरंजीवत्यनामयः।
रोगीस्याद्विकृते मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते॥
च० चि० अ० १५-१-२

इसके द्वारा शरीर को गर्म रखने वाले वस्तु का प्रतिपादन किया है, फिर भी पंचविध पित्त में पाचकपित्त ही समग्र पित्तकुल (पित्त वर्ग) का पोषक व परिवर्धक माना गया है। और यह तैजस गुण प्रधान विशेषरूप में होता है और तैजस गुणाधिक्य के कारण अन्नपाचन का अग्नेय कर्म करता है। वाग्भट्ट ने कहा है :—

पित्तं पञ्चात्मकं तत्र पक्वामाशय मध्यगम्।
पंचभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजस गुणोदयात्।
त्यक्त द्रवत्वं पाकादि कर्मणानल शब्दितम्।
पचत्यन्नं विभजते सार किट्टौ पृथक् तथा।
तत्रस्थमेव पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम्।
करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम्।

वा० सू० अ० १२-१०-१४

संज्ञा प्रदान में हेतु

पाचक-पित्त-अन्न को पचाता है अतः पाचक इसकी संज्ञा है। यह अग्नेय गुण प्रधान होने से पाचन क्रिया करता है अतः अनल या अग्निसंज्ञक होता है।

स्थान—पक्वाशय व आमाशय के मध्य में पाचक पित्त का स्थान है। आमाशय शब्द तो स्पष्ट एक कोष्ठ का परिज्ञान कराता है अर्थात् आम (अपक्व या अर्धपक्व) अन्न के रहने का स्थान। पक्वाशय वह स्थान है जहाँ पर आहार पक्व होकर पहुँचता है और उसकी शोषण क्रिया होती है और अन्न सार व किट्ट भाग में विभाजित होता है।

आमाशय के स्थान प्रतिपादन में स्पष्ट निर्देश यों है :—

नाभि[1] व स्तन के क्षेत्र के भीतर प्रत्येक प्राणि का आमाशय होता है। यह चतुर्विध (अशित, खादित, पीत और लीढ़) आहार के पाचन का स्थान है। इसमें आहार पहुँच कर उसमें के उदक (क्लेदक-श्लेष्म जो श्लेश्मल कला का स्राव है उस) के गुण से संघात रहित हो जाता है अर्थात् सुपाच्य हो जाता है।

पक्वाशय :—इसके विषय में विशेष दूर ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं। यह भी आमाशय की तरह स्वतः अपने स्थान का बोधक है। जैसे—

जहाँ पक्व अन्न स्थित होता है उस आशय को पक्वाशय कहते हैं। अरुणदत्त[1] ने ऐसा ही अर्थ किया है। राजनिघंटु ने केवल स्थान के निर्देश में "पक्वाशयो ह्यधो नाभेः" अर्थात् नाभि के नीचे के महास्रोतस् के भाग को पक्वाशय कहते हैं, ऐसा निर्देश किया है। शरीरज्ञान के आचार्य सुश्रुत ने तो संदेहभंजन करके स्पष्ट उल्लेख यों किया है :—

पक्वाशयः तत्र-समासेन वातःश्रोणिगुद संश्रयः तदुपर्य-
धोनाभेः पक्वाशयः पक्वाशय मध्यस्थंपित्तस्य स्थानम्।

सु० सू० अं० २१

अर्थात्—पक्वाशय महास्रोतस् में आमाशय से नीचे और श्रोणि प्रदेश में गुद पर्यंत है। इसमें श्रोणिस्थ गुद से ऊपर अधोनाभिस्थ भाग तक पक्वाशय की संज्ञा है। इस पक्वाशय के मध्य में पित्त का स्थान है।

इस प्रकार पक्वाशय व आमाशय के मध्य (दीवालों के भीतरी भागों की ग्रन्थियों में) भाग में पाचक पित्त का स्थान है। इस प्रकार आमाशय और पक्वाशय के मध्यस्थ भाग पाचक पित्त का स्थान हुआ।

आमाशय मांस व कलामय प्रकोष्ठ है और स्थिति में अन्न पूर्ण होने पर अङ्ग्रेजी के अक्षर जे (J) की आकृति का हो जाने पर ठीक स्तन व नाभि के बीच अपना स्थान रखता है। रिक्त दशा में भी इन स्थानों के बीच

---

१. नाभिस्तनान्तरं जंतो-राहुरामाशयं बुधः।
अशितं खादितंपीतं, लीढ़ं चात्र विपच्यते।
चतुर्विधस्याहारस्याधारः स च तत्रौदक
गुणैराहारःप्रक्लिन्नो भिन्न संघात सुखजरश्चभवति।

सु० सू० २१-१२

१—पक्वमाधीयते स्थाप्यतेऽस्मिन्निति पक्वाधानम् पक्वाशयः-अरुण

में ही रहता है। इस स्थान के कार्य का नियंत्रण समान वायु के तन्त्र (Nerve) द्वारा होता है, जो नाड़ी संस्थान-गत सौरचक्र व अर्धेन्दुनाड़ी गन्ड से निकले तारों के द्वारा नियंत्रित होते हैं। जिनका विवरण निम्नलिखित है :—

वाम पार्श्वाश्रितं नाभेः किंचित् सोमस्य मण्डलम्
तन्मध्ये मण्डलं सौर्यं तन्मध्येऽग्नि र्व्यवस्थितः।
जरायुमात्र परिच्छन्नः काचकोषस्थ दीपवत्।
स्थूल कायेषु सत्त्वेपु यवमात्र प्रमाणतः।
ह्रस्व कायेषु सत्त्वेपु तिलमात्र प्रमाणतः।

इस स्थान का विवरण हमें नाड़ी गंडों की पाचन सम्बन्धी क्रिया कराने का स्पष्ट निर्देश करता है। (Semilunar ganglia) अर्धेन्दु नाड़ी गंड और सौरचक्र (Solar plexus) के अतिरिक्त और भी कई नाड़ी तारों के संवेदन द्वारा पाचक रसों की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। यह नाड़ी गंड ही तिलमात्र व यवमात्र आकार के हैं।

कुछ लोगों का कथन है, पाचकपित्त का आकार तिल की तरह का है। यथा—"पाचकं तिलमानं स्यात्" इससे वास्तव में पाचक की क्रिया का संवेदक व सांवेदनिक नाड़ियों की उद्गम स्थान तिलमान नाड़ी गंड की क्रिया द्वारा पाचक रसोद्रेचन होने से "तिलमानं" संज्ञा है। तिल की आकृति की सहस्रो ग्रन्थियों के समूहों से बने बड़े तिल के आकृति की ग्रन्थि, अग्नि ग्रन्थि (Pancreas), अग्नाशय का भी अर्थ अनेक करके तिलमान आशय को पाचक का स्थान मानने की कई चिकित्सक प्रेरणा क्रिया करते हैं। किन्तु पाचक पित्त किसी एक स्थान का रस नहीं है, बल्कि यह कई रसों के समूह को जो कि पाचन कर्म कराते हैं और आमाशय व पक्वाशय में पहुंच कर पाचन कर्म कराते हैं, उनका अभिप्राय "विशेषेण पक्वामाशय मध्यस्थं पित्तं" से है क्योंकि इनके अतिरिक्त भी पाचक रस मिलते हैं किन्तु वह प्राधान्यता नहीं रखते। यदि यह विचार प्राचीन आचार्यों का होता तो फिर पाचक पित्त के कार्य को यों स्पष्ट न कहते। यथा—

कार्य :—१ अन्नंपचति।
२ विभजते सारकिट्टौ।
३ बलदानेन शेषाणामपि पित्तानां बलदानेन अनुगहं करोति।

अन्न को सूक्ष्म विभागों में विश्लेषित करना; पचाना व पश्चात् सार व किट्ट भाग में विभाजित करना, शेष पित्त स्थानों को बल देकर उनकी क्रिया को संपादित कराने में सहायक होना—पाचक पित्त का कार्य है। इस प्रकार प्रधान कर्म—"पचति, सारकिट्टौ विभजते, बलदानेन अनुग्रहं करोति" ये तीन प्रधान कर्म पाचकपित्त के होते हैं; जिन्हें प्रायः सब प्राच्य[1] चिकित्सक स्वीकार करते हैं।

यहाँ प्रत्येक कार्य का पर्यालोचन करके देखना चाहिए।

१—पचति—पचति का पचाना अर्थ है। पचाना क्रिया में इतनी बातें सम्मिलित हैं। (१) क्लेदन, (२) दहन और (३) पाचन।

क्लेदन—पाचक अंगों के रसोद्रेचन से अन्न का क्लिन्न होना और अन्न के संघात (जमाव) का भिन्न होकर सूक्ष्म खण्डों में विभाजित होकर उनका पाचन क्रिया में सहयोग प्रदान करना विशेष अर्थ है। यह कार्य कई स्थानों के रस करते हैं यथा—(१) मुख की श्लेष्मलकला का

---

[1] तत्र यदामाशय पक्वाशय मध्यस्थं
पंचभूतात्मकत्वेऽपि तेजो……………………
सहकारिकारणैर्वायुः क्लेदादिभिरनुग्रहाद्दहन पच-
नादि क्रियया लब्धग्नि शब्दं पित्तमन्नं पचति
सारकिट्टौ विभजति। शेषाणि च पित्तस्थानानि
तत्रस्थमेवानु गृह्णाति तत्पाचकमित्युच्यते।
अ० सं० सू० अ० २०
तच्चादृष्ट हेतुकेन विशेषेण पक्वामाशय मध्यस्थं
पित्तास्थानानां शरीरस्थ चाग्नि कर्मणानुग्रहं
करोति। तस्मिन् पित्ते पाचकाग्निरिति संज्ञा।
सु० सू० अ० २१·१०

उद्वेचित श्लेष्म रस, (२) लालाग्रन्थियों का उद्वेचित बोधक श्लेष्म, (३) आमाशयिक श्लेष्मल कला का उद्वेचित रस (४) पक्वाशयिक श्लेष्मल कला का उद्वेचित रस, (५) आंत्रिक श्लेष्मल कलाओं का रस।

दहन व पचन—आहार के विभिन्न भेदों (चतुर्विधाहार-षड्सात्मकाहारादि) को क्लेदित हो भिन्न संघात हो जाने पर दहनकर के (Combution & oxidation) उनका परिणामकर रस बनाकर विपाक की क्रिया को पूर्ण करना। इसमें पचन का अग्नि संस्कार में आहारद्रव्य का रंजित होना और परिणामान्त धातु बनना (रस का बनना) अभिप्रेत है।

इस प्रकार 'पचति' कार्य की पूर्ति में आहार के परिणामकर जितने भाव हैं सबों का ग्रहण होता है। इसकी भी परीक्षा थोड़ा-सा करके फिर पाचन कर्म में दोषों की क्रिया का विभाजन करेंगे।

महर्षि चरक ने आहार परिणामकर अधो लिखित भाव लिखे हैं। यथा—'आहार परिणामकरास्त्विमे भावा भवन्ति—तद्यथा ऊष्मा, वायुः, क्लेदः, स्नेहः, कालः, समयोगश्चेति—इनके कर्म निम्न हैं। यथा—

(१) ऊष्मा—(Heat) ऊष्मा से आहार पचता है (यह पित्त[1] का कार्य है)।

(२) वायुः—(समान व प्राण वायु) प्राण व समान वायु की क्रिया से अन्न चबाना, निगलना, और स्निग्ध होना व आमाशय (कोष्ठ) को प्राप्त होना; यह कार्य होता है।

(३) क्लेदः—श्लेष्मरसों द्वारा क्लेदित होकर आहार टुकड़ों में विभाजित हो शिथिल हो जाता है।

(४) स्नेहः—श्लेष्मगत रसों की स्निग्धता से अन्न में स्निग्धता होती है।

(५) कालः (Time)—निश्चित समय तक हरएक महास्रोतस के स्थानों में अन्न रहकर अपनी पाचन की स्थितियों में परिवर्तित होकर निश्चित समय तक रह कर पच जाता है।

इन पाँचों भावों का समयोग (प्राकृतावस्था की क्रियायें Normal function) यदि हों तो पाचन सम्यक् होकर परिणामान्त क्रिया होती है। उनका पृथक् पृथक् वर्णन आगे आयेगा।

२—सारकिट्टौ विभजते

जब आहार पच जाता है और हर प्रकार के आहार द्रव्य चाहे षड्सात्मक हो या श्वेतसार, पिष्ट (Carbohydrates), मांस जातीय आहार (Proteen) और स्नेह (Fat) इत्यादि भेद से त्रिविध आहार द्रव्य पाचक व क्लेदक रसों के संयोग से घुलकर द्रवधातु रूप बन जाते हैं, तब इनका शोषण होता है। आंतों की भीतरी कलाओं के अंकुर (Vellies) दो प्रकार से शोषण क्रिया करते हैं, एक तो स्नेह जातीय रस को शोषण करने वाले दूसरे अन्य शर्करा, पिष्ट व मांस जातीय पदार्थों का शोषण करते हैं और दो विभाग कर देते हैं। शोषित रस-रसानियों द्वारा शोषित होकर रसवाही नलिकाओं द्वारा आगे चलते हैं और शिराओं में जाकर मिल जाते हैं। स्निग्ध रस लसीका वाहिनी द्वारा लसीकाकोष व लसीकावाहिनी में मिल कर शिरागत रक्त में मिल जाते हैं।

इस प्रकार इस विभजन में सार भाग रस, किट्ट भाग आहार का अनशोषित शेष आहार; यह दो विभाग हो जाता है।

इस प्रकरण को चरक ने विमान स्थान अ० २-२४ में आंमाशय व पक्वाशय की क्रिया में बतलाया है :—

आमाशय गत आहारः पाकं प्राप्य पक्तुमारब्धः सन् पश्चात् पच्यमानाशये केवलं कृत्स्नं परिसमाप्तं पाकंप्राप्य

---

[1] श्वेतसार व शर्करा पाचक—बोधक श्लेष्म (Salive) आमाशयिक पाचकपित्त—आमाशयिक रस (Gastric juice) यकृतस्थ पाचकपित्त रस (Bile) आमाशयिक पाचक रस (Pancritic juce) आंत्रिक पाचक रस (succus Intericus)।

पश्चात् किट्टमूत्रपुषरीयोः पृथग् भावेन पक्वाशये गमनात् पृथग् भूत्वा सारभूतो रसाख्यो द्रवरूपः सन् रसादि वाहिनिभिः धमनीभिः स्रोतोभिः पश्चात् सर्वाशयं रस रक्तादि धात्वाशयं प्रपद्यते । च० वि० अ० २-४ ।

इस ऊपर के उद्धरण में पाचन व सारकिट्ट विभजन दोनों स्पष्ट हैं, इसमें पचने के लिए अमाशय में जाता है । (आमाशय गत आहारः पक्तुमारब्धः सन्) कुछ आमाशय पकाता है पश्चात् सम्पूर्ण पाक पच्यमानाशय (deuterium) में होता है (पश्चात् पच्यमानाशये केवलं कृत्स्नं परिसमाप्तं पाकं प्राप्य) और जब वह पूर्णपाक होकर रस रूप बन जाता है (रसाख्यः द्रव रूपः सन्, पश्चात्, किट्ट मूत्रपुरीषयोः पृथग् भावेन पक्वाशय गमनात्, पृथग् भूत्वा-सारभूतः रसाख्यः रसादिवाहिनीभिः धमनीभिः स्रोतोभिः…………धात्वाशयंप्रपद्यते) शोषित होकर रस वाहिनियों द्वारा चलकर शिरास्रोतस् व धमनियों में यथास्थान पहुंचता है ।

इस प्रकार विभजन क्रिया शोषण व परिसर्पण दो प्रकार की होती है । (obsorption) शोषण की क्रिया में (obsorption of food) द्रव रूप रस किस प्रकार शोषित होता है । इस क्रिया को स्पष्ट यों बतलाया गया है ।

विसमानानिव सूक्ष्माणि, दूरं प्रविस्तृतानि च ।
द्वाराणि स्रोतासां देहे, रसो वै उपचीयते ॥

अर्थात् पक्वाशय की भीतरी स्तरों में मृणालतंतु की तरह सूक्ष्म स्रोतस् (Villi) दूर तक फैले हुए होते हैं । इसमें के सूक्ष्म स्रोतसों द्वारा आहार रस से सार रस शोषित हो-होकर रसायनियों द्वारा रस एकत्र होता रहता है ।

इस तरह देखते हैं कि पाचित द्रव रूप आहार से रस स्रोतसों द्वारा उपचित होकर शिराओं में प्राप्त होता है ।

३. बलदानेन अनुग्रहं करोति :—

पाचक पित्त ही अन्य पित्तों को बल देता है । रंजक पित्त के निर्माण में, भ्राजक की क्रिया में, आलोचक की क्रिया में, साधक की हृद्यक्रिया में पाचक पित्त का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है । यदि पाचक पित्त समुचित मात्रा में आहार रस में न मिले तो शेष चार की भी क्रिया दुर्बल हो जाती है । रंजक पित्त के अवयव अम्ल-लवण, पाचक पित्त के लवणाम्लीय अंश से, भ्राजक के पाचक पित्तांश से, ऐसे ही आलोचक की दर्शन क्रिया शुद्ध रक्त से तथा साधक की रक्त के द्वारा संपन्न होने की सारी शक्ति समुचित पाचक पित्त की रस-रक्त में उपस्थिति द्वारा ही होती है । इनका पूर्ण विवरण पाचक पित्त के विभिन्न स्थानीय अंशों के उल्लेख के साथ स्वतः वर्णन आ जाएगा ।

(क्रमशः)

(शेषांश पृष्ठ ७०४ का)

जा सकता है। किन्तु उक्त कार्य केवल दांत की वेदना या मसूड़ों की सूजनादि में ही प्रत्यक्ष प्रयोग के द्वारा सिर्फ २४ घण्टों में सिद्धकर दिखाने का कारण तो यह है कि त्रिदोष-वात, पित्त, कफ में से कफ ही एक ऐसा दोष है जो अन्य दोषों की अपेक्षा अधिक स्थूलता धराने वाला है व इसीलिये प्रत्यक्ष प्रयोग के लिये अत्यन्त सुगमता से उपयोगी हो सकता है। तथाच सामान्यतया संपूर्ण मुख रोगों का प्रधान कारण भी उसी कफ दोष का प्रकोप होता है। इन दोनों कारणों के जैसे ही अन्य और भी ऐसे कारण हैं जिनका प्रतिपादन समय-समय पर आगामी लेखों में विस्तार से करने की कोशिश की जावेगी, जिनकी वजह से आज दांत के रोग और रोगियों की संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जा रही है। जिस प्रकार कफज अन्य रोगों की अपेक्षा दाँत के रोग अपनी उत्पत्ति-कार्य में शीघ्रता रखने वाले हैं, ठीक उसी प्रकार से उत्पन्न रोग पर कफ-दोष की घटाबढ़ी का प्रभाव भी अत्यन्त ही शीघ्रता से निर्माण कर दिखाया जा सकता है। अतएव कफ-दोष के सञ्चयादि के मुख्य केन्द्र स्थान आमाशय और मुख प्रदेश के निकटतम सम्बन्ध का, वैसे ही केन्द्र स्थानीय कफ दोष की घटाबढ़ी के कारण उत्पन्न मुखरोग पर निर्माण होने वाले इष्टानिष्ट परिणामों का तथा च कफकारक आहारादि का सेवन चालू रहने से निष्फल बनाने वाली पेनिसीलीन जैसी कीटाणुओं पर महान् परिणामकारक औषधि के प्रभावादि का सोपपत्तिक और सोदाहरण विस्तार वाला वर्णन आगामी लेख में. प्रकट किया जायेगा।

आधुनिक जंतुवाद और आयुर्वेद

वैद्य किशोरीदास गुप्ता

आधुनिक चिकित्सा-पद्धति के वैद्यकीय क्षेत्र में अग्रस्थान प्राप्तकरनेवाली एलोपैथी डॉक्टरी के प्रत्यक्ष ज्ञान का आधार "जंतुवाद"—(बेक्टीरियालोजी) पर अधिष्ठित होकर, किसी भी रोग के कारण-निदान और चिकित्सा-उपचारादि में जंतुओं की उत्पत्ति या आगमन और नाशके ही प्रधानता दी जाती है। जब कि आर्य संस्कृति के प्राचीन वैद्यक शास्त्र आयुर्वेदानुसार "त्रिदोष सिद्धांत" को प्रधान और कीटाणुओं को गौण माना गया है। जनसाधारण की समझ ऐसी है, कि प्राचीन युग में आज की यांत्रिक-साधन-सामग्री संबंधी खोज न हुई होने से आयुर्वेद के रचयिता ऋषि-मुनियों को इन कीटाणुओं-संबंधी ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती ? आज तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म कीटाणुओं का निरीक्षण सूक्ष्मता-दर्शक यंत्र द्वारा किया जा सकता है, व निर्मित रोग में कौन से कीटाणु उपलब्ध होते हैं, उनका प्रत्यक्ष में विभाजनपूर्वक अनुभव भी मिलाया जा सकता है। कीटाणु-नाशक औषध प्रयोग के द्वारा उनको नष्ट करते हुए रोग की निवृत्ति भी जल्दी से की जा सकती है। इस प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर अधिष्ठित एलोपैथी के सामने आयुर्वेद का युगों पुराना "त्रिदोष सिद्धांत" वाला ढांचा बेचारा कब तक टक्कर देते हुए खड़ा रह सकता है ? अतएव आयुर्वेद की रचना अब नये ढंग पर की जाने से ही वह जीवित रह सकता है, अन्यथा उसका मर जाना,—नष्ट हो जाना, या काल के ग्रास में समा जाना निश्चित ध्रुव सत्य है।

देश के सुशिक्षित जन-समुदाय की आयुर्वेद के प्रति जो उक्त समझ है, उसकी सीमा साधारण जन-समुदाय तक ही सीमित रही हो, ऐसा नहीं है। उसने तो वैद्य-समाज को भी आकर्षित कर अपनी ओर झुका लिया है। वह यहां तक कि त्रिदोष सिद्धांत मीमांसा की चर्चा में उलझे हुए अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामंडल में भी उसने अपना प्रवेश कर लिया है, और कलम से आयुर्वेद के स्तंभों की जड़ें ढीली करनी आरम्भ कर दी है। इन सब बातों को दृष्टिगत रखते हुए उनके संबंध में गहरा विचार करने से तो यही प्रतीत होता है, कि निकट भविष्य में आयुर्वेद का कलेवर इस प्रकार बदला जायेगा, कि "धोबी का कुत्ता न घाट का और न घर का" ही रह पावेगा। अतएव वैद्य समाज को सचेत कर जाग्रत बनाने को गरज से चेतावनी का यह स्वर इस लेख के द्वारा उसके कानों तक पहुँचा देना हम अपना परमावश्यक कर्त्तव्य समझते हैं। हमारे इस कथन के पीछे शास्त्र और प्रत्यक्ष दोनों के बल के अतिरिक्त पाश्चात्य संशोधकों की खोजों में से भी पर्याप्त बल प्राप्त हो रहा है। जिसके आधार पर आज दावे के साथ यह कहा जा सकता है, कि रोग की मूलगामी चिकित्सा के लिये या उसके संपूर्णतया निर्मूलन के लिये तो त्रिदोष सिद्धांत ही एक ऐसा सिद्धांत है, जो पूर्णता एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म विज्ञान से संपन्न है, अन्यथा बाद की जितनी भी चिकित्सा प्रणालियां आज प्रचारित हैं वे सब की सब उस ज्ञान के अभाव में अपूर्ण एवं अनैसर्गिक हैं। इतना ही नहीं वरंच उनके लिये रोगके वास्तविक या मूलगामी कारण को यथार्थ रीति से पहिचाने बिना उसका प्रतिबंध करना कदापि संभव हो ही नहीं सकता। अतएव रोग के आक्रमण से बचने के लिये एवं रोग-निवारण के लिये उसके मूलगामी कारण पर प्रकाश डालने के यथासंभव प्रयत्न दंत-विज्ञान-संबंधी इस लेख माला द्वारा किये जायेंगे।

आयुर्वेदीय रोग-निदान में जंतु वर्णन

अति प्राचीन निदान शास्त्र सुश्रुत संहितादि ग्रन्थों से लेकर माधव निदान, भाव प्रकाश, शारङ्गधरादि ग्रन्थों में मुखरोगाधिकार अन्तर्गत दांतों में होनेवाले रोगों में से एक "कृमिदन्त" इस नाम का रोग है। उसका कारण मीमांसा देते हुए उसे रक्तदुष्टि-जनित कीटाणुओं द्वारा निर्माण होने वाला कहा गया है। इसी रोग को ऐलोपैथी के मतानुसार

केह्विटी (Cavity or carreis) यह संज्ञा दी गई है, और उसका कारण एक प्रकार के बेक्टेरिया के द्वारा इस रोग का निर्माण होना बतलाया गया है। इस प्रकार निर्माण होने वाले या बाहर से आकर वास करनेवाले बेक्टेरिया के कीटाणु के लिये स्थानिक अमुक परिस्थिति को ही जवाबदार माना गया है। सारांश कि रोगोत्पत्ति के निकटतम कारण "कीटाणु का निर्माण या आगमन होना" यह बात तो पाश्चात्य और पौर्वात्य दोनों ही वैद्यक शास्त्रों को सम्मत है। किन्तु उन कीटाणुओं की उत्पत्ति या आगमन के मूलभूत कारण के सम्बन्ध में दोनों का खास मतभेद है। आयुर्वेदानुसार "स्थान वैगुण्य"—स्थानिक विकृति, रोग की उत्पत्ति के मूल कारणरूप दोष की चौथी अवस्था "स्थान संश्रय" में सहायभूत बनने का एक साधन मात्र होने से रोगोत्पत्ति के मूलभूत कारण दोष की तुलना में बहुत ही कम महत्त्व रखनेवाली है। जब कि ऐलोपैथी ने तो स्थानिक विगुणता (खराबी) को ही जंतुओं के निर्माण या आगमन का मुख्य कारण मान लिया है।

इस प्रकार स्थानिक विगुणता—(खराबी) व तज्जनित कीटाणु को प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिकों ने जितनी प्रधानता दे रखी है उतनी आयुर्वेद के रचयिता ऋषि-मुनियों ने उन (दोनों) को न देते हुये, केवल मात्र दोषों को ही दी है। फिर भी किन-किन रोगों की उत्पत्ति में उनके मूल कारणरूप दोष या दोषों को कौन-कौन से कीटाणु सहायभूत हुआ करते हैं अथवा दोष स्वयं जिन-जिन कीटाणुओं की सहायता से रोगों की उत्पत्ति किया करते हैं, भूत, पिशाच, राक्षस, ग्रह, कृमि इत्यादि संज्ञाओं के यथोचित उपयोग सहित जो वर्णन यत्र-तत्र दिया है, उससे एक बात तो स्पष्टतया सिद्ध होती है कि रोगोत्पादक कीटाणुओं के ज्ञान से आर्य आरोग्य-शास्त्र के रचयिता प्राचीन ऋषि लोग आधुनिक वैद्यक विज्ञान के संशोधक प्राचीन त्रिदोष-विज्ञान से जितने अनभिज्ञ हैं, उतने अनजान तो नहीं थे। बल्कि उनकी इस विषय की जानकारी का आयुर्वेदातिरिक्त दूसरा प्रमाण तो जैन धर्म-शास्त्रों का है, जिनमें अहिंसा के धार्मिक सिद्धांत को लेकर मानव-आरोग्य के रक्षणार्थ अनेकानेक कीटाणुओं का सविस्तृत वर्णन आज भी उपलब्ध हो रहा है। सारांश कि प्राचीनों को आधुनिक रोगोत्पादक कीटाणुओं का उस प्राचीन युग में भी पर्याप्त ज्ञान था। किन्तु दोष या दोषों को सञ्चय, प्रकोपादि अवस्थाओं के निर्माण हुये बिना सामान्यतया कीटाणुओं में ऐसी कोई शक्ति नहीं कि जिसके बल पर वे किसी भी रोग को निर्माण कर सकें। तथाच दोष के सञ्चय, प्रकोपादि द्वारा निर्माण हुए रोग को, उसके उत्पादक दोष का सञ्चय चालू रहते हुए, केवल मात्र कीटाणु-नाशक द्रव्यों के प्रयोग के बल पर निर्मूल—नाश करना भी असम्भावित था। इसलिये रोग और रोगोत्पादक कीटाणु दोनों की ही उत्पत्ति का जो मूलभूत कारण दोष है, उसका बल जब तक उन्हें प्राप्त होता रहेगा तब तक "कार्यकारण भावानुसार" दोषजन्य कार्यों का किसी भी प्रकार नाश करना मुश्किल ही नहीं, बल्कि बिलकुल असम्भव है।" हमारी अब तक की खोजों का मुख्य विषय ही यह सिद्धान्त रहा है और आज उन खोजों के बल पर लेखक इस स्थिति को पहुँच चुका है कि—"अद्यतन युग के महान जन्तुनाशक माने जाने वाली "पेनिसीलन" जैसी औषधि प्रयोग की सब ही प्रक्रियाओं को "कफ दोष" का सञ्चय प्रकोपादि बराबर चालू रखते हुए बिलकुल ही निष्क्रियताजनक या असफल सिद्ध कर दिखा सकता है। सारांश दोष सञ्चय के सामने जन्तु-कीटाणु नाशक औषधि का उपयोग बिलकुल ही निष्फल सिद्ध हो जाता है। कारण रोगोत्पत्ति का मूल कारण कीटाणु नहीं अपितु दोष है।

इस प्रकार आयुर्वेद या अन्य धार्मिक ग्रन्थों में शरीरारोग्य के रक्षणार्थ "शुचिता" का जो सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है उसका मूल हेतु ही रोगोत्पादक सूक्ष्मातिसूक्ष्म जन्तुओं से शारीरिक आरोग्य का रक्षण करना है। फिर भी पैदा हुए हुए रोग में चिकित्सा की दृष्टि से तो दोष-दृष्टि को ही प्रधानता दी गई है। इसका स्पष्ट व सरल अर्थ ही यह है कि दोष की कृति की तुलना में कीटाणुओं की कृति नगण्य जैसी होती है। इस बात को प्रत्यक्ष प्रयोगों के बल पर केवल मात्र २४ घण्टे की ही कालावधि में, दांत या मसूड़ों के किसी भी प्रकार के रोग में, इतनी सरलतापूर्वक सिद्धकर प्रत्यक्ष में दिखाया जा सकता है। जैसे एक और एक को मिला देने से गणित के विषय में दो को सिद्धकर दिखाया

(शेषांश पृष्ठ ७०२ पर)

नामूलं लिख्यते किंचिन्नानपेक्षितमुच्यते

२०—छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा

अथवा

निदान-चिकित्सा हस्तामलक

वैद्य रणजितराय

किटिभ (किटिम)—श्याववर्ण, किण[1] के समान खर स्पर्शवाला तथा परुष (रूखा) कुष्ठ किटिभ कहाता है। यह वात-कफाधिक होता है। (चरक)। स्रावी, गोलाकार, घन, तीव्रकण्डू वाला[2] तथा स्निग्ध-कृष्ण कुष्ठ किटिभ कहाता है। यह कफाधिक होता है। (सुश्रुत)

चर्मकुष्ठ (चर्माख्य)—बहल (व्यापक, विशाल) और हस्तिचर्म के सदृश[1] कुष्ठ चर्मकुष्ठ कहाता है।

---

[1] १—व्रणचिह्न; व्रण रुझने के पश्चात् रही त्वचा; Scar—स्कार, या Cicatrix—सिकेट्रिक्स। जैसे रुझते हुए व्रण में चारों ओर कण्डूयुक्त नयी त्वचा की परतें होती हैं, वैसी स्थिति इस कुष्ठ के मण्डलों में होती है। बीच में स्वस्थ त्वचा तथा सीमा पर उक्तप्रकारक दुष्ट त्वचा के खण्ड। अतः यह उपमा दी है।

[2] २—इसका साम्य आकृति, कण्डू और खर-परुषता इन लक्षणों को देखकर वर्तमानों के सोराइसिस (Psoriasis) से किया जाता है। प्रत्यक्ष से इतना और जानना चाहिये कि इसके मण्डल कभी गोल न होकर चपटे भी होते हैं। सीमा छोटी-छोटी कण्डूयुक्त पिडकाओं से बनी तथा मध्य में स्वस्थ त्वचा होती है। अनेक मण्डल पंक्ति के रूप में मिलकर माला बनाते हैं। कण्डू का वेग होने पर खुजलाने से छोटे-छोटे त्वचा के छिलके उतरते हैं। इसी कारण किटिभ या सोरायसिस कभी शिर की त्वचा (Scalp—स्कैल्प) में हो एवं रोगी केवल कण्डू और छिछड़े उतरने की व्यथा या भ्रान्तिवश स्वयं रोग का नाम (गुजराती-खोला; अंग्रेजी—Dandruff—डेण्ड्रफ) लेता हुआ आवे और चिकित्सक देखे नहीं एवं उस पर विश्वास करे तो निदान में त्रुटि होती है। दर्शन द्वारा गोल या चपटे मण्डल दिखाई दें तो किटिभ का निदान करना चाहिये। पिछले रोगको आयुर्वेद में दारुण (क) कहते हैं। देखिये—

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रपाट्यते।
कफवातप्रकोपेन विद्याद् दारुणकं तु तम्॥

सु० नि० १३-३५

दारुणा कठिना। प्रपाट्यते प्रकर्षेण पाट्यते। —डल्हन तस्य कफवातजस्यापि रक्तपित्ताभ्यामनुबन्धो विदेह-वचनादेव ज्ञेयः। तथाहि विदेह :—

यदभ्रपटलाभासमरजस्कं शिरस्त्वचि।
पारुष्यं जायते जन्तोस्तस्य रूपं विशेषतः॥
तोदैः समन्वितं वातात्, सकण्डूगौरवं कफात्।
सपिपासं सदाहार्तिरागं पित्तात् तथाऽसृजः॥ इति।

तत्रापि सदाहं पित्तात्, सार्तिरागं रक्तात्; आर्तिर्हि शोणिताद् भवति। तदुक्तं चरके—"रक्तं हि व्यम्लतां याति, तच्च नास्ति, न चास्ति रुक्" (च० चि० ५।२७)—गयदास (प्रपाट्यते—फटती है। 'अभ्रपटल' इत्यादि—शिर की त्वचा से रजकण नहीं, किन्तु अभ्रक के पटलों—पत्रों—के सदृश—छीछड़े—उतरते हैं।) डल्हन ने दारुणक का अपने काल में प्रचलित भाषा नाम 'पहा' दिया है।

जैसा कि फरवरी के अंक में (पृ० ५४१ की टिप्पणी स्तम्भ २) कहा है: कई मल्लविषपीडित रोगियों में किटिभ सदृश ही मालाकार मण्डल दीख पड़ते हैं। उनमें किटिभ-सदृश कण्डू नहीं होती, यह भेद होता है। उनमें चिकित्सा भी (प्राचीन-नवीन) अगद रूप में करने से शान्ति होती है।

[1] १—इसमें हाथी की चमड़ी के समान स्थूल और विशाल चमड़ी स्थान-स्थान पर बन जाती है। इसका वर्ण पीला, लाल, भूरा (मटियाला) होता है। पाश्चात्य-

अलसक—कण्डूयुक्त, रक्तवर्ण गण्डों (फोड़ों) से व्याप्त कुष्ठ अलसक कहाता है[1]।

शतारु—जो कुष्ठ रक्त-श्याववर्ण, दाह तथा पीड़ायुक्त और अनेक व्रणोंवाला हो उसे शतारु कहते है[2]।

विस्फोटक—पतली त्वचावाले, श्वेत-अरुण दीख पड़नेवाले स्फोट[3] विस्फोटक कहाते हैं[4]।

किलास—इसे श्वित्र, दारुण तथा अरुण भी कहते हैं। सामान्य भाषा में जिसे श्वेतकुष्ठ कहते हैं वही यह है। कभी-कभी किलास और श्वित्र में भेद किया जाता है कि—जब तक विकार त्वचा में रहता है तब तक किलास कहाता है; जब वह अन्तर्गत धातुओं में प्रवृष्ट हो जाता है तो श्वित्र कहा जाता है।

इसके दो भेद हैं—व्रणकृत और दोषज। व्रण[5] का उपचार मिथ्या होने से व्रणज तथा विरुद्धान्न-सेवन, पापाचार आदि से दोष-वैषम्य होकर जो होता है वह दोषज होता है। दोषज के दो भेद हैं—आत्मज और परज। आत्मज मिथ्याहार-विहार से होता है तथा परज रोगी की त्वचा या आसन के स्पर्श से होता है।

किलास त्रिदोषज, त्वचा में स्थित तथा स्रावरहित होता है। त्रिदोषज होते हुए भी दोषाधिक्य से तत्तत् लक्षण विशेष होते हैं। वात से मण्डल (दाग) अरुण, परुष और नाशशील होता है; पित्त से कमलपत्र-सदृश दीखनेवाला तथा दाहयुक्त और श्लेष्मा से श्वेत, स्निग्ध, बहल (विशाल) तथा कण्डूयुक्त होता है।

किलास बढ़ जाने पर धातुओं में प्रविष्ट होने पर ये लक्षण होते हैं। रक्त में स्थित होने पर किलास रक्तवर्ण, मांस में हो तो ताम्रवर्ण, मेद में हो तो श्वेत होता है। उत्तरोत्तर श्वित्र असाध्य होते हैं।

किलास के मण्डल यदि परस्पर मिल गये हों, वह बहुत व्यापक हो, उसमें रोम रक्तवर्ण हो गये हों, वह अनेक वर्षों का हो गया हो, वह अग्निदग्ध व्रण से हुआ हो; वह ओष्ठ, हाथ, पैर या गुह्य (गुह्याङ्ग) पर हुआ हो तो असाध्य होता है। जिस किलास में रोम रक्तवर्ण न हों, जो पतला हो, पाण्डुवर्ण हो, जिसे हुए बहुत समय न बीता हो, जो मध्यकाय (धड़) में हो, शोथयुक्त हो वह साध्य होता है।

कुष्ठों की चिकित्सा[1]

पथ्यापथ्य—कुष्ठी पुरुष मांस, वसा, सुरा, दूध, दही, तैल, कुलत्थ, माष, निष्पाव, (लोबिया),[2] इक्षुविकृति (ईख के रस के बने द्रव्य:), पिष्ट विकार

चिकित्साके जेन्थोमा (Xanthoma) नामक त्वचा के अर्बुद से इसका स्पष्ट साम्य है। निर्णयसागरी माधवनिदान में इसे जेरोडर्मा (Xeroderma) के सदृश कहा है, जो चिन्त्य है। उसमें त्वचा की केवल शुष्कता होती है।

१—निर्णयसागरी माधवनिदान में इसका सादृश्य लाइकेन (Lichen) से बताया है।

२—निर्णयसागरी माधवनिदान में शतारु (शत=सौ=अनेक+अरु=फोड़े) का साम्य रुपिया (Rupia) से बताया है। वह सत्य हो तो, प्राचीन भारतीयों ने फिरङ्ग का भारत में दर्शन किया था, यह मानना गलेपतित है। कारण, रुपिया फिरङ्गज उपद्रव है। मैं समझता हूँ, फिरङ्ग फिरङ्गियों के आने के पूर्व भारत में विदित था। देखिये—मार्च के सचित्र आयुर्वेद में 'वैदिक ब्रह्मचर्य' लेख।

३—छाले; Vesicles—विसीकल्स।

४—गुजराती में विस्फोटक फिरङ्गजन्य सर्वाङ्गव्यापी त्वग्गत विकृति के लिये अधिक प्रसिद्ध है।

५—व्रण शब्द से यहाँ सामान्य व्रण के अतिरिक्त अग्निदग्धज व्रण तथा उपदंशज व्रण का भी ग्रहण करना चाहिये। आगे साध्यासाध्यता के प्रसङ्ग में इस पिछले व्रण का 'गुह्य पर स्थित' विशेषण से निर्देश किया है। उपदंश शब्द का व्यवहार आधुनिकों के सॉफ्ट शेंकर (Soft chancre) के अर्थ में किया है। प्राचीनों ने इसे ध्वजभङ्ग भी कहा है। (फिरङ्ग और उपदंश—तथा ध्वजभङ्ग संज्ञाओं के शुद्धार्थ के लिये देखिये—सचित्र आयुर्वेद, मार्च १९५१ पृष्ठ ८४७।

१—देखिये—च. चि. ७; सु. चि. ९, १०।

२—लोबिया; गुजराती—चोळा।

(आटे के बने पदार्थ),[1] अम्ल, विरुद्ध, अध्यशन, अजीर्ण, विदाही, अभिष्यन्दी, दिवास्वप्न, व्यवाय (ग्रामधर्म, मैथुन)—इनका परित्याग करे। पुराने शालि, षष्टिक (साठी चावल), यव, गोधूम, कोद्रों, समा आदि का सेवन मूँग या आढकी (तुवर, अरहर) के यूष के साथ किंवा निम्बपत्र और भल्लातक[1] मिश्रित सूप के साथ करे। अथवा—मण्डूक पर्णी,[2] बाकुची, वासा और अर्क-पुष्प का शाक घृत या सर्षप तैल से साधित कर अथवा—पटोल, बाकुची, प्रपुन्नाड (चक्रमर्द) आदि तिक्त वर्ग के शाक इन्हीं से सिद्ध करके उनके साथ उक्त शालिधान्यादि का सेवन करे। जिसे मांस सात्म्य हो उसे मेद रहित जाङ्गल मांस (मरु—धन्व—भूमि के प्राणियों का मांस) दे। अभ्यङ्ग के लिए वज्रक तैल[3] का, उत्सादन (उद्धर्षण, उबटन) के लिए आरग्वधादि गण का तथा पान, परिषेक और

१—पिष्टान्न—पिष्ट (आटे) के बने पदार्थ, रोटी, पूरी, पूड़ी आदि। रोटी आदि का इतना व्यापक प्रचार देखने से, कुछ शब्द साम्यजनित भ्रान्तिवश तथा मिष्टान्नों की संस्कार गुरुता के कारण जहाँ-जहाँ आयुर्वेद में पिष्टान्न शब्द आया है वहाँ-वहाँ लोक इसका अर्थ मिष्टान्न ही करते हैं। वह चिन्त्य है। आयुर्वेद में यूष से यवागू पर्यन्त पेय (पीने योग्य), लेह्य (चाटने योग्य), अद्य (या अश्य—बिना चबाये खाये जा सकें ऐसे) अन्नपान की ही प्रशंसा है। चौथे खाद्य (या भक्ष्य—चबा कर खाये जाने वाले ; शुष्क) द्रव्यों को बहुत अच्छा नहीं कहा है। देखिये—

> पिष्टान्नं नैव भुञ्जीत मात्रया वा बुभुक्षितः।
> द्विगुणं च पिबेत्तोयं सुखं सम्यक् प्रजीर्यति ॥
> पेयलेह्याद्य भक्ष्याणां गुरु विद्याद् यथोत्तरम् ॥
> विशुष्कमन्नमभ्यस्तं न पाकं साधु गच्छति।
> पिण्डीकृतमसंक्लिन्नं विदाहमुपगच्छति ॥
> शुष्कं विरुद्धं विष्टम्भि वह्नि व्यापदमावहेत् ॥
>
> सु. सू. ४६। ४६४-४६८

शुष्कं पिष्टान्नादि—डह्लन।

पेय, लेह्य, अद्य और भक्ष्य (शुष्क) द्रव्य उत्तरोत्तर गुरु होते हैं। पिष्टान्नादि शुष्क द्रव्यों का सेवन (सर्वथा) न करना चाहिए। करना ही हो तो भूख लगने पर तथा मात्रावत् करना चाहिए। एवं, ऊपर से द्विगुण जल पीना चाहिए। ऐसा न किया जाय तो शुष्कान्न सम्यक् द्रवित न होने से पिण्डरूप रहकर विदाह (अम्ल पाक; विदग्धाजीर्ण) को प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में लङ्घन कराके अल्पाल्प और पुनः-पुनः जल पीने को दे। इससे अजीर्णान्न का पाक होता है और वह आगे धकेल दिया जाता है। अजीर्ण अधिक हो तो वमन द्वारा संशोधन करावे (अन्य प्रमाणों के लिए देखिये—सु. सू. ४६। ५०५—५०७, ५१०)।

१—भल्लातक के आहारौषध के रूप में सेवन के विषय में बहुत भीति फैली हुई है। वैद्यों को इसे दूर करना चाहिए।

२—ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी की भिन्नता—प्रायः ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी को एक समझा जाता है। कोई भिन्न समझते हुए भी दोनों को परस्पर प्रतिनिधि के रूप में व्यवहार में लाते हैं। यह ठीक नहीं। देखिये—"मण्डूकपर्णी की लता ब्राह्मी-जैसी दीखती है, परन्तु दोनों सर्वथा भिन्न हैं। दोनों का स्वरूप, प्राकृतिक वर्ग और गुण-कर्म भिन्न हैं। अतः एक के प्रतिनिधि रूप में दूसरे का व्यवहार नहीं करना चाहिए। ब्राह्मी की पत्ती चिकनी होती है और संधि पर से (मूल से) एक से अधिक पाँच-सात पत्तियाँ निकलती हैं (मण्डूकपर्णी में एक संधि से एक ही पत्ती निकलती है)। ब्राह्मी की क्रिया नाडी व्यूह (Nervous system—नर्वस सिस्टम) पर और मण्डूकपर्णी की क्रिया त्वचा पर होती है।"

—वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य—कृत द्रव्य-गुण विज्ञान, उत्तरार्द्ध, द्वितीय खण्ड, पृ० २२२।

हमारी ओर अन्य वस्तुओं के पकौड़े तैल में बनाये जाते हैं, पर उष्ण होने से ब्राह्मी के पकौड़े (बुद्धि के विकारों में प्रयोगार्थ) घृत में ही बनाने का प्रचार है। घृत उसकी उष्णता को कुछ न्यून कर देता है। वस्तुतः, ब्राह्मी का सेवन घृतों के रूप में ही संहिताओं में उपदिष्ट है। ब्राह्मी-तैल आधुनिक औषध-विक्रेताओं की कल्पना है।

३—वज्रक और महावज्रक तैलों की कृति के लिए देखिये—सु. चि. ६। ५४—६४।

अवगाहन[1] के निमित्त खदिर कषाय का उपयोग करे।

कुष्ठ रोग में खदिर की बड़ी प्रशंसा है। स्नान, पान, भोजनादि में इसके सेवन से कुष्ठ अवश्य दूर होता है, ऐसा कहा है[2]।

संशोधन—कुष्ठ रोगी को सर्वप्रथम विरेचन दे। दोष बहुत हों तो पाँच-दस दिन प्रति दिन प्रातः विरेचन देना चाहिए। प्रारम्भ में संशोधन कराने पर भी यदि पश्चात्काल में प्रतीत हो कि शुद्धि सम्पूर्ण नहीं हुई है तो पुनः संशोधन करावे। अन्यथा रोग असाध्य हो जाता है, यह निश्चय समझे। सुश्रुत कहता है रोगी को एक-एक पक्ष में (पक्ष में एक वार) वमन करावे; मास-मास में विरेचन; वर्ष में दो वार रक्तमोक्षण तथा तीन-तीन दिवस में एक वार नस्य दे[3]।

विरेचनानन्तर वात-प्रधान कुष्ठों में घृत, कफाधिकों में तथा ऊर्ध्वकायगत कुष्ठों में वमन[4] एवं पित्त-प्रधान कुष्ठों में रक्तमोक्षण करावे। कुष्ठ मात्र में दोष अल्प हो तो प्रच्छन[1] करके तथा अधिक हो तो एक से पाँच सिराओं में सिराव्यध[2] द्वारा रक्तशुद्धि करे। प्रच्छन से स्थानिक दोष का संशोधन होता है; साथ ही औषध का प्रवेश सुगम हो जाने से चिकित्सा उत्तम होती है[3]।

संशोधन के विषय में स्मरण रखे कि, दोष का प्रमाण बहुत हो और संशोधन बहुत करने की आवश्यकता हो तो तीव्र संशोधन न देकर थोड़ा-थोड़ा वार-वार संशोधन करे। एक साथ दोष-शुद्धि बहुत हो जाने से रोगी दुर्बल हो जाता है[4] और वात का प्रकोप होता है। कोष्ठ[5] की शुद्धि हो चुकने पर और वात के प्रकोप से बचने के लिए विभिन्न स्नेहों का पान करावे।

---

[1] १—सिर पर पानी आदि डाल कर स्नान परिषेक, और जलाशय, द्रोणी (टब) आदि में डुबकी लगाकर स्नानादि अवगाहन कहाता है।

[2] २—देखिये—

दिदृक्षुरन्तं कुष्ठस्य खदिरं कुष्ठ पीडितः।
सर्वथैव प्रयुञ्जीत स्नानपानाशनादिषु॥
यथा हन्ति प्रवृद्धत्वात् कुष्ठमातुरमोजसा।
तथा हन्त्युपयुक्तस्तु खदिरः कुष्ठमोजसा॥

सु. चि. ९।७०—७१

अन्य प्रमाणों के लिए देखिए—सचित्र-आयुर्वेद अगस्त १९५१, पृ० १०३।

[3] ३—संशोधन के ये सभी प्रकार शक्य हों तो कदाचित् इतनी लम्बी अवधि पर्याप्त होती हो। व्यवहार में तो विरेचन ही प्रायः शक्य होने से उसीके पूर्वोक्त विकल्प का अनुसरण किया जाता है। वह भी शास्त्र-संमत है।

(देखिये—सु० चि० ९।६८)।

[4] ४—कोई रोगी वमन के लिए तय्यार हों तो सद्वैद्य व्यवहार में प्रथम वमन कराते हैं। इसके लिए मदन फल बीज का चूर्ण कोई आधा तोला तथा सैन्धव चारवाल प्रभूत सुखोष्ण जल के साथ प्रातः दिया जाता है। पश्चात् विरेचन-कल्प दिये जाते हैं। कई वार वामक द्रव्य मात्रा से दोषों के स्रोत खुल जाने से कई दिनों तक वमन (दोष की) होता रहता है। इससे वामक द्रव्य की एक ही संशोधन होने से रोग की शान्ति ही होती है। वमन के पूर्व यत्किंचित् अन्न दे देने से उत्क्लेश बहुत नहीं होता।

[1] १—खुरदरे पत्र आदि से त्वचा को खुरचना प्रच्छन कहता है।

[2] २—पाश्चात्य चिकित्सा में भी फोड़े-फुन्सी, पामा (अकौता) आदि रक्त-विकारों तथा श्वास में सिरामोक्षण करते हैं। साथ ही, इस रस को तत्काल जघन-प्रदेश में सूचिद्वारा प्रविष्ट करते हैं। कह नहीं सकते गुण केवल सिरामोक्षण से होता है या पुनः सूची द्वारा प्रवेश से गुणान्तर (अधिक गुण) होता है।

[3] ३—देखिये—

ये लेपाः कुष्ठानां युज्यन्ते निर्हृतास्रदोषाणाम्।
संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवेत् तेषाम्॥

च० चि० ७।५३।

[4] ४—वमन या विरेचन की एक मात्रा पूर्वोक्त प्रकार से अतियुक्त सिद्ध हो तब भी उसका योग्य उपचार करे।

[5] ५—कोष्ठ का अर्थ यहाँ मध्यकाय या तदन्तर्गत प्राणवह स्रोत, आमाशय, पच्यमानाशय और पक्वाशय है; केवल महास्रोत नहीं।

कुष्ठ रोगियों के लिए वमन, विरेचन, आस्थापन, स्नेह सिद्ध नस्य तथा धूम (कृमिपातनार्थ) के द्रव्य सामान्य ही हैं। परन्तु उनकी विगत (विस्तार) में थोड़ा भेद है। इसके लिए देखो मूल ग्रन्थ। प्रच्छन उत्तम प्रकार से करने के लिए, मण्डल कठिन हों तो, विभिन्न प्रकार से स्वेदन करे, घर्षण करे, पश्चात् तीक्ष्ण शस्त्र, यवक्षार, विभिन्न पत्र (सागौन आदि के), समुद्र-फेन, गोमय[1] आदि से लेखन करे अथवा शृङ्ग, अलाबू (तुम्बी)[2] या जलौका (जौंक) का उपयोग करे।

धातु-भेद से चिकित्सा-क्रम—दोष पूर्वरूपगत हों तो वमन-विरेचन करावे; त्वचा अर्थात् रस में हों तो शोधन और लेप; रक्तगत हों तो संशोधन, लेपन, कषाय-पान, रक्तमोक्षण; मांसप्राप्त हो तो संशोधन, लेपन, कषायपान, रक्तमोक्षण, शास्त्रोक्त कुष्ठहर अरिष्टों, आसवों तथा सुराओं एवं मन्थों और प्राशों का सेवन करे। मेदोगत कुष्ठ याप्य होता है, यदि रोगी जितेन्द्रिय, पथ्यसेवी तथा साधन-संपन्न हो, और संशोधन एवं रक्तमोक्षण के अनन्तर नियमित भल्लातक, शिलाजतु, माक्षिक, गुग्गुलु, अगुरु, तुवरक, खदिर, असन और अयस्कृतियों का सेवन करे। अस्थि आदि गत कुष्ठों का उपाय न करे।

कुष्ठों में उपयोगी कल्प—

सर्व कुष्ठों में भल्लातक-तैल तथा तुवरक-तैल का विधान ऊपर लिखा है। भल्लातक-तैल की निर्माण-विधि, उपयोग-प्रकार तथा पथ्यापथ्य अर्शोऽधिकार में दे आये हैं[1]। तुवरक-तैल में भी पथ्यापथ्य यही है। इसका तैल घाणी से निकाले या मज्जा का चूर्ण कर पानी के साथ पका तैल जो जल के ऊपर आवे उसे नितार ले। मन्दाग्नि पर पानी उड़ा दे और छान ले। इस तैल को तीन गुने खदिर वृक्ष के चूर्ण या छाल के क्वाथ में पकावे। सिद्ध तैल पन्द्रह दिन कण्डों के चूर्ण में रख छोड़े। प्रातः-सायं यह तैल प्रारम्भ में पाँच बूँद की मात्रा में दे। प्रति चौथे दिन पाँच बूँद मात्रा बढ़ाकर एक तोले तक गाय के मक्खन या मलाई में दे। जैसे-जैसे सहन होता जाय, मात्रा बढ़ावे। असात्म्य हो तो विवमिषा (ग्लानि) या वमन होता है। ऐसी स्थिति में मात्रा न्यून कर दे। इसी तैल का स्नानोत्तर अभ्यङ्ग भी करावे। छः मास तक या रोगमुक्त होने तक इसका सेवन करावे। रोगी केवल दूध, मोसंबी, मीठा नीबू, मीठा अनार, सेव, केला, मीठा अङ्गूर आदि मधुर फलों पर रहकर ही इसका प्रयोग करे तो शीघ्र और विशेष लाभ होता है। यह पथ्य दुर्भर लगे तो पुराने चावल, जौ या गेहूँ की रोटी घी चुपड़, दूध के साथ दे। अम्ल, लवण, कटु पदार्थ रोग और औषध दोनों की दृष्टि से वर्ज्य हैं। सर्व महाकुष्ठों में इसके आभ्यन्तर और बाह्य सेवन से लाभ होता है। व्रण पर इसे लगाने से वह शीघ्र रुझता है। पामा और कण्डू में भी इसके बाह्य प्रयोग से लाभ होता है[2]।

चालमोगरा-तैल[3] का भी महाकुष्ठों में इसी प्रकार प्रयोग किया जाता है।

महातिक्तक घृत[4]—(द्रव्य-सप्तपर्ण, अमलतास आदि ३१ द्रव्य; आमले का रस-२५६ भाग)—१-२ तोला—

---

[1] दद्रू आदि पर हमारी ओर नारियल की रस्सी (काथानी दोरी) रगड़ कर औषध लगाने का प्रचार है।

[2] शृङ्ग या तुम्बी के स्थान पर कांच के प्याले का पाश्चात्य चिकित्सकों में प्रचलित प्रयोग (Cupping—कपिंग) भी किया जा सकता है। इसके पूर्व प्रच्छन कर लेना चाहिये।

---

[1] देखिये—"सचित्र आयुर्वेद" अगस्त १९५१, पृ० १०३।

[2] वैद्य यादव जी आचार्य कृत सिद्धयोग संग्रह तथा द्रव्यगुण विज्ञान से।

[3] पाश्चात्य औषध-विक्रेताओं के यहाँ यह मिलता है। इसके विविध इन्जेक्शन भी मिलते हैं।

[4] चरक, सुश्रुत तथा सिद्धयोग संग्रह से।

प्रातः-सायं दे। घृत से ग्लानि हो तो द्रव्यों का क्वाथ दे अथवा खेर के काष्ठ का चूर्ण तथा अनन्तर मूल डालकर आसव बना दे। मात्रा-४ तोला।

तिक्तक या तिक्तषटपलक घृत

खदिरारिष्ट[२]—(प्रधान द्रव्य-खदिर, देवदारु, बाकुची दार्वी, त्रिफला); मात्रा—२-४ तोला।

महाखदिर घृत

मन्थ-योग—मन्थों के (मन्थ-सत्तू का प्रकार) अनेक प्रयोग हैं। एक-दो नीचे देते हैं। गोमूत्र में सात दिन भावित यवों का मन्थ सालसारादि कषाय या खदिरादि कराटकी वृक्षों के कषाय से दे। अथवा—भल्लातक, चक्रमर्द बाकुची, अर्क, चित्रक, विडङ्ग, मुस्ता इनका चतुर्भाग चूर्ण डालकर दे।

अरिष्ट-योग—खदिरारिष्ट ऊपर दिया है। सुश्रुत ने पिराडारिष्ट दिया है। प्रधान द्रव्य—दन्ती, त्रिवृत्, सारिवा, लोहभस्म।

अयस्कृतियाँ—लोह आदि धातुओं के पतले पत्र बनवा उन पर लवण-वर्ग का लेप कर, अग्नि में तपा, त्रिफला, सालसारादि क्वाथ में सोलह बार बुझावे। पुनः सोलह बार खदिर के कोयलों पर गर्म करे। स्वाङ्गशीत होने पर निविड (घने) वस्त्र से सूक्ष्म चूर्ण[३] करे। कुष्ठों में इस प्रकार बनाये तीक्ष्ण लोह के चूर्ण का मधु-घृत से उपयोग करे। भोजन में अम्ल-लवण वर्जित आहार करे। इसकी एक तुला (४०० तोला) मात्रा का प्रयोग सुश्रुत ने लिखा है[४]।

गुडूची-योग—प्रति दिन प्रातः गुडूची का स्वरस या क्वाथ (अकेला या एरराड तैल में मिलाकर) ले अथवा इससे सिद्ध घृत का सेवन करे। अपराह्न में आमले के यूष के साथ घृत और भात खिलावे। एक मास या अधिक इसका सेवन करने से सर्वकुष्ठ दूर होते हैं[1]।

[शेषांश ७१२ वें पृष्ठ पर]

---

[१]—चरक, सुश्रुत दोनों में पठित।

[२]—शार्ङ्गधर-संहिता तथा सिद्धयोग संग्रह में पठित।

[३]—बृहत्-त्रयी में भी स्थान-स्थान पर विभिन्न धातुओं तथा प्रवालादि के चूर्ण का विधान है। उसका निर्माण इसीं विधि से होता था, ऐसा समझना चाहिये। पीछे रस-वैद्यों ने उसका अधिक विकास किया।

[४]—आसव, छरा, अवलेह, औषधायस्कृति, खदिर-विधान तथा स्नेह-विधान के लिये देखो सुश्रुत।

[1]—महाकुष्ठ पर गुडूची-कल्प—उत्तर गुजरात में पिछली पीढ़ी में नानभट्ट बापा नामक प्रख्यात सेवाभावी वैद्य हो गये हैं। इनकी तथा इनके वंशजों की अधिक प्रसिद्धि हरीतकी तथा लङ्घन का प्रायः सर्व रोगोंपर उपयोग के कारण है। इनके जीवन का एक वृत्तान्त है। ये प्रायः एक झोली में थोड़ी औषधें रख ग्राम-ग्राम घूमते तथा रोग-पीडित जनता को उपचार बताते या देते थे। ऐसे ही घूमते-घूमते आप एक ग्राम में पहुंचे। वहाँ आप को एक रोगी मिला, जिसे आधुनिक प्रयोगशाला-परीक्षानुसार निश्चित महाकुष्ठ (लेप्रसी) था। सारी घटना के साथी एक तहसीलदार थे। नानभट्ट बापा ने रोगी को प्रतिदिन एरराड तैल में गुडूची-चूर्ण लेने की सलाह दी। साथ ही लवण का त्याग करने को कहा। छ मास इस उपचार के करने से प्रयोगशाला की परीक्षा से भी वह रोगमुक्त हो गया। परन्तु नानभट्ट बापा कहाँ हैं, कि उनकी सलाह लेकर औषध और पथ्य का त्याग करूं, यह विदित न होने से रोगी ने औषध और पथ्य चालू रखे, यहाँ तक कि नौ वर्ष बीत गये और घूमते-घामते नानभट्ट बापा पुनः उसी ग्राम में आये। रोगी समाचार जानकर उनके पास गया और अपनी शक्ति के अनुसार पचीस रुपया शुल्क उसने नानभट्ट बापा को अर्पित किया। नानभट्ट बापा ने तत्काल अपनी झोली से पच्चीस रुपये और निकाल पचास रुपये उस रोगी को दिये और उसकी सात प्रदक्षिणा करके दराड-वत् प्रणाम किया—यह कहकर कि मुद्रा तो मुझे गुरु-दक्षिणा के रूप में आपको देनी चाहिए। कारण, मैंने तो ग्रन्थ में पढ़ा हुआ उपयोग बता दिया था। उसका इतनी श्रद्धा से पालन किया उससे आपका रोग गया और मुझे यह ज्ञान मिला कि गुडूची महाकुष्ठ पर क्रिया करती है। सो आप मेरे वन्दनीय गुरु हो। इसके पश्चात् रोगी को क्रमशः सामान्य भोजन पर आने की सलाह दी। एवं, इतने वर्ष लवण रस का परित्याग करने के कारण रोगी में कुछ वात-विकार हो गया था, उसके निवारणार्थ चूरमे के लड्डू खाने को कहा।

दन्त रक्षा के पाँच नियम

वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा वैद्य

अथर्व वेद का एक मन्त्र है जिसमें ईश्वर से यह प्रार्थना की गयी है "हे प्रभु ! मेरा शरीर दाँत सहित रहे।" कृत्रिम दाँत निस्संदेह लग जाते हैं किन्तु प्राकृतिक दन्तों की तुलना वे नहीं कर सकते। इसलिए यत्न यही करना चाहिए कि दाँत असली अर्थात् प्राकृतिक ही स्थित रहें। इस विषय में कुछ आवश्यक बातें लिखी जाती हैं।

(१) लोग समझते हैं कि दाँत दो बार निकलते हैं। वास्तव में वे तीन बार निकलते हैं। पहले दूध के दाँत कहलाते हैं। वे शीघ्र ही गिर जाते हैं और फिर उनकी जगह नये दाँत आते हैं। पहले पहल दाँत २० होते हैं, किन्तु बाद में जबड़ा बढ़ जाता है तो ३२ दाँत हो जाते हैं। यदि कोई १०० वर्ष तक जीवित रहे तो तीसरी बार पुनः नये दाँत निकलने लगते हैं।

दूध के दाँत जब निकलते हैं तब ही से इनकी रक्षा की आवश्यकता है। एक दाँत के निकलते ही माता को प्रतिदिन उसे साफ करना चाहिए और जब बच्चा समझ-बूझने लग जाए तो उसे सुझा दिया जाय कि वह अपने दाँत सदा साफ़ रखे। जो कुछ खावे, उसके बाद दाँतों को खूब साफ़ कर ले। बालक के दाँतों में मिठाई के परमाणु न लगे रहें, क्योंकि वे अम्ल होकर दाँतों को खाने लगते हैं। यह खयाल करना, कि इन दाँतों को तो कुछ समय के बाद गिर ही जाना है, इसलिए इनकी रक्षा क्यों की जावे, एक भारी भूल है। क्योंकि देखा यह गया है कि इनमें यदि कृमिदन्तक हो जाय तो अन्य दाँतों में भी यह जल्दी ही हो जाता है। ये यदि भद्दे और खराब हों अथवा हिलते हों तो नये दाँत भी वैसे ही हो जाते हैं। यदि दूध के दाँत स्वच्छ और सुदृढ़ रखे जावें तो आगामी दाँत भी उसी प्रकार के रहेंगे। बालकों को उँगली मुंह में डाल कर दाँतों को टेढ़ा न करने दो जिससे नया दाँत भी बाहर निकला हुआ अथवा अन्दर धसा हुआ न निकले।

(२) बालकों को दाँत साफ़ रखने की आदत आरम्भ में ही डाल देनी चाहिए। दाँतुन नित्य किया करें तो अच्छा है। कुछ पिसा हुआ नमक सरसों के तैल में मिलाकर मला जाय तो और भी अच्छा है। दाँतों पर दातुन इस प्रकार करनी चाहिए कि मसूढ़ों पर उसकी रगड़ न लगे और एक एक दाँत साफ़ हो जाए। कई लोगों को देखा है कि वे दाँतुन मुंह में डाले रखते हैं और पानी लिये बिना बहुत देर तक चबाते रहते हैं। टहलने निकले तो दाँतुन भी रास्ते में करते चले जाते हैं। यह बहुत बुरा है। दाँतुन को एक वार मुँह से निकाल कर धोये बिना पुनः मुँह में न डालनी चाहिए।

देखो, कभी कोई थूक कर भी चाट सकता है ? यह जिस प्रकार एक गंदी बात है, उसी प्रकार वह भी गंदी आदत है। उससे दाँत खराब हो जाते हैं। दांतुन करते समय जल को पास रखो और बार-बार दांतुन और मुंह को साफ़ करो।

(३) सोते समय दांतों को अवश्य साफ करना चाहिए। दाँतों में यदि अन्न आदि के कण लगे रहें तो वे वहीं सड़कर मसूढ़ों और दांतों को दूषित करते हैं। रात भर इनका कार्य होता रहता है। हर चीज खाने के बाद दांतों को अवश्य साफ़ करना चाहिए। युरोपीय फैशन के अनुसार किसी के सामने कुल्ली करना ठीक नहीं होता। चाय-पार्टियाँ होती हैं तो हाथ धोये बिना शुरू करते और दाँत साफ़ किये बिना समाप्त करते हैं। डिनर के बाद भी केवल उंगलियों के पोरे तो साफ कर लिये जाते हैं किन्तु गरारे अर्थात् कुल्ले करने का कोई प्रबन्ध नहीं होता। ऐसी दशा में पार्टी से उठकर एक तरफ जाकर दाँतों को अच्छी तरह साफ कर लिया करें।

(४) व्यायाम के बिना स्वास्थ्य नहीं। इसलिए दांतों का भी व्यायाम करना चाहिए। यदि आहार को पूरी रीति से चबा कर खाया जाय तो दाँतों का व्यायाम आप से आप ही हो जाता है। फिर, खाने की सब वस्तुएँ नरम न

होनी चाहिए। कुछ आहार सख्त भी होना चाहिए। चने भुनाकर चबाने का देहाती रिवाज बहुत ही अच्छा है।

(५) बहुत गरम के बाद बहुत ठंडी और बहुत ठंडी के बाद बहुत गरम चीजें मुँह में नहीं डालनी चाहिए। अधिक गरम और अति ठण्डी चीजें भी दाँतों को बिगाड़ देती हैं। मैंने एक वृद्ध मनुष्य को देखा है जिसके सब दाँत मौजूद थे। मैंने इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि उसने भोजन सदैव ठण्डा करके खाया है, गरमागरम खाने की कभी चेष्टा नहीं की। "गरम गरम फुलका"—यह सार्वजनिक बात है। इधर गरम फुलका खा रहे हैं, उधर ठण्डी बरफ का जल पी रहे हैं। दन्त-रक्षा करने वालों को इन दोषों से बचना चाहिए।

नोट—जो लोग दाँतुन के स्थान पर ब्रुश का प्रयोग करते हैं, उन्हें एक वार ब्रुश बरतने के बाद उसे खौलते पानी में डाल कर अथवा किसी कृमि नाशक वस्तु से प्रतिदिन धोकर साफ कर लेना चाहिए। नहीं तो दाँत और भी खराब हो जायेंगे। ब्रुश से दाँत साफ करने पर मसूढ़े घिसकर खोखले हो जाते हैं, जिनमें अन्न के रेशे घुस कर सड़ने लग जाते हैं। इसके अलावे जीभ का मैल साफ नहीं होने के कारण चित्त में ग्लानि बनी रहती है। हमारे धर्म-शास्त्रों ने दाँतून को धार्मिक कृत्य बतलाया है। हिन्दुस्तान के ज्यादे लोग अभी भी बिना दाँतून-कुल्ली किये खाना-पीना अच्छा नहीं समझते। अतः दाँतों को नीरोग रखने के लिए—ताजी दाँतून अच्छी होती है।

सुबह उठते ही दाँत साफ करने का सबसे बड़ा फयदा यह है कि निद्रावस्था में जो—जहर गले में जमा हो जाता है, वह साफ हो जाता है। डाक्टरों की तो यह भी सलाह है कि सोते समय भी दाँतों को ब्रुश से साफ करलेना चाहिए, जिससे अन्नके रेशे मसूढ़ों में सड़ने न पावे, हिन्दुस्तान में जो भोजन के बाद "खरखा" करने की प्रथा है, वह इस बात से पुष्ट होती है।

इसलिए स्वास्थ्य की दृष्टि से दाँतों का साफ रखना सबसे जरूरी है। दाँतों की नीरोगिता और स्वच्छता शरीर की नीरोगता और स्वच्छता के लिए परमावश्यक है।

शेषांश पृष्ठ ७१० का

महामञ्जिष्ठादि क्वाथ[1]

गन्धक रसायन[2]—गन्धक को गुडूची-स्वरस, आमलकी-स्वरस, भृङ्गराज-स्वरस आदि प्रत्येक की आठ-आठ दिन भावना दे। समभाग सिता चूर्ण मिलावे। मात्रा—४—८ गुञ्जा, प्रातः-सायं; अनुपान—जल, मञ्जिष्ठादि क्वाथ, खदिरारिष्ट, महातिक्तक घृत आदि।

बाकुची योग—कृष्ण तिल और बाकुची का एक वर्ष प्रयोग त्वचा के संपूर्ण विकारों में उत्तम है।

मिश्रक स्नेह[3]—कृष्ण तिल, भल्लातक तैल, घृत, सालसारादि कषाय—ये प्रत्येक एक-एक द्रोण, हरीतकी आदि तेईस द्रव्यों का एक-एक पल—इनका घृत बनावे। पञ्चकर्म करके प्रतिदिन प्रातः इस घृत का एक पल मधु के साथ ले। औषध पचने पर लवण-रहित मुद्ग और आमलक के यूष के साथ, खदिर के जल में तय्यार किया भात घी मिला कर ले। खदिर का ही जल पिए। यह घी एक द्रोण जितना ले।

उक्त योग महाकुष्ठों के लिए हैं। क्षुद्रकुष्ठों में भी प्रयुक्त होते हैं। क्षुद्रकुष्ठों के लिए पृथक् योग निम्न हैं।

क्रमशः

वस्तुतः गुडूची योग उत्तम वस्तु है। हमने भी कुछ रोगियों को यह प्रयोग कराया है। उनमें गुण एक सप्ताह के अन्दर होता देखा है। परन्तु पूर्ण चिकित्सा किसी ने करायी नहीं, कदाचित्, एरण्ड तैल से घबरा कर। सो उसका त्याग किया जा सकता है। सुश्रुत में भी गुडूची-कल्प के साथ एरण्ड-तैल विहित नहीं है। अन्य विरेचन दिया जा सकता है। विद्वान् वैद्य इसका अधिक अनुशीलन करें। हमने प्रातः स्वतन्त्र एरण्ड तैल तथा दिन में तीन बार चौथाई तोला गुडूची-चूर्ण दिया था।

---

[1] —सिद्धयोग संग्रह में पठित।

[2] —सिद्धयोग संग्रह में पठित।

[3] —सु. चि. १०।१५ में पठित।

मानसिक आरोग्य में विश्वास की आवश्कता

प्रो० लालजीराम शुक्ल

प्रत्येक प्रकार का मानसिक रोगी संशय युक्त मन का रहता है, उसे न दूसरों पर और न अपने आप पर विश्वास रहता है। उसका अनुभव उसे सिखाता है कि उसके समीप के सम्बन्धी उससे छल ही करते हैं और सारा जगत छल से भरा हुआ है। रोगी होने पर वह अपनी कई जगह चिकित्सा कराता है; परन्तु वह किसी की चिकित्सा पद्धति में विश्वास नहीं करता। वह एक वैद्य से दूसरे के पास जाता; एक डाक्टर से दूसरे के पास और एक मनोवैज्ञानिक से दूसरे के पास जाता रहता है। जब वह एक प्रकार की चिकित्सा कराता रहता है तो उसका मन दूसरी चिकित्सा में फँसा रहता है। जब वह एक डाक्टर से बातचीत करता है तो वह उसकी बातों का दूसरे डाक्टर की बातचीत से तुलना करता है। वह जब कभी मानसिक चिकित्सक के पास जाता है; तो वह पूरे मन से नहीं जाता। उसका मन कहता रहता है कि सम्भवतः उसका रोग शारीरिक है। अतएव थोड़ी ही दिन वह अपनी मानसिक चिकित्सा कराकर फिर अपने पुराने वैद्य अथवा डाक्टर की शरण लेता है। जैसे-जैसे उसके चिकित्सकों की संख्या बढ़ती जाती है उसका अभिमान और बढ़ता जाता है। जितने विख्यात डाक्टर, वैद्य अथवा मानसिक चिकित्सक उसे सलाह देते हैं; उसका रोग वे उतना ही जटिल बना देते हैं। वह जब सामान्य व्यक्ति के पास जाता है तो वह जानता है कि बड़े-बड़े जहाँ असफल हो गये, इस छोटे से मनुष्य से क्या हो सकता है। ऐसे मनुष्य की चिकित्सा करना अपने समय को खोना नहीं वरन् अपनी क्षति भी करना है। इस कार्य की असफलता स्वयं चिकित्सक में आत्मविश्वास को घटा देती है।

जो मनुष्य जितना धनी होता है उसमें दूसरों के प्रति विश्वास की उतनी ही कमी होती। ऐसे व्यक्ति में अपने आपमें विश्वास उत्पन्न करना कठिन है। धनी मनुष्य का किसी व्यक्ति के प्रति सच्चा होना बड़ा ही कठिन है। धन के संग्रह में उसे जिस छल से काम लेना पड़ता है वही छल उसका विनाशक हो जाता है। फिर धनी मनुष्य को सभी प्रकार की सहायताएँ सुलभ रहती हैं। वह कई प्रकार के डाक्टरों की सलाह एक साथ ले सकता है। अतएव वह प्राप्य कई डाक्टरों का उपचार एक साथ कराते रहता है। लेखक को ऐसे रोगियों के अनेक बार अनुभव हुए हैं जो धनी होने के कारण लेखक की चिकित्सा में रहते हुए अनेक प्रकार की दूसरी चिकित्सा भी कराते रहे हैं। एक व्यक्ति जिसकी तनख्वाह एक हजार रुपया मासिक है, मानसिक चिकित्सा के साथ-साथ वायोकेमिक, प्राकृतिक तथा टोना-टोनी भी कराते रहता है। उसका रोग मानसिक है। परन्तु उसे इसका पूरा विश्वास नहीं। उसको इसका थोड़ा-सा आभास अवश्य मिला है। अतएव मानसिक चिकित्सा कराना भी वह लाभप्रद मानता है।

एक दूसरे रोगी और भी धनी हैं। इन्हें अकेले रहने का भय रहता है। अपने रोग की चिकित्सा के लिये वे सारे भारतवर्ष में भ्रमण कर चुके हैं। उनका रोग सत्रह साल का हो गया है। सभी प्रकार की चिकित्साविधियाँ उन्होंने अजमा ली हैं। मानसिक चिकित्सक के उपचार का भी अनुभव है। सभी वैद्य, डाक्टर उन्हें सुलभ हैं। अतएव उनका विश्वास किसी एक वैद्य, डाक्टर अथवा मानसिक चिकित्सक पर नहीं है। उन्हें थोड़े ही दिन में अपना चिकित्सक बदलना पड़ता है। जैसे-जैसे वे अपने चिकित्सकों की

संख्या बढ़ाते जाते हैं उनका रोग और भी जटिल होता जाता है। मानसिक चिकित्सा में मनुष्य को अपने आपको खोलना पड़ता है। अतएव मानसिक रोगी अपने आपको प्रायः उस समय चिकित्सा से अलग कर लेता है, जब उसकी गुप्त बातों का चिकित्सक के समक्ष खोलने का समय आता है, ऐसे अवसर पर उसका रोग और भी बढ़ जाता है। अतएव वह सोचने लगता है कि उसका रोग मानसिक न होकर शारीरिक ही है।

उक्त रोगी लेखक के पास तीन दिन आया। उस समय लेखक ही उसके रोग के विषय में अनेक बातें कहता रहा तथा निर्देश विधि से उसे निद्रा में डालते रहा। परन्तु जब उसकी अपने आपसे खोलने की बारी आयी तो वह लेखक के पास न आ सका। उसका पेट का रोग बढ़ गया और उसके उपचार के लिये उसे रुक जाना पड़ा। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि उक्त सभी प्रकार की क्रियायें तथा उसके विशेष प्रकार के चिन्तन के गुप्त हेतुओं का ज्ञान स्वयं रोगी को नहीं रहता। जब तक मनुष्य को रोग की आवश्यकता रहती है तब तक उसके मन में किसी भी चिकित्सक के प्रति विश्वास नहीं होता। रोगी का गुप्त मन रोगी को ताड़ना देना चाहता है और इस ताड़ना के परिणाम स्वरूप ही रोगी की वह मानसिक स्थिति होती है जिससे वह दैन्य भाव से चिकित्सक के पास आता है। ऐसी ही स्थिति में उसे मानसिक चिकित्सक से लाभ भी होता है।

मानसिक रोगी की चिकित्सा में जितनी विश्वास की आवश्यकता है उतनी अन्य प्रकार के रोगों में आवश्यकता नहीं रहती। ऐसे तो सभी प्रकार के रोग डाक्टर पर विश्वास रहने पर शीघ्रता से चले जाते हैं और डाक्टर पर विश्वास न रहने पर वे जहाँ के तहाँ रह जाते हैं। मनुष्य के स्वास्थ्य लाभ करने में उसका आत्मनिर्देश काम करता है, और इस आत्मनिर्देश का आधार विश्वास होता है। फिर मानसिक रोगों की चिकित्सा का आधार रोगी के मनोभावों का चिकित्सक पर आरोपित होता है।

मान लीजिये मानसिक रोगी के दबे मनोभाव प्रेम के हैं, तो वह पहलेपहल चिकित्सक को ही प्रेम करने लगता है। हमारा प्रेम ऐसे किसी भी व्यक्ति से हो जाता है जिससे हम अपना हृदय खोलकर बातचीत करते हैं। जब अपने ही सम्बन्ध में ये बातें होती हैं तो वे सभी भाव जो दबे हुए रहने के कारण रोगी के मन को अशान्त बनाये रखते हैं प्रकाशित होकर साथी पर चले जाते हैं। इसी के कारण भाव-प्रकाशित करनेवाला व्यक्ति उसकी सुननेवाले व्यक्ति को प्यार करने लगता है। जो व्यक्ति हमें अपने हृदय की बातें सुनाने का जितना अधिक अवसर देता है और जिसके समक्ष हम अपना हृदय जितना ही खोल सकते हैं वह हमें उतना ही प्यारा होता है। प्रत्येक स्वस्थ्य व्यक्ति का विश्वास किसी ऐसे व्यक्ति में अवश्य होता है जिसके समक्ष वह अपना हृदय पूर्ण तरह खोल सकता है। मानसिक रोगी को अपने चिकित्सक के समक्ष हृदय खोलना पड़ता है। अपने हृदय को इस प्रकार खोलने से एक ओर रोगी का मानसिक भार हल्का होता है दूसरी ओर उसका प्रेम चिकित्सक के प्रति हो जाता है। चिकित्सक के प्रति प्रेम और उसमें विश्वास ही पीछे अपने आप के प्रति प्रेम और विश्वास में परिणत हो जाता है। अपने आप में विश्वास लाने की पहली सीढ़ी दूसरे में विश्वास करना है और आत्मप्रेम प्राप्त करने के लिये दूसरे लोगों के प्रति मैत्री भाव के अभ्यास का प्रारम्भ है। फिर यही मैत्री भाव का अभ्यास आत्मा से एकता में परिणत हो जाता है। हमारा अपना भाव एक ओर हमारे सबसे समीप है और दूसरी ओर वह व्यापक भी है। वही मनुष्य अपने आप को पूरे मन से सुखी कर सकता है जो अपने कामों को भला समझता है और अपने कामों को भला समझना व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यता रखता है।

मानसिक रोगी दो प्रकार के होते हैं, एक वे जिनकी प्रेम की इच्छा अतृप्त रहती है। इसका दमन मनुष्य के नैतिक अभिमान (Super Ego) से होता है। दूसरे मानसिक रोगी वे होते हैं जिनकी नैतिक भावना का दमन होता है।

पहले प्रकार के रोगियों को प्रायः हिस्टीरिया का रोग होता है। इस रोग में मनुष्य अपनी अचेतन अवस्था में प्रेम के भावों का अभिनय करता है। इस रोग में मनुष्य में उसकी सांकेतिक चेष्टाएँ, उसके शारीरिक रोग, प्रेम के दमन के प्रतीक होते हैं। वह अपने दबे इन भावों को दूसरों के समक्ष इसलिये स्वीकार नहीं करता कि वे उन भावों की निन्दा करेंगे। वह फिर अपने आप से भी भुलाने की चेष्टा करता है। भुलाने की चेष्टा से ही मानसिक रोग होता है। जब कोई मनुष्य जिसमें रोगी श्रद्धा रखता है सहानुभूतिपूर्वक रोगी की बातों को सुनने को मिल जाता है तो उसका रोग जाता रहता है। ऐसी स्थिति में रोगी का प्रेम और विश्वास मानसिक चिकित्सक के प्रति अत्यधिक बढ़ जाता है। जैसे-जैसे रोगी का प्रेम और विश्वास आत्म-प्रेम और विश्वास चिकित्सक पर बढ़ता है वैसे-वैसे रोग भी कम होता है। यही प्रेम और विश्वास आत्म-प्रेम और विश्वास में परिणत हो जाता है और मन के विभाजन की अवस्था का अन्त हो जाता है।

दूसरे प्रकार के रोग अधिक जटिल होते हैं। ऐसे रोगों में व्यक्ति की धर्मबुद्धि का दमन रहता है और वह रोगी से बदला चुकाती है। मान लीजिये किसी व्यक्ति ने व्यभिचार किया है और इसे पाप समझते हुए उसकी स्मृति को छिपा लिया है तो उसे चोरी करने की झक लग सकती है। कभी-कभी इस प्रकार की झक झूठी चोरी पर अर्थात् चोरी के आरोप पर ही आरोपित हो जाती है। ऐसे व्यक्ति को चारों ओर इस प्रकार के व्यक्ति दिखाई देते हैं जो उसे चोर समझते हैं। यह उसका भ्रममात्र रहता है। ऐसे ही व्यक्तियों को पेट के फोड़े, हृदय की धड़कन, दमा, क्षय, उकवत, श्वेतकुष्ठ आदि रोग हो जाते हैं।

अकेले रहने का भय, दूसरों के समक्ष आने में लज्जा का अनुभव, सफाई का झक आदि रोग उन लोगों को होते हैं जो किसी प्रकार के कुकृत्य को करने पर आत्मग्लानि का अनुभव किये और उस सन्ताप को भुलाने की चेष्टा जिन्होंने की है। अपने किसी बुरे कर्म के लिये जिन्हें पूरा सन्ताप हो जाता है और जो इससे अपने सुधारने की शिक्षा ले लेते हैं, उन्हें ये रोग नहीं होते। सन्ताप सुधार की आवश्यकता रखता है अतएव सन्ताप के बाद जो लोग आत्मसुधार करते हैं उन्हें उक्त प्रकार के मानसिक रोग नहीं होते। परन्तु जो लोग अपने सन्ताप को जबरन भुलाने की चेष्टा करते हैं वे अनेक प्रकार के मानसिक रोग के भागी होते हैं। जिन लोगों की पाप की मनोवृत्ति दबी रहती है उनके प्रकाशित आचरणों में बढ़ी-चढ़ी नैतिकता और सफाई दिखाई देती है। ऐसे लोग अपने कृत्यों की किसी दूसरे व्यक्ति के समक्ष आत्म-स्वीकृति करने को तैयार नहीं रहते। वे अपने आप को किसी दूसरे व्यक्ति से कम मानने को तैयार नहीं रहते। उनकी श्रद्धा किसी व्यक्ति पर नहीं होती। अतएव ऐसे लोग देर तक अपने किये का परिणाम मानसिक रोग के रूप में भोगते रहते हैं।

मनुष्य की आयु जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, उसके प्रेम सम्बन्धी रोगों की संख्या कम होती जाती है। और पाप भावना के दमन के रोगों की संख्या बढ़ती जाती है। प्रौढ़ लोगों के मानसिक रोग प्रायः उनके किसी अनैतिक आचरण से सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे रोगियों में आत्मस्वीकृति की क्षमता नहीं रहती। न तो वे अपने अभिमान को कमा सकते हैं और न अपना आत्म-सुधार ही कर पाते हैं। मनुष्य की पाप भावना, उसकी श्रद्धा किसी व्यक्ति के प्रति, जमने नहीं देती और इसके कारण वह किसी भी व्यक्ति के आत्म-स्वीकृति भी नहीं कर पाता। किसी भी व्यक्ति के प्रति आत्म-स्वीकृति भाव से ही रोग नहीं जाता। इस व्यक्ति के प्रति रोगी की श्रद्धा होना आवश्यक है और उसके द्वारा रोगी को आश्वासन मिलना भी आवश्यक है कि उसका मन अब शुद्ध हो गया। अब उसे यंत्रणा नहीं होगी। कभी-कभी इस प्रकार का आश्वासन पाते ही रोगी का मानसिक रोग चला जाता है। यहां रोग के विनाश का कारण—चिकित्सक के प्रति विश्वास ही रहता है। यह

विश्वास रोगी का आत्म-निर्देश बन जाता है। फिर मनुष्य का रोग इस आत्म-निर्देश से नष्ट हो जाता है।

मानसिक रोगी जिस प्रकार किसी मनुष्य में विश्वास नहीं करता इसी प्रकार वह अलौकिक सत्ता के अस्तित्व में भी विश्वास नहीं करता। वह सभी मनुष्यों को धोखेबाज समझता है। वह अलौकिक सत्ता के उपस्थिति का कोई प्रमाण नहीं देखता, अतएव इसके अस्तित्व को भी उसका आन्तरिक मन उसी प्रकार झूठा मानता है, जिसे उसके अनुभव में आये चालाक लोगों की अन्य बातों को वह झूठा मानता है। मानसिक रोगी कभी-कभी अपनी इस अविश्वास की मनोवृत्ति को जानता है। परन्तु कभी-कभी वह इसे नहीं भी जानता। कुछ मानसिक रोगियों को नास्तिकता की मनोवृत्ति से भी भय हो जाता है। अतएव वे डर के मारे आठ-आठ घण्टे तक संन्ध्या-पूजा-पाठ करते रहते हैं। इस प्रकार का पूजा-पाठ ही उनका मानसिक रोग बन जाता है। वे पूजा-पाठ में विश्वास न रखते हुए भी वाध्य होकर उसे करते हैं। इस प्रकार के पूजा-पाठ से उनकी मानसिक जटिलता बढ़ती जाती है। मनुष्य को उसी काम के करने से वास्तविक लाभ होता है, जिसमें उनका विश्वास है और जिसे वह अपना उत्कर्ष का अनिवार्य साधन जानता है। उसका विश्वास मनुष्य को वही फल दिलाता है जिसकी वह चाह करता है। विश्वास के अभाव में किया गया कार्य मानसिक शक्ति और इच्छा शक्ति के बल को नष्ट करता है।

किसी मनुष्य के स्थायी मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए देश काल के परे एक नित्य स्थायी सत्ता में विश्वास रखना आवश्यक है। आधुनिक काल के सबसे बड़े वैज्ञानिक चार्ल्सयुंग महाशय का कथन है कि "मैंने चालीस साल मानसिक चिकित्सा के अनुभव में जिसमें मैंने संसार के विभिन्न देश के लोगों की चिकित्सा की; एक भी व्यक्ति को ऐसा नहीं पाया जिसे सच्चे धर्म की लगन होते हुए मानसिक रोग हुआ हो और कोई भी व्यक्ति नहीं मिला जिसका रोग किसी नित्य सत्ता में विश्वास किए बिना सदा के लिए चला गया हो।" इसी प्रकार आधुनिक मानसिक चिकित्सा विधि के एक विशेषज्ञ श्री ब्रिल महाशय का कथन है कि "जो लोग नित्य सर्वशक्तिमान सत्ता के अस्तित्व में विश्वास करते हैं; उन्हें मानसिक रोग नहीं होता।" मानसिक रोग और जड़वाद एक दूसरे के सापेक्ष हैं। खुला जड़वाद मनुष्य के लिए उतना घातक नहीं होता जितना छिपा जड़वाद होता है। छिपा जड़वाद अध्यात्मवाद और आदर्शवाद की आड़ लेकर व्यवहार में सुखवाद को चरितार्थ करता है। जो व्यक्ति भौतिक सुख के परे दूसरे सुखों को जानता है अर्थात् जो दूसरों को सुखी बनाने में—रचनात्मक कार्य करने में अपने सच्चे सुख को देखता है; वह मानसिक रोगी कदापि नहीं होता। फिर जो व्यक्ति संसार का नियंत्रण करने वाली सत्ता में विश्वास करके विचारता है कि उसका रोग भी उसकी ही आज्ञा से आया है और ऐसे ही न्यायी नियम से मिला दंड उसके लिए अवश्य कल्याण कर होगा; वह अपने रोगों से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है। जब संसार को चलाने वाला तत्त्व भला है; तो जो कुछ होता है वह सब भले के लिए ही होता है। इस विचार के बार-बार मन में लाने से जटिल से जटिल मानसिक रोग नष्ट हो जाते हैं।

रोग मन की निर्बल अवस्था का नाम है। इस अवस्था में मनुष्य की इच्छा शक्ति कमजोर रहती है। उसकी कल्पनाएँ उसकी इच्छा शक्ति के नियंत्रण में नहीं रहती। ऐसी अवस्था में कोई अभद्र कल्पना मन में आजाने पर मनुष्य को अत्यन्त त्रास देने लगती है। ऐसे लोग अकारण चिन्ताओं से त्रसित रहते हैं। वे अपनी कल्पनाओं को जैसे-जैसे दबाने का प्रयत्न करते हैं ये कल्पनाएँ और भी बढ़ती जाती हैं। इस कल्पना और इच्छा शक्ति के संघर्ष से मनुष्य का व्यक्तित्व अस्तव्यस्त हो जाता है। यह अन्तः इच्छाशक्ति को बली बनाने से होता है। इच्छा शक्ति का बल तप करके, दूसरों की सेवा करके, निष्काम कार्य करके तथा एक नित्य सत्ता की उपस्थिति में विश्वास बढ़ाने से बढ़ता

है। यह सत्ता जिस प्रकार संसार के विभिन्न कार्यों का संचालन कर रही है उसी प्रकार वह मनुष्य के मन का और उसके जीवन के समस्त क्रियाओं का भी संचालन कर रही है। मनुष्य का बाह्य जगत और उसका अन्तर्जगत एक दूसरे के सापेक्ष हैं। अतएव जब मनुष्य के मन में ही विभाजन हो जाता है और उसका अभिमानी मन किसी नियम को नहीं मानता तो बाहर भी उसे कोई क्रियात्मक नहीं दिखाई देता। फिर मनुष्य का अन्तर्यामी मन उसे मानसिक रोग के रूप में दंड देने लगता है; ताकि मनुष्य अपने भीतर चलने वाले नियम को समझे। उसे यह दंड बाहर से भी अनेक प्रकार के दुर्घटनाओं के रूप में मिलता है। दोनों का लक्ष्य मनुष्य को घटनाओं के पीछे और मन की क्रियाओं के पीछे काम करने वाली सत्ता का ज्ञान कराना है। जब मनुष्य इस सत्ता के अस्तित्व में विश्वास करने लगता है तो उसका रोग चला जाता है।

आधुनिक मानसिक चिकित्सा विधि के विषय में इंग्लैंड के एक विशेषज्ञ डाक्टर विलियम बासन महाशय अपने "साइकोलाजी एण्ड साइकोथोरलिटिक्स" नामक पुस्तक में लिखते हैं कि "मनुष्य को स्वास्थ्य रहने के लिए सदा ही विश्वास की आवश्यकता है।" विश्वास के आधार पर मनुष्य संसार की विभिन्न घटनाओं के आन्तरिक अर्थ को लगाता है और जब तक मनुष्य ऐसी सत्ता में विश्वास नहीं करता जो संसार के विभिन्न कार्यों का संचालन कर रही है वह आन्तरिक शान्ति नहीं पाता। देखा गया है जिन लोगों का विश्वास मरने के बाद होने वाले जीवन में है अर्थात् पुनर्जन्म में जो विश्वास करते हैं वे इतनी संख्या में मानसिक रोगों के शिकार नहीं होते; जितने पुनर्जन्म में विश्वास न करने वाले लोग मानसिक रोगों के शिकार होते हैं। संसार में मनुष्य को अनेक प्रकार की निराशाएँ मिलती हैं। उसे अनेक प्रकार के धोखे होते हैं, उसे प्रियजनों का शोक सहना पड़ता है। जो व्यक्ति सोचता है कि शरीर के अन्त होने पर उसका सब कुछ चला जायगा वह इसी जन्म में सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहता है और जब उसे अपने इच्छित पदार्थ के पाने की आशा नहीं रह जाती तो सिवाय पागल होने के उसके पास कोई चारा नहीं रह जाता। परन्तु जो व्यक्ति सोचता है कि संसार में अन्याय नहीं होता और जो पदार्थ उसे इस जन्म में नहीं मिला वह उसे अगले जन्म में मिलेगा। वह अपने पुण्यकर्मों का फल इसी जीवन में पाने के लिए उत्सुक नहीं होता। फिर ऐसा व्यक्ति उन जघन्य अपराधों को करने से भी हिचकता है; जो पीछे अनेक प्रकार के मानसिक रोगों का कारण बन जाते हैं। पुनर्जन्म का विचार गरीब को सताने, अन्याय का धन खाने और बदला लेने की भावना का प्रतिकार करता है। मनुष्य को विषम मानसिक रोग उसकी धर्मबुद्धि के प्रतिकूल आचरण करने के कारण ही होते हैं। जो व्यक्ति लौकिक जीवन को अस्थायी मानता है और इसके परे दूसरे जीवन को भौतिक मानता है वह धर्म बुद्धि की अवहेलना नहीं करता।

फिर मनुष्य का सबको हितैषी और दयावान सत्ता में विश्वास उसे आत्म-भर्त्सना की मनोवृत्ति से भी बचाता है। किसी बुरे कार्य को करके मनुष्य उसके लिये केवल पश्चात्ताप करके अपना कोई कल्याण नहीं कर सकता। उसे रचनात्मक कार्य में लगाना आवश्यक है। इस प्रकार के कार्य में लगाने के लिए पश्चात्ताप की मनोवृत्ति का आना आवश्यक है। नित्य सत्ता का ध्यान मनुष्य को इस मनोवृत्ति से मुक्त करता है। जिस व्यक्ति को इस सत्ता का हस्तामलकवत्-ज्ञान है, वह उसकी समीपता का अनुसरण करके अपने आपको कर्तृत्व की बुद्धि से मुक्त कर देता है। वह कहता है :—

"जो कुछ किया सो तू किया, मैं कुछ कीन्हा नाहिं।
जो तू कहे कि मैं किया, तूहि था मुझ माहिं"॥

वास्तव में मनुष्य के पूर्णता का अभिमान ही उसके अनेक प्रकार के मानसिक रोगों का कारण है। वास्तविक पूर्णता के अज्ञान में मनुष्य अपने परिमित व्यक्तित्व में ही पूर्णता का आरोपण कर लेता है।

विशेषतया छात्रों के लिए

श्वास के प्रकार

वैद्य रणजितराय

सचित्र आयुर्वेद के फरवरी अङ्क में एक श्वास रोगी की स्वानुभव सिद्ध चिकित्सा प्रकाशित हुई है। उसे तथा संहिताओं में श्वास के प्रकरण में इस रोग के जो भेद दिये हैं उन्हें समझने में विद्यार्थी को सरलता हो इस प्रयोजन से आगे कुछ पंक्तियों में इस विषय को विशद करने की चेष्टा की जाती है।

व्यवहार की दृष्टि से प्रथम श्वास के दो भेद किये जा सकते हैं—असाध्य और साध्य। असाध्य श्वास तीन हैं—महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास और छिन्नश्वास। साध्य के दो भेद हैं—तमक श्वास और क्षुद्र श्वास। इनमें पहले असाध्य श्वासों का स्वरूप समझ लें।

श्वास-मात्र में कफ और वात दोनों का प्रकोप होता है; जैसा कि इसकी संप्राप्ति में कहा है।

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः।
विष्वग् व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान् करोति सः॥

च० चि० १७।४५

तथापि, महाश्वास में वात का प्राधान्य होता है और ऊर्ध्वश्वास में कफ का। (तमक श्वास के रोगियों में भी किसी में वात का प्रकोप अधिक होता है और अन्य में कफ का। यह देखकर चिकित्सा-भेद करना चाहिए।) इस दिशा में महाश्वास पीड़ित रोगी के लिए वद्धमूत्रवर्चाः तथा ऊर्ध्वश्वास रोगी के लिए श्लेष्मावृतमुखस्रोताः यह चरक के दिये विशेषण सदा स्मरण रखने चाहिए। अन्य लक्षण इन विशेषणों में सूचित लक्षणों के ही परिणाम भूत होते हैं।

उपनिषदों में कहा है कि, जीव वृक्ष को छोड़ता हुआ उसकी जिस-जिस शाखा को जिस क्रम से छोड़ता जाता है उसी क्रम से वह-वह शाखा सूखती जाती है। इसी प्रकार जीव शरीर के जिस-जिस अवयव को छोड़ता जाता है वह-वह अचेतन और अक्रिय होता जाता है। महाश्वास और ऊर्ध्वश्वास का भेद समझने के लिए यह ग्रन्थ बड़ा ही उपयोगी है।

महाश्वास में जीव शरीर का त्याग करते हुए पक्वाशय को प्रथम छोड़ता है। इसीसे उनकी चेष्टा विनष्ट होकर मल तथा मूत्र का विबन्ध होता है। मल के अवरोध से वात का भी संचय होकर आटोप होता है। इस संचित वायु (अपान) से श्वसन की हेतुभूत प्राण वायु का आवरण होता है। नवीन क्रिया शारीर के शब्दों में कहना हो तो, श्वासपटल (महाप्राचीरा), फुप्फुस और हृदय का पीड़न होने से श्वासकृच्छ्र होता है। यह स्थिति शनैः—शनैः बढ़ती जाती है। आध्मान और आटोप नाभि के नीचे से आरम्भ होकर क्रमशः ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं। अन्त में प्राण का परिपीड़न पूर्ण होकर पुरुष की मृत्यु होती है। इसी वस्तु को चरक ने उद्धूयमान वातः विशेषण से व्यक्त किया है। चक्रपाणि ने इसका अर्थ दिया है—'उद्धूयमान इति ऊर्ध्वं धूयमानवातः।' मधुकोश में चक्रपाणि ने इस वचन की स्पष्टता की है—'उत् ऊर्ध्वं धूयमानो नीयमानो वातो यस्य स तथा।' यही अर्थ आतङ्क दर्पण ने भी दिया है।

श्वास लेने में पीड़न नीचे की ओर पक्वामाशय में होता है, इसी कारण श्वास ग्रहण करने में अधिक काल लगता है—वह दीर्घ होता है। आधुनिकों के शब्दों का व्यवहार करना हो तो 'इन्स्पिरेशन लॉङ्ग' होता है। चरक ने यह बात निम्न शब्दों में कही है—उच्चैः

श्वसिति। चक्रपाणि व्याख्या में कहता है—'उच्चैरिति दीर्घम्'। इसी कारण—दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद् विज्ञायते भृशम्। रोगी का श्वास-ग्रहण प्रयत्नोत्पादित होने से दूर से ही दिखाई देता है। पाश्चात्य चिकित्सा में इसे 'हीव्ड इन्स्पिरेशन' भी कहते हैं। वायु का बाहर निकालना श्वासपटल के अधीन होने से और उसके उक्त प्रकार से दबे होने से 'एक्स्पिरेशन' लघु होता है। संक्षेप में, इस श्वास में प्राधान्य वायु का और मूल पक्काशय में होता है। शेष लक्षण इन्हीं के अनुसारी होते हैं, जो सरलता से समझे जा सकते हैं।

ऊर्ध्वश्वास में इसके विपरीत प्रधान दोष कफ तथा मूल प्राणवह स्रोतों में होता है। चरक ने यह सूचना इसके लक्षण में श्लेष्मावृत मुखस्रोताः इस विशेषण द्वारा दी है। अर्थात् इस रोग में मुख तथा स्रोत (प्राणवह तथा जलवह) कफ से व्याप्त होते हैं। अन्य शब्दों में प्राण कफ से आवृत हो जाने से उसकी क्रिया (श्वसन) मन्द हो जाती है। महाश्वास में जीव प्रथम पक्कामाशय को छोड़ता है, जिससे उसके प्रथम अचेत न होने से उक्त लक्षण होते हैं, जब कि ऊर्ध्वश्वास में जीव प्रथम प्राणवह स्रोतों का परित्याग करता है, जिससे कास के वेग द्वारा कफ को बाहर निकालने की उनकी क्रिया क्षीण हो जाती है। परिणामतया, वायु क्रुद्ध होकर श्वास को उत्पन्न करता है। क्रुद्ध का अर्थ संचित कफ से प्राण वायु (कार्बनिकएसिड) का आवरण, (अवरोध) एवं उसके कारण उसका संचय और वृद्धि है। यह वृद्ध वायु अपनी क्रिया श्वसन को अधिक प्रमाण में करता है—श्वास की गति को बढ़ा देता है। यही उसका प्रकोप है। प्रकोप होने पर दोषों की अपनी प्राकृत क्रिया में वृद्धि हो जाती है, यह आयुर्वेदीय सिद्धान्त है। श्वास के प्रकरण में उसका स्वरूप यह है। पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र के शब्दों में कहना हो तो कफ से आवरण होने के कारण प्राणवायु उचित प्रमाण में बाहर नहीं निकल पाता, जिससे वह श्वास क्रिया के केन्द्र को उद्दीपित (उत्तेजित) कर उसके दर (रेट) को बढ़ा देता है। महाश्वास में प्राण इसी प्रकार अधोवात से आवृत, संचित और प्रकुपित होता है'[1]।

जो हो। ऊर्ध्वश्वास में प्राण के मार्गों का अवरोध होने से वायु का तो दीर्घ होता ही है, उसका अन्दर ग्रहण उससे भी दीर्घता होता है। चरक ने कहा भी है—दीर्घं श्वसिति यस्तूर्ध्वं न च प्रत्याहरत्यधः। चक्रपाणि कहता है—दीर्घं श्वसिति 'श्वासस्य बहिर्गमनं दीर्घकालं करोति। न च प्रत्याहरत्यध इति श्वासमधो न नयति।' आगे फिर कहा है—ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधः श्वासो निरुध्यते। होता यह है कि—प्राणवह स्रोत कफ से आवृत होने के कारण श्वास ऊपर के थोड़े से भाग में ही होता रहता है। रोग के नाम के प्रथम पद (ऊर्ध्व) से यही व्यक्त किया है। प्राणवह स्रोत कफ से आवृत होने से वायु के गमनागमन के कारण खड़-खड़, खड़-खड़ शब्द निरन्तर सुनाई पड़ता है। श्रवण परीक्षा में हृदय तथा फुप्फुस के अन्य शब्द सुनाई ही नहीं पड़ते।

तीसरा असाध्य श्वास छिन्नश्वास है। इसमें जैसा कि नाम से तथा 'यस्तु श्वसिति विच्छिन्नम्' तथा न वा श्वसिति इस वर्णन से विदित है—श्वास क्रिया बीच-बीच में कुछ क्षणों के लिए रुक जाती है। इसमें मर्मों में व्यथा होती है। मर्म का अर्थ आतङ्क-दर्पण में हृदय, बस्ति और शिर किया है, जो नव्य प्रत्यक्षानुसार सर्वथा सत्य है। श्वास का इस प्रकार विच्छेद नव्य मत से 'चेइन-स्टोक्स रेस्पिरेशन' में होता है। इस प्रकार की विच्छिन्न श्वास क्रिया केन्द्रीय नाड़ी संस्थान (शिर), हृदय तथा फुप्फुस के रोगों (हृदय) और यूरीआ आदि विषों की व्याप्ति (बस्ति) में होती है तथा अरिष्ट[2] है। चेइन-

---

[1] १—प्राचीन दर्शनों और आयुर्वेद में प्राण का अर्थ श्वास क्रिया में बाहर निकलने वाला वायु तथा अपान का अर्थ इसी क्रिया में अन्दर जाने वाला वायु है। यह विषय विस्तार से शरीर क्रिया विज्ञान में देखिये।

[2] २—Serious omen—सीरिअस ओमेन।

स्टोक्स रेस्पिरेशन में श्वासक्रिया धीमे-धीमे मन्द होकर कुछ क्षणों के लिए रुक जाती है। कई रोगियों में यह प्रमाणवत् होती हुई सहसा रुक जाती है। तब इसे इसके अन्वेषक के नाम पर बायट्स[1] रेस्पिरेशन कहा जाता है।

श्वास-विषयक उक्त सिद्धान्त समझ लिया जाय तो नित्य के व्यवहार के लिए इन तीन श्वासों को एक किनारे रखा जा सकता है। मुमूर्ष (आसन्न मृत्यु) रोगियों में ये—मुख्यतया प्रथम दो—देखे जा सकते हैं—अनायास देखने को मिल सकते हैं। शेष रहे दो साध्य कहे जाने वाले श्वास—क्षुद्रश्वास और तमकश्वास। इनमें क्षुद्र श्वास सामान्यतया स्वस्थ पुरुषों में विबन्ध, आध्मान, अत्यशन आदि से होता प्रायः देखा जाता है। ऐसी स्थिति में अल्पमात्र श्रम से इसका वेग हाँफ के रूप में हो आता है। पाण्डु रोग, यक्ष्मा आदि रोगों के उपद्रव रूप में जिस श्वास का निर्देश होता है, वह यही है। यह समझ लिया जाय तो इसकी चिकित्सा का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसमें सोम, पुष्पकरमूल, कुष्ठ आदि स्तम्भनिवारक द्रव्यों की कुछ आवश्यकता नहीं होती। पाण्डु रोगादि का उपद्रव भूत श्वास यह है, यह विद्यार्थी समझ ले तो आयुर्वेद के पक्ष में यह उपहासास्पद स्थिति नहीं रह जाती कि, जिस-तिस रोग के उपद्रवों की श्रेणी में श्वास कहाँ से आ घुसता है? कारण 'श्वास रोग' से विद्यार्थी को सामान्यतया जिसे तमक श्वास कहते हैं, उसीका स्मरण हो आता है और वह इन रोगों के उपद्रव रूप देखा नहीं जाता।

पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र के परिचय से विद्यार्थी को विदित होगा कि—प्राण वायु को बाहर निकालने का कर्म रक्तकणों का है। पाण्डु रोग, यक्ष्मा आदि में इनकी न्यूनता हो जाने से प्राण वायु का निर्हरण यथोचित प्रमाण में नहीं होता। वह योग्य से अधिक मात्रा में अन्दर रह जाती है, जिससे पूर्वोक्त प्रकार से श्वास की गति बढ़ जाती है। यही क्षुद्रश्वास है। यक्ष्मा में, प्रारम्भ में प्राणवाह स्रोतों के शोथजन्य घनत्व[1] के कारण तथा अनन्तर काल में उनके नाश और कोटर बन जाने से स्रोतों की अल्पता के कारण प्राणवायु का संशोधन (निर्हरण) यथावत् नहीं हो पाता। परिणामतया, उसका संचय होकर पूर्वोक्त प्रकार से प्रकोप (श्वास रोग की उत्पत्ति) होता है। क्षुद्रश्वास, रक्तक्षय, रस क्षय आदि कारणों से होता है। अतः तत्तत् कारण की ही चिकित्सा इसमें करनी चाहिये। मेद के कारण (हृदय पर पीड़नवश) क्षुद्रश्वास हो तो उसका उपचार करे। पुष्करमूल, सोम, कुष्ठ आदि स्तम्भ-निवारक औषध, जैसा कि ऊपर कहा है, तमकश्वास में ही उपयोगी होते हैं, क्षुद्रश्वास में नहीं। श्वास (हाँफ) यदि मल, वायु और मूत्र के विबन्ध के कारण हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिए।

अवशेष रहा तमकश्वास। श्वासमात्र में कफ और वात दोनों सहकारी होते हैं; तथापि किसी में कफ का और किसी में वात का प्राधान्य होता है। सो प्राप्त तमकश्वास रोगी में किस दोष की प्रबलता सविशेष है, यह ऊपर महाश्वास और क्षुद्रश्वास में कहे भेद के अनुसार ही समझना चाहिए। इसी भेद को लक्ष्य में रखकर चरक कहता है।

> हिक्काश्वासामयी ह्येको बलवान् दुर्बलोऽपरः।
> कफाधिकस्तथैवैको रूक्षो बह्वनिलोऽपरः॥
>
> च० चि० १७।८८

अर्थात्—हिक्का और श्वासरोगी दो प्रकार के होते हैं—कफाधिक अतएव बलवान् और पुष्ट; तथा वाताधिक अतएव दुर्बल और रूक्ष। इस दोष भेद को लक्ष्य में रखकर चिकित्सा-भेद किया जाता है। इनमें कफ-प्रधान श्वासरोगी की चिकित्सा में आवश्यक प्राणवह स्रोतों की शुद्धि को ही लक्ष्य में रखकर कहा गया है—

> एते हि कफ संरुद्ध गतिप्राण प्रकोपजाः।
> तस्मात् तन्मार्ग शुद्ध्यर्थं देया लेहा, न निष्कर्फे॥
>
> च० चि० १०।१२०

---

[1] १—Biot's.

[1] १—Hepatization—हिपेटाइज़ेशन।

व्यवहार में विशेषतया देखे जाने वाले इस श्वास और क्षुद्रश्वास में भेद यह जानने योग्य है कि क्षुद्रश्वास के वेग श्रम से होते हैं—जबकि तमकश्वास के वेग (दौरे) विना भी श्रम के, प्रायः रात को सोते समय होते हैं—वेग के कारण रोगी सहसा जाग उठता है, तथा अन्य चिह्न देखे जाते हैं। वेग प्रायः रोगियों में शीत ऋतु या वर्षा ऋतु में होते हैं—शेष ऋतु में रोग शान्त (दबा) रहता है। इसी प्रकार कई रोगियों में अमुक शीत वस्तु खाने से ही इसके वेग होते हैं। रोगियों में छाती के रोगों (कास-श्वासप्रधान संतत ज्वर-न्यूमोनिया),आघात आदि का इतिहास तथा आदि बल प्रवृत्ति (कुलजता) होना भी सम्भव है[1]।

तमक श्वास के वेग रात को होने के कारण कुछ अंशों में रात्रि का शीत काल है ; परन्तु बड़ा कारण उस समय भोजन के संबन्ध से वायु का प्रकोप होना है। इसी कारण इस लेख के आरम्भ में निर्दिष्ट लेख में वात की शान्ति को लक्ष्य में रख कर दिये उपचारों में सायंकाल भोजन शीघ्र कर लेने या अल्प तथा संस्कारित आहार लेने का उपदेश है, एवं वैद्य ऐसा ही परामर्श रोगियों को देते भी हैं। भोजन शीघ्र कर लेने से उसके सम्बन्ध से जो वात का प्रकोप अन्नपान पक्वाशय में जा कर होने से होता है, वह रोगी के शयनकाल से पूर्व ही हो चुकता है और रोगी रात को वेगरहित सुखनिद्रा लाभ करता है।

शिशुओं के श्वास-प्रधान ज्वर में भी दुष्टि वात-प्रधान है या कफ-प्रधान, इसका निर्णय चिकित्सा के विचार से आवश्यक होता है।

१—ऊपर दिये 'ऐते हि' इत्यादि श्लोक में कफ से प्राणवायु का अवरोध तथा उसके तज्जन्य प्रकोप का निर्देश है। नवीन विज्ञान से इसकी तुलना करने से आयुर्वेदोक्त प्राणवायु का स्वरूप आधुनिक विज्ञान की संज्ञा में समझना बहुत ही सरल है कि, कार्बन डाइ ऑक्साइड ही आयुर्वेद तथा प्राचीन दर्शनों का प्राणवायु है। विस्तार के लिए देखिये—शरीर-क्रिया-विज्ञान।

ग्रीष्म ऋतु में प्रत्येक घर में रखने योग्य

हैजे की सुप्रसिद्ध तीन दवाएँ

बैद्यनाथ अर्क कपूर—हैजा शुरू होते ही बैद्यनाथ अर्क कपूर पिलावें। इससे १०० में ९० रोगी अच्छे होते हैं। हैजे के दिनों में २ बूँद "बैद्यनाथ अर्क कपूर" नियमित सेवन करने से हैजा होने का भय नहीं रहता, मूल्य—आधा औंस ।॥). चौथाई औंस ।≶)

बैद्यनाथ अर्क पुदीना—पुदीने की ताजी पत्तियों का सार है। पेट फूलना, खट्टी डकार आना। अजीर्ण, जी मिचलना, भूख न लगना, पेट दर्द आदि रोग इसके सेवन से तत्काल नष्ट हो जाते हैं। मूल्य—१ औंस १), आधा औंस ॥-), चौथाई औंस ।-)

बैद्यनाथ अमरधारा—यह प्रायः सभी रोगों में—खाने, लगाने दोनों में तत्काल फायदा करती है। कै, दस्त, वदहज़मी, पेट दर्द, बुखार, खाँसी आदि किसी भी प्रकार का रोग हो, "बैद्यनाथ अमरधारा" खिलाते ही लाभ होता है। चोट, मोच, जलना, कटना आदि में इसे रूई के फाहा में—लगाकर लगाने से लाभ होता है। मूल्य—१ ड्राम ॥-)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०—कलकत्ता, पटना, झाँसी, नागपुर।

श्लीपद ज्वर

कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय

ज्वर के साथ वंक्षण में (जाँघ की सन्धियों में) अत्यन्त पीड़ा और ऐंठन करने वाली सूजन पैदा हो जाती है। फिर यह क्रम से धीरे-धीरे जाँघ, घुटने के ऊपर और टखने में होते हुए पाँवों में चली जाती है, सूजन एकाएक नीचे नहीं जाती। इसका दौरा होता है और दौरे पर सूजन प्रायः कुछ नीचे उतरती है। इसी को श्लीपद कहते हैं। इसी प्रकार ज्वर के साथ हाथ, कान, नाक, आखें, शिश्न, ओठ और नाक में भी पीड़ायुक्त शोथ या प्रदाह हो जाता है। मूल श्लोक में अपि शब्द आया है उससे पाँव में भी होता है ऐसा समझना चाहिए। उपरोक्त लक्षण श्लीपद का पूर्वरूप समझा जाता है। हमारी राय में यह पूर्वरूप ही एलौपथी का फाइलेरिया है। जिसकी उत्पत्ति कीटाणु से मानी जाती है।

श्लीपद वातज,पित्तज,ककज भेदसे तीन प्रकार का होता है। वातज में ज्वर तीव्र होता है; सूजन काली और रूक्ष होती है, जो बिना किसी कारण के रोग हो जाता है। पित्तज में दाह और ज्वर होता है। सूजन मृदु और पीली होती है। कफज श्लीपद स्निग्ध,श्वेत-पाण्डु, भारी और स्थिर होती है। जिस स्थान पर पुराना पानी जमता है ;सूखने नहीं पाता और जो स्थान सब ऋतुओं में शीतल रहता है उन्हीं देशों में श्लीपद विशेष रूप से होता है। ऐसे देश पर्वत की तराई, नीचीजमीन और आनूप देश आदि होते हैं।

नव्यमत

फाइलेरिएसिस और एलिफैन्टाइसिस ये दोनों रोग फाइलेरिया बैक्टीरिआ या कीटाणु के कारण उत्पन्न होते हैं। यह कीटाणु मच्छर द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं। इस कीटाणु वाला मच्छर जब काटता है तब उसके दंश के साथ इस कीटाणु के अण्डे प्रवेश पा जाते हैं और लासीका-प्रणाली में घर कर लेते हैं, वे अण्डे बढ़कर बच्चें पैदा करते हैं, ये कीटाणु गहरी शिराओं में प्रवेश कर जाते हैं; ये कीटाणु स्वतः २-इञ्च से ४ इञ्च तक लम्बे होते हैं और बहुत पतले होते हैं। ये कीटाणु स्वयं कोई हानि नहीं करते हैं लेकिन ये गेंडुली मार कर लसीका प्रणाली में बैठ जाते हैं, और इस गेंडुली के कारण लसीका-प्रणाली में रुकावट पड़ जाती है। इस रुकावट के कारण ही हानि होती है। वस्तुतः

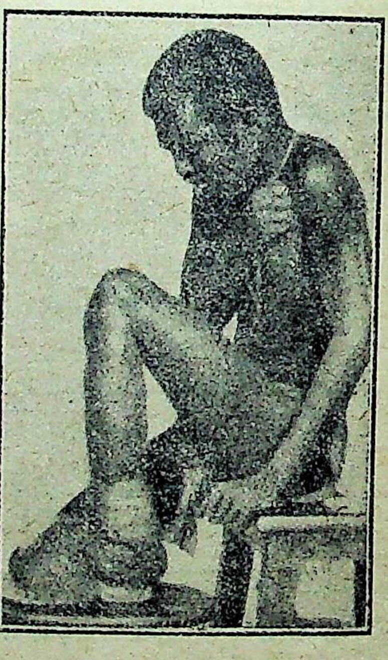

श्लीपद–रोगी

रोग तब होता है जब स्थान सूज जाता है या वहाँ प्रदाह होता है। कभी-कभी वहाँ पर ज़ख़्म भी हो जाता है। इस कारण लसीका-प्रणाली में दरार पड़ जाती है और वह सिकुड़ जाती है। यह सिकुड़ाई स्थाई रूप से क्षति पहुंचाती है।

चाइलयूरिया, एलिफैन्टाइसिस, अण्डकोष में सूजन या प्रदाह आदि लक्षण प्रगट हो जाते हैं। यह ज्वर प्रायः शीत लग कर आता है। चाइलयूरिया में दूध के रंग का पेशाब होता है और नीचे रखे रहने पर जम जाता है, इस रोग में पेशाब में वसा घुलकर आती है, वसा के निकल जाने से रोगी कमजोर होने लगता है, यदि आक्रमण बार-बार हो। चाइलयूरिया होनेका कारण यह है कि गुर्दे के चारो ओर की लसीका प्रणाली विकार ग्रस्त होजाती है और यह विकार गुर्दे में भी घुस जाता है तथा वसा छन कर पेशाब में आने लगती है यह आयुर्वेद का "वसा मेह" है।

एलिफैन्टाइसिस में पाँव की या अण्डकोष की त्वचा मोटी पड़ जाती है और उस स्थान की त्वचा के तंतुओं में सूजन हो जाती है। यह स्थानिक लसीका प्रणाली के विकार के कारण होती है।

लिम्फ स्क्रोटम में अण्डकोष की लसीका प्रणाली में सूजन हो जाती है और लसीका वाहिनी फैल जाती है क्योंकि उसके ऊपर का मार्ग अवरुद्ध रहता है। उनके फट जाने का भी भय रहता है और फट जाने पर वसा अधिक मात्रा में निकलती है और घाव जल्दी नहीं भरता है।

फाइलेरिया का आक्रमण अक्सर ज्वर के साथ ही होता है, और अण्डकोष, जाँघ की गिल्टियां अथवा अन्य लसीका प्रणाली में प्रदाह होता है। इसके कभी-कभी वायु के बढ़ जाने से पाँव आदि भी टेढ़े हो जाते हैं, किसी-किसी को आक्रमण के कारण उदर-शूल भी होने लगता है, किसी को गुर्दे की भी बीमारी हो जाती है। उक्त दोनों प्रकार के निदानों में अधिक साम्य है। ठण्डे स्थान और अनूपदेश में ही मच्छर होते हैं और वहीं यह रोग होता भी है। आयुर्वेदीय मत से स्पष्ट है कि बिना जीवनीशक्ति क्षीण हुए कीटाणु अपना प्रभाव नहीं दिखा सकते। इसीलिये कीटाणुओं की प्रभुता नहीं मानी गई है।

असाध्य लक्षण

जिस श्लीपद में शिखर की तरह बहुत-सी गाँठें उत्पन्न हो गई हों, उसे विशेष करके त्याज्य समझना चाहिए।

अन्य असाध्य

कफ कारी आहार-विहार के कारण जो श्लीपद उत्पन्न होता है अथवा कफप्रकृति वाले को जो उत्पन्न होता है, तथा जो बहुत बढ़ गया हो जिससे स्राव होता हो जिसमें खुजली होती हो तथा जिसमें त्रिदोष के लक्षण मिलते हैं। उस कफज लक्षण वाले श्लीपद का त्याग करना चाहिए।

चिकित्सा

लंघन, आलेपन, स्वेदन, रेचन, सेचन और कफ नाशक उपाय करके श्लीपद की चिकित्सा की जाती है।

वातज श्लीपद में स्नेह, स्वेद, पुलटिस बाँधना या लेप लगाना चाहिए। और गुल्फ (घुट्टी) के चार अंगुल ऊपर शिरावेध करना चाहिए। पित्त से उत्पन्न श्लीपद में गुल्फ से नीचे शिरावेध करना चाहिए। और शीतल क्रिया करनी चाहिए और पित्त के अर्बुद या विसर्प के समान चिकित्सा करनी चाहिए।

(१) मजीठ, मुलहठी, रास्ना, हँस, पुनर्नवा इन सब को काँजी के साथ पीस कर पित्तज श्लीपद पर लेप करना चाहिए।

(२) धतूर, पुनर्नवा, सहिजन और सरसों का

गरम-गरम लेप लगाने से श्लीपद नष्ट होता है।

(३) दुर्गन्धित करंज के पत्ते का रस पीने से श्लीपद शान्त होता है।

(४) सहदेवी को दूध के साथ पीने से श्लीपद शान्त होता है।

(५) पलास की जड़ का स्वरस पीली सरसों के तेल में मिला कर पीने से श्लीपद शान्त होता है।

(६) विधारे का चूर्ण गोमूत्र के साथ पीने से एक वर्ष पुराना श्लीपद शान्त होता है।

(७) गोमूत्र श्लीपद की उत्कृष्ट औषधि है। इसके पीने से ही ३-४ मास में श्लीपद शान्त हो जाता है।

(८) हर्रे का चूर्ण गोमूत्र के साथ पीने से श्लीपद शान्त होता है।

(९) सिहोरे की छाल का काढा बना कर गोमूत्र के साथ पीने से श्लीपद शान्त होता है।

(१०) गुर्च, सोंठ, और देवदारु का काढ़ा बना कर गोमूत्र मिला कर पीने से श्लीपद नष्ट होता है।

(११) पीपरी, त्रिफला, दारु हल्दी, सोंठ, और पुनर्नवा प्रत्येक २-२ तोला और सब के बराबर विधारा लेकर चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को ६ माशे से ९ माशे तक गोमूत्र या काँजी के साथ मिला कर पीना चाहिए। इस औषधि के पच जाने पर भोजन करे। इससे श्लीपद, प्लीहा, गुल्म, अरुचि, मन्दाग्नि आदि दूर होते हैं। यह महापिप्पल्यादि चूर्ण है।

(१२) पीपरि १ तोला, चीता २ तोला, दन्ती ४ तोला, हर्रे २० तोले, गुड़ २ तोला सब का चूर्ण कर ले और शहद के साथ १ तोला औषध खाए। यह श्लीपद को शान्त करने के लिए उत्तम योग है।

(१३) रेंड़ी के तेल में छोटी हर्रे भून ले। ५-७ हर्रे खाकर गोमूत्र पीने से बहुत जल्दी श्लीपद का दौरा रुक जाता है।

पथ्यापथ्य

इसमें कड़वी और तीती चीज लाभदायक होती हैं। सभी कफकारी चीजें त्याग देनी चाहिए। जौ, कुल्थी, पुराना चावल, लहसुन, परवल, बैंगन, करैला सहिजन, पोई आदि शाक पथ्य हैं। रेंड़ी का तेल, और गोमूत्र भी पथ्य है। हमारी राय में चावल एकदम बन्द कर देना चाहिए।

पिट्ठी की चीज, दूध, दही, घी, गुड़, चीनी, मछली और आनूप देश के जीवों का मांस, मीठी और खट्टी चीजें, विन्ध्याचल की नदियों का पानी, चिकनी और अभिष्यन्दि चीजें, गोरखपुर जिले की तराई का जल त्याग देना चाहिए

आयुर्वेदीय मत से लंघन इस रोग की प्रधान क्रिया है। मैंने इस रोग के अनेक रोगियों को आराम किया है। स्वयं मेरे सम्बन्धी कई बार इस रोग से आक्रमण हो गए। परन्तु बिना किसी उपद्रव के और रोग का कोई लक्षण अवशिष्ट छोड़े बिना तीन-चार दौरे के वाद रोग शान्त हो गया।

सामान्य उपवास से इसमें काम नहीं चलता। मैंने एक व्यक्ति को १७ दिन का उपवास कराया। उपवास में केवल फलों और तरकारियों का रस देता रहा और प्रतिदिन एनिमा देता रहा। उपवास के १२ दिन बाद रोग का दौरा पुनः हो गया; नहीं रुका। सम्भवतः उन्होंने कुछ कफकारक पदार्थ जैसे चावल आदि खा लिए। उन्हें रेंड़ी के तेल में भुनी हरड़ से लाभ हुआ। एक मास में दौरा रुक गया।

इस रोग में पथ्य खास चीज़ है। चावल, दूध दही, घी, केला, आलू, मिठाइयाँ, लौकी आदि बिलकुल बन्द कर देना चाहिए। एनिमा रोज लीजिये और रेंड़ी के तेल में भुनी हर्रे खाइए। मल निकल जाने और उपवास से कफ ठीक हो जाने से एवं कीटाणुओं के नाश होने पर यह रोग शीघ्र भाग जाता है। कड़वे और तीते रस वाली तरकारियाँ इसमें पथ्य हैं, करैला, परवल आदि इसमें खाना चाहिये। कच्ची गूलर की तरकारी भी खाई जा सकती है। इसके लिए एलोपैथी में कोई अचूक दवा नहीं है। अण्डकोषों की यदि त्वचा कड़ी पड़ जाय तो उसे काट के निकाल देने के अतिरिक्त डाक्टरों के पास कोई उपाय नहीं है। यदि रोग पुराना हो जाय तो प्रायः नहीं जाता। नये रोग का आक्रमण रुक सकता है। सुना है अब कोई पेटेण्ट औषधि निकली है जो बड़ी लाभदायक समझी जाती है। परन्तु वह बहुत मंहगी आती है।

माता-रोग

वैद्य लक्ष्मीनारायण चौरासिया

मैं इस रोगको माता-रोग से ही परिचय देना अधिक उपयुक्त समझता हूं। वैसे तो इस रोग के देशभेद और भाषाभेद से अनेकों पर्यायवाची नाम हैं। यथा—आयुर्वेद में इन्हें मसूरिका, चर्मपिड़िका, रोमान्तिका, यवसूचिका, कोद्रवा तथा मसूरिका भेद शीतला कहते हैं। इनमें वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रक्तज और चर्म पीड़िका तथा रोमान्तिका ये सात प्रकार की विशेष मसूरिका हैं और यवसूचिका तथा कोद्रवा ये दो साधारण (लघु) मसूरिका हैं तथा पानीसहा, दुःख कोद्रवा, हाम, चमरगोटी, सर्षपिका यह पाँच शीतलाभेद मसूरिका नाम से परिचय मिलता है। उर्दू भाषाभाषी इन्हें चेचक तथा खसरा नाम से परिचय देते हैं। आंग्लभाषा में स्मॉलपॉक्स, चिकिन पॉक्स और मीज़िल्स नाम से परिचय दिया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ और नाम भी जुदगी, आकड़ा, काकड़ा, हंसनी, खेलनी, वसन्त आदि भी पाये जाते हैं। वास्तव में ये सम्पूर्ण नाम मसूरिका के अन्तर्गत हैं।

मसूरिका के सभी नामों और भेदों को साधारणतया माता नाम से सम्बोधन किया जाता है और माता को हमारे यहाँ देवी से सम्बोधित करके देवी कहते हैं। इन दोनों शब्दों का पूर्ण समाधान आपको आगे चलकर मिलेगा। सर्व प्रथम हमें यह देखना है कि माता अर्थात् मसूरिका को उत्पन्न करनेवाला मुख्य कारण क्या है, इस विषय पर हमें अब तक जितने साहित्य उपलब्ध हुये हैं, वे सब केवल इतना ही बतलाते हैं कि यह संक्रामक अर्थात् छूत का रोग है; जो एक से दूसरे को लग जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में जब कि उपलब्ध वैज्ञानिक साधनों से अनेकों रोगों के अतिसूक्ष्म कीटाणुओं को देखकर निर्णय किया जाता है, तथा हमारे खाद्य पदार्थों के जीवन तत्त्व को दृष्टिगत करके उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार के विटामिन नाम से परिचय कराया जाता है- तब माता-रोग के विषय में आधुनिक विज्ञान के सूक्ष्म निरीक्षण के पश्चात् भी केवल निम्न शब्द मिलते हैं। यथा :—

“**सम्भवतः** मसूरिका को पैदा करनेवाला **कोई अति सूक्ष्म कीटाणु है** जो पीड़िकाओं की पूय और खुरण्डों में उपस्थित रहता है। यह अति तीव्र संक्रामक है, रोगी के स्पर्श और विस्फोटादि के मल से दूषित रूमाल, वस्त्रादिक तथा परिचारकों द्वारा यह प्रसार पाता है। (डा० आशानन्दजी पञ्चरत्न एम० बी० बी० एस० आयुर्वेदाचार्य कृत पाश्चात्य निदान पद्धति द्वारा लिखी गई व्याधि विज्ञान पुस्तक से)

क्या? इन अनुमानित शब्दों से माता रोग के वास्तविक कारणों का पता लगता है? और जब तक हमें किसी रोग के वास्तविक कारण का पता न लगे, तब तक हम उस व्याधि के लिये किसी भी प्रतिरोधक अथवा शामक उपाय को कैसे स्वीकार कर लें तथा इसी सिद्धान्त के अनुसार माता-रोग के प्रतिरोधक उपाय टीका पर कैसे विश्वास करें। थोड़ी देर को मान लिया जाये कि यदि हमें किसी उपाय से लाभ होता है, तो हम अन्धविश्वास से ही उस लाभ को

क्यों न उठाते रहें ! किन्तु माता-रोग के प्रतिरोधक उपाय टीका को एक शताब्दी अधिक समय से अनिवार्य रूप से लगाये जाने पर भी इस रोग से होने वाली हानियों में भी अभी तक कोई कमी नहीं आई। सम्भव है कुछ सज्जनों को यह विश्वास हो कि म्युनिसिपल आंकड़ों द्वारा इस रोग में बहुत कमी आ गई प्रतीत होती है, किन्तु वास्तविकता इसके विरुद्ध है ; जिसके निम्न कारण हैं। प्रथम कारण तो यह है कि म्युनिसपल कमेटियों को इस रोग से पीड़ित होने के रोगियों की सूचना पाँच प्रतिशत भी नहीं मिल पाती, जिसका मुख्य कारण चिरकाल से चली आ रही इस रोग में चिकित्सा न कराने की प्रथा है, और पाँच प्रतिशत रोगियों को यदि सूचना चिकित्सकों द्वारा मिलती भी है तो, वह भी ऐसी परिस्थिति के रोगियों की जिसकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है, तब घरवाले अत्यन्त विह्वल अवस्था में यह सोचकर किसी चिकित्सक को दिखला देते हैं कि सम्भव है हमारा बालक किसी औषध से बच जाये, अन्यथा ९५ % गृहस्थ भीषण से भीषण माता रोगी को भी चिकित्सक को दिखाना, सम्मति लेना अथवा चिकित्सा कराना देवीमाता का विरोध मानते हैं। और उन पांच प्रतिशत सूचनाओं में भी यह प्रत्यक्ष देखा गया है कि चिकित्सक की सूचना स्मॉल पॉक्स की पहुंची और म्युनिस्पैलिटी के रिकार्ड में वह लिखी जाती है "चिकिन पॉक्स"। यही दशा मृत्यु संख्या लिखी जाने की भी है। यह कटु सत्य मैं इसलिये लिख रहा हूं ताकि हमारे जिम्मेदार व्यक्ति इस ओर ध्यान दें और कोई ऐसी योजना सोचें जिससे इस समय में भी "जब कि हमारी सरकार का लाखों रुपया टीके के के प्रचार में इसलिये व्यय किया जाता है कि इस रोग में कमी आकर इस रोग से होने वाली हानियों से जनता को राहत मिले" हम इस अन्धेरे में ही न बने रहें, कि टीके के प्रचार से इस रोग में कमी आ गई है। हमारा उद्देश्य टीके की आलोचना करना नहीं वरन् वास्तविक तथ्य को सामने रखकर सरकार को सचेत करने का है ताकि वह इस रोग का सामुख्य लेने के लिये गलतफहमी में रुपया बर्बाद न करके कोई नया उपाय सोच सके।

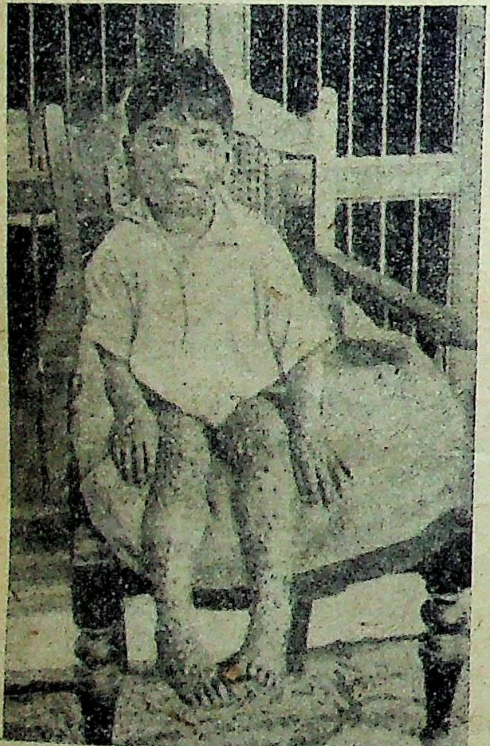

चेचक से पीड़ित बालक

टीके की अनुपयोगिता के विषय में कई अन्यान्य देशों में सूक्ष्म निरीक्षण किये गये, और वहाँ उसे अनुपयोगी प्रमाणित होने पर त्याज्य माना गया है, उन लोगों ने ठोस कदम उठाकर निरीक्षण किया, और इसकी अनुपयोगिता के आंकड़े दिये हैं। ऐसा साहित्य आंग्ल-भाषा में कई बार प्रकाशित हो चुका है, और कुछ तो अभी भी होम्योपैथिक साहित्य में विद्यमान है, जिसको होम्योपैथी के पण्डितों ने अवलोकन किया होगा। क्या हम आशा करें कि

चिकित्सक समाज के उत्तरदायी सज्जन इस ओर ध्यान देंगे, और माता-रोग (मसूरिका—pox) का यह प्रचलित प्रतिरोधक उपाय टीका के वास्तविक परिणामों का निरीक्षण करके अपनी सरकार के समक्ष उपस्थित करेंगे और इस रोग से होनेवाली भयंकर हानि को रोकने के लिये कोई नवीन अनुसन्धान करगे ?

अब हमें यह देखना है कि इस रोग का मुख्य और गौण कारण क्या है ? तथा इस रोग को अधिकांश माता नाम से क्यों सम्बोधन किया जाता है ! तथा देवी का इस रोग से क्या सम्बन्ध है। इस रोग में चिकित्सा न कराने की प्रथा क्यों चली आ रही है ? तभी हम इस रोग के प्रतिरोधक अथवा शामक उपायों में सफलता प्राप्त कर सकेंगे। आयुर्वेद के ग्रन्थों में इस रोग के निदान में एक श्लोक है यथा :—

कट्वम्ल - लवण - क्षार- विरुद्धाध्यशनाशनैः ।
दुष्ट निष्पाव शाकाद्यैः प्रदुष्ट पवनोदकैः ॥
क्रुद्धग्रहेक्षणाच्चापि देहे दोषाः समुद्गताः ।
जनयन्ति शरीरेऽस्मिम् दुष्ट रक्तेन सङ्गताः ॥
मसूराकृति संस्थानाः पिड़िकाः स्युर्मसूरिकाः ॥

अर्थात् चरपरे, खट्टे, नमकीन, खारी, संयोग-विरुद्ध और भोजन पर भोजन, दुष्ट अन्न, निष्पाव (उड़द-लोविया आदि) शाकादिक पदार्थ, दूषित पवन, दूषित जल के सेवन तथा देह में राहु, शनि आदि क्रूर ग्रहों की दृष्टि पड़ने के कारणों से वातादिक दोष कुपित होकर दुष्ट रुधिर से मिलकर मसूर के दाने के समान शरीर में अनेक तरह की पीड़िकायें उत्पन्न करते हैं अतः इन्हें मसूरिका कहते हैं। यह साधारण अर्थ आपके सामने है। किन्तु इसमें अनेकों शंकायें पैदा होती हैं।

यथाः—माता रोग से पीड़ित रोगियों की यदि गणना की जाये तो ८०% बालक १ माह से १ साल तक की आयुके तथा १५% प्रतिशत बालक १ साल से तीन साल तक की आयुके तथा ४% ३ से १० साल की आयुके और १० साल से अधिक आयुके बालक अथवा युवा १% पाये जाते हैं। ऐसी दशा में क्या ? यह सम्भव है कि इतनी छोटी आयु के बालक जिनकी संख्या ८०% है चरपरे, खट्टे, नमकीन आदि अपथ्य पदार्थ सेवन करते हैं। और क्या ? क्रूरग्रहों दृष्टि से यह रोग होता है ? यदि ऐसा है तो यह रोग उन बालकों को ही होना चाहिये, जबकि अधिकांश स्त्रियाँ इन सम्पूर्ण कारणों से अपने बच्चों को सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयत्न करती हैं; उन्हें भी इस रोग का अक्रमण होता है। अर्थात् कोई बालक इस रोग के आक्रमण से अछूता नहीं बचता, यह बात दूसरी है कि किसी को प्रबल और किसी पर न्यून प्रभाव पड़े यह शरीर की प्राकृतिक रोग क्षमता के प्रभाव तथा अभाव से स्वास्थ्यप्रद रहन-सहन के वातावरण से होता है। अस्तु, रोग का वास्तविक कारण तो "जनयन्ति शरीरेऽस्मिन् दुष्ट रक्तेन सङ्गता," है और कट्वम्ललवण-क्षारादि अपथ्य कारक आहार विहारादि तो केवल सहायक कारण हैं जो अनुकूल मौसम में अन्यान्य रोग भी उत्पन्न करते हैं तथा शरीर में उपस्थित दुष्ट रक्त के साथ मसूरिका उत्पन्न करते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि वह दुष्ट रक्त कौन सा है, जो बालक के शरीर में पहिले से उपस्थित था जिसके साथ मिलकर अपथ्य आहार-विहारादि मसूरिका उत्पन्न करते हैं, यदि मान लिया जाये कि माता द्वारा कियेगये अपथ्य आहार-बिहार से, अथवा आहार करने वाले बालकों के स्वयं अपथ्य आहार-विहार से रक्त दूषित हो जाता है, तब फिर यह रोग उन्हीं बालकों को होना चाहिये; किन्तु लोक में इसके विरुद्ध देखा जाता है। जिन बच्चों व उनकी

माताओं के आहार-विहार पथ्य कारक हैं और बहुत ही सावधानी से पालन पोषण होता है; वह भी इस रोग के आक्रमण से नहीं बच पाते। अस्तु, यह मानना पड़ेगा कि यह दुष्ट रक्त बालक के शरीर में पूर्व से ही संचित होता है और अपथ्य कारक आहार विहार बच्चों द्वारा स्वयं अथवा माता के द्वारा होने पर सहायक कारणों के रूप में उस दुष्ट रक्त को अधिक दुष्ट बना देते हैं और वह प्रकृति द्वारा शरीर से बाहर निकल कर मसूरिका का रूप धारण करता है।

यह दुष्ट रक्त बालक माता के गर्भ से सञ्चय करके लाता है, इसी लिये इस रोग को माता कहते हैं तथा यही कारण है कि प्रायः सम्पूर्ण बालक किसी न किसी रूप की माता से अवश्य पीड़ित होते हैं। क्योंकि यह प्रकृति अर्थात शक्ति की देन है इसी लिये इस रोग के साथ शक्ति के पर्यायवाची नाम देवी का इससे सम्बन्ध माना जाता है और क्योंकि इस रोग के विष को बच्चा पैदा होने के बाद अनुकूल अवसर मिलने प्रर प्रकृति (शक्ति-देवी) शरीर से बाहिर निकाल कर बच्चे के शरीर को उस दुष्ट रक्त से मुक्त करने का प्रयत्न करती है, अतः इसे रोग न मान कर रोग मुक्ति का उपाय समझा जाता है। यही कारण है कि भारतीयों में इस रोग की चिकित्सा की आवश्यकता नहीं समझी गई थी, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं हैं कि इस रोग की चिकित्सा है ही नहीं आयुर्वेद शास्त्र इस रोग की चिकित्सा से भरा पड़ा है, किन्तु यदि माता साधारण रूप से निकली हो या विषकी न्यूनता और शरीर की प्राकृतिक रोगक्षमता की प्रबलता से सम्भव हो तब चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है। और यदि भिषण रूप से निकलती हैं, (रोगक्षमता की न्यूनता और दुष्ट रक्त में उपस्थित प्रबल विष के कारण) तो अनेकों उपद्रवों के सहयोग से प्राण नाश कर देती हैं। ऐसी अवस्था में चिकित्सा न कराने से ही आज इस रोग से होने वाली मृत्यु संख्या ४०-५० प्रतिशत है और महामारी के रूप में कभी-कभी फैलने पर ६०-७० प्रतिशत तक हो जाती है, जिसको हम इस रोग के वास्तविक कारणों के न जानने से चिकित्सा न करा कर चुप चाप सहन करते रहते हैं। इसकी चिकित्सा आगामी अंक में देखें।

बैद्यनाथ कुमार कल्याण रस

स्वर्ण, मोती, रस सिन्दूर आदि कीमती चीजों से बनी हुई यह दवा अपने नामानुसार बच्चों के सभी रोगों में जैसे—कास, श्वास, क्षय, संग्रहणी, सूखा रोग, वमन, पसली चलना आदि में शीघ्र ही फायदा करता है। चेचक और मोतीझरे की यह खास दवा है। कीमत—१ तोला ६४ ; चार आना भर १६—), दो आना भर ८—), एक आना भर ४—)

श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड, कलकत्ता, पटना, झाँसी, नागपुर।

आयुर्वेदीय चिकित्सा के व्यापक सिद्धान्त
तथा
क्रियात्मक स्वरूप

वैद्य रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य

(गतांक जनवरी से आगे)

"अपकर्षण मेवादौ दोषाणां भेषजं स्मृतम् ।
ततो विघातः प्रकृतेर्निदानस्य च वर्जनम् ।।"

—चरक

दोषों के वैषम्य का का ही नाम रोग है अतः उस वैषम्य को दूर करना ही चिकित्सा का लक्ष्य है। इसीलिये आचार्य ने कहा है कि "आदौ दोषाणामपकर्षणमेव भेषजं स्मृतम्" अर्थात् प्रकृत दोष (वात - पित्त - कफ) जब दोषावस्था (वैषम्यावस्था) में पहुंच गये हों तो उन दोष (वैषम्यावस्था) को अपकर्षण करना (निकालना या दूर करना) ही पहली चिकित्सा है। तात्पर्य यह कि चिकित्सक को सर्वप्रथम दोष वैषम्य को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। उसके बाद उस दोष वैषम्य के कारण को दूर करने का प्रयत्न करना अर्थात् निदान का परिवर्जन करना चाहिये। यह कार्य संशोधन तथा संशमन औषधों द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है। इसी से आचार्य ने कहा है कि :—

"संशोधनं संशमनं निदानस्य च वर्जनम् ।
एतावद् भिषजा कार्यं रोगे रोगे यथाविधि ।।"

—च० वि० अ० ७

अर्थात्—वैद्य को प्रत्येक रोग में यथावश्यक यथाविधि संशोधन, संशमन तथा निदान परिवर्जन करना चाहिये।

"शान्तिरामाशयोत्थानां व्याधीनां लंघन क्रिया ।
ज्वरस्यैकस्य चाप्येका शान्तिर्लंघनमुच्यते ।।"

—चरक

अर्थात्—जैसे आमाशयोत्थव्याधियों की शान्ति के लिये प्रधान रूप से एक लंघन ही चिकित्सा है। उसी प्रकार ज्वर के लिये भी (आमाशयोत्थव्याधि होने से) लंघन को ही प्रधान चिकित्सा माना गया है।

आम दोष की चिकित्सा

"आमं जयेल्लंघन कोष्ण पेया लघ्वन्न रूक्षौदनतिक्त यूषैः।
निरूहणैः स्वेदन पाचनैश्च संशोधनैरूर्ध्वमधस्तथा च ।।"

अर्थात्—आम दोष को लंघन, सुखोष्ण पेया, लघुभोजन, रूक्षभोजन, तिक्त रस, यूष, निरूहबस्ति, स्वेदन, पाचन, ऊर्ध्वशोधन (वमन) तथा अधःशोधन (विरेचन) द्वारा जीते। इसका अभिप्राय यह है कि उक्तलंघनादि आमदोष को दूर करने वाले उपाय हैं अतः उन उपायों और औषधों से आम दोष की चिकित्सा करें।

दोषों का उपक्रम (चिकित्सा)

सामान्य चिकित्सा के विधान निर्देश के अनन्तर रोगों के मूल कारण दोष वैषम्य की चिकित्सा परमावश्यक है। अतः अब दोषानुक्रम से दोषों की चिकित्सा कही जाती है।

१—"कफं दुर्जनवत्तीक्ष्णैर्वातं स्नेहेन मित्रवत् ।
पित्तं जामातरमिव मधुरैः शीतलैर्जयेत् ।।"

इस श्लोक में एक लौकिक एवं सुबोध उदाहरण द्वारा दोषों के उपक्रम का सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है। दुर्जन के दौर्जन्य को दूर करने के लिये उसके साथ तीक्ष्ण, कटु तथा रूखा व्यवहार सर्व प्रख्यात है अतः कफ के विकारों को दूर करने के लिये कफ को दुर्जन की उपमा दे उसके

विकारों में तीक्ष्ण (रूक्ष तथा कटु) औषधों के व्यवहार का संकेत किया गया है। इसी प्रकार वायु के विकार में वायु को मित्र की उपमा देकर, जिस प्रकार मित्र के साथ स्नेहमय व्यवहार किया जाता है, वायु के विकारों में स्नेह-गुण विशिष्ट औषधों के प्रयोग का संकेत किया गया है। शरीर की सम्पूर्ण धातुएँ पित्त की समावस्था पर ही अक्षुण्ण बनी रहती है। यदि पित्त का प्रकोप हो जाय तो शारीरिक धातुओं का उचित पोषण का अभाव हो जाय और प्रकुपितपित्त सम्पूर्ण धातुओं को जला कर देह का नाश कर दे। अतः पित्त को सर्वमान्य स्थान देने के लिये जमाता की उपमा देकर यह संकेत किया गया है कि जिस प्रकार जमाता को प्रसन्न रखने के लिये उनके साथ शीतल और मधुर व्यवहार लोक में किया जाता है उसी प्रकार पित्त के विकारों को मधुर तथा शीतल औषधों से दूर करें।

२—"कफ प्रकोपे वमनं सनस्यं,
विरेचनं पित्तमये विकारे।
वातामये बस्ति विशोधनं च,
संसर्गजे च प्रविमिश्रयेत्तत्॥"

तथा—

"शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम्।
बस्तिर्विरेको वमनं, तथा तैलं घृतं मधु॥"

अर्थात्—कफ के प्रकोप में वमन और नस्य, पित्त विकार में विरेचन और वात के रोगों में शोधन और बस्ति चिकित्सा करें। मिले हुए दोषों में दोषों के अनुसार औषधों को मिला कर चिकित्सा करें। तथा—शारीर दोषों (वात-पित्त-कफ) के विकारों में क्रमशः वस्ति और तैल, विरेचन और घृत तथा वमन और मधु परमौषध माना गया है। अर्थात्—वात विकार में तैल, पित्त विकार में घृत, और कफ के विकारों में मधु को परमौषध माना गया है और इसी प्रकार वात के विकार में बस्तिकर्म, पित्त में विरेचन कर्म और कफ में वमन कर्म को प्रधान चिकित्सा माना गया है।

३—"धी धैर्यात्मादि विज्ञानं मनोदोषौषधं परम्।"
अर्थात्—मानस दोषों (रज और तम) के विकारों को शान्त करने के लिये, बुद्धि, धैर्य, आत्मा आदि के विज्ञान को परमौषध माना गया है। सामान्य रूप से तीनों शारीर दोषों के विकारों के उपक्रम का निर्देश कर तथा मानस दोषों की चिकित्सा का संकेत कर, अब पृथक् २ दोषों की विस्तृत चिकित्सा का वर्णन करते हैं। जैसे—

वात की चिकित्सा

"स्निग्धोष्ण स्थिर वृष्य बल्य लवण, स्वाद्वम्ल तैलातप।
स्नानाभ्यञ्जन बस्ति मांस मदिरा, संवाहनोद्वर्त्तनम्।
स्नेह स्वेद निरूहणस्य शमन स्नानोपनाहादिकम्।
पानाहार विहार भेषजमिदं वातं प्रशान्तिं नयेत्।"

पित्त की चिकित्सा

"पित्तस्य सर्पिषः पानं विरेको रक्तमोक्षणम्"
तत्रान्नपानं मधुरं लघुशीतं सतिक्तम्॥
तथा च पित्तप्रशमनं सेव्यम्।"

"तिक्तस्वादु कषायशीत पवन च्छाया निशावीजन।
ज्योत्स्नाभूगृह वारियंत्र जलज स्त्रीगात्र संस्पर्शनम्॥
सर्पिः क्षीर विरेक सेक रुधिरस्रावोपदेहादिकम्।
पानाहार विहार भेषजमिदं पित्तं प्रशान्तिं नयेत्॥"

कफ की चिकित्सा

"रूक्षक्षार कषाय तिक्त कटुक व्यायाम निष्ठीवनम्।
स्त्रीसेकाध्व नियुद्ध जागर जल-क्रीड़ा पदाघातनम्॥
धूमस्ताप शिरो विरेक वमनं स्वेदोप्रनाहादिकम्।
पानाहार विहार-भेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं जयेत्॥"

संसर्गज तथा सन्निपातिक दोषों की चिकित्सा

"उपक्रमः पृथग्दोषान् योऽवमुद्दिश्य कीर्तितः।
संसर्गसन्निपातेषु तं यथास्वं विकल्पयेत्॥"
ग्रैष्मः प्रायो मरुत्पित्ते, वासन्तः कफमारुते।
मारुतो योग वाहित्वात् कफपित्ते तु शारदः॥"

अर्थात्—पृथक्-पृथक् दोषों का ऊपर जो उपक्रम कहा

गया है; उन्हें मिले हुए दोषों के विकारों में तथा सान्निपातिक दोषों के विकारों में दोषानुसार मिला कर चिकित्सा की व्यवस्था करें। अर्थात् वात-पित्त के विकारों में वात और पित्त के उपक्रमों को मिला कर चिकित्सा की व्यवस्था करें। इसी प्रकार अन्य में भी समझें। वायु और पित्त के विकारों में ग्रीष्म ऋतु के चर्या (विधान) का अवलम्बन करें और कफ और वायु के विकार में वायु के योगवाही होने के कारण वसन्त ऋतु के चर्या का ही अनुसरण करें। कफ और पित्त के विकार में शरद् ऋतु के चर्या का अनुसरण करें।

वातहर कर्म

१. स्नेह कर्म (विधियुक्त)
२. स्वेद कर्म ,,
३. स्नेहोष्ण मधुरलवणाम्ल युक्तमृदु-संशोधन
४. स्नेहोष्ण मधुर लावणम्ल युक्त आहार
५. अभ्यङ्ग
६. उपनाह
७. उद्वेष्टन
८. उन्मर्दन
९. परिषेक
१०. अवगाहन
११. संवाहन
१२. पीडन
१३. वित्रासन
१४. विस्मायन
१५. विस्मारण
१६. सुरासवविधान
१७. स्नेह (दीपनीय, पाचनीय वातहर विरेचनोपहित)
१८. बस्तियां
१९. बस्ति नियम (शतपाक,सहस्रपाक)
२०. सुख शीलता
२१. अभ्यङ्ग पूर्वक उपनाह, उद्वेष्टन, परिषेक आदि।
२३. मांस रस
२४. अनुवासन
२५. हेमन्त विधि (स्त्री सम्पर्क को छोड़ कर)

विशेष के लिए देखें—चरक चि० अ० ८। तथा अं० सं० सू० अ० २१

पित्तहर कर्म

१. घृतपान
२. घृत से स्नेहन
३. अधोदोषहरण (विरेचन)
४. मधुर-कषाय-तिक्त-शीत औषधों का उपयोग।
५. मधुर-कषाय-तिक्त-शीत आहार का सेवन।
६. परम शिशिर जल में रखे हुए मुक्ता मणि-हार का उरः प्रदेश में धारण।
७. मृदु-मधुर-सुरभि-शीतप्रद गंधों का सेवन।
८. श्रेष्ठचन्दन, प्रियंगु, कालीयक मृणाल के शीतल जल से प्रत्येक-क्षण प्रोक्षण।
९. बार बार नाना प्रकार के कमलों के शीतल जल से अभिप्रोक्षण।
१०. श्रुतिसुख - मधुर - मृदु - मनोहरगीत-वाद्यादि का श्रवण।
११. अभ्युदय का श्रवण।
१२. मित्रों का संयोग।
१३. प्रदोषकाल।
१४. शीतलजलधारा।
१५. दूध।
१६. कर्पूर चन्दनादि का लेप।
१७. मधुर-शीतल द्रव्य से विरेचन।
१८. सभी सौम्य भावों का सेवन।
१९. चन्द्रमा के किरणों से शीतल महल का निवास।
२०. शीतलकिरणों को धारण करने वाली इष्ट स्त्रियों का संयोग।
२१. शीतल पहाड़ (हिमालय) पुलीन, बन, तथा झरणाओं का विहार।
२२. कमलादि - शीतलसुगन्ध से भरे तालावों के तट पर निवास।
२३. शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु से पूर्ण बनों का विहार।

वि० देखे—च० चि० अ० ६ तथा अ० हृ० सू० अ० १३।

कफहर कर्म

१. तीक्ष्णोष्ण संशोधन (विधिपूर्वक)
२. कटु-तिक्त-कषाय-सकोष्णआहार।
३. धावन
४. लंघन
५. प्लवन
६. परिसरण
७. जागरण

८. नियुद्ध
९. व्यवाय
१०. व्यायाम
११. उन्मर्दन
१२. स्नान
१३. उत्स्यन्दन
१४. पुराना और तीक्ष्णमद्य का सेवन
१५. धूमपान
१६. उपवास
१७. उष्णनिवास
१८. सुख प्रतिषेध
१९. रूक्षोकर्दन
२०. मधु
२१. यूष
२२. वमन
२३. गण्डूष
२४. वसन्तऋतुचर्या
२५. रूक्षाल्पतीक्ष्णोष्ण अन्न सेवन
२६. तीक्ष्ण वमन-विरेचन
२७. मेदोघ्नौषध

वि० देखें अ० स० सू० अ० २१

वातघ्न रस
१. मधुर
२. अम्ल
३. लवण

पित्तघ्न रस
१. कषाय
२. मधुर
३. तिक्त

कफघ्न रस
१. कषाय
२. कटु
३. तिक्त

वातघ्न विपाक (गुरुः-मधुर-अम्ल)
वीर्य—१. उष्ण
२. स्निग्ध

पित्तघ्न विपाक (गुरुः-मधुर)
वीर्य—१. शीत
२. मृदु
३. पिच्छिल

कफघ्न विपाक (लघु-कटु)
वीर्य—१. तीक्ष्ण
२. रूक्ष
३. उष्ण
४. विशद

वातघ्न गुण
१. स्निग्ध
२. गुरु
३. मृदु
४. उष्ण
५. तर्पण
६. बृंहण
७. स्वेदन
८. बल्य
९. वाजीकरण
१०. अनुमोलन
११. पिच्छिल
१२. जीवन
१३ कफवर्द्धन
१४. मन्द
१५. स्थिर
१६. स्थूल

पित्तघ्न गुण
१. शीत
२. स्निग्ध
३. गुरु
४. रूक्ष
५. श्लक्ष्ण
६. सान्द्र
७. विशद
८. स्थिर
९. तर्पण
१०. जीवन
११. मन्द
१२. स्तम्भन
१३. कफवर्धन
१४. शमन

कफघ्न गुण
१. उष्ण
२. लघु
३. तीक्ष्ण
४. रूक्ष
५. सर
६. कठिन
७. विशद
८. खर
९. सूक्ष्म
१०. अपतर्पण
११. कर्शन
१२. स्वेदन
१३. लेखन
१४. दहन
१५. पाचन
१६. वातवर्धन
१७. स्तम्भन
१८. पित्तवर्धन

नोट :—"विपरीत गुणै देंश मात्राकालोपपादितैः ।
भेषजैर्विनिवर्त्तन्ते विकाराः साध्य सम्मताः ॥"

—चरक

अर्थात्—वात-पित्त-कफ, इन दोषों के विपरीत गुणवाले औषधों के प्रयोग से साध्य रोग नष्ट हो जाते हैं। परन्तु वे औषधें देश, मात्रा और काल के विचार से प्रयुक्त होने पर ही कार्य कर होती हैं।

उपर्युक्त रस, गुण, विपाक तथा वीर्यों के वातादि-दोषों पर जो प्रभाव निर्देश किये गये हैं वे प्रकृति समसमाविष्टावस्था के ही समझने चाहिये। विकृति-विषमसमाविष्टावस्था में इनके गुणों में अन्तर आ जाता है। इसीसे आचार्य ने स्पष्ट रूप में कहा है—

"तत्र खल्वनेकरसेषु द्रव्येष्वनेक दोषात्मकेषु च विकारेषु रसदोष प्रभावमेकैकत्वेनाभिसमीक्ष्य ततो द्रव्य विकार प्रभाव-तत्त्वं व्यवस्येत्; नत्वेवं खलु सर्वत्र; नहि विकृति विषम समवेतानां नानात्मकानां द्रव्याणां परस्परेणचोपहतानामन्यैश्च विकल्पनै विकल्पितानामवयवप्रभावानुमानेन समुदाय प्रभाव-तत्त्वमध्यवसातुं शक्यं, तथायुक्ते हि समुदाये समुदाय प्रभाव-तत्त्वमेवोपलभ्य ततो रस द्रव्य विकार प्रभाव तत्त्वं व्यवस्येत्।"

— च० वि० १

अर्थात्—अनेक रस वाले द्रव्य तथा अनेक दोष वाले रोगों में एक रस और एक-एक दोष के प्रभाव को देख कर उसके बाद द्रव्य वा रोग के प्रभाव के तत्त्व का निश्चय करना चाहिये। परन्तु यह नियम सर्वत्र लागू नहीं किया जा सकता। क्योंकि विकृति-विषम समवेत नाना प्रकार के द्रव्यों के परस्पर एक दूसरे को विकृत कर देने से तथा अन्य विकल्पनाओं से परस्पर भिन्न हुए २ द्रव्यों के आंशिक प्रभाव के अनुमान वा ज्ञान से समुदाय के प्रभाव तत्त्व का निश्चयात्मक ज्ञान नहीं हो सकता। इस प्रकार के समुदाय में समुदाय के ही प्रभाव के तत्त्व को जान कर तदनन्तर रस, द्रव्य वा विकार के प्रभाव तत्त्व को जानना चाहिये।

इसका अभिप्राय यह है कि कई रस द्रव्यों में प्रकृति-समसमवाय से निवास करते हैं। परन्तु विकृति विषम-समवाय से स्थित रसों वाले द्रव्यों का प्रभाव उनके आंशिक प्रभाव से नहीं जाना जा सकता। इसका कारण यह है कि इस समवाय में परस्पर मिले हुए रसों का प्रभाव बदल जाता है। जैसे चूना और हल्दी के विकृति विषम-समवाय होने पर चूना का सफेद रङ्ग और हल्दी का पीला रंग दोनों अपना-अपना रङ्ग छोड़कर लाल रङ्ग में परिवर्त्तित हो जाता है। अतः विकृति विषम समवाय वाले द्रव्यों के प्रभाव को द्रव्य प्रभाव से जाने। द्रव्य प्रभाव का उदाहरण देते हुए आचार्य समझाया है कि तैल, घृत और मधु अपने प्रभाव से ही क्रमशः वात, पित्त और कफ को शान्त करते हैं। तैल-स्निग्ध, उष्ण और गुरु गुण युक्त होने से रूक्ष, शीत और लघु गुण विशिष्ट वात दोष को शान्त करता है। यहां तैल का गुण वात दोष के गुण से विपरीत है अतः "विरुद्ध गुण सन्निपति हि भूयसाऽल्पमवजीवते" इस नियम के अनुसार तैल अनवरत अभ्यास से वात को शान्त करता है। इसी प्रकार घृत—मधुर, शीत और मन्दवीर्य होने से अमधुर, उष्ण और तीक्ष्ण गुण वाले पित्त को शान्त करता है और मधु-रूक्ष, तीक्ष्ण और कषाय गुण विशिष्ट होने से स्निग्ध, मन्द और मधुर गुण विशिष्ट कफ को शान्त करता है, इत्यादि।

(क्रमशः)

असाध्य रोगों में सर्प विष

वैद्य रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार

शोरगुल और मानवीय चहलपहल से दूर अपनी-अपनी प्रयोगशालाओं की नीरवता में विभिन्न देशों के धैर्यवान और साहसी वैज्ञानिक असाध्य रोगों की दवा ढूंढ़ निकालने के प्रयत्न में साँप और उसके घातक विष से विस्तृत खोज और भयानक परीक्षण में लगे हुए हैं। ये लोग जीवन और मृत्यु से खिलवाड़ कर रहे हैं। प्रकृति के गूढ़तम रहस्य निश्चय ही धीरे २ अपने आप को प्रकाश में ला रहे हैं। खोजें इतने बड़े पैमाने पर हो रही हैं कि साँपों की सदा बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिये दुनियाँ के प्रमुख नगरों में सर्पशालाएँ खुल गई हैं। लन्दन, पेरिस, न्यूयार्क, ब्राजील, पोर्टएलिजाबेथ, बम्बई, कलकत्ता और बैंगकॉक आदि में विषैले साँप बड़ी संख्या में रखे जाते हैं। उन्हें आरामदेह स्थान दिया जाता है और उनकी अच्छी तरह परिवरिश की जाती है। सांप आराम की जिन्दगी बसर करते हैं। मृत्यु सम्बन्धित अपने विशिष्ट अंग को जरूरत पड़ने पर सचेष्ट रखने के अतिरिक्त इनका वहां और कोई काम नहीं होता।

विष निकालना

आधुनिक सर्पशाला में विष निकालना एक मनोरंजक विधि है। निःसन्देह यह बड़े खतरे का काम है। एक छड़ी की सहायता से सांप को अपने आरामदेह घर में से बाहर फर्श पर फेंक दिया जाता है। कुण्डलियों के समूह को सचेष्ट हो जाने के लिये यह इशारा होता है। अपने रक्षक के इस कठोर व्यवहार से क्रुद्ध होकर जीव आवेश में जोर से फुंकार उठता है, परन्तु वहां परवाह करने वाला कौन? दूसरी विरोध सूचक फुंकार निकलने से पूर्व ही एक चतुर हाथ मशीन की सी फुर्ती से गुदगुदे चिकने प्राणी के शरीर पर से फिसलता हुआ गरदन को मजबूती से जकड़ लेता है। अब वह जमीन पर से ऊपर उठा लिया गया है। गरदन तब भी हाथ में जोर से भींची होती है। इसके बाद उसके मुख में शीशे का पात्र डाला जाता है। मुख में पदार्थ के जाते ही साँप अपने डरावने दाँतों से उस पर गुस्से से काटता है। दंश का दबाव विष की थैलियों में से विष को बाहर फेंक निकालता है। खोखले दांतों में से होता हुआ ज़हर पात्र में गिर जाता है। पहले प्रवाह के बन्द होने पर रक्षक अपने हाथ को दबाता हुआ साँप के सिर की तरफ ले जाता है। गौ के थनों से जिस प्रकार दूध दुहा जाता है, उसी तरह वह बचे हुये विष को निचोड़ लेता है। सारा द्रव उगल दिया जाने पर यह कुछ ही बूंदें बनता है। तब इस कष्ट और परेशानी के लिए जो प्राणी को थोड़ी देर के लिये उठानी पड़ी, उसे दूध या कुछ अंडे दिए जाते हैं और कभी-कभी इस भोजन में एक चूहा भी शामिल कर दिया जाता है। भोजन द्रव है तो शीशे की नली या पीक द्वारा उसके गले में उतार दिया जाता है। चूहा देना हो तो उसे साँप के साथ ही गड्ढे में फेंक दिया जाता है। इन सब क्रियाओं के करने में कुछ ही मिनट लगते हैं। फिर साँप कुछ क्षण पूर्व की आपबीती का भयावह स्वप्न लेने के लिये पिंजरे में वापिस फेंक दिया जाता है। अपने मिज़ाज को शान्त करने और पोटलियों को जहर से भरने के लिये यह कुछ दिनों तक पड़ा रहता है, जिससे एक बार फिर अपने अवाञ्छनीय कार्य को करने के लिए वह तैयार हो सके।

जीवित पिचकारी

साँप के विषयन्त्र की हम इन्जेक्शन देने की पिचकारी से तुलना कर सकते हैं। यह जीवित पिचकारी घातक

विष का भंडार है। आक्रमण किए गये प्राणी के शरीर में साँप इस यंत्र द्वारा अपना घातक द्रव पहुंचाता है। साँप किस तरह शरीर में विष उंडेलता है इसे समझने के लिये यंत्र को कार्य करते समय गौर करना चाहिये। पिस्टन से युक्तियुक्त प्रणाली की कल्पना कीजिये। प्रणाली एक खोखली सूई के साथ संयुक्त है जिसकी नोक पर एक छिद्र है। शरीर में उंडेला जानेवाला पदार्थ पहिले प्रणाली में इकठ्ठा होता है और यहाँ से सुई के छिद्र द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। साँप अपने विष को ठीक इसी प्रकार फेंकता है।

ऊपर के जबड़े के दोनों ओर आँख के नीचे और पीछे विषस्रावी ग्रन्थियों का एक जोड़ा रखा रहता है। दोनों ग्रन्थियाँ ऊर्ध्वहन्व अस्थियों (मैक्सिला) में लगे हुए जहरीले दाँतों की प्रणाली के साथ सम्बन्धित होती हैं। इन ग्रन्थियों या पोटलियों में जहर इकठ्ठा रहता है। शंख प्रदेशों या कनपटियों में पेरोडिटग्लैण्ड्स के साथ स्थित ग्रन्थियाँ काटने की प्रक्रिया में कार्य करती हैं। इनके ऊपर लगी हुई कनपटियों की मांसपेशियाँ (टेम्पीरल मसल्स) इनके कार्य को नियन्त्रित करती हैं। इस प्रकार ये पिस्टन का स्थान ले लेती हैं। जिस समय साँप काटता है ये मांसपेशियाँ दबती हैं। ग्रन्थियों को निचोड़ती हैं और तुरन्त ही इनमें विद्यमान विष, ग्रन्थियों के साथ लगे हुए खोखले दाँतों में वेग से पहुंचा दिया जाता है। पोटली की प्रणाली और दाँतों की खोल में से गुजरता हुआ, विष दाँत के सिरे पर विद्यमान छिद्र पर पहुँचता है, और अन्त में घाव के अन्दर चला जाता है। साँप के काटने की बस यही प्रक्रिया है। यह व्यवस्था कितनी सरल है, पर इस कार्य का परिणाम है—भयावह-विपदा। साँप के विकास की प्रत्येक अवस्था में विषमन्त्र उपस्थित रहता है।

जहर की पोटलियाँ पेट में

मलय प्रदेश में मिलने वाले दो साँपों में जहर की पेटियाँ दूसरे साँपों से भिन्न प्रकार की होती हैं। इनमें से एक सफेद धारियों वाला और दूसरा पहियों वाला मूंगिया (कोरल) साँप है। कनपटी में स्थित होने के बजाय इन साँपों में, पोटलियाँ दोनों पार्श्वों में इनके शरीर की लम्बाई के लबभग एक तिहाई तक पहुंच जाती हैं। सिर से नीचे की ओर जाती हुई ये ग्रन्थियाँ क्रमशः मोटी होती जाती हैं और हृदय के सामने मोटे सिरे में समाप्त हो जाती हैं। इन ग्रन्थियों के विस्तार के कारण इन साँपों में हृदय, दूसरे साँपों की अपेक्षा अधिक पीछे होता है। शरीर के दूसरे तिहाई हिस्से में हृदय प्रवेश अपेक्षाकृत मोटा होता है जो इन ग्रन्थियों की उपस्थिति को सूचित करता है। और इस प्रकार पेट को बिना चीरे ही विष ग्रन्थियों का अनुभव किया जा सकता है। ये साँप जानते हैं कि इनकी ज़हर की पोटलियाँ पेट में हैं। जब ये काटते हैं तो शत्रु के चारों ओर जोर से लिपट जाते हैं जिससे विष की थैलियों पर दबाव पड़कर ज़हर बाहर फेंका जाय।

विष का स्वरूप

ताजा विष हलके पीलेरङ्ग का स्वच्छ-पारदर्शक लेसदार द्रव होता है। फनियर के विष का रङ्ग सरसों के तेल जैसा होता है। शेषनाग का विष अधिक पीले रङ्ग का होता है। प्रत्येक साँप का विष ग्लिसरीन या मुख की लार की तरह सर्वथा नीरङ्ग भी हो सकता है। विषों के अधिक नमूने में न कोई स्वाद होता है, न गन्ध। कुछ अन्वेषकों के मन में अणुवीक्षक (माइक्रोस्कोप) में देखने से एपिथीलियम के कुछ कोष्ठ और कुछ जीवाणु, जो वास्तव में गति से होते हैं, ताजे विष में नजर आते हैं। इसमें तीस प्रतिशतक ठोस होते हैं, परन्तु यह घनता की अवस्थानुसार भिन्न-भिन्न होता है। पानी जैसा पतला और अण्डे की सफेदी के समान गाढ़ा भी विष होता है। हवा में पड़ा रहने से सूख जाता है और इससे स्फटिक या कीकर की गोंद की तरह पपड़ियाँ बन जाती हैं। सूखे विष में ताजे विष के सब गुण मौजूद रहते हैं। ठीक तरह रखा जाय

तो सूखा विष कभी खराब नहीं होता। पानी में यह जल्द घुल जाता है।

अब भी सोने से आठगुना महँगा

सर्प विष दो रूपों में बाजार में बिकता है। सूखा और द्रव। सूखा विष चूर्णरूप में होता है और इसका भाव बम्बई की हाफकिन इन्स्टिट्यूट में पचासरुपये प्रति ग्राम है। एकग्राम प्रायः एकमाशे के बराबर होता है। इसलिए एक रत्ती का मूल्य करीब सवाछह रुपये और १ तोले का लगभग छह सौ बैठता है। सोने का भाव इतना बढ़ जाने पर भी तुलना में सांप का जहर आठ-नौगुना अधिक महँगा है।

प्रभाव तथा चिकित्सा में उपयोग

फनियर का विष तीक्ष्ण होता है। शरीर के अन्दर जाने पर यह पित्त को प्रकुपित करके गरमी और जलन पैदा करता है। मृत्यु की सूचना देने वाली बेहोशी में भी इसका प्रयोग करने से रोगी होश में लाया जा सकता है। यह कफ को सुखाता और तीव्रता से चलते हुए सांस को ठीक करता है। हैजे में हाथ पैर ठण्डे पड़ गये हों, अन्तिम सासें आ रही हों, और नाड़ी गुम हो रही हो तो इसके प्रयोग से अनिष्टकर लक्षण दूर होकर रोगी की अवस्था धीरे-धीरे सुधर जाती है। सन्निपात में शरीर के अङ्ग ठण्डे पड़ गये हों, तब भी इसे देने से हृदय को उत्तेजना और शक्ति मिलती है। कस्तूरी-भैरव आदि हृदय को उत्तेजक और गर्मी पहुंचानेवाले द्रव्य जब असर नहीं करते और मृतसंजीवनी सुरा भी जब निष्फल हो गई हो; उस समय फनियर का विष बहुत सावधानी से प्रयोग करना चाहिए।

गन्ने के ताजे रस के साथ विष जलोदर की चिकित्सा में दिया जाता है। आंतों का रेचक होने से यह रेचक कार्य करता है और जिगर को उत्तेजना देता है। चरक के समय पेट के रोगों में जब किसी प्रकार की भी चिकित्सा से लाभ नहीं होता था तब रोगी के बन्धु-बान्धवों और सम्बन्धियों को बुलाकर वैद्य उन्हें सर्प-विष का प्रयोग किए जाने की सलाह देता था। राजाज्ञा प्राप्त करना भी जरूरी होता था। साँप को पहिले उत्तेजित किया जाता था। गुस्से में भर जाने के बाद उससे किसी फल पर कटवा लिया जाता था, वह फल रोगी को खिलाया जाता था।

मृगी, अङ्गों का काँपना, ब्लैक वाटर फीवर, हिमोफिलिया आदि रोगों के इलाज में सर्पविषों का प्रयोग अब पाश्चात्य चिकित्सा में भी होने लगा है। यह कहा जाता है कि किसी भी विष का मनुष्य पर बुरा प्रभाव इन्जेक्शन की गई मात्रा के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। और यद्यपि बड़ी मात्राएँ मनुष्य की जान ले सकती हैं पर छोटी मात्राएँ शरीर पर लाभदायक प्रभाव उत्पन्न करती हैं। मृगी के इलाज में सर्प विष एक रत्ती का भार सौवाँ हिस्सा त्वचा के नीचे सुई द्वारा डाला जाता है।

मानवता के लिये अभिशाप रूप रोगों, जैसे कैन्सर, हिमोफिलिया, मृगी, और जलत्रास (हाइड्रोफोबिया) आदि, पर इन घातक विषों से हमले किये जा रहे हैं और किन्हीं अवस्था में अच्छी सफलता भी मिली है। आधुनिक चिकित्सा में सर्प विष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रहा है। कैन्सर की चिकित्सा में फनियर विष और रक्तस्राव की आकस्मिक चिकित्सा में रसल मण्डली विष का प्रयोग और विषैले साँप से डसेहुए कि इलाज में इन विषों से बने प्रतिविषों (एण्टीबीनीन) का प्रयोग ऐसे तथ्य हैं जिनमें सन्देह की गुंजाइश नहीं। अब साँपों के ये जान-लेवा विष सचमुच लाखों कीमती जानें बचा रहे हैं।

वायु रोग और उसकी चिकित्सा

भिषगाचार्य पं० मोहनलाल वैद्य शास्त्री

आधुनिक उदर रोगों में से एक रोग वायु का पैदा होना भी है। इसके पैदा होने का कारण अनियमित भोजन, अति शुक्र का क्षय, और शरीर से अधिक परिश्रम करना और तीखे पदार्थों का अधिक सेवन है। वायु के स्वाभाविक गुण में रूक्षता (खुश्की) होना अवश्यम्भावी है। जिससे रूक्ष मल का अन्त्रों में शेष भाग जमा होता रहता है, तथा वायु अधोगामी नहीं होने से वह ऊर्ध्व गामिनी हो जाता है। उसका प्रभाव श्वास-प्रणाली 'सांस लेने की नली' पर पड़ता रहता है, जिससे प्रतिश्याय (जुकाम) बार-बार होता है।

वायु रोग का प्रभाव

इसका प्रभाव हृदय, दिल और मस्तिष्क पर पड़ता है, जिससे हृदय का कंपन एवं मस्तिष्क का घूमना आदि होने लगते हैं, क्योंकि वायु का वेग ऊपर के अंगों पर ही असर कर सकता है, जिससे मनुष्य समझने लगता है कि मुझे हृदय रोग हो गया है और वह हृदय की चिकित्सा करने में लग जाता है। यदि चिकित्सक भी गलती कर बैठते हैं तो महाभयंकर परिणाम होता है। वस्तुतः यह हृदय रोग नहीं अपितु वायु का अधोगमन न होकर ऊर्ध्व गमन है। यदि इसमें सावधानी न की जाय तो वायु का वेग धीरे-धीरे रक्तवाहिनी धमनियों पर पड़ने लगता है, जिससे शरीर की दुर्बलता के साथ-साथ मानसिक शक्ति का ह्रास होना जरूरी है, जिससे मानसिक (वहम) रोग भी हो सकता है, जिसका आयुर्वेद पद्धति में वर्णन है।

इस वायु के बढ़ने का अत्यन्त दारुण कारण अन्य भी है; जिसे चिन्ता कहते हैं। उस चिन्ता में न कीटाणु होते हैं और न किसी अङ्ग की विकृति। इसीलिए रक्त-परीक्षण आदि उपायों से यह रोग नहीं जाना जा सकता है। केवल रोगी के कहने पर या नाड़ी परीक्षण द्वारा समझा जा सकता है। किन्तु प्राचीन पद्धति में "काम-शोक-भयाद्वायुः" काम अर्थात् अत्यन्त कामेच्छा से, शोक से और भय से वायु उत्पन्न होता है। इसका प्रभाव प्रायः हृदय पर ही पड़ता है और हृदय का सम्बन्ध रस-रक्तादि धातुओं से है। इनकी विकृति अनेक रोगों को उत्पन्न कर देती है, अतः वायु के विषम होने का सदैव ध्यान रखना अत्यावश्यक है। विदेशी चिकित्सकों में इसका उपाय विरेचन लेना है। विरेचन से उस समय कुछ लाभ-सा प्रतीत होता है। फिर वायु बढ़ने लगता है। रूक्षता से मल की बुरी अवस्था हो जाती है। यहाँ तक कि बार-बार विरेचन लेना पड़ता है, परन्तु वस्तुतः लाभ नहीं होता।

आयुर्वेदीय चिकित्सा

आयुर्वेद में इसकी चिकित्सा का बहुत उत्तम प्रकार है। यथा:—पहले अन्त्रों की रूक्षता को दूर करने के लिए स्नेहन—घृत, तैल, वसा, और मज्जा को दोषों के अनुकूल औषधियों से सिद्ध कर पान करना चाहिये यथा "वातिके लवणान्वितम्" वायु रोगों में लवण (नमक) के साथ घृत या तैल पान करावें। स्नेहन के पश्चात् विरेचन तदन्तर औषधियों से सिद्ध किये

(शेषांश ७२९ वें पृष्ठ पर)

बताइये मैं कौन हूँ

कविराज बत्रा वैद्य

कृपया ध्यान से सुनिये ; पढ़िये ; सोचिये और समझिये फिर बताइये मैं कौन हूँ ? मेरा वर्णन आयुर्वेद के मान्य ग्रन्थों चक्रदत्त, भैषज्यरत्नावली और योग रत्नाकर प्रभृति में मिलता है। मैं एक महान् शक्तिशाली अथवा वीर्यवान् औषध हूँ। मैं साधारण-सा... हूँ और अत्यन्त सौम्य भी हूँ फिर भी मेरे बहुत से शत्रु हैं। राजयक्ष्मा जैसे रोग के सहचर कास, ज्वर आदि सारे के सारे मुझसे दबते हैं और यदि मैं अपने सहचर च्यवनप्राश आदि के साथ पूरेबल से खड़ा हो जाऊँ अथवा रोगी पूर्ण रूपेण मेरे आश्रित हो जावे तो ये दस्यु भागते ही दीखते हैं।

मुझे जानने में आपको कुछ सुविधा हो अतः मैं अपनी शक्ति का परिचय कुछ विस्तार के साथ कराता हूँ :—

साधारणतया खांसी, जीर्ण ज्वर, छाती में जलन खांसी में रक्त का आना तथा खटिक (Calcium) की कमी से होने वाले रोग तो ऐसे भागते हैं जैसे सूर्य से अन्धकार। राजयक्ष्मा की प्रथम अवस्था में शुष्क कास अथवा झागयुक्त कास, ९९° तक ज्वर, अग्निमांद्य, शरीर में निर्बलता, मलावरोध, मूत्र में पीलापन, खाँसने में कफ का कभी रक्तमिश्रित आना और नेत्रदाह, आदि लक्षणों की उपस्थिति में मुझे २-२ माशे की मात्रा में घृत, मधु (असम मात्रा में) के साथ अथवा, च्यवनप्राश अवलेह में मुझे मिलाकर खिलावें और ऊपर से धारोष्ण दुग्ध दें ; तो कुछ ही दिनों में मेरा प्रभाव प्रगट हो जाता है और यदि मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी आदि की सहायता मिल जावे तो जल्दी ही क्षयकीटों का संहार कर सकता हूँ। जहां वात के लक्षण अधिक हों, कफ शुष्क तथा गाढ़ा हो तो यह कार्य वस्तुतः स्वर्ण भस्म, रससिन्दूर, अभ्रक, शृंग आदि का है फिर भी कभी-कभी मैं भी उनकी सहातार्थ प्रयुक्त होता हूँ।

कभी पित्त का कोप अधिक हो जाता हो, कण्ठ, छाती, नेत्र, हाथ, पावों में जलन होती हो, मुखपाक हो जाता हो तो और एक मुख्य औषध के साथ-साथ मैं भी सहायता देता हूँ। क्योंकि मेरा एक अंग सूक्ष्मेला (छोटी इलायची) है।

जीर्ण ज्वर से शरीर निर्बल हो जाता है। थोड़े से श्रम से भी शरीर श्रमित हो जाता है। मन्द ज्वर हर समय रहता है, शुष्क कास भी चल रहा हो ऐसी अवस्था में कुनीन आदि तीव्र औषधि से प्रायः हानि होती है और सुदर्शन चूर्ण आदि भी असात्म्य बैठते हैं, तब प्रवालपिष्टी के साथ मुझे मिलाकर मधु अथवा च्यवनप्राश के अनुपान से वैद्य लोग देते हैं और यश के भागी बनते हैं। मैं कास का शमन करता और ज्वर भी शान्त करता हूँ। क्योंकि मेरा एक अंग "पिप्पली" है।

गर्भ काल में गर्भ का सम्यक्तया परिपोषण नहीं हो पाता तो गर्भ पूरे समय से पूर्व ही गिरने का भय रहता है अथवा निर्बल अवस्था में जन्मलेता है और बच्चा शीघ्र ही कमजोर हो कर २-३ वर्ष के अन्दर ही (कभी २ तो २-३ मास में ही) काल का ग्रास बन जाता है। लोग ऐसी माताओं को मृतवत्सा कह कर उसके हृदय को और दुखी करते हैं। यदि गर्भावस्था में बराबर ४-५ मास तक मेरा सेवन अभ्रक भस्म,

प्रवालपिष्टी तथा च्यवनप्राश, आदि के साथ धारोष्ण दूध के अनुपान से कराया जावे तो बच्चा नीरोग, बुद्धिमान्, कान्तियुक्त और शक्तिशाली तथा दीर्घ जीवी होता है और यदि बच्चा कमजोर उत्पन्न हो चुका हो और अस्थिवक्रता आदि रोग का भय हो तो भी मैं उसकी रक्षा कर सकता हूँ। केवल २-२ रत्ती दूध के साथ लगातार ६-८ मास अथवा दन्तोद्गम समय के उपरान्त तक देने से मैं पूरी सहायता देता हूँ। खटिक अथवा जीवोजों (Vitamius) की कमी से जो बच्चे सूख जाते हैं, हरे रंग के अतिसार लगते हैं नाक आदि स्थानों से कभी-कभी रक्त भी गिरता है और शनैः शनैः बच्चा यमलोकपथगामी बन जाता है। ऐसी अवस्था में भी मैं आश्चर्यजनक लाभ करता हूँ। क्योंकि मेरा एक अंग बांसक्षीर (तुगाक्षीर-वंशलोचन) है। और उसके साथ मिश्री भी।

अधिक तप्त पेय पीने से विशेषतया अति गरम २ चाय पीने से अथवा तेज मसाले खाने से या अत्यधिक अम्ल रस के प्रयोग से आमाशय में उदहरिकाम्ल (Hydrochloric Acid) अधिक बनता है। अथवा क्षोम रस अधिक बनता है तो कण्ठ में जलन; अम्लोद्गार, मुखपाक आदि लक्षणों के साथ भोजन का अपचन होता है अथवा विदग्धाजीर्ण होता है। कभी २ मूत्र में भी पीलापन होता है। तब भी मेरी सेवायें सफल होती हैं क्योंकि मेरा एक अंग "दारचीनी" भी है और मुँह मीठा करने वाली मिश्री भी। क्या अब भी आप मुझे पहचान पाये कि नहीं ?

नहीं ! तो और सुनिये मेरी बनावट। मेरे नाम के प्रथम से मुँह मीठा होता है। मेरा नाम संस्कार भी विशेष ढंग से हुआ है। विद्वान मेरे नाम से ही मेरे अंगों का स्मरण कर सकता है और उन अङ्गों के तौल का भी विशेष क्रम है अर्थात् आखिर वाला अङ्ग सब से हलका है, उससे पहले वाला दुगना और उससे पहले वाला नं० २ से दुगना इसी प्रकार पूर्व क्रम से दुगना २ बढ़कर सब से पहला अङ्ग १६ गुना भारी हो जाता है। यदि अब भी संदेह है तो चक्रदत्त में यक्ष्माधिकार में देखिये। और "बताइये मैं कौन हूँ ?"

(शेषांश ७३७ पृष्ठ का)

हुए जल क्वाथ (काढ़ा) या दुग्ध आदि से बस्ती (एनिमा) कराये। तत्पश्चात् स्वाभावादि (मनुष्य की प्रकृति) का परीक्षण कर उचित औषध सेवन करावें इस से वायु का प्रकोप होना स्थायीरूप से चला जाता है। इसके लिए भारत में होने वाली पिप्पली विधि पूर्वक कुछ समय तक सेवन की जाय तो अत्यन्त लाभ होता है। इस के सेवन प्रकार बहुत हैं, अतः योग्य वैद्य से सम्मति लेना आवश्यक है।

पिप्पली के गुण

यह रसायन धीरे-धीरे शरीर को लाभ पहुँचाने वाली, अग्निमान्द्य को दूर करने वाली, वीर्य को बढ़ाने वाली, पाक में मधुर गर्म नहीं तथा स्निग्ध है और वात-श्लेष्म को हरने वाली है।

पिप्पली:—दीपन, वीर्यबर्धक, पाक में मधुर और रसायन है, गर्म नहीं, चिकनी (स्निग्ध), कटु, हल्की, वात-कफ को हरने वाली, तथा रेचक होने के कारण श्वास, कास (खाँसी), ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, अर्श (बवासीर), प्लीहा (तिल्ली), शूल और आंमवात को शीघ्र नष्ट करती है। इसके सेवन के कई प्रकार हैं :—

(१) पीपल को महीन पीस कर गुड़ में मिला (यथा ४ रत्ती पीपल तो १ माशा गुड़) प्रति दिन सेवन करे।

(२) वर्धमान पिप्पली है :—इसका सेवन प्रकार क्षीर पाक विधि से है—यथा तीन पिपलों को दुगने जल मिले हुए दूध में पकावें, दूध मात्र शेष रहने पर सेवन करे। इसी प्रकार दूसरे दिन दुगनी पिप्पली ले क्षीरपाक विधि से सेवन करे, पुनः दस दिन बाद तीन-तीन उतारते रहना चाहिये।

—नवभारत

अभिन्यासज्वर

वैद्य रामादर्श सिंह, आयुर्वेदाचार्य

"तीनों प्रकुपित हुए दोष उरः स्रोतों का अनुगमन करते हुए एक साथ होकर बुद्धीन्द्रिय और मन (मस्तिष्क) में पहुंचते हैं और आम की अभिवृद्धि करके शक्तिशाली महाघोर अभिन्यासज्वर पैदा करते हैं। इसमें रोगी के कान-आंख में शून्यता होती है। रोगी कोई चेष्टा करना नहीं चाहता उसकी आंखें रूप दर्शन में असमर्थ होती हैं। वह गन्ध, स्पर्श या शब्द ग्रहण नहीं करता ; शिर को अत्यन्त लोटपोट करता रहता है और कुछ भी खाना पीना नहीं चाहता। रोगी घुटकता है , उसे पीड़ा होती है ; कठिनाई से कुछ बोल पाता है और पार्श्व परिवर्त्तन करते रहना चाहता है। अभिन्यास ज्वर के ये प्रधान लक्षण हैं। यह रोग कष्टसाध्य होता है, इससे विरले ही रोगी छुटकारा पाते हैं।

नव्यमत—यह रोग आधुनिक सेरिब्रो-स्पाइनल फीवर या गर्दन तोड़ बुखार है ; जिसका लक्षण कोनीबेयर के टेक्स्ट-बुक आफ मेडिसिन से पाठकों के सुविधार्थ दे रहे हैं।

"सेरिब्रो-स्पाइनल फीवर का भाव है वह रोग, जिसका कीटाणु नासा-कण्ठ गत हो रक्त संवहन को आक्रमण करे और फिर मस्तिष्क कला में अवस्थित हो। इसके आक्रमण काल को इसके विषकोपका पूर्वरूप कह सकते हैं। इसका प्रादुर्भाव एकाएक अतितीव्र शिरो-ललाट-शंख देशगत वेदना तथा पृष्ठवंश और पैरों में पीड़ा, वमन, शीत, कम्प, बालकों में आक्षेप, ज्वर १०२°-१०३° और कभी-कभी प्रलाप के साथ होता है। प्रायः करके २४ घन्टों बाद तीव्रता में कमी होती है पर फिर वे लक्षण बढ़े हुए रूप में आ जाते हैं और तब मस्तिष्क कलागत लक्षण दृग्गोचर होते हैं।'

इस अवस्था में पूर्व से रहती हुई शिरवेदना और बढ़कर असहनीय हो जाती है, पीठ की पीड़ा-खासकर वंश प्रदेश में अधिक स्पष्ट हो जाती है और प्रायः स्पर्शासहनीयता मन्यास्तम्भ में आदि से अन्त तक होती है। आखें प्रकाश सहन नहीं करतीं और रोगी किसी प्रकार का छेड़छाड़ नापसन्द करता है। मन्यास्तम्भके कारण शिर पीछे को खिंच जाता है और पेट दब जाता है, जिससे बहिरायाम जैसा भान होता है। पुतलियां फैली होती हैं लेकिन रूप ग्रहण मन्द होता है। नाड़ी की गति प्रायः बढ़ी होती है, लेकिन जब-तब मन्दगामी हो जाती है और रक्तचाप निम्न होता है। इस रोग में ज्वरोष्मा अनस्थिर होती है पर प्रायः १०३° के आसपास रहती है ; हां, रोगविष के बढ़ने पर उष्मा अधिक हो जाती है।

उपद्रव—स्वरूप इस रोग की तीव्रता में मूत्रसङ्ग होता है पर अनजान में भी मल मूत्र आ सकता है। श्वासनाली का प्रदाह घातक हो सकता है। कीटाणुजन्य सन्धिशोथ भी कभी-कभी होता है। वातनाड़ी के रोग पक्षाघात, मानसिक विषमता, स्मृतिमान्द्य और शीर्षाम्बु रोग भी हो जाते हैं। नेत्र के रोग अभिष्यन्द, व्रणशुक्ल, दृष्टि-नाड़ी प्रदाह आदि हो जाते हैं। मध्यकर्णपाक भी होता है। ये उपद्रव रोग शान्ति के साथ जाते रहते हैं पर कोई रह भी जाते हैं।

प्रतिफल—रोगारम्भ के दूसरे दिन रोग कुछ दब कर फिर बढ़ जाता है और ३ या ४ दिन रह जाता है। रोग अति तीव्र हो तो विकसितावस्था के पूर्व ही मृत्यु हो जाती है। जनपदव्यापी रोग में रोगारम्भ के कुछ ही घन्टों में या एकाध दिन में ही मृत्यु हो जाती है या तीव्रावस्था का शमन हो जाता है और पीछे शक्ति ह्रास हो रोगी मर जाता है। पर रासायनिक चिकित्सा (सल्फा द्रव्यों) के प्रादुर्भाव ने इस रोग की भयानकता दूर कर रही है और अब ये कुप्रतिफल केवल अचिकित्सित रोगी में ही होते हैं।"

वक्तव्य—सुश्रुत संहिता में अभिन्यास ज्वर को हतौजस ज्वर भी कहा है और इसे कृच्छ्रसाध्य वा असाध्य लिखा है। आयुर्वेदोक्त सम्प्राप्ति और आधुनिक सम्प्राप्ति रोग की तद्रूपता को सिद्ध करते हैं। लक्षणों में भी पर्याप्त साम्य है। साथ ही रोगकी भयानकता दोनों शास्त्रों में समान है। माधव-

कार ने महाघोर और सुश्रुत ने "श्वसन् निपतितः शेते" कहकर इसे स्पष्ट किया है। आधुनिक चिकित्सकों ने इस रोग का कारण "मेनिंगो कोकस" नाम का कीटाणु पाया है। यही लक्षण न्युमो कोकस, स्ट्रेप्टो कोकसजन्य शिरो सुषुम्ना ज्वर में भी होते हैं और ट्यूबरक्यूलरमेनिञ्जाइटिस से भी चिकित्सा सौकर्य के लिये भेद करना पड़ना है।

चिकित्सा

प्राचीन संहिताकारों ने रोग की कृच्छ्रता या असाध्यता को सम्भवतः ध्यान में रखकर इसकी चिकित्सा पर पर्याप्तप्रकाश नहीं डाला है। सामान्य सन्निपात ज्वर की चिकित्सा में ही इसका समावेश कर दिया है। शास्त्रीय चिकित्सा यथा प्रकरण दी हुई है। भैषज्यरत्नावली, आयुर्वेद संग्रह और योग रत्नाकर में क्वाथों के पर्याप्त योग है, जिनका प्रयोग किया जा सकता है। रस चिकित्सा में इस रोग के उपयुक्त कई योग हैं; जिनका प्रयोग हम करते हैं। पाठकों की सुविधा के लिये कुछ रोगियों का विवरण हम यहां दे रहे हैं।

(१) आठ बरस के एक बालक को देखने के लिये बुलाहट आई, जिसे घरवालों को सर्पदंश का सन्देह था। सन्ध्याकाल में उस बच्चे ने कांख में कुछ के काटने की बात कही और बेहोश हो गया। मैंने देखा, उसकी नाड़ी शीघ्रगामिनी थी और बालक शिर को लुढ़काता हुआ आंखें बन्द किये मृतवत् पड़ा था, श्वास चल रही थी। घरवालों के जोर देने से 'तिर्याक' की कुछ मात्रायें दी गईं पर रोगी की बेचैनी बढ़ती गई और वह दवा लेना नहीं चाहता था। कुछ पूछने पर मुश्किल से एकाध बात कह देता था। इसी बीच मैंने देखा कि बत्ती का प्रकाश वह नहीं सहता है और शोरगुल से उसकी घबड़ाहट बढ़ती जाती है। मुझे एकाएक अभिन्यासज्वर का सन्देह हुआ और मैंने उसे अन्धेरे और एकान्त घर में रखवाया। कुछ ही समय बाद वह अपने भावों को प्रकट करने लगा और 'वृद्धकालारि रस' तथा 'समीरपन्नग' की कुछ मात्रायें दूसरे ही दिन उसे आराम पहुंचा दीं। तीसरे दिन पथ्य लेकर अच्छा हो गया।

(२) युवती महिला—एक सप्ताह पूर्व से ज्वर, शिरोलुण्ठन, प्रलाप (चिल्लाना, उठ भागना, मार देना आदि) भ्रान्तप्रेक्षण आदि से युक्त थी। उसके पिता और स्वशुर दोनों ही वैद्य थे। दोनों की चिकित्सा होते रहने पर भी प्रलापोपद्रव में कमी नहीं आई और परिवारभर को सोने बैठने का चैन नहीं मिला। मैं बुलाया गया, जाने पर मालूम हुआ कि अजादुग्धपिष्ट अहिफेन तलवे में लगाई जाती है और पीने को मृतसंजीवनी दी जाती है। मैंने सम्मति दी, कि तीव्र अवसादक की जरूरत है और आधा ग्रेन अहिफेनीन की वस्ति से उसी दिन से वह रोगिणी चैन से सोने लगी। २-३ दिनों तक समीरपन्नग, कालारि और प्रस्वापन का योग देने पर रोगिणी अच्छी हो गई।

(३) दूसरे वर्ष उसी महिला का अकेला भाई इसी रोग में ग्रसित देखने को मिला पर वह निद्रोपेत हतौजस अभिन्यास था। इसमें अवसादक क्रिया खतरे से खाली नहीं थी। मैंने उसे भी वृद्धकालारि और समीरपन्नग का योग दिया पर मेरे वापस आने के कुछ ही घन्टों बाद वह बालक जाता रहा।

(४) एक बलिष्ठ अहीर नवयुवक को देखा। इसे तीव्र ज्वर, बेहोशी, तन्द्रा, प्रलापोपद्रव (मारना, भागना आदि) आदि थे। भ्रान्त प्रेक्षण और मूत्रसंग अति प्रबल थे। प्रतिदिन रबर नलिका से मूत्रनिस्सारण किया जाता था और २५% २५ से ५० मापभावक (सी०सी०) तक द्राक्षोजद्रव शिरावस्ति द्वारा दिया जाता था। पूर्वोक्त वृद्ध कालारि और समीरपन्नग का योग भी दिया जाता था। एक सप्ताह की चिकित्सा में ज्वर, प्रलाप, भ्रान्तपेक्षण आदि में पर्याप्त सुधार हुआ। मूत्ररोध में सुधार नहीं हुआ और आठवें दिन रोगी की इहलीला समाप्त हो गई।

(५) गि० प्र० नाम का युवक ३० वर्ष का ज्वर, अति प्रलापोपद्रवयुक्त, शिरोलुण्ठन, भ्रान्तपेक्षण, नाड़ी क्षीण और द्रुतगामिनी आदि से ग्रसित देखा गया। पूर्वोक्त द्राक्षोजद्रव २५% २५ मापभावक (सी०सी०) प्रतिदिन साथ ही पूर्वोक्त समीरपन्नग, कालारि और प्रस्वापन चूर्ण मिलाकर ४-४ घन्टे पर दिया। २४ घंटे पर भी प्रलाप में कमी न देख मिश्रित ब्रोमाइडों की पूरी मात्रा भी दिन भर में तीन बार दी गई। तीसरे दिन उपद्रवों में कमी आ गई। फिर केवल कालारि रस के साथ वृ० कस्तूरीभैरव और महालक्ष्मीविलास मिलाकर दिया गया क्योंकि बाद में फुफ्फुस शोथ के लक्षण पाये गये।

और ज्वर बना रहता था। १२ वें दिन रोग के सब लक्षण शान्त हो गये और पथ्यादि व्यवस्था की गई। बीच में रोगी चेष्टा करने पर भी कोई आहार द्रव्य लेने को तैयार नहीं हुआ।

(६) ५० की आयु का अहीर रोगी जो पाड़ा खरीदने-बेचने का कारबार करता था; रोगी होकर घर आया। ये लोग शीत में भी मैदान—बाग में ही रात को पड़े रह जाते हैं। त्रिदोषज्वर होना कहकर मैं देखने को बुलाया गया। मालूम हुआ रास्ते में और गत रात्रि में वह अति प्रलापोपद्रुत और तीव्रज्वर पीड़ित था। पर मेरे जाने पर वह ज्वर रहित केवल ९७° तापयुक्त था और मजे में बोल लेता था। फिर भी भ्रान्तप्रेक्षण था और नाड़ी क्षीण-द्रुत-गामिनी, श्वास बढ़ा हुआ (फुफ्फुस शोथयुक्त) था। मैंने रोग की गंभीरता पर ध्यान रख वृ० कालारि, समीरपन्नग, वृ० कस्तूरीभैरव, महालक्ष्मी विलास और मकरध्वज का मिश्रण करके ४-४ घंटे पर देने को दिया तथा सल्फाथियाजोल भी ४-४ घन्टे पर १ घन्टा आगे पीछे दिया, पर सन्ध्या होते होते रोगी मर गया।

(७) करीमन नाम का १८ वर्ष का नवयुवक ज्वर १०४°, प्रलापोपद्रवों से युक्त, फुफ्फुस शोथ के लक्षण, श्वास बढ़े हुए, नाड़ी क्षीण, द्रुतगामिनी, शिरोलुण्ठन, भ्रान्तप्रेक्षण, प्रकाशासहनीय आदि से युक्त देखा गया। इसमें अभिन्यास के साथ फुफ्फुसीय लक्षणों की अधिकता के कारण पूर्वोक्त समीरपन्नग, वृ० कालारि, प्रस्वापन योग के साथ "प्रोनपिन ४ लाख" की मांस वस्ति और सल्फाथियाजॉल भी दिया गया। दूसरे ही दिन रोगी को पर्याप्त लाभ हुआ और पाचवें दिन आराम हो गया।

उपसंहार—अभिन्यास ज्वर की चिकित्सा में मुझे जो फलाफल मिला है, उसीका आनुभविक विवरण मैं "सचित्र आयुर्वेद" के पाठकों के सामने रखा है, वैद्यों से प्रार्थना है कि अभिन्यास ज्वर की सफल चिकित्सा के लिए अपने-अपने आनुभविक प्रयोग "सचित्र आयुर्वेद" द्वारा प्रगट करने की कृपा करें।

मलेरिया आदि बुखार मात्र की
अचूक निर्दोष दवा

बैद्यनाथ प्राणदा

के निर्माता

हिन्दुस्तान के औषध निर्माण कार्य में अग्रगण्य हैं
वे

आयुर्वेद शास्त्र की सभी दवाएँ

जैसे—आसव, अरिष्ट, चूर्ण, बटी, गोलियाँ, अवलेह, मोदक, पाक, तैल, घृत, लौह, मण्डूर, गूगल, पर्पटी, रस, रसायन, कूपीपक्व-रसायन धातुभस्म, शर्बत, अर्क आदि-आदि के साथ

सुप्रसिद्ध अचूक पेटेण्ट दवाएँ

जैसे—बैद्यनाथ प्राणदा, बालामृत, दादूरीन, सालसा, कफमिक्श्चर, कासवटी, श्वासकल्प, हीलर मलहम, हिमालय सुरमा, नेत्र-रक्षक, दन्तमंजन, क्षुधाकारीवटी, अर्ककपूर, अर्क-पुदीना, आदि-आदि सब बैद्यनाथ विशेषताओं के साथ

निर्माण करते हैं

और ये अमोघ-गुणकारी दवाएँ आपको सारे हिन्दुस्तान में बैद्यनाथ की ४ निर्माण शालाओं, ५० बिक्री केन्द्रों, तथा १४००० एजेन्सियों द्वारा सब जगह एक ही मूल्य में प्राप्त होती हैं।

श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर।

शोथ

कविराज सत्यनारायण प्रसाद शास्त्री, साहित्यायुर्वेदाचार्य

कुछ मास पूर्व मेरे पास १ व्यक्ति अपनी स्त्री को लेकर आया। उसकी पत्नी को शोथ रोग था, मैंने जिस समय रोगिणी को देखा उस समय उसकी अवस्था निम्नलिखित रूप से थी। मुँह, पेट, जङ्घा, बाहु, और पाद पर शोथ, दवाने से मीठी-मीठी वेदना, पेशाब जलता हुआ पीले-रङ्ग का अल्प मात्रा में, दस्त की कब्जीयत, भूख का सर्वथा अभाव, खांसी का अल्पवेग तथा दम कुछ-कुछ फूलता हुआ था। रोगिणी का स्वामी बहुत हैरान था, बहुत जगह चिकित्सा करा चुका था पर 'रोग बढ़ता ही गया ज्यों-ज्योंदवा की' रोगिणी भी अपने आरोग्य लाभ करने की आशा त्याग चुकी थी।

मैंने शास्त्रानुसार रोगिणी की परीक्षा की, उसका हृदय तथा मूत्रपिण्ड दोनों ही विकृत थे, ठेपन परीक्षा प्रणाली से उसके उदर में जल भी मालूम पड़ता था। मूत्र पिण्ड के अशक्त होने से रक्त में दूषित तत्त्व अधिक मात्रा में इकट्ठे हो चुके थे। हृदय के निर्बल होने से रक्त का प्रवाह मन्द हो गया था अतः रक्त से जलीय अंश चू-चू कर त्वचा में इकट्ठा होता जा रहा था।

रोगिणी का इतिहास पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसे ५ वर्ष से श्वास का रोग था, कई दिन चिकित्सा करवा चुकने के बाद उसके घर एक संन्यासी आये उनके समझाने पर उसने साधुमहाराज से चिकित्सा करवाई। साधु लगभग १० दिन तक उसके पास रहा, उसने मल्ल और लौह का योग उसे दिया। श्वास धीरे-धीरे शान्त हो गया। श्वास के शान्त होने पर साधु महाराज चले गये। रोगिणी की कोई पथ्यापथ्य व्यवस्था उन्होंने नहीं बताई, इसके फलस्वरूप वह दही, नीबू, अमचूर, कचरी आदि खट्टे पदार्थ खाने लगी; फिर क्या था, शरीर में धीरे-धीरे सूजन बढ़ने लगा। इस पर उसके पति ने वैद्यों को बुलाकर चिकित्सा आरम्भ करवाई। वैद्य लोग रोगिणी का इतिहास पूछे बिना ही चिकित्सा में प्रवृत्त हो गए। रोगिणी को पथ्य का परित्याग कर देने से श्वास का वेग फिर बढ़ने लगा था अतः वैद्यों ने भी उसे फिर कुछ मल्ल का सेवन करा दिया, अतः उसका शोथ उसी प्रकार कायम रहा। हाँ, खट्टे पदार्थ बन्द करवा देने से बढ़ नहीं पाया। वैद्यों की चिकित्सा से असफल होकर वह डाक्टरों की ओर झुका, उन्होंने भी बिना इतिहास जाने चिकित्सा की, कई तरह के इन्जेक्शन दिए, दवायें दीं पर आराम के बदले हानि ही हुई। मुझे उसके इतिहास पूछने से मालूम हुआ कि यह अपथ्य-जन्य मल्ल का दुष्प्रभाव है अतः मैंने उसे धैर्य पूर्वक चिकित्सा करवाने का आदेश देते हुए निम्न व्यवस्था की।

प्रातः ७ और सायं ५ बजे

स्वर्णमाक्षिक ३ रत्ती	मात्रा २
मुक्ता पिष्टी २ रत्ती	
अभ्रभस्म १ रत्ती	
लौह भस्म २ रत्ती	

मधु से चटा कर ऊपर से पथ्यादि कषाय पीनेको कहा गया और—

भोजनोत्तर—

श्वेत पर्पटी २ माशा अर्क मकोय के साथ लेने को कहा।

रात को सोते समय—

शिलाजतु १ माशा त्रिफला सिद्ध दुग्ध से दिया गया। और—

खाने के लिए केवल दूध, दलिया और पीने के लिए कत्था मिलाया हुआ पानी, या अर्क पुनर्नवा में सफेद कत्था मिलाकर दिया गया। खटाई, फल, नमक आदि बन्द कर दिए। कोई वाह्य उपचार नहीं किया।

स्वर्णमाक्षिक में लौहांश है तथा वह निद्रल एवं रक्त प्रसादक है, मुक्ता पिष्टि शीत, हृद्य एवं विषशामक है। अभ्रक शोथ हर एवं हृद्य है, तथा लौह का शोथ पर एवं प्लीहा यकृत् पर साक्षात् प्रभाव होता है अतः उपर्युक्त चार औषधियों का यौगिक बनाया गया। मल्ल विषजन्य दुष्प्रभाव से हृदय निर्बल, मूत्र पिण्ड अशक्त एवं दाह, निद्रानाश आदि लक्षण होते हैं। अतः उन्हें ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त औषधियाँ दी गईं। रोगिणी को कब्ज रहती थी अतः पथ्यादिकषाय अनुपान रूप में प्रयुक्त कराया गया। रोगिणी के शरीर में जल सञ्चय हो गया था, पथ्यादि कषाय से दस्त में जलीय अंश अधिक आता है, अतः यह कषाय दिया गया। रोगिणी को पेशाब कम-पीला एवं दाह के साथ होता था तथा क्षुधा नहीं लगती थी इसलिए भोजनोत्तर 'श्वेतपर्पटी' की योजना मूत्रल अनुपान के साथ की गई। श्वेतपर्पटी मूत्रल, प्लीहा, यकृत सुधारक क्षुधावर्धक एवं शीतल है। वृक्कों को उत्तेजित करती है अतः इसकी योजना की गई।

रात्रि में शिलाजतु एवं त्रिफला सिद्ध दुग्ध की योजना इसलिए की गई, कि शिलाजतु से रक्तस्थित दूषित द्रव्य मूत्र द्वारा निकल जाता है एवं वह पौष्टिक-शोथ हर एवं हृद्य है। त्रिफला में, शोथ, रक्तविकार कब्ज आदि दूर करने के विशेष गुण हैं अतः तत्सिद्ध दूध दिया गया।

उसे श्वास-खांसी का कुछ-कुछ वेग रहता था अतः उसपर भी प्रातः-सायं वाली औषध में प्रयुक्त अभ्रक का अच्छा उपयोग होता था। कत्थे में संखिया विष को दूर करने का विशेष गुण होने से उसका जल दिया गया। नमक और खट्टे पदार्थ शोथ वृद्धिकर है अतः इनका सर्वथा परित्याग कर दिया गया।

इस प्रकार उसकी चिकित्सा दो मास तक की गई, एक सप्ताह औषध लेने के पश्चात् उसके शोथ में फर्क नजर आने लगा। उसे धीरे-धीरे निद्रा आने लगी, श्वास का वेग बहुत कुछ शान्त हो गया था। कुछ-कुछ क्षुधा भी बढ़ने लगी थी। १ मासतक चिकित्सा करने पर उसका शोथ बिलकुल जाता रहा पर रोगिणी उसी तरह कमजोर मालूम पड़ती थी। अतः पथ्यादि कषाय को बन्द कर दिया गया, क्योंकि वह मल को अधिक बाहर गिराता था तथा "मलायत्तं बलं पुंसाम्" के सिद्धान्तानुसार मल ज्यादा होना कमजोरी करनेवाला है। शेष औषधें उसी प्रकार चालू रखी गईं। १॥ माह बाद रोगिणी ने स्वास्थ्य में काफी उन्नति कर ली पर श्वास का वेग दखल देता जा रहा था, अतः प्रातः-सायं वाली औषधियों का अनुपान 'सितोपलाद्यवलेह' कर दिया गया। इस अनुपान की योजना से १ सप्ताह में श्वास-खाँसी में काफी लाभ हुआ। १ सप्ताह और दवाखिलाई गई पश्चात सब औषधियाँ बन्द कर दी गईं। मात्र 'सितोपलाद्यवलेह' और शिलाजतु चलता रहा। कुछ दिनों में रोगिणी पूर्णस्वस्थ, बलिष्ठ एवं कान्तियुक्त हो गई।

मोतीपिष्टी

वैद्य सभाकान्त झा शास्त्री

अच्छा पानीदार बसराई खाखा (छोटे अनविधदाने) लाकर उसको गरम पानी से धो, सुखा, खूब साफ किये हुए लोहे के इमामदस्ते में कूटकर सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण कर लें। फिर अच्छे (न घिसने वाले) पत्थर के खरल में डाल एक दिन नीबू के रस में मर्दन करें, नींबू का रस सूख जाने पर उत्तम गुलाब के अर्क में या चन्दनादि अर्क[1] में मर्दन करें। आँख में डालने के अंजन सदृश सूक्ष्म पिष्टी हो जाय तब छाया में सुखा कपड़छन करके शीशी में रख लें।

—सिद्धयोग संग्रह

गुण और उपयोग

मुक्ता खटिक कार्बनित (कैल्शियम कार्बनित) होते हुए भी, उसको उत्पन्न करने वाले जीव के ऐन्द्रिक भाग की उपस्थिति से मोती अन्य खटिक धातुओं में श्रेष्ठ माना जाता है। मोती बाह्य प्रयोग में क्षत के लिए ग्राही और स्रावहर है। खटिक धातु क्षारीय होने के कारण आमाशय में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के अम्लों को जो कि शूल और अम्लपित्त के कारण बनते हैं उदासीन कर देते हैं। आँतों पर इसका ग्राही प्रभाव विशेष रूप से होता है।

इसी तरह शरीर के किसी मार्ग से निकलने वाले स्राव को सुखा देता है। गर्भावस्था में माता के शरीर में विटामिन्स की कमी को भी यह पूर्ति कर देता है। मोती विशेषतः क्षयहर है। इसके देने से कफ की कमी के साथ रात्रिस्वेद और रक्तनिष्ठीवन में भी कमी आती है। इसी लिये क्षय में मालती वसन्त विशेष उपयोगी औषध मानी जाती है।

अग्निपुटी मोती भस्म की अपेक्षा मोतीपिष्टी विशेष गुणप्रद तथा अग्निसंयोग न होने के कारण सौम्य होती है। अतः इसीका सेवन करना आजकल विशेष प्रचलित है। यह पिष्टी मानसिक दुर्बलता जैसे साधारण कारण से क्रोध करना, विचार हीनता, ऊँचा शब्द सुनने, भीड़ में होने से जी घबड़ाना, इन रोगों में विशेष लाभ करती है। तथा जीर्णज्वर, रक्तपित्त, दिमाग की कमजोरी, शिर दर्द, पित्त की वृद्धि, दाह, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र आदि को दूर करती है।

इस के सेवन से पित्त की तीव्रता और अम्लता कम हो जाती है। तथा नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। शीतवीर्य होने के कारण यह मूत्र मार्ग एवं सर्वांग के दाह और पित्त वृद्धि को कम करती है। अनिद्रा रोग में मोतीपिष्टी यथेष्ट लाभ करती है।

अत्यन्त क्रोध; जागरण, विशेष धूप में घूमने तथा पैत्तिक पदार्थों का विशेष सेवन आदि से मस्तिष्क की शिराओं में आघात हो सिर घूमने लगता है। इसमें विचार शक्ति का कम हो जाना, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना किसी की बात अच्छी न लगना, निद्रा कम होना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में मुक्तापिष्टी का उपयोग करने से शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि यह पिष्टी सौम्य होने के कारण पित्तशामक भी है और उपरोक्त उपद्रव पित्त वृद्धि के कारण ही होते हैं। अतएव इसके सेवन से लाभ होता है।

---

[1] १—चन्दनादि अर्क—उत्तम चन्दन का चूर्ण, मौलसी गुलाब तथा केवड़ा, वेदमुश्क और कमल के फूल—सब को एकत्र कर उसमें अठगुना पानी डाल कर अर्क खींच लें। मोती, प्रवाल आदि की पिष्टी बनाने में अर्क गुलाब की जगह इससे काम लिया जा सकता है। यदि वेदमुश्क के फूल न मिलें, तो मौलसरी के फूल डालना चाहिये।

—सिद्धयोग संग्रह

किसी भी कारण से जब मन में क्षोभ पैदा हो, या तेज शराब, गांजा, भांग, धतूरा आदि तीक्ष्ण, उष्ण और विकासी पदार्थों के अति सेवन से मस्तिष्क की विकृति होकर माथा खराब (पैत्तिक उन्माद) हो जाय। तो ऐसी स्थिति में मुक्तापिष्टी बहुत अच्छा गुण करती है। परन्तु इसके साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म और प्रवालपिष्टी भी मिला लें तो शीघ्र लाभ करती है।

मोती शीतवीर्य है, अतः गर्मी के मौसम में धूपजन्य प्रदाह को शान्त करने के लिए इसका प्रयोग करना चाहिये। कुछ आदमी की प्रकृति इतनी नाजुक होती है कि वे साधारण भी धूप सहन नहीं कर सकते। उनकी बाहरी त्वचा धूप की गर्मी सहन करने में एक दम असमर्थ होती हैं। ऐसे आदमी गर्मी के दिनों में बड़े परेशान (व्याकुल) हो जाते हैं। उनके लिए मुक्तापिष्टी का सेवन करना अच्छा है।

गर्मी के दिनों में कड़ी धूप से, अग्नि के पास ज्यादा काम करने रात में विशेष जागने आदि कारणों से नाक, मुँह, गुदामार्ग से रक्त निकलने लगता है। साथ ही हाथ, पांव, कपार और नेत्रों में अथवा सर्वांग में दाह उत्पन्न हो जाता, इससे बेचैनी बढ़ जाती है। ऐसे रोगी को मुक्तापिष्टी के सेवन के साथ शिर में ब्राह्मी आँवला तैल की मालिश करने से विशेष लाभ होता है।

सूजाक या उपदंश होने के बाद अथवा पैत्तिक पदार्थों के अधिक सेवन से या अन्य कारणों से पित्त बढ़कर या पेशाव में तीक्ष्णता-उष्णता बढ़कर मूत्र मार्ग में जलन होने से रोगी व्याकुल हो जाता है। ऐसी स्थिति में मुक्तापिष्टी के सेवन से अच्छा फायदा होता है। क्योंकि यह शीतवीर्य और मूत्रल होने से इसका प्रभाव मूत्राशय तथा मूत्र नलियों पर होता है।

क्षय-राजयक्ष्मा में जब दाह, प्यास ज्यादे, बुखार, बेचैनी आदि लक्षण हों, तो मुक्तापिष्टी का प्रयोग किया जाता है। क्षय के आरम्भ से अन्त तक जैसे प्रवाल पिष्टी से लाभ होता है। वैसे ही पित्तजन्य क्षय में मुक्तापिष्टी के उपयोग से भी लाभ होता है।

अनुलोम क्षय में जब रस रक्तादि धातुओं का क्षय होने लगता है, तब शरीर दुर्बल और कमजोर हो जाता है वस्त पतले आने लगते हैं, मुंह में छाले पड़ जाते हैं, शरीर में दाह, पेट में जलन इत्यादि लक्षण उत्पन्न होने पर मुक्तापिष्टी के सेवन से दाह कम हो जाता तथा रस-रक्तादि धातु भी पुष्ट हो जाते हैं।

रोगानुसार प्रयोग

(१) नेत्र रोग में—मोतीपिष्टी १ रत्ती, मक्खन, मिश्री या त्रिफलादि घृत १ तोला के साथ सेवन करना अत्यन्त लाभदायक है।

(२) अनुलोम क्षय में—मुक्तापिष्टी २ रत्ती, प्रवालपिष्टी १ रत्ती, दोनों एकत्र मिलाकर मधु से दें। (३) क्षय रोग में—मोती पिष्टी १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण १ माशे के साथ च्यवनप्राश में मिलाकर दें। (४) उरःक्षत में मोतीपिष्टी २ रत्ती, च्यवनप्राशावलेह १ तोला में मिला कर सेवन करने से विशेष लाभ होता है। (५) हृदय की निर्बलता में मुक्तापिष्टी १ रत्ती, अकीकपिष्टी १ रत्ती आंवले के मुरब्बे के साथ देना अच्छा है। भोजन के बाद अर्जुनारिष्ट १ तोला में बराबर जल मिलाकर पिला दें। (६) पित्त प्रधान कास में मोतीपिष्टी १ रत्ती, च्यवनप्राश १ तोला, सितोपलादि चूर्ण १ माशे में मिला कर सेवन करें। (७) जीर्णज्वर में मुक्तापिष्टी १ रत्ती, वसन्तमालती १ रत्ती, सत्त्वगिलोय २ रत्ती, सब को एकत्र मिला मधु के साथ दें। (८) पैत्तिक उन्माद में मुक्तापिष्टी १ रत्ती, स्वर्ण माक्षिक भस्म $\frac{१}{२}$ रत्ती, प्रवालपिष्टी $\frac{१}{२}$ रत्ती, कुष्माण्डावलेह के साथ दें। (९) दिमाग की कमजोरी में मुक्तापिष्टी १ रत्ती, स्वर्ण वर्क $\frac{१}{४}$ रत्ती, मकरध्वज $\frac{१}{२}$ रत्ती, मलाई के साथ दें। (१०) पैत्तिक शिर दर्द में मोतीपिष्टी १ रत्ती को एक छटाँक बादाम के हलुआ के साथ दें। लगातार ४० दिन तक इसके नियमित सेवन से अवश्य लाभ होता है। (११) अम्लपित्त में मुक्तापिष्टी १ रत्ती, प्रवालपिष्टी $\frac{१}{२}$ रत्ती, गिलोयसत्त्व २ रत्ती में मिला शहद के साथ सेवन करने से शीघ्र फायदा होता है। (१२) अनिद्रा में मोतीपिष्टी १ रत्ती, स्वर्णमाक्षिक भस्म $\frac{१}{२}$ रत्ती में मिला मक्खन के साथ सेवन करें। (१३) गर्भोपद्रव या गर्भ की पुष्टी के लिए मोतीपष्टी १ रत्ती, प्रवालपिष्टी १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर गुलकन्द २ तोला या आंवले का मुरब्बा १ तोला के साथ देने से गर्भ पुष्ट होता है।

विशेष जानकारी के लिये देखिये—वैद्यनाथ प्रकाशन द्वारा प्रकाशित "आयुर्वेद-सार-संग्रह" मूल्य ७)।

आचार और स्वास्थ्य

वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह, रसायनाचार्य

भारतीय चिकित्सा के आचार्यों ने जन साधारण के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये मनुष्यजीवन को इस प्रकार संस्कृत किया, जिससे ज्ञानी और अज्ञानी समानभाव से लाभ उठाकर संसार के सुख का अनुभव कर सकें।

मनुष्य शरीर आत्मा का मन्दिर है, और प्रकृति ने इसको इस प्रकार यन्त्र उप-यन्त्रों से सुसज्जित कर बनाया है कि उसको समझ कर आज के वैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार के यन्त्र बनाने में सफलता प्राप्त की है, किन्तु मानव शरीर जैसा यन्त्र अब तक नहीं बन सके। प्राचीन काल में भी विश्वामित्र ऋषि ने सृष्टि निर्माण करने की कला का आविष्कार किया था और वे चाहते थे कि जरायुज-सृष्टि वानस्पतिक सृष्टि में परिवर्तन हो जाये और उन्होंने इसके लिये प्रयत्न कर नारियल को मनुष्य के मस्तिष्क बनाने का प्रयत्न किया, इसीलिये संस्कृत के पण्डित इसे "विश्वामित्र · कपाल" कहते हैं। यदि पाठक ध्यानपूर्वक नारियल के निर्माण की सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षा करें तो देखेंगे कि सिर के बालों के स्थान पर जटा है और यह जटा ऐसी चिपकी रहती है जैसी सद्योजात बालक के सिर पर बाल चिपके रहते हैं। इन बालों के नीचे जैसे ललाट और आखें होती हैं उसी प्रकार नारियल के अगले हिस्से में दो आँखों के चिह्न होते हैं और बीच में नासा-सी रेखा होती है।

मनुष्य के कपाल में मस्तिष्क रहता है और नारियल कपाल में गोला रहता है, यह गोला मनुष्य के मस्तिष्क को बल देने के लिये बड़ी ही उत्तम चीज है। इस नारियल को बराबर चीनी मिलाकर हमाम दस्ता में कूट कर बारीक चूर्ण बनाकर दुर्बल मस्तिष्क वाले नर-नारी सेवन करें; तो मस्तिष्क के अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। इसकी महत्ता समझ कर हिन्दू-समाज ने प्रत्येक उत्सव और शुभ काम में नारियल की पूजा कर उसकी गिरी निकाल कर जन-साधारण में बांटने का रिवाज चला दिया है, जिससे प्रत्येक मनुष्य को ब्रेन-फूड (दिमाग़ी खुराक) मिल जावे। यह रीति हमारे देश में अब भी गांव-गांव में प्रचलित है, किन्तु ऊंचे पढ़े-लिखे लोग इसकी अवहेलना कर रहे हैं और विदेशी कैमीकल-फूड खा कर जीवन निर्वाह की विडम्बना कर रहे हैं।

भारतीय वैद्यों ने नारियल का प्रचार बढ़ाने के लिये नारीकेल-खण्ड जैसा सुस्वादु-पाक बना करके भी प्रचार किया था किन्तु राज्याश्रय के अभाव से इसका प्रचार भी कम हो रहा है फिर भी संसार में अनेक प्रकार की मिठाइयों में नारियल का उपयोग होता है और मद्रास तथा मलाबार में तो नारियल और नारियल का तेल भोजन का एक विशेष अंश है, और इसीलिये दक्षिणीयों के मस्तिष्क बड़े ही उर्बर होते हैं। राजाजी और रमन इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

नारियल का उपयोग चटनी और मसाले में उचित मात्रा में करने से भोजन के स्वाद की अभिवृद्धि होती है। कहां तक लिखा जावे जीवन को आचार्यों ने धर्ममय बना दिया है। प्रातः ऊषा काल में ऊषः-पान की विधि चलाई। ऊषाकाल में अर्थात् प्रातः चार और पांच बजे के बीच में शीत या उष्ण जल प्रकृति के अनुसार पीने से आमाशय (Stomach) धुल कर साफ हो जाता है और मल की शुद्धि होती है। इस व्यवहार को पाश्चात्यों ने भी अपना लिया है और शीत देश के अनुसार बिस्तरे में हि प्रातः गरमागरम चाय पीने का रिवाज डाल दिया है। मैंने चिरकाल तक अनुभव किया है कि तांबे के बर्तन में रात में जल भरकर

प्रातः ऊषा काल में पीने से शरीर की अच्छी शुद्धि होती है, क्योंकि ताम्र और जल के सम्पर्क से एक नीला (सबज़ी-मायल) सा धब्बा बर्तन में पैदा होता है वह ताम्र औषिद (Copper Oxide) होता है, जिसके सम्पर्क से जल अत्यन्त कृमिनाशक हो जाता है और जल के रोगोत्पादक-कृमियों को नष्ट करता है, इसीलिये हिन्दू नदी में ताम्र के पैसे को डालना धर्म समझता है। नदियों का जल अधिकांश में विकृत होता है। जल शुद्धि का यह उपाय हिन्दू जीवन में कब से आया है इसका पता लगाना कठिन है। क्या, आज के वैज्ञानिक जो जल शुद्धि के लिये पोटैसियम परमैंगनेट, फिटकरी और ब्लूचिंग पाउडर काम में लाते हैं, वे इस भारतीय पद्धति का प्रयोग कर परीक्षा करेंगे। इसकी परीक्षा करना सहज है जितनी टँकियें बड़े-बड़े शहरों में या रेलवे स्टेशन पर जल-संग्रह के लिये बनाई जाती हैं, उनमें पेंट की जगह ताम्बे की मोटी चद्दर लगा दें और जहां-जहां पानी के रेज़रवायर (Reservoir) हैं वहां ताम्बे के चद्दर की कतरन डाल दें और समय-समय पर इनका संशोधन आवश्यकतानुसार करते रहें। मुझे एक मित्र ने यह बताया कि कानपुर के पास जो बिठूर आश्रम है, वहां पर किसी जमाने में मरहटों का बड़ा भारी केन्द्र था; वहां जल शोधन के लिये गङ्गा के अन्दर बड़ी-बड़ी ताम्बे की चद्दरें डाली हुई थीं; जिनको निकाल कर ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने प्रथम महायुद्ध में उपयोग किया। यदि आज भी पाठक बड़े-बड़े राजप्रासाद और मुग़लों के महलों के फव्वारों का परीक्षण करेंगे तो ताम्बे ही के नल मिलेंगे। लैड पाइप या कास्ट आयरन पाइप तो पाश्चात्य सभ्यता की देन है, इन पाइप के अन्दर की कलई खराब हो जावे तो असंख्य नागरिक रोगाक्रान्त हो जाते हैं, विशेष कर उदर रोग और आन्त्रिक ज्वर का प्रकोप होता है। अतः प्राचीन आचार्यों ने जीवन के सुधार के लिये जल शोधन के साथ सुन्दर उपदेश दिया है।

दृष्टि पूतं न्यसेन् पादं वस्त्र पूतं पिबेज्जलम्।
सत्य पूतं वदेत् वाचं मनः पूतं समाचरेत्॥

जल शोधन की क्रिया को भूल जाने से हमारे देश में अनेक रोग घर किये हुए बैठे हैं। उच्छिष्ट भोजन करना भारतीय पद्धति के सर्वथा विरुद्ध है, किन्तु होटलों और ढाबों में भोजन करनेवाले कितना शुद्ध भोजन पाते हैं यह एक दिन में ही अनुभव किया जा सकता है। क्षय रोग की निवृत्ति के लिये अनेक प्रकार के उपाय किये जाते हैं और करोड़ों रुपये गरीब जनता से ऐंटी ट्यूबर क्लोसिस सील बेच कर एकत्रित करके ईंट और पत्थरों में लगाये जाते हैं और विषैले इन्जेक्शन नवयुवकों के शरीर में प्रवेश कर उनकी जीवनी शक्ति का ह्रास किया जा रहा है पर "आचारः प्रथमो धर्मः" के प्रचार की तरफ किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। क्या, किसी देश का उत्थान उसकी संस्कृति का नाश करने से हो सकता है? पर क्या करें; आज देश की सर्वोत्तम शक्ति इसी कार्य में अपना गौरव समझती है। इससे देशका नाश ही होगा, अतः मेरा विज्ञ जनों से निवेदन है कि वे अपनी संस्कृति की रक्षा के लिये विज्ञ सम्मत ऋतुचर्या और दिन-चर्या का घर-घर में में प्रचार कर देश की जन-शक्ति को स्वस्थ और सामर्थ्यवान् बनाने का यत्न करें।

प्राचीन वैद्य समाज ने शताब्दियों के अनुभव; सूत्रों में बनाकर सुन्दर-सुन्दर पद्यों में गुम्फित कर दिया है, केवल उनके स्मृतिपट पर अङ्कित करके व्यवहार में लाने की आवश्यकता है। गीता जैसे व्यवहार शास्त्र ने भी शरीर की रक्षा को भुलाया नहीं है और योग की व्याख्या में स्पष्ट लिखा है :—

"युक्ताहार विहारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुखहा॥"

प्रायः इसी भाव को वाग्भट्टाचार्य ने कैसे सुन्दर पद्य में व्यक्त किया है। उन्होंने मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य का समुल्लेख कर दिया है :—

नित्यं हितासार विहार सेवी,
समीक्ष्यकारी विषयेष्व सक्तः।

(शेषांश ७५० वें पृष्ठ पर)

मनुष्य और उसकी श्वास क्रिया

श्री शिवशङ्कर, "भारती"

हम जीवित रहने के लिये श्वास लेते हैं। पर इसके विपरीत हम बिना श्वास लिये कितनी देर जीवित रह सकते हैं। इसका अधिकार-युक्त काल ६ मिनट २९.२१५ सेकिण्ड है। बहुत कम मनुष्य ऐसे पायेंगे कि जो तीन मिनट तक बिना साँस लिये रह सकें। श्वास के इतने महत्त्वपूर्ण होने पर भी यह क्रिया लापरवाही के कार्यों में गिनी जाती है। गायन, भाषणकला आदि, खेल तथा व्यायाम के अतिरिक्त इसकी उपयोगिता पर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता है।

जीवन के ऐसे विशेष अवसरों पर उचित रीति से यदि श्वास लेना उपयोगी है, तो क्या स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये उससे कहीं अधिक उपयोगी नहीं होगा। हमें भी यही विचारना होगा कि हमें किस प्रकार श्वास लेना चाहिये।

गहरी श्वास

यह देखा गया है कि अशिक्षा के कारण बहुत कम लोग अपने शारीरिक और मानसिक हित के लिये फेफड़ों को सदुपयोग में लाते हैं और न वह श्वास क्रिया के मूल्य को ही समझते हैं। हमें अपने अन्दर जीवन की आग को कायम रखने के लिये श्वास लेना चाहिये। शरीर की गर्मी और शक्ति उन पदार्थों के जलने से आती है जो शरीर-तन्तुओं में भोजन से निकलती है। यह ओषजनीकरण केवल अक्सीजन की उपस्थिति में, जो फुप्फुसों द्वारा पहुंचायी जाती है, यह भी हो सकता है जो हमारे, श्वास लेते समय रक्त के द्वारा प्राप्त की जाती है। जितनी पूर्णता से हम श्वास लेते हैं उतनी ही अधिक आक्सीजन हमें प्राप्त होती है और उतनी ही द्रुतिगति से जीवन की गति होती है।

गहरी श्वास से एन्द्रिक कार्यों में सरलता

श्वास-प्रश्वास क्रिया का ऐन्द्रिक कार्य पर बड़ा गहन प्रभाव पड़ता है। श्वास लेने से हम अशुद्ध विषैले रक्त को फेफड़ों के पास शुद्ध होने के लिये भेजते हैं। अशुद्ध रक्त हृदय के नीचे के कोष्ठ में एकत्रित हो जाता है और हृदय की राह से फुप्फुसावरण तक पहुंचाया जाता है। फुप्फुसावरण फेफड़ों को घेरे रहती है अर्थात् फेफड़ों के ऊपर एक झिल्लीदार आवरण होता है और रक्त के भरे हुए फेफड़ों के दबाव से जो रक्त इसमें होता है वह आक्सीजन से उसकी अशुद्धता को बदल देता है। इस प्रकार हृदय के ऊपर फुप्फुसावरण थोड़े समय के लिये शुद्ध रक्त का भण्डार रहता है जब तक कि हृदय के मार्ग से रक्तविभाजन के लिये छटता नहीं है।

उत्तम शारीरिक क्रियाक्रम पर प्रभाव डालने के अतिरिक्त फेफड़ों के पूरे उपयोग का हमारी प्रवृत्ति और मानसिक अवस्थाओं पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। उत्तेजना, भय, चिन्ता तथा व्यग्रता और दूसरे प्रकार के आवेगपूर्ण विकार का मन्द, तेज और निषेधात्मक श्वास से सम्बन्ध है। प्रायः हमारी चित्त-प्रवृत्ति तनाव की ओर शरीर-क्रिया सम्बन्धी प्रतिक्रिया, तेज-मन्द प्रकार के श्वास को बढ़ावा देती रहती है। यदि हम जानते हुए अनभिज्ञ हो पूरी तरह से श्वास लेने का यत्न करें, तो हमारे भय पर सरलता से विजय प्राप्त की जा सकती है और हम उन पर अधिक नियन्त्रण रख सकते हैं। श्वास जीवन है और जितनी-जितनी मात्रा में निश्चयरूप से हम इसे खींच सकते हैं, तो हम अपने जीवन में स्वास्थ्य और सुख के लिये नयी गुणकारी शक्ति भर देते हैं।

ऐसा जान पड़ता है कि हमारे श्वास लेने की गति जन्म से पूर्व के प्रभावों द्वारा निश्चित होती है। श्वास लेने की क्रिया पूर्णरूपेण ऐच्छिक नहीं है।

श्वास कैसे लें ?

उत्तम रीति से श्वास लेने के लिये मूल आसन सभी अवस्थाओं में समान है। हमें चाहिये कि सीने को ऊपर की ओर उठावें, वक्षोदर मध्यस्थपेशी अथवा श्वास-पटल की मेहराव की भाँति, कन्धों को पीछे की ओर और नीचे करने की आवश्यकता है और श्वास लेते समय जहाँ तक हो सके वक्ष के अन्दर फेफड़ों में श्वास भरते और निकालते समय शरीर को शिथिल करें। यदि आवश्यकता हो तो मुँह से भी श्वास बाहर निकाला जा सकता है। किन्तु श्वास का लेना नाक से ही होना चाहिये। इसलिये कि वायु के सूक्ष्म और दूषित कण अन्दर प्रवेश न कर सकें और नाक से श्वास छनकर अन्दर जाय। ऐसी दशा में फुफ्फुसों तक श्वास के पहुंचने में गर्म होना भी आवश्यक है।

फेफड़ों को पुनः सुधारने के अभिप्राय से श्वास लेने की चार अवस्थायें हैं। श्वास खींचना-रुकना, श्वास बाहर निकालना-रुकना। धीमे और एक सी श्वास लें, सात-आठ पल के लिये श्वास को रोकें और फिर धीरे-धीरे निकाल दें। पलभर के लिये श्वास न लें और इसी प्रकार श्वास क्रिया को चलने दें। इस प्रकार का सीधा-साधा व्यायाम जागने के समय और सोने से थोड़ा पहले किया जा सकता है। यह दिन में किसी भी अवस्था में किया जा सकता है। जब कि फेफड़ों के कार्य में स्वच्छन्दता हो और शरीर शिथिलावस्था में हो।

वृद्धों के लिये श्वास व्यायाम

अधिकतर वृद्ध पुरुष जिनका वक्ष अन्दर की ओर घुस गया है, उन्हें चाहिये कि पीठ के बल सीधे लेटकर वक्षोदर मध्यस्थ पेशी श्वास-पटल पर हाथ रख अन्दर और ऊपर हलकी रीति पर मजबूती से पकड़ते हुए श्वास लेने का प्रयास करें। एक बार मूल गति या लय पर विजय प्राप्त कर लेने पर अनेक प्रकार के श्वास व्यायामों का अभ्यास किया जा सकता है। उदाहरण के रूप में श्वास को बाहर निकालने का समय श्वास के अन्दर लेने के समय से दुगुना किया जा सकता है अथवा इसके प्रतिकूल भी कर सकते हैं। श्वास का रोकना बढ़ाया जा सकता है। लेकिन आवश्यकता से अधिक ऐसा करना हानिप्रद होगा।

दैनिक नवभारत टाइम्स

(शेषांश ७४८ पृष्ठ का)

दाता समः सत्यपरः क्षमावान्,
आप्तोपसेवी च भवत्य रोगः ॥

यही नहीं राजा-महाराजा को प्रसन्न करके अपने सिद्धान्तों का उनके द्वारा जन साधारण में प्रचार किया। आज का पाश्चात्य चिकित्सक समाज भी राज्यशक्ति का आश्रय लेकर अपने विज्ञान और व्यवसाय का प्रचार कर रहा है। वर्तमान के वैद्य समाज को भी आज की राज्य-शक्ति को उद्बोधन करने के लिये भगीरथ प्रयत्न करना चाहिये। चाहे इसमें राजनैतिक नियमानुसार साम, दाम, दण्ड, भेद के विधान का ही प्रयोग क्यों करना पड़े।

प्रारम्भ में राज्यशक्ति के संचालकों को निम्नलिखित पद्य के अनुसार ऋतु-सुख का अनुभव कराना चाहिये।

हिम शिशिर वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरत्सु,
स्तन तपन वनाम्भो हर्म्य गोक्षीर पानैः ॥
सुख मनु भवतु राजन् सत्रवो यान्तु नाशं,
दिवस कमल लज्जा शर्वरी रेणु पंकैः ॥

एवं "सत्य श्रमाभ्यां सकलार्थ सिद्धिः" का सूत्र हृदय में रखकर अपने व्यवसाय की वृद्धि करना चाहिये।

वत्सनाभ और हारिद्रक

आचार्य सी० डी० ध्यानी, बी० आई० एम० एस

परिचय :—वत्सनाभ के क्षुप हिमालय में बहुतायत से ६००० से १४००० फीट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। क्षुप दो से चार फीट तक ऊंचे होते हैं। प्रायः वैसाख-ज्येष्ठ में वर्फ के पिघलने पर कंदों में से अंकूर निकलने प्रारम्भ होते हैं और श्रावण-भाद्रपद में क्षुप पूर्णतया विकसित हो जाता है। पत्र कृष्ण वर्ण के तथा बीच में गहरे कटे होते हैं, जिनसे अंगुलियों की तरह आकृति हो जाती है। किनारे भी कटे व उभरे होते हैं। पुष्प भाद्रपद में आते हैं जो कि बैंगनी रंग के धत्तूरपुष्प की आकृति के परन्तु छोटे-छोटे होते हैं। पुष्पों के परिपक्व हो जाने पर उनसे विषैली वायु वहती है; जिसका समीपवर्त्ती प्राणियों पर भी विषैला असर होता है।

जब तक क्षुप पूर्णतया विकसित नहीं हो जाता; तब तक कंद अपरिपक्व रहता है। उसके बाद कंद भी बढ़ता और परिपक्व होता जाता है और अश्विन में पूर्णतया पक्व हो जाता है। एक क्षुप पर एक नया और एक पुराना दो ही कंद पाये जाते हैं। निवण्टुकार के "यत्पार्श्वें न तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः" में यहाँ अपवाद पाया जाता है। यद्यपि कंद जातीय होनेसे इसकी उत्पत्ति सामूहिक होती है परन्तु उसके चारों ओर अन्य क्षुप भी पाये जाते हैं। इसी प्रकार "सिन्दुवार सदृश पत्तों भी नहीं जचता जैसे दिये गये चित्र से स्पष्ट हो जाता है।

भेद :—हिमालय में वत्सनाभ की तीन जातियाँ पाई जाती हैं। कृष्ण-श्वेत और हारिद्रक।

१. कृष्ण :—यह अधिक ऊंचाई पर पाया जाता है। क्षुप छोटे होते हैं परन्तु सभी की आकृति एक-सी ही होती है। केवल कंद का बाहरी आवरण कृष्ण वर्ण का होता है। परन्तु तोड़ने पर अंदर श्वेतवर्ण ही होता है। भार श्वेत की अपेक्षा कम होता है।

२. श्वेत :—यह नौ हजार फीट की ऊँचाइ से ही मिलना प्रारम्भ हो जाता है। इसके पुष्प श्वेतवर्ण के होते हैं। क्षुप में अन्य कोई अंतर नहीं पाया जाता। क्षुप की ऊंचाई कई स्थानों में चार फ़ीट तक होती है। कन्द का वाह्यावरण श्वेत होता है तथा तोड़ने पर अन्दर भी श्वेत ही होता है। इसका भार अधिक होता है।

३. हारिद्रक :—पर्याप्त ऊँचाई पर ही पाया जाता है। क्षुप वत्सनाभ की आकृति का होता है परन्तु तना कंद से एक दो इंच ऊपर तक पीतवर्ण का होता है। कंद 'हरिद्रा तुल्य मूलो यो हारिद्रः स उदाहृतः" की तरह पाया जाता है। इसकी उत्पत्ति प्रायः १२००० फीट से ऊपर उन्हीं स्थानों में होती है जो ममील (पर्याप्त मिट्टी युक्त) होते हैं। उपरोक्त दोनों की अपेक्षा यह तीव्र घातक विष होता है तथा कम मात्रा में पाया जाता है। यद्यपि आप्त ग्रन्थों में इसका विस्तृत वर्णन नहीं पाया जाता परन्तु हरिद्रा तुल्य कंद होने से तथा घातक विष होने से यही विदित होता है कि पीतवर्णवत्सनाभ ही हारिद्र विष हो सकता है।

नाम :—सं० वत्सनाभ—अं०—Aconite, लैटिन Aconitum Nepelus, हिंदी—सिंगिया विष, हिमालय में मीठा या विष दोनों ही नाम प्रचलित हैं।

कार्य और प्रयोग

वत्सनाभ के प्रयोग से जिह्वा में गुदगुदी और कुछ संज्ञाहीनता होती है। लालस्राव अधिक होता है। कंठ शोष तथा जी मिचलाना भी पाये जाते हैं। यदि अधिक

मात्रा में प्रयोग किया जाय तो आमाशय में क्षोभ, मिचलाहट-वमन तथा अतिसार हो जाता है। हृदय पर कम मात्रा में प्रयोग करने पर हृदय तथा नाड़ी मंद और मृदु हो जाती है। परन्तु अधिक मात्रा में प्रयुक्त होने पर हृदय की गति अनियमित तथा रक्त का दबाव कम हो जाता है। श्वास संस्थान पर इसका कम मात्रा में उत्तेजक प्रभाव होता है तथा श्वास गहरा हो जाता है। अधिक मात्रा में श्वास की गति अनियमित हो जाती है। पुनः श्वास गहरा और धीरे-धीरे होने लगता है। वत्सनाभ विषजन्य मृत्यु में प्रायः श्वासावरोध ही मुख्य कारण पाया जाता है।

ताप पर इसका अच्छा प्रभाव होता है। प्रयोग करने के कुछ समय बाद ही शारीरिक ताप कम हो जाता है। इसी कारण आयुर्वेदोक्त सभी ज्वरघ्न औषधियों में इसका प्रयोग किया जाता है। वात-संस्थान पर इसका प्रभाव प्रथम उत्तेजक परन्तु बाद में शामक होता है। स्थानिक वात जन्य पीड़ा में इसका बाह्य प्रयोग लाभदायक होता है।

कर्णमूल-शोथ-गलगंड-कण्ठमाला तथा संधिवायु पर इसका लेप लाभदायक होता है। कुछ समय के लिये उस स्थान पर चिमचिमाहट तथा संज्ञाहीनता हो जाती है। दंष्ट्रा विषों में प्रतिविष के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। सर्प और वृश्चिक दंश में दंशस्थान पर लेप भी लाभदायक प्रमाणित हुआ है। अन्य संस्थानों पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पाया जाता है।

निषेध :— वृद्ध-बालक-क्रोधी-पित्तप्रकृति-गर्भवती-नपुंसक-क्षय रोगी तथा अत्यधिक परिश्रमी व्यक्तियों में इसका प्रयोग नहीं किया जाता।

मात्रा :—अन्तःप्रयोग में शुद्ध वत्सनाभ एक से दो चावल तक दिन में दो तीन बार दिया जा सकता है। बाह्य प्रयोग में आवश्यकतानुसार।

विषैले लक्षण :—विष प्रयोग के कुछ ही समय बाद जिह्वा में खुजलाहट तथा जलन होने लगती है। कंठ में दाह तथा लालास्राव अत्यधिक होने लगता है। प्रथम आमाशय में जलन पुनः वमन, अतिसार आरम्भ हो जाता है। त्वचा कुछ पसीना आने के बाद शीतल हो जाती है। तापक्रम कम होता जाता है। नाड़ी निर्बल तथा मृदु हो जाती है तथा अनियमितता भी पाई जाती है। श्वास-प्रश्वास में कठिनता बढ़ती जाती है। मांसपेशियों में निर्बलता तथा थकावट होती है। स्मरण-शक्ति अंत तक ठीक रहती है। मृत्यु श्वासावरोध से होती है।

चिकित्सा :—प्रारम्भ में वमन दिया जाता है। शुंठी का प्रयोग भी किया जाता है। बाद की अवस्थाओं में इसके प्रतिविष के रूप में "निर्विषी" का प्रयोग लाभदायक प्रमाणित हुआ है। निर्विषी ही हिमालय में उसका प्रतिविष मानी जाती है तथा पूर्णतया सफलता भी मिलती है। इसकी उत्पत्ति भी इसी के साथ पास में ही होती है। ताप की रक्षा के लिये उष्ण पानी की बोतलें तथा हृदयोत्तेजक औषधियों का प्रयोग किया जाता है।

वैद्यनाथ वसन्त कुसुमाकर रस
(मधुमेह की अचूक दवा)
स्वर्ण, मोती, अभ्रक, रससिन्दूर आदि बलवर्द्धक और रोगनाशक द्रव्यों के संयोग से बनने के कारण सभी रोगों के लिये बहुत फायदेमन्द है। स्त्री-पुरुषों की जननेन्द्रिय-सम्बन्धी शिकायतोंपर इसका बहुत अच्छा और तात्कालिक प्रभाव होता है।
कीमत १ तोला ३७), चार आना भर ९।-) ,दो आना भर ४।।=), एक आना भर २।=)
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि॰, कलकत्ता, पटना, झांसी, नागपुर।

बिहार की वनस्पतियाँ

प्रो० ठा० बलवन्त सिंह, एम० एस-सी०,

गतांक से आगे

पीतकार्पास कुल

Bixaceae.

३२—गलगल

Cochlospermum Gossypium, DC.

इस वृक्ष को हूपू (को.) होपो (सं.), गलगल (हिं, बं.), काँटो पलास (उ.), Yellow cotton tree (अं.) कहते हैं। वृक्ष छोटा, सीधा और बहुत मुलायम काष्ठ वाला होता है। पत्तियाँ ३-५ खंडित और ३-८" व्यास की और पुष्प पीले तथा ४-५'' व्यास में होते हैं। फल के अन्दर बोजों के ऊपर पीले रंग की और रेशम की तरह मुलायम रूई होती है। वृक्ष से एक पीताभ-श्वेत गोंद भी निकलता है जिसे Hog gum या कतीरा-हिन्दी कहते हैं। राँची में वैद्य इसके मूलत्वक् को मूत्रल और अश्मरीघ्न मानते हैं। गोंद रेचक, और अत्यार्तव, श्वेत या रक्तप्रदर आदि जननमूत्रेन्द्रिय के रोगों में उपयोगी होता है। इसे असली कतीरा (Tragacanth) के स्थान में लिया जाता है।

इस कुल का एक छोटा एवं सुन्दर वृक्ष वागों में लगाया हुआ मिलता है जिसे Bixa orellana, L. (ले.) लटकन, सिंदूरिया (हिं.), केसरी (म.) कहते हैं। इसकी पत्तियाँ हृद्वत्, लम्बाग्र, चिकनी, चमकीली और ४-८" लम्बी होती हैं। पुष्प सफेद अथवा गुलाबी, फल धतूरा की तरह मृदुकंटकों से ढके हुये और बीज सिंदूरवर्ण स्तर से ढके हुये होते हैं जिससे एक रंग तैयार किया जाता है। फल-मज्जा ग्राही और बड़ी मात्रा में स्रंसन, बीज और मूल रोचक, ग्राही और ज्वरघ्न होते हैं। यह वृक्ष अमेरिका का आदि निवासी है।

प्राचीनामलक-कुल

Flacourtiaceae :

३३—विकंकत, कटाई, बइंचा

Flacourtia Ramontchi, L' Herit.

इसे मेरले (को,. सं.), कटाई (हिं.), वइंचा या काँटा धवरा (उ.) कहते हैं। इसके प्रायः कंटकी छोटे वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ प्रायः ४'' से कम लम्बी, वृत्ताकार या आयताकार—अभि लट्वाकार कुंठिताग्र और गोल-दन्तुर या आरावत धार वाली होती हैं। पुष्प पीताभ-हरित और फल पकने पर लाल और ३'' व्यास में होते हैं। यह बहुत परिवर्तनशील वनस्पति है और इसके प्रायः तीन भेद इस प्रान्त में मिलते हैं। फल वर्ग में विकंकत नाम से इसका वर्णन किया गया है।

३४—पनियाला, प्राचीनामलक

Flacourtia cataphracta, Roxb.

इसके छोटे और सीधे वृक्ष होते हैं जिनके काण्ड पर कई इँच लम्बे वहुविभक्त काँटें निकले रहते हैं। पत्तियां आयताकार या आयताकार-भालाकार, लम्बाग्र, गोल-या आरा-दन्तुर और चिकनी होती हैं। फल पकने पर लाल और व्यास में ·८-१'' होते हैं। उत्तरी पूर्निया में इसके वृक्ष अधिक मिलते हैं। लगाये हुये वृक्ष भी प्रायः पाये जाते हैं। उरान लोगों में यह पनियारा के नाम से प्रसिद्ध है जो प्राचीनामलक और पनियाला (हिं.) से मिलता है।

३५—गाड़ासूल

Xylosma longifolium, Clos.

यह एक छोटा चिकना वृक्ष होता है ; जिस पर छोटी अवस्था में प्रायः लम्बे काँटे होते हैं। पत्तियाँ ३-६'' लम्बी भालाकार, लम्बाग्र, पुष्प छोटे और हरिताभ और फल गोल गाढ़े लाल रंग के होते हैं। यह वृक्ष सिंगभूमि और नेतरहाट के नदी नालों के समीप तथा पलामू में पाया जाता है। हो जाति के लोग हैज़ा में इसकी मूल पीसकर पिलाते हैं। इसे कटाय (खर.) और सुलजरा भी कहते हैं।

३६—चिहल्क

Casearia tomentosa, Roxb.

इसके वृक्ष छोटे, पत्तियाँ आयताकार (छोटी लट्वाकार या अण्डाकार), कुंठिताग्र, अधरपृष्ठ की नसों पर मृदुरोमश और अधिक से अधिक ''७×८'' बड़ी होती है। हरिताभ पुष्प नवीन टहनिओं पर आते हैं। पत्रसिरायें रक्ताभ होती हैं। इसके वृक्ष प्रायः प्रान्त में सर्वत्र मिलते हैं और रोरी (को.), चोचों (सं.), बेरी (खर.), चिल्ला (हि.), अथवा कनेल के नामों से प्रसिद्ध होते हैं। फल चूर्ण को पानी में डाल देने से मछलियाँ मर जाती हैं। छाल का लेप जलशोथ, ज्वर तथा सर्पविष में लाभदायक बतलाया जाता है। अंडाकार तथा चिकनी पत्तिओं वाली एक दूसरी जाति (C. graveolens, Dalz.) भी प्रान्त में सर्वत्र पाई जाती है।

सेनेगा-कुल

Polygalaceae.

३७—लीलकाठी

Polygala crotalarioides, Ham.

यह एक क्षुद्र स्वावलम्बी वनस्पति है जिसका मूलस्तम्भ लम्बा एवं अधोगामी होता है। पत्तियाँ अभि-लट्वाकार या अभि-भालाकार, रोमश, गोल या कुंठित अग्रवाली और १-३½'' बड़ी होती है। पुष्प lilac अथवा सफेद होते हैं पर अग्र पर गुलाबी रहते हैं। चावल की शराब बनाने में अन्य मूलों के साथ इसके मूलस्तम्भ भी लिये जाते हैं। मूल खाने पर जीभ और गले में एक विशेष प्रकार की सुनसुनाहट पैदा करता है। मूलस्तम्भ को अन्य कफघ्न द्रव्यों के साथ मिला कर कफ-कास आदि में दिया जाता है। पाचक योगों में भी इसका उपयोग किया जाता है। सर्पविष में इसे पिलाया या इसका लेप किया जाता है। Saponin सत्व होने के कारण विदेशी औषध सेनेगा (Senega) के स्थान में इसका प्रयोग हो सकता है। गोरखपुर की तराई के जंगलों में यह औषध दीर्घकालीन बीमारियों के पश्चात् रसायन के रूप में उपयोगी बतलाई जाती है। कफज्वर में इसके पंचांग का क्वाथ कफ को ढीला करके गिराने के निमित्त लिया जाता है। मध्यप्रदेश में यही औषध विजनौरी के नाम से प्रसिद्ध है। छोटानागपुर (राँची) में या पलामू (लाट) में इसके पौधे मिलते हैं। इससे मिलती-जुलती परन्तु प्रसरणशील दूसरी वनस्पति (P. chinensis, L.) भी इस प्रान्त में प्रायः सर्वत्र मिलती है। इन दोनों को संथाल 'गैघुरा' कहते हैं। इसे ज्वर में अथवा चक्कर आते हों तो देते हैं।

साबुनी-कुल

Caryophyllaceae.

३८—साबुनी

Saponaria vaccaria, L.

इसके क्षुप १-२ फीट ऊँचे, पत्तियाँ अभिमुख, भालाकार अथवा रेखाकार-आयताकार, काण्डसंसक्त और चिकनी, पुष्प गुलाबी, सवृन्त और २-३-विभक्त मंजरी में, वाह्यकोश संयुक्त, नलाकार और उसके दल कूबड़दार, आभ्यन्तरदल अभि-लट्वाकार और दलदण्ड (Claw) युक्त होते हैं। यह वनस्पति प्रायः प्रान्त के उत्तरीभाग के खेतों में जाड़ों की

फसल के साथ होती है। कैम्बवेल के अनुसार मानभूमि में तेलहन के रूप में इसकी खेती होती है। इसमें साबुन सत्त्व (Saponin) होता है जिसपर इसके गुणधर्म अवलम्बित हैं। यह सत्त्व तीव्र शिरोविरेचन, कफनिस्सारक, मूत्रजनन और मलोत्सर्जक और बड़ीमात्रा में हानिकारक होता है।

३९—पित्तपापड़ा प्रतिनिधि

Polycarpaea corymbosa, Lamk.

इसका अत्यन्त सशाख क्षुप ३-६'' कभी-कभी १२'' ऊँचा होता है जिसकी शाखायें अत्यन्त कृश, तूलरोमश, सीधी और पत्तियाँ रेखाकार तथा अभिमुख होती हैं। शीर्षस्थ सघन मंजरियाँ द्विविभक्त, रजतवर्ण और पुष्प बहुत छोटे होते हैं। पर्णक्रम कभी-कभी चक्रिताभास, वाह्यदल भूरे और फल बनजाने पर चमकीले या रजतवर्ण और आभ्यन्तरदल सूक्ष्म एवं रक्तवर्ण के होते हैं। छोटा नागपुर तथा सोन के आसपास पथरीली या बलुई ज़मीन में यह पाई जाती है। उत्तर-प्रदेश के पूर्वी जिलों में क्वार-कार्त्तिक के महीनों में प्रायः वाजरे के खेतों में इसके पौधे उगे हुये मिलते हैं और ग्रामीण पित्तप्रकोप को शान्ति के लिये इसका पित्त पापड़ा के नाम से व्यवहार करते हैं। उत्तर प्रदेश में अनेक स्थानों पर पर्पट के नाम से इसका व्यवहार किया जाता है। इसमें भी वर्ग धर्मानुसार साबुन सत्त्व होता है।

लोणी-कुल

Portulacaceae

४०—बिच्छू वूटी

Portulaca tuberosa, Roxb.

यह मूलकाकार कन्द सदृश मूल वाली मांसल क्षुद्र वनस्पति है, जिसकी प्रसरणशील शाखायें २-३'' लम्बी, पत्तियाँ अवृन्त, गोल रेखाकार, मांसल और काण्डपर्व भूरे रोमगुच्छ से युक्त होते हैं। पुष्प पीले और शीर्षस्थ गुच्छों में और पत्रचक्र तथा रोमगुच्छ के बीच में निकले रहते हैं। इसके क्षुप मुँगेर में विच्छू बूटी के नाम से मिले थे और बिच्छू के विष में उपयोगी बतलाये गये थे। बिहार प्रान्त के बहुत से वैद्य सम्भवतः इसी वनस्पति को संजीवनी बूटी कह कर बहुत उत्तम ओषधि बतलाते हैं।

इस कुल की अम्लरसयुक्त दो शाकवर्गीय वनस्पतियाँ जिन्हें कुल्फा (यू.), (1) Portulaca oleracea, L. वृहत लोणी (सं.) या बड़ी लोनिया और छोटी या जंगली लोनिया (हि.). (2) P. quadrifida, L. कहते हैं सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। पहली पैदा करने से और जंगली (खुली जगहों में) दोनों तरह की होती हैं और दूसरी सर्वदा अपने आप पैदा होती है।

विसखपरा-कुल

Aizoaceae (ficoideae)

४१—विसखपरा, वर्षाभू (!)

Trianthema monogyna, L.

यह मांसल, प्रसरणशील, द्वि-विभक्त शाखाओं वाली क्षुद्र वनस्पति है जो बरसात में निकलती है और शीतकाल तक सूख जाती है। इसकी पत्तियाँ लगभग अभिमुख, परन्तु प्रत्येक जोड़े में एक छोटी और दूसरी बड़ी (पुनर्नवा की तरह) होती है और अभिलट्वाकार, आयताकार या अण्डाकार और प्रायः लाल और लहरदार धार वाली होती हैं। द्वि-विभक्त शाखाओं के बीच से एकाकी, श्वेत या गुलाबी रंग के फूल निकलते हैं। यह वनस्पति प्रायः चौमासे में सर्वत्र पाई जाती है। इसे पथरी, विसखपरा अथवा केचोआ (को.) कहते हैं। पत्तों का शाकार्थ व्यवहार भी होता है। राजनिघंटुकार ने वर्षाभु और वछक के नामों से इसकी दो जातिओं (Species) का उल्लेख किया है। मेरे मत से पुनर्नवा और वर्षाभु दो सर्वथा भिन्न वनस्पतियाँ हैं परन्तु दोनों के रूप और गुणों में बहुत

कुछ साम्य होने से निघंटुकारों ने दोनों में बहुत गड़बड़ कर दिया है। अनेक स्थान के वैद्य आज भी इसे ही पुनर्नवा और कुछ इसे केवल श्वेत पुनर्नवा मानते हैं। स्मरण रखना चाहिये कि श्वेत और रक्त भेद पुनर्नवा और वर्षाभू दोनों में ही होते हैं। अतः रक्तपुनर्नवा, श्वेत पुनर्नवा Boerhavia की जातिओं को और रक्तवर्षाभू और श्वेत वर्षाभू Trianthema की जातियों को कहना चाहिये। वर्षाभू की ही किसी जाति को वद्युक मानना चाहिये।

Mollugo stricta, L.

४२—जलपप्र

यह ३-१०" ऊँची क्षुद्र वनस्पति है जिसकी पतली शाखायें अनेक, नालीदार या कोणयुक्त और पत्तियाँ अभिमुख या चक्रिकाभास क्रम में तथा ·५-१·७" लम्बी और प्रायः मांसल होती है। पुष्प सूक्ष्म हरित या श्वेत और फल आयताकार और तीन पक्ष वाला होता है। यह वनस्पति प्रायः सर्वत्र ऊसर या जोताऊ भूमि में पाई जाती है। पुष्प साल भर दिखाई देते हैं। इसका वर्णन औषधिसंग्रहकारने पर्पटका (सं.), तपझाड़ (हि.) जोलपप्र (बं.) तथा पर्पटक (क.) नामों से किया है और इसके शाक को दीपन, आनुलोमिक, विषमज्वर-हर और आर्तवजनन बतला कर प्रसूता के लिये उपयोगी बतलाया है।

Mollugo spergula, L.

४३—जीमशाक

यह प्रसरणशील क्षुद्र वनस्पति पूर्वोक्त जलपप्र के सदृश होती है। इसके सवृन्त पुष्प सघन पत्रकोणज गुच्छों में रहते हैं। इसका भी वर्णन औषधि संग्रहकार ने जीमशाक (बं.) जिम (हि.) और ग्रीष्म छन्दर (सं.) के नाम से दिया है। इसे भी गुणधर्म में पूर्वोक्त जलपप्र के सदृश बतलाया गया है। ग्रीष्मछुन्दर एक भावमा द्रव्य है जिसका निर्णय अभी नहीं हुआ है। दरभंगा, मानभूमि आदि स्थानों में प्रायः बलुई जमीन में यह मिलती है।

४४—भिस्सटा

Mollugo hirta, Thunb.

यह मृदुरोमश (रोम श्वेताभ और तारकाकार) वनस्पति खारी या बलुई जमीन में अथवा तालावों में जहां पानी सूख गया है जमीन पर फैली हुई रहती है। १-३ फीट लम्बी अनेक शाखायें और गोल या अभिलट्वाकार पत्तियाँ होती हैं। पुष्प हरित, फल पाँच कोठरियों का और बीज भूरे तथा विचित्र रचना वाले होते हैं। इसे कुछ लोगों ने भिस्सटा नामक द्रव्य माना है।

नागकेशर-कुल

Guttiferaceae

४५—राजकुसुम

Garcinia Cowa, Roxb.

इसका सीधा २०-४० फुट ऊँचा वृक्ष होता है जिसकी पतली और नीचे की ओर झुकी हुई शाखायें बहुत नीचे से निकलनी प्रारम्भ हो जाती हैं। पत्तियाँ गाढ़े रंग की, चमकदार, भालाकार अथवा अभि-भालाकार, ३-५" लम्बी और सघनजालिका सदृश शिराओं से युक्त होती हैं जो धार के समीप एक रेखा में मिली रहती हैं। पुष्प पीताभ और किंचित् मांसल और फल पीले और २" व्यास में होते हैं। इस प्रजाति में पीताभ क्षीर तुल्य स्राव निकलता है।

इसके वृक्ष नदी-नालों के किनारे पाये जाते हैं और मुंगेर, सरयाडा तथा पोरहाट क्षेत्र के पहाड़ी जंगलों में देखे जाते हैं। हो जाति के लोग इसे 'सोरोभा' नाम से पुकारते हैं और वे इसकी छाल के अमूल्य औषधीय गुणों में विश्वास करते हैं। इसे वे लोग क्षय में उपयोगी बतलाते हैं। फल भी खाने में स्वादिष्ट होते हैं।

४६—नागकेशर

Mesua ferrea, L.

इसका सदाहरित, बहुत सुन्दर, मध्यम ऊंचाई का अथवा बड़ा सीधा वृक्ष होता है जिसमें प्रासवत्-रेखापत्र होते हैं जो नीचे की ओर लटके रहते हैं। पत्तियां ३-६·५", लम्बी, ऊर्ध्व पृष्ठ पर गाढ़े हरे रंग की और चमकदार तथा अधर पृष्ठ पर श्वेताभ होती हैं। ऊपर के पत्रकोणों से सुगंधित, ·७५-२" व्यास वाले पुष्प निकलते हैं जिनके पुंकेशर पीले रहते हैं और वाह्यदल स्थायी एवं कठोर होते हैं। इसके वृक्ष पुनियां में नदियों के किनारे जहाँ-तहाँ होते हैं और लगाये हुये वृक्ष भी कहीं २ पाये जाते हैं। असली नागकेशर इसी वृक्ष के परागकोष (केशर) होते हैं। राँची नगर में एक गुरुद्वारे की सीमा के अन्दर इसके दो वृक्ष लगे हुये हैं।

शाल-कुल

Diptreocarpaceae.

४७—शाल

Shorea robusta, Gaertn.

शाल के प्रसिद्ध वृक्ष इस प्रान्त के जंगलों में प्रायः सर्वत्र होते हैं। इसके शाल (हि. सं) सर्जम् (को. संथाल) तथा सखुवा (था, खर.) नाम हैं। शालसार ताजा काट कर निकालने पर लाल या सफेद दोनों तरह का होता है। नैपाली तथा थारू भाषा में श्वेतशालको सखुई कहते हैं और रक्तशाल (सखुआ) से यह अच्छा माना जाता है। शाल वनों का जब से सरकार द्वारा पालन और संरक्षण होने लगा है तब से इनसे निर्यास (राल) निकालना बन्द कर दिया गया है ।

चाय-कुल

Ternstroemiaceae.

४८—चाय

Camellia theifera, Griff.

चाय के गुल्म अथवा छोटे वृक्ष होते हैं पर उनको काट-काट कर छोटे-छोटे गुल्मों के रूप में छोड़ दिया जाता है। चाय की खेती पहले छोटानागपुर के प्लेटो तथा पारसनाथ की पहाड़ियों पर होती थी पर वरसात की कमी से अब बहुत कम कर दी गयी है।

कार्पास-कुल

Malvaceae.

इस कुल की चिकित्सोपयोगी प्रजातिओं (Genera) की पहचान निम्नांकित लक्षणों के आधार पर होती हैं :—

(क) पुंकेशरी श्लिष्टसूत्रक और नलाकार ; पुंकेशर सूत्रों के स्वतंत्र भाग अल्प अथवा अनुपस्थित ; प्रायः गुल्म अथवा क्षुप, कोई-कोई छोटे वृक्ष भी :—

(अ) स्त्री केशर और कुक्षिवृन्त ५-बहुल, पुष्प प्रायः पीले और फल के वेश्म संख्या में स्त्री-केशरों के बरावर :—

(१) अण्डाशय के प्रत्येक गह्वर में बीज़ीभव एक और वृन्त-पत्रकों का अभाव—बलाप्रजाति।

(२) अण्डाशय के प्रत्येक गह्वर में बीज़ीभव दो या अधिक और वृन्त-पत्रकों का अभाव—अतिबला प्रजाति।

(ब) स्त्री केशर पाँच और कुक्षि तथा कुक्षिवृन्त संख्या में द्विगुण, विदीर्ण फल के पाँच खण्ड, पुष्प, प्रायः रक्त, पुष्प सघन गुच्छों में नहीं :—

(१) वृन्त पत्रक पाँच, स्त्री केशर आभ्यन्तर दलों के आमने सामने और प्रायः तीक्ष्ण वाह्यवृद्धिओं से युक्तः—ओंगा प्रजाति।

(२) वृन्त पत्रक दस, स्त्री केशर वाह्यदलों के आमने सामने और उनका पृष्ठ चिकना :—गन्धबला प्रजाति।

(स) स्त्री केशर ३-५ और कुक्षि भी इतने ही अथवा

परस्पर संयुक्त ; फल स्फोटी ; पुंकेशरी-नाल खण्डित अथवा-५-दन्तुर (शीर्षपर) :—

(१) कुक्षि परस्पर पृथक्, वृन्त पत्रक-५ अथवा अधिक :—जपा प्रजाति।

(२) कुक्षि परस्पर संयुक्त होकर गदाकार, वृन्त पत्रक ३-५ और छोटे :—पारिश प्रजाति।

(३) कुक्षि परस्पर संयुक्त होकर गदाकार, वृन्त पत्रक ३, बड़े और प्रायः हृद्वत् :—कार्पास प्रजाति।

(ख) पुंकेशर केवल आधार भाग में संयुक्त और पंच-सौत्रिक अथवा पूर्णतः स्वतंत्र ; वृक्ष :—

(अ) पत्र अपत्रक खण्डित ; वृन्त पत्रक ४-५ और स्थायी—kydia प्रजाति।

(ब) पत्र सपत्रक पाणिवत् :—

(१) वाह्यकोश चषकाकार, किंचित अनियमतः खण्डित—शाल्मली प्रजाति।

(२) वाह्यकोश पंच-दन्तुर या खण्डित और वृन्त-पत्रक दो—गोरख इमली प्रजाति।

४९—बलाप्रजाति (Sida)

इस प्रजाति में इस प्रान्त में लगभग ६ जातियाँ होती हैं, जिन सबकी बलाभेदों में गणना की जा सकती है। इनका परिचय निम्नांकित रीति से होता है :—

(क) निचली पत्तिओं के वृन्त लम्बे, '७५" अथवा अधिक, प्रायः पत्तिओं से तीन-चौथाई बड़े और पत्तियाँ लट्वाकार या वृत्ताकार, पर्णमूल हृद्वत और शिरायें ५-६ :—

(अ) स्त्री केशर पाँच, शूक युक्त अथवा सामान्य :—

(१) प्रसरण शील अथवा किंचित् स्वावलम्बी और गुल्मों पर फैली हुई और स्पर्श में लसदार नहीं—नागबला।

(ब) स्त्री केशर ८-१० शूक युक्त (शूकलम्बे), पौधा तूल-रोमश—बलाभेद cordifolia.

ख—पर्णवृन्त प्रायः सर्वत्र—'७५" से छोटे और पत्तियाँ आयताकार या अभि-लट्वाकार और पत्र-शिरायें तीन :—

(अ) स्त्रीकेशर पाँच; उपपत्र वृन्त से छोटे, पत्राग्र कुंठित या गोल—बलाभेद Spinosa.

(ब) स्त्रीकेशर ५-१०; उपपत्र वृन्तों से बड़े :—

(१) पत्तियाँ अधर पृष्ठ पर श्वेताभ (Hoary) या तारकाकार-रोमश, नीचे की अभि-लट्वाकार या Rhomboid पुष्पदण्ड प्रायः लम्बे—बलाभेद Rhombifolia.

(२) पत्तियाँ अधर पृष्ठ पर चिकनी प्रायः पतली लम्बी, आयताकार या प्रासवत्, पुष्पदण्ड प्रायः पर्णवृन्त समान छोटे—बलाभेद Acuta.

५०—नागबला (?)

Side veronicaefolia, Lamk.

आयुर्वेदीय साहित्य में ४-५ प्रकार के बला भेदों का वर्णन मिलता है। जिनमें अतिबला निस्संदेह Afutiton प्रजाति की वनस्पति है। शेष तीन भेदों में नागबला और महाबला संदिग्ध हैं। कुछ विद्वानों ने सर्प सदृश बढ़ने वाली उपर्युक्त बलाजातीय वनस्पति को नागबला बतलाया है। इसे सम्भवतः गुणधर्मावलम्बित सादृश्य के कारण कुछ लोग भ्रम से फरीदबूटी भी कहते हैं और कुछ लोगों ने इसकी रहन-सहन के आधार पर भूमिबला, एक सर्वथा नवीन नाम दे दिया है। यह वनस्पति प्रायः प्रान्त में सर्वत्र जमीन पर फैली हुई अथवा झाड़ियों के ऊपर फैली हुई पाई जाती है। यह लम्बे और सामान्य रोमों से अथवा तारकाकार रोमों से युक्त, पीले फूल और प्रायः लट्वाकार, हृद्वत् एवं लम्बाग्र पत्तिओं वाली लतातुल्य वनस्पति होती है। इसे भी कोल या संथाल बरियार (बला) कहते हैं।

५१—बलाभेद

Side cordifolia, L.

इसका स्वावलम्बी गुल्मक २-४ फुट ऊँचा होता है। 'पत्तियाँ ७-९ शिराओं वाली, तूल-रोमश, लट्वाकार या लट्वाकार-आयताकार, गोल-दन्तुर और पुष्प तृण-वर्ण के होते हैं।

५२—बलाभेद

Side spinosa, L.

यह लगभग १ फुट ऊँची गुल्माकार वनस्पति होती है जिसकी पत्तियाँ प्रायः छोटी, अग्र पर गोली और कभी २" तक लम्बी होती हैं। पुष्प पीले या श्वेताभ होते हैं। पत्तियों के नीचे संधि पर प्रायः तीक्ष्ण वाह्यवृद्धियाँ होती हैं। राक्सवर्ग के अनुसार इसके अन्तरगत् श्वेतपुष्प और पीतपुष्प वाले दो भेद होते हैं, जिन्हें उसने क्रमशः S. alba और S. alnifolia लिखा है। इसी भेद को कुछ आधुनिक ग्रन्थकारों ने भ्रम से गुलसकरी लिख दिया है जो अशुद्ध है। इसे अधिक से अधिक श्वेतपुष्पा बला कहना चाहिये। पुर्निया में रेलवे के किनारे प्रचुर मात्रा में यह होती है। छोटानागपुर में भी यह पाई जाती है।

५३—बलाभेद

Side rhombifolia, L.

इसका १-४ फुट ऊँचा क्षुप या गुल्मक होता है। पत्तियाँ अभि-लट्वाकार या rhomboid और पुष्प पीले होते हैं। यह ऊसर भूमि में सर्वत्र होता है और इसे हम वास्तविक बला कह सकते हैं। युक्त प्रान्त में इसे बरियरा या खरैंटी कहते हैं।

यह एक परिवर्तनशील जाति बतलाई जाती है जिसके अन्तर्गत् कई उपभेद बतलाये गये हैं।

५४—बलाभेद

Sida acuta, Burm.

यह जाति प्रायः २-३ फुट ऊँची होती है। पत्तियाँ $१\frac{१}{२}$-$२\frac{१}{२}$ इञ्च तक लम्बी और $\frac{२}{१}$-१ इञ्च तक चौड़ी, प्रासवत् अथवा प्रासवत् अभिलट्वाकार, चिकनी, अन्यारावत् धारवाली और पुष्प हल्के पीतवर्ण के होते हैं। यह भी प्रायः सर्वत्र ऊसर भूमि में पायी जाती है। इसके ५ फुट तक ऊँचे पौधे भी कहीं-कहीं मिलते हैं। अन्तिम दोनों बलाभेदों को कोल 'इपिरपिजान' कहते हैं।

५५—अतिबला

Abutilon indicum, G. Don.

इसे मिरुबाहा (संथाल) और कंघी (हिं०) कहते हैं। क्योंकि इसके फल गोल परन्तु ऊपर की ओर कंघी की तरह दाँतोंवाले होते हैं। इसमें मुख्य दो जातियाँ होती हैं जिनमें पुमंगनाल लम्बा और स्त्रीकेशर १५ या इससे अधिक होते हैं। उपर्युक्त जाति में मृदु श्वेताभ मखमली रोमावरण होता है और दूसरी जाति (A. hirtum, G. Don) अर्थात् बड़ी कंघी में मृदुरोमावरण के अतिरिक्त चिपचिपे रोम तथा शाखाओं और पुष्पदण्डों पर लम्बे मुलायम रोयें भी होते हैं। दोनों को ही अतिबला नाम से ग्रहण कर सकते हैं।

५६—भेड़वा, पिसका

Hibiscus cancellatus, Roxb.

दृढ़ कण्टक सदृश रोमों से ढकीहुई इस वनस्पति में मूलकाकार श्वेत, कन्द सदृश और मुलायम जड़ होती है और पत्तियां नीचे से ऊपर तक अनेक आकार-प्रकार की होती हैं। आधार की पत्तियाँ प्रायः लगभग वृत्ताकार और ऊपर की ओर प्रायः पतले वाण-पत्र होते हैं। पत्र-तट लगभग अखण्ड अथवा ३-५ खण्डित होता है। पुष्प पीले और फल गोल या आयताकार और १-१·७५" लम्बे होते.

हैं। यह पौधा चम्पारन, छोटानागपुर, संथाल परगना आदि सभी स्थानों में पहाड़ी जंगलों में होता है। इसे उसंगिद (हो.), भेड़ासांगा (माल.), भेड़वा (खर.) तथा पिसका कहते हैं। मिर्जापुर के जंगलों में इसे बलराज़ कहते हैं और तेजराज, भोजराज, कामराज आदि सात उत्तम पौष्टिक द्रव्यों में एक इसे भी मानते हैं। बिहार के आदिनिवासियों में भी उसे पौष्टिक और अत्यन्त उपयोगी पदार्थ माना जाता है। त्वक्हीन कन्द घी में भूनकर मिर्च के साथ सूखी खांसी और ज्वर में खाते हैं और धातुदौर्बल्य तथा मेह में भी उपयोगी बतलाया जाता है। परीक्षण करके इसे निघण्टु में स्थान देना चाहिये।

५७—लताकस्तूरी

Hibiscus abelmoschus, L.

यह उपर्युक्त वनस्पति से मिलती-जुलती पीले फूलों की और रोयेंदार वनस्पति है जो इस प्रान्त में बिरल होती है। इसके पुष्पदण्ड २-३″ लम्बे और फल २-२½″ बड़े और नोकदार होते हैं। इसके बीज कमण्डलु के आकार के और कस्तूरी गन्धवाले होते हैं। बंगाल में इसे मुश्कदाना और उत्तर प्रदेश के पूर्वीक्षेत्र में दुल्हा कहते हैं।

इस प्रजाति की अन्य प्रसिद्ध वनस्पतियां भिण्डी (फलशाक), लालपटवा, पटवा, जपा तथा स्थलपद्म (Hibiscus mutabilis, L.) खेतों तथा बागों में उत्पन्न की जाती हैं।

५८—पारीश, पारस पीपल

Thespesia pepulnea, Corr.

पारसपीपल के वृक्ष छोटे और पत्तियां गोल या लट्वाकार, हृद्वत्, लम्बाग्र, अखण्ड और ३-५″ लम्बी तथा लम्बे वृन्त वाली होती हैं। पुष्प व्यास में २-३″, पीले और मुरझाने पर प्रायः गुलाबी होते हैं। फल दुग्धयुक्त और गोल होते हैं। इसके वृक्ष प्रायः सड़कों के किनारे लगाये हुये मिलते हैं। पारीश की क्षीरी वृक्षों में गणना की गयी है इसीलिये किसी २ वटजातीय वृक्ष को कुछ लोग पारीश मानते हैं।

५९—वनकपासी

Thespesia lampas, Dalz & Gibs.

इसके गुल्मक ४-६ फीट ऊंचे, दृढ़ और पत्तियां पाणिवत् त्रि-खण्डित अथवा अखण्ड और व्यास में ४-५″ होती है। पुष्प पीले, बड़े, (प्रायः एकल अवसान पुष्प) और मध्य में प्रायः लाल रंग के होते हैं। फल ३-५ खण्ड वाला (फटने पर) और वाह्यकोश नाल से नीचे को ओर ढका हुआ रहता है। इस प्रान्त के जंगलों में यह सर्वत्र होता है। इसके मूल और बीज पूयमेह में दिये जाते हैं।

६०—गोरख इमली

Adansonia digitata, L.

इसके केवल लगाये हुये वृक्ष (रांची के निकट डोखडा पुल पर) मिलते हैं। यह मध्यम ऊंचाई का वृक्ष होता है जिसकी छाल चिकनी, स्कन्ध स्थूल, शाखायें फैली हुई, पत्तियां शाल्मली की तरह पाणिवत् सपत्रक, पत्रक पांच, लगभग अवृन्त और अभि-लट्वाकार, पुष्प व्यास में ६-७″ और श्वेत, फल बड़े और ककड़ी की तरह होते हैं। इसका वर्णन गोरक्षी, शीतफल एवं रावणाम्लिका के नामों से किया गया है। फलमज्जा, पत्र और छाल का चिकित्सा में विविध प्रकार से उपयोग होता है (देखो—द्रव्यगुणविज्ञानम्)।

इस कुल की अन्य प्रसिद्ध वनस्पतिओं में शाल्मली तथा (सेमर) और कार्पास की कई किस्में इस प्रान्त में पाई जाती हैं। शाल्मली के वृक्ष प्रान्त में सर्वत्र पाये जाते हैं।

क्रमशः

आम्र

श्री भानु देसाई

(गताङ्क फरवरी से आगे)

आम्र पर लगने वाले सभी पुष्प संपूर्ण नहीं होते। यवद्वीप (जावा) के एक तज्ज्ञ के मतानुसार आम्र की एक मञ्जरी में ८०० से १,००० पुष्प होते हैं। इनमें आफुस (अलफोंज़ों) नामक भेद में केवल ६ से ११ प्र० श० पुष्प संपूर्ण तथा शेष नरपुष्प होते हैं। प्ररन्तु देशी आम्रों में सम्पूर्ण पुष्पों का प्रमाण अधिक—५५ प्र० श०—होता है। इसके अतिरिक्त संपूर्ण पुष्पों में लगभग ९९ प्र० श० पुष्पों में पराग कण न पहुंचने से उनपर फल आता ही नहीं। परागकण छिड़ककर आम्र के सम्पूर्ण नाम स्त्री केशर युक्त पुष्पों पर फल लाने के प्रयास भी प्रायः निष्फल सिद्ध हुए हैं। जो फल लगते भी हैं उनका अधिकांश प्रवात किंवा अन्य कारणों से झड़ जाता है। इतना विनाश होते हुए भी आम्र पर अच्छी संख्या में फल रह पाते हैं।

गुठलियों से उत्तम फल वाले वृक्ष तय्यार नहीं किये जा सकते। इस हेतु भेट कलम द्वारा, अच्छा फल देने वाले नये पौधे तय्यार किये जाते हैं। कुछ वर्षों से गुठली पर अच्छे फल वाले वृक्ष की 'आँख' लगाने की विधि भी पूना के सरकारी बागों में प्रो० गांधी के प्रयासों से सफल सिद्ध हुई है। आँख लगाये हुए पौधे भी वहाँ मिल सकते हैं। आम्रों के संवर्धनार्थ 'गुटी' तथा कलम[1] की विधियों पर भी परीक्षण किये गये हैं। विदित हुआ है कि गुटी से तय्यार किये पौधों पर फल बहुत देर से आते हैं। कलम से भी पौधे तय्यार होने के दृष्टान्त पाये जाते हैं। हाल ही में मुंबई की मे एण्ड बेकर कम्पनी ने 'सेरडिक्स'[2] नामक एक द्रव तथा चूर्ण रूप औषध तय्यार किया है। इस औषध से आम्र की शाखाओं में मूल फूट कर नये पौधे बड़ी संख्या में तय्यार होने की शक्यताके चिह्न देखे गये सुनने में आये हैं। कतिपय वर्ष पूर्व हुए प्रयोगों में 'इण्डोल एसिटिक एसिड' के उपयोग से आम्र की शाखाओं में मूल उत्पन्न करने के प्रयास किये गये थे। इस नये औषध में कौन रासायनिक द्रव्य है, यह विदित नहीं हुआ।

हमारे यहाँ उगनेवाले आम्रों की गुठली से केवल एक अङ्कुर फूटता है। परन्तु मद्रास में और अन्यत्र विदेशों में, विशेषतः फिलिपाइन्स में एक गुठली से दो किंवा अधिक भी पौधे निकलते हैं। इन अङ्कुरों में जो सबसे बलवान् प्रतीत होता है उसे रखकर नया पौधा तय्यार किया जाता है। शेष दुर्बल अङ्कुर निकाल दिये जाते हैं। जिन्हें आम की कलमें अपने घर पर ही तय्यार करनी हों उन्हें फल से ताजी निकली गुठलियाँ बोकर पौधे तय्यार करने चाहिए। पुरानी गुठलियाँ ठीक उगती नहीं। परंच, जिन्हें देशी आम्रों की वाटिका लगानी हों उन्हें चौमासे के प्रारम्भ में ही एक-एक आलवाल (थामले) में दो-तीन गुठलियाँ स्थायी जगह पर बोकर पौधे तय्यार करने चाहिए। लगे हुए पौधों में जो अच्छा बलशाली लगे उसे रहने देकर शेष को उखाड़ देना चाहिए। यदि इस भूमि में उगे पौधे को वहीं लगा रहने देते हुए अच्छी कलम का गमला पास लाकर उसके कागड के साथ इसकी कलम की जाय तो वह अच्छी बलवान् होती है।

आजकल कई नर्सरीवाले कलम लगने के बाद आम्र की ऊपर की शाखा को काट नहीं देते और ग्राहकों को कलम की शाखा तथा देशी वृक्ष की शाखा सहित पौधा भेजते हैं। अज्ञान ग्राहक दोनों शाखाओं को साथ रखते हुए ही स्थायी

---

[1] —Cutting—कटिंग।

[2] —Seradix.

जगह पर पौधा बो देते हैं। दो-तीन वर्ष में देशी शाखा कलम की शाखा की अपेक्षया अधिक बलवती होकर पौधे को बहुत क्षति पहुंचाती है। इस तिरस्करणीय पद्धति से अच्छी कलम की शाखा को भी पुष्टि न्यून ही मिलती है। अतः कलम घर आवे कि तत्काल मूल शाखा को काटकर कलम की हुई शाखा ही शेष रहने दें। कोंकण और कर्नाटक में भी एक अन्य आवञ्छनीय रीति नर्सरीवालों में प्रचरित है। दो या तीन पौधों पर एक अच्छी जाति के आम्र की स्थूल शाखा की भेट-कलम बाँधते हैं। इससे पौधे का देखाव बहुत अच्छा होता है, पर उसमें से अच्छा पौधा नहीं उपजता। गुजरात में भी कई नर्सरीवाले पतले पौधे पर उससे अधिक स्थूल शाखा की भेट-कलम लगाते हैं। यह रीति भी अच्छी न होने से ऐसी कलमें खरीदने में वित्त-व्यय न करना चाहिए। बहुत पुरानी कलमें, छोटे गमले में मूल की जाली जिनमें लगी हो ऐसे पौधे भी अल्पमूल्य में मिलें तो भी न लेने चाहिए। कारण, अन्त को ऐसे पौधों से अच्छी आम्रवाटिका नहीं तय्यार होती। आम की कलमें विख्यात और विश्वसनीय नर्सरीवालों के यहाँ से कुछ अधिक द्रव्य देकर भी ली हों तो पाश्चात्ताप का प्रसंग नहीं आने पाता।

आम्र की अनेक जातियाँ हैं। कौन-सी जाति बोयी जाय इसका निर्णय बाजार में होने वाली माँग से ही किया जा सकता है। परन्तु एक ही आम्र वाटिका में जिनमें भिन्न-भिन्न कालों में फूल लग कर आम्र पकते हों ऐसी अनेक जातियाँ लगायी जायँ तो लाभ होना संभव है। हमारी ओर तो 'आफुस' सर्वोपरि माना जाता है। उससे उतर कर पायरी, कावस जो पटेल आदि जातियाँ हैं। हाल में उत्तरापथ से लंगड़ा, दशेरी, सफेदा, फसली, गोपालभोग एवं दक्षिणापथ से सींगड़ा, सींगापुरी, तोतापुरी और अन्य अनेक जातियाँ आने लगी हैं। उनमें भी मद्रास की सुवर्णरेखा और बंगनपल्ली की माँग तो बहुत ही है। भावनगर में जमादार नामक जाति की बहुत प्रशंसा है।

बहुत काल पूर्व मुंबई के कृषि-विभाग के भूतपूर्व डिरेक्टर डॉ. बर्नस ने आम्र को जातियों पर एक विद्वत्ताभरी पुस्तिका लिखी थी। परन्तु उसका यथेष्ट प्रचार नहीं हुआ।

आम्र के उपद्रव अनेक प्रकार के होते हैं। इनमें उद्भिदों से होनेवाले उपद्रवों में वन्दा (वृक्षादनी) नामक पराश्रित[1] उद्भिद् आम्र की शाखाओं पर लग कर उनके रस का शोषण कर वृक्ष को बलहीन बनाता है। यह उद्भिद शाखा पर जहाँ लगता है वहाँ मोटी गाँठ बन जाती है। वन्दा के फल पक्षी खाते हैं और उनकी विष्ठा के द्वारा अन्य वृक्षों को शाखा पर पड़ कर उसकी वृद्धि करते हैं। आम्रवाटिका में तथा अन्य वृक्षों पर भी यदा-कदा दृष्टि रखते हुए वन्दा के पौधे दिखाई दें कि उन्हें 'धारिये' की सहायता से काट डालना चाहिए।

आम्र की मञ्जरी को होने वाले कीटकों में 'मधिया' से बहुत क्षति होती है। इन कीटकों को अंग्रेजी में 'जेसीड'[2] कहते हैं। ये पुष्पों की कलिका में किंवा मञ्जरी की सुकुमार शाखाओं पर अण्डे देते हैं। इन अण्डों से ८ से १० दिन में कीटक निकल कर १७ से २० दिन में वे बड़े हो जाते हैं। इन कीटकों से एक प्रकार का मधु-सदृश पिच्छिल द्रव झरता है और उस पर काली फफूंद का रोग लगता है। परिणामतया आम्र के पुष्प तथा छोटे फल झड़ जाते हैं। साथ ही पत्रों के छिद्र आवृत हो जाने से श्वसन-क्रिया भी मन्द होकर वृक्ष दुर्बल हो जाता है। इन कीटकों के लिए साबुन का पानी, मछली का साबुन तथा मिट्टी का तेल या 'क्रुड ऑयल' का मिश्रण छिड़कने का प्रयोग सफल हुआ है। तमाखू के पानी का इस प्रकार छिड़काव जरा भी लाभदायी नहीं सिद्ध हुआ है। गन्धक का अतिसूक्ष्म चूर्ण मञ्जरी (मौर) आने की ऋतु में तीन बार छिड़कने से कुछ हद तक लाभ होता है। परन्तु यह उपचार कई बार महँगा पड़ता है, और बदले में अर्थ लाभ उतना नहीं होता।

---

[1] —Parasite—पेरासाइट ।

[2] —Jessid.

आम्र के पत्तों को कुतर कर जाली बनाने वाली 'फुदी' का कीटक रंग में हरा होता है। यह छोटे तथा नये पल्लवों को कुतरता है। यह जब सुषुप्तावस्था में जाने को होता है तो पत्रों की जाली बनाकर उसमें लीन हो जाता है। आम्र वृक्षों पर इन कीटकों का प्राबल्य हो तो मञ्जरी आने में बाधा होती है। इनके लिए १ भाग लेड आर्सेनेट अथवा पेरिस-ग्रीन तथा ८ भाग चूने का मिश्रण कर छिड़काव करना चाहिए। परन्तु बड़े वृक्षों पर यह उपचार करना बहुत दुःसाध्य होता है।

आम्र के काण्ड को कोरकर खा जाने वाले कीटकों का 'धनेरा' और 'डालो ओ' अथवा सींगों वाला कृमि भी एक बार आम्र वाटिका में प्रविष्ट हुआ कि भारी आफत कर देता है। यह कीटक श्वेत अथवा पीला सा और लाल माथेवाला होता है। यह काण्ड (तने) में घुस कर उसे कोरता रहता है। प्रातः आम्र के काण्ड के पास बुरादे जैसा हरा चूर्ण पड़ा दिखाई दे तो निःशङ्क इस कृमि का निदान करना चाहिए। काण्ड में इसके किये छिद्र को शोध कर उसमें पेट्रोल भर कर छिद्र बन्द कर आग लगा देने से कीटक अन्दर ही मर जाता है। पेट्रोल न मिले तो एक लम्बी सलाई को सिरे पर मछली पकड़ने के काँटे जैसा मोड़ कर इसे छिद्र में डाल कीड़े को बाहर खेंच निकाल मार डालना चाहिए। अथवा, चाकू से छाल को छील कर कीड़े को निकाल कर मार देना चाहिए। आम्र वाटिका में किंवा उसके समीप खाद के गढ़ों में या पत्तों के ढेरों में इन सींगों वाले कीटकों के 'धनेरे' परिपक्व होते हैं। सो वाटिका में यथा शक्य स्वच्छता रखनी चाहिए।

इनके अतिरिक्त फल को बिगाड़ने वाली मक्खी, गुठलियों में बढ़ने वाला 'धनेरा' और उसमें से निकलनेवाला 'डालीआ' कीटक, एवं पत्तों को काटने वाला कृमि आदि अनेक विनाशकारी कृमि हैं। परन्तु उनका सरल और अल्प मूल्य उपचार अब तक शोधा नहीं जा सका है।

आम्र को होने वाले रोगों में सूखा रोग से मिलता रोग कहीं-कहीं हाल में देखा है। इसके परिणाम रूप वृक्ष की शाखाएँ सूख जाती हैं और मञ्जरी झड़ जाती है। इसके अतिरिक्त 'भूरी' नामक रोग भी आम्र पुष्पों के लगता है। दोनों रोगों में ३-३-५० के अनुपात का ब्रोगो मिश्रण अथवा गन्धक के चूर्ण का छिड़काव अंशतः गुणकारी माना जाता है।

आम्र की 'साल' पकने पर सभी फल वृक्ष से कच्चे उतार पराल डाल कर पकाने की पद्धति प्रायः सर्वत्र है। फलों को ठंढी पेटियों में रख कर दीर्घकाल टिका रखने एवं विलायत भेजने के भी प्रयोग पूना में हुए हैं। इन प्रयोगों में ३६° थी ४०° फेरनहीट ऊष्मा पर रखने से एक मास तक फल अविकृत रह सकते हैं। हिमागार[1] से निकालने के अनन्तर फल एकाध सप्ताह में ही पक जाता है।

आम्र फल के अन्य अनेक उपयोग होते हैं। उनमें रस, मुरब्बे और अचार के अतिरिक्त रस का शोषग भी सफल प्रतीत हुआ है। आम्र बहुत गुणकारी है। इसका विश्लेषण कर निम्न अङ्क एक तज्ज्ञने घोषित किये हैं। कुल घन द्रव्य–६३.७७ प्र. श., २०.० प्र. श. शर्करा; १५ से २५ प्र. श. अम्ल; ०.१२२ से ०.३७६ प्र. श. भस्म; कोई ०.५ प्र. श. प्रोटीन; ०.५ से १०.०७५ प्र. श. स्नेह द्रव्य।

अम्बी (कच्चे आम) में मेलिक और टार्टरिक अम्ल अच्छे प्रमाण में होता है। जापान के विश्लेषकों ने आम्र में सक्रोज़ (इक्षु-शर्करा), फ्रुक्टोज़ (फलशर्करा) और ग्लुकोज़ (द्राक्षा-शर्करा) के पृथक्-पृथक् प्रमाण भी शोधे हैं। तदतिरिक्त आम्र फल में जेन्थोफिल और केरटीन (वाइटेमिन ए का पूर्व रूप) नामक पदार्थ भी इन्हीं तज्ज्ञों—ओसीमा और गोमा-ने शोधे हैं। संक्षेप में, आम्र-सदृश उत्तम फल हमारे यहाँ कदाचित् ही कोई हो।

आम्र भारत में चिरकाल से होता आया है। निर्धन की झोपड़ी से राजमहलों तक विभिन्न आह्लाद्य द्रव्यों के रूप में तो इसका प्रवेश पूर्वकाल से है ही कवियों तथा भारतीय

---

[1] १—Cold Storage—कोल्ड स्टोरेज।

वैद्यों ने भी इसे खूब अपनाया है। पञ्चसायक (कामदेव) के पाँच बाणों में एक आम्र भी सुविदित है। कोकिलों को प्रिय होने से इसके पिकवल्लभ आदि नाम हैं। वसन्त का वर्णन कोकिल और आम्रमञ्जरी के वर्णन के बिना शून्य ही रहता है।

वैद्यों ने तो इसके विभिन्न अङ्गों का आहारौषध रूप में उपयोग कर इसे ठीक ही 'फलाधिराज' (योगरत्नाकर) नाम दिया है[1]।

उन्होंने इसके पत्र, पुष्प, त्वचा, फल आदि सबके अनुभूत उपयोग बताये हैं। फलों की भी आम्र, पक्व आदि विभिन्न अवस्थाओं के गुण-कर्म लिखे हैं। यहाँ तक कि वृक्ष पर स्वयं पके (वृक्षसंपक्व ; गुजराती में साखिया) तथा कच्चे उतारकर पकाये गये (कृत्रिम संपक्व) के भी पृथक् गुण-कर्म लिखे हैं।

पक्व आम्रफल अति उत्तम बल, मांस और शुक्र की वृद्धि करनेवाला है। जाति भेद से इसका चूसने या काटकर खाने के रूप में उपयोग होता है। रस को कपड़े पर फैलाकर इसकी रोटी (आम पपड़ी)-सी बनायी जाती है। भावप्रकाश में इसे आम्रावर्त नाम दिया है। आम्र के अतियोग से होनेवाले अवगुणों की शान्ति के लिए प्राचीनों ने शुण्ठी, जीरक तथा सौवर्चल का विधान किया है। इसका व्यवहार अद्यापि किसी न किसी रूप में प्रचरित है। पके फल के पकौड़े भी बनाये जाते हैं। किंचित् पक्व फल का पानक (गुडम्बा) बनाया जाता है, जो गर्मी के दिनों में अच्छा शीतल पेय सिद्ध होता है तथा लू के लिए विशेषतः दिया जाता है। कच्चे या पके आम्र की चटनी, अचार (प्राचीन नाम राग), मुरब्बे (प्राचीन नाम खण्ड या खाण्डव) रायता आदि बनाये जाते हैं और अन्न-द्रव्य पर रुचि उत्पन्न करने के लिए व्यवहार में आते हैं। कच्चे आम की कतरनों को अमचूर (प्राचीन नाम आम्रपेशी) कहते हैं। उत्तरापथ में दाल आदि में खटाई के रूप में इसका व्यवहार होता है। यह रोगियों के लिए भी पथ्य है।

आम्र के उपयोगी अङ्गों में आम्रास्थि या आम की गुठली का व्यवहार आज भी सविशेष होता है। अतिसार तथा प्रवाहिका में मल के स्तम्भनार्थ इसका घरेलू उपयोग होता है। अतिसार की विभिन्न अवस्थाओं में इसका विभिन्न द्रव्यों के साथ विभिन्न रूपों में विधान संहिताकारों ने किया है। वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने अपने सिद्धयोग संग्रह में इसका एक कल्प संग्राहक चूर्ण दिया है। नये वैद्य अतिसार, प्रवाहिका में इसे बहुत उपयोग में लाते हैं। सुना है, 'अमीबिक डिसेण्ट्री' में भी यह काम करता है।

प्रमेह और प्रदर पर भी संग्राहक होने से अन्य द्रव्यों के साथ आम्रास्थि की योजना प्राचीनों ने की है। पुष्यानुग चूर्ण प्रदर पर प्रसिद्ध है। इसमें आम्रास्थि भी डाली जाती है। आम्रास्थि एक उत्तम आहार-द्रव्य भी है। कोंकण में सैकड़ों लोक ग्रीष्म तथा चौमासे में चावल की फस्ल पकने तक इसी पर निर्वाह करते हैं। यह सरस होने से स्वादु भी लगती है। अन्न द्रव्यों की तंगी के इन दिनों में इसे आहार्य द्रव्य के रूप में उत्तेजन दिया जा रहा है। इस प्रसंग में स्मरण रखना चाहिए कि, यह मलमूत्र की ग्राहिणी होने से (कब्ज करने वाली होने से) इसका अतिशय उपयोग नहीं किया जा सकता। अङ्कुरित गुठली को एक किनारे घिस कर बच्चे बाम के रूप में उपयोग में लाते हैं।

---

[1] सचित्र आयुर्वेद के २ रे वर्ष के अगस्त के अङ्क में उस काल पीलीभीत के आयुर्वेद कॉलेज के उपाचार्य तथा संप्रति लखनऊ के मेडिकल कॉलेज के अन्तर्गत रसायन-विभाग के अध्यक्ष पं० सोमदेव शर्मा सारस्वत जी ने 'फलाधिराज आम' नाम से आम के उपयोगादि पर सविस्तर लेख लिखा है। जिज्ञासु इस प्रसंग में उसे एकबार फिर देख जायँ।

औषध निर्माण शास्त्र

माननीय डिप्टी डायरेक्टर डी० ए० कुलकर्णी-मेडिकल एण्ड हेल्थ सर्विस (आयुर्वेद) लखनऊ, यू०पी०, की अध्यक्षता में एक समिति औषध निर्माण विशेषज्ञों की चल रही है। जिसका उद्देश्य आयुर्वेदीय और यूनानी के प्रमाणिक औषधों का "औषध निर्माण शास्त्र" (फार्माकोपिया) तैयार करना है। इसके लिए माननीय कुलकर्णी जी ने लब्ध प्रतिष्ठित औषध निर्माण शालाओं के पास उनके यहाँ निर्माण होनेवाली दवा नमूना रूप में या उचित मूल्य लेकर भेजने के लिए अंग्रेजी में पत्र भेजा है। (पत्र की नकल नीचे प्रकाशित है)।

यह पत्र भू० पू० सभापति नि० भा० आयुर्वेद महा-सम्मेलन, राजवैद्य जीवराम कालीदास शास्त्री (सम्प्रति श्री चरण तीर्थ जी महाराज) गोंडल ने अपने विवेचनात्मक उत्तर के साथ प्रकाशनार्थ भेजा है। राजवैद्य जी की विद्वत्ता से वैद्यसमाज काफी परिचित है। "सचित्र-आयुर्वेद" पर आपकी कृपादृष्टि बराबर बनी रहती है। पाठकों को स्मरण होगा, कि गत फरवरी के सचित्र आयुर्वेद में आपने स्विटजरलैण्ड के डा० के० एच० क्लास का एक महत्त्वपूर्ण पत्र प्रकाशित कराया था। जिसमें विदेश में आयुर्वेद के लिए क्या हो रहा है उल्लेख था। इसी तरह प्रस्तुत लेख में औषध निर्माण के विषय में आपने तर्क, युक्ति, अनुभव और प्रमाण के साथ उत्तर दिया है, "सचित्र आयुर्वेद" के पाठक इसे अवश्य पढ़ें और इस सम्बन्ध में यदि अपना विचार व्यक्त कर सकें, तो वह भी "सचित्र आयुर्वेद" में प्रकाशनार्थ भेजें। 'सचित्र आयुर्वेद' के प्रति इस सहानुभूति के लिए मैं स्वामी जी का कृतज्ञ हूँ।

—स० सम्पादक।

माननीय डिप्टी-डाइरेक्टर का पत्र

प्रिय महाशय,

उत्तर प्रदेश की सरकार ने आयुर्वेदिक और यूनानी दवाइयों का 'औषध-निर्माण-शास्त्र' के निर्माणार्थ विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की है, जो मेरी अध्यक्षता में पहले से ही काम कर रही है। कमेटी के कार्य-काल में, यथा—संभव, तैयार और मूल ओषधि दोनों, प्रामाणिक आयुर्वेदिक और यूनानी दवाइयों के नमूने, इन दवाओं के आदर्श-निरूपण-सम्बन्धी सविस्तर विशेषताओं और आवश्यक तथ्यों के परीक्षण, अनुवीक्षण और उल्लेखन के लिये ख्यात ओषधशालाओं से मँगाने का निर्णय किया गया है। तदनुसार मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप इस कार्य में मेरी सहायता करें और यथासम्भव शीघ्र मेरे कार्यालय के पते से अपनी संस्था द्वारा उत्पादित सब औषधियों और उन विशेष कच्ची ओषधियों के नमूने भी भेज दें, जो अन्तिम रूप से अब तक सर्वमान्य नहीं हुई हैं और आप द्वारा प्रस्तुत औषधों में व्यवहृत होती हैं। ये नमूने उचित अल्प परिमाणमें भेजे जाने चाहिये, जहाँतक संभव हो, आपकी संस्था निःशुल्क रूप में भेज सके। यदि उनमें से कुछ को बिना मूल्य भेजने में किसी तरह की कठिनाई हो, तो यदि अनुग्रहपूर्वक आप मुझे सूचित करें कि नमूने की किन-किन खास चीजों पर आप नाममात्र का मूल्य लगाना चाहते हैं, ताकि मूल्य चुकाकर उन चीजों की नियमित माँग में पूरा कर सकूँ। चूँकि मेरी सरकार आयुर्वेदिक और यूनानी पद्धतियों की उन्नति के लिये सचेष्ट है, अतएव प्रस्तावित औषधि-निर्माण शास्त्र, जब तैयार हो जायगा, तो व्यापारिक संस्थाओं, व्यवसायिओं और सर्वसाधारण के लिये वरदान सिद्ध होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप प्रायः सब नमूने तुरन्त भेजकर अपनी सदिच्छा प्रकट करेंगे और इस महान कार्य की पूर्ति में सहायक होंगे।

आपका—प्रिय,

(श्री) डी० ए० कुलकर्णी

माननीय श्री चरणतीर्थ जी का उत्तर

(१) यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उत्तर प्रदेश की सरकार ने आयुर्वेदिक और यूनानी औषधियों का 'औषध-निर्माण-शास्त्र' तैयार करने के लिए विशेषज्ञों की एक कमिटी बनायी है।

(२) यह समझ कर कि इस कमिटी का लक्ष्य आयुर्वेदिक और यूनानी—दोनों पद्धतियों की औषधियों का 'औषध-निर्माण-शास्त्र' निर्माण करना है, मुझे आनन्द तो होता है, किन्तु मैं नहीं समझ पाता कि यह कैसे कार्यान्वित हो सकता है, क्योंकि दोनों पद्धतियों में औषधियों के नामों, निर्माण के तरीकों, व्यवहारों और पोषक तत्त्वों में महान अन्तर है। इन दोनों के सम्मिश्रण से उत्पन्न उलझन के कारण सरकार को व्यर्थ ही बहुत बड़ी रकम व्यय करनी होगी और नतीजा भी असन्तोष-जनक ही होगा। अतएव मेरा विनम्र निवेदन है कि उ० प्र० सरकार की यह कमिटी अलग-अलग दो पुस्तकें तैयार करें। (१) आयुर्वेदिक औषध-निर्माण-शास्त्र और (२) यूनानी औषध-निर्माण-शास्त्र। इससे वैद्यों, व्यवसायियों और हकीमों या उसके अन्य व्यवहारकारियों के काम में भी सहूलियत होगी।

(३) यहां नीचे मैं प्रस्तावित आयुर्वेदिक औषध-निर्माण-शास्त्र के विषय में कुछ ठोस बातों का उल्लेख करता हूं :—

(४) मेरा विचार है कि अगर औषध-निर्माण-शास्त्र तैयार करने का अंग्रेजी तरीका अख्तियार किया गया, तो यह हमलोगों की आयुर्वेदिक पद्धति के अनुकूल, सुविधा प्रद और उचित नहीं होगा। आयुर्वेद की विभिन्न संहिताओं और अन्यान्य रसायन ग्रन्थों में उल्लिखित भस्मों, कूपीपक्व, रस-रसायनों, पर्पटियों, बटियों, गुग्गुलों, तैलों, घृतों, चूर्णों, क्वाथों, अवलेहों, आसवों और अनेक अन्यान्यों जैसी हजारों औषधों का व्यवहार, असम्भव हो जायगा। अतएव इस आयुर्वेदिक औषध निर्माण शास्त्र को दो भागों में विभक्त कर देना चाहिए :—

(१) द्रव्य गुण दर्शक औषध निर्माण शास्त्र। और

(२) सिद्ध-औषध गुण दर्शक औषध निर्माण शास्त्र।

(५) एलोपैथी औषध निर्माण शास्त्र में साधारणतया ओषधियों, टिंकचर्स, सतों, बुकनियों, नमकों और उनसे तैयार होनेवाले अन्यान्य पदार्थों, उनके निर्माण के ढंगों और पोषक तत्त्वों का वर्णन पाया जाता है। इसके बाद डाक्टर और व्यवसायी रोगियों के रोगों की प्रकृति पर विचार कर निदान पत्र में उनका उल्लेख करते हैं और तब रोगियों पर आजमायी हुई ओषधियों की कार्यकारिता और अपने अनुभव के अनुसार उनमें से सम्मिश्रण का निदान करते हैं।

(६) आयुर्वेद का तरीका इससे सर्वथा भिन्न है।

(७) आयुर्वेद विभिन्न रोगों के लिए कुछ सिद्ध औषधों की व्यवस्था बतलाता है यानी वे दवाइयाँ जो उद्भिज्ज, खनिज और प्राणिज पदार्थों के सम्मिश्रण से तैयार की गयी हों। चूर्ण, रस-रसायन, वटी और अन्यान्य औषधें, जो प्रायः सब रोगों में व्यवहार में लायी जाती हैं, १०, २०, २५ या और अधिक पदार्थों के मेल से बनायी जाती हैं। इस प्रकार प्रस्तुत सिद्ध औषध का प्रारम्भिक उपयोग किसी खास रोग के लिए किया जाता है, किन्तु विभिन्न ओषधियों के पोषक तत्त्वों और उन सबके सम्मिश्रण का विचार कर वही औषध अन्यान्य कई रोगों में सफलतापूर्वक व्यवहार में लायी जा सकती है। इस प्रकार जमाने से और बपौती रूप में सिद्ध वैद्यों द्वारा व्यवहृत और आजमाये हुए एकदम तैयार औषध-पत्रों का उपयोग वैद्य लोग कर सकते हैं, जब कि डाक्टरों को अपनी मर्जी से अपने औषधि-निदान-पत्र तैयार करने पड़ते हैं। इस प्रकार एलोपैथी में जितने डाक्टर हैं, उतने ही औषध-निदान पत्र भी।

(८) एलोपैथी के औषध-निर्माण-शास्त्र में वे प्रत्येक पदार्थ या उनसे बने मिश्रण के पोषक तत्त्वों का वर्णन करते

हैं। इस प्रकार आयुर्वेद औपचारिक द्रव्यों के तीनों प्रकारों के पोषक तत्त्वों का उल्लेख करता है। किन्तु साधारणतया उनका प्रयोग उनके सम्मिश्रण के रूप में ही होता है यानी न्यूनाधिक मात्रा में कई ऐसी ओषधियाँ मिला दी जाती हैं और नवनिर्मित ओषधि किसी खास रोग की दवा के रूप में व्यवहार में आती है। कुछ भस्में कुछ खास जड़ी-बूटियों से तैयार की जाती हैं; जब कि कुछ अन्य कुछ खास जड़ी-बूटियों की भावना देकर तैयार की जाती हैं। कई अन्य भस्में विविध पदार्थों के योग से बनती हैं। ऐसी स्थिति में एक ही सिद्ध औषध रोग-विशेष का निराकरण करने के अलावे अन्यान्य रोगों को दूर करने में सहायक होती है।

विभिन्न पोषक तत्त्वोंवाली औषध में मिश्रित विभिन्न जड़ियों द्वारा इस कार्य की पूर्ति हो जाती है। इतना ही कहना पर्याप्त है कि आयुर्वेदिक सिद्ध ओषधियाँ, सैकड़ों वर्षों की कठिन तपस्या और परिश्रम से, प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा परीक्षित और अनुभूत निदान-पत्र हैं।

(९) यहाँ उदाहरणार्थ स्वर्णवसन्तमालिनी को ही लीजिए। इस औषध में मिश्रित पदार्थ हैं स्वर्ण-भस्म, मोती-भस्म, रस-सिन्दूर (पारे और गन्धक से तैयार पारे की लाल-भस्म), पीपर ४, यशद भस्म या खर्पर ८। ये सब पदार्थ मक्खन में मिला दिये जाते हैं और पाती नीबू के रस में २१ दिनों तक डुबोये रखे जाते हैं। मक्खन क्रमशः कम होने लगता है और अन्त में अदृश्य हो जाता है। तब भावना बन्द कर दी जाती है। अब इसमें के मिश्र पदार्थों के भिन्न गुण हो जाते हैं। उदाहरणार्थ स्वर्ण टी० बी० के कीटाणु को नष्ट करता और शारीरिक क्रिया को सतेज करता है। मोती कफघ्न और शीतोष्णशामक है, रस-सिन्दूर फेफड़े को मजबूत करता है, पाचन-शक्ति की सहायता करता है और श्लेष्म को दूर करता है; यशद भस्म जीर्ण ज्वर को मिटाती है; मक्खन और नीबू के तत्त्व उपर्युक्त सब तत्त्वों के कार्य में सहायता और सुविधा पहुंचाते हैं और राजयक्ष्मा के रोगियों की अन्य पेचीदगियों को कम करने में सहायक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार यह औषध स्वर्ण, मोती, रस-सिन्दूर आदि के अलग-अलग तत्त्वों का लाभ देकर, सब सार पदार्थों के सम्मिश्रण से एक औषध के रूप में तैयार हो जाने पर और भी अधिक लाभदायक बन जाती है और राजयक्ष्मा तथा अन्यान्य रोगों के लिए रामवाण का काम करती है। मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े आदि के लिए यह सुन्दर टॉनिक का काम करती है।

(१०) अब दूसरा उदाहरण लें—आरोग्यवर्द्धिनी वटी—इसमें भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं—पारा १, गन्धक १, लोह १, अभ्रक १, ताम्र १, त्रिफला १०, शिलाजीत ३, गुग्गुल ४, चित्रक ४, कुटकी २२, नीम की पत्तियों के रस की भावना दो दिनों तक देनी पड़ती है और तब वटियाँ तैयार होती हैं। रक्त दोष के लिए यह खास दवा है। फिर भी भिन्न-भिन्न तत्त्वोंवाली विभिन्न जड़ी-बूटियों और पदार्थों के सम्मिश्रण के कारण यह अण्डकोश, लिभर और प्लीहा के कष्ट, अपच, अजीर्ण, मन्दज्वर, इण्टेस्टाइन और अन्यान्य रोगों पर जादू-सा काम करती है।

(११) आयुर्वेद की ये सिद्ध औषधें अपने लिए सर्वोत्तम, परीक्षित और अनुभूत निदान हैं। इन सिद्ध औषधों का वर्गीकरण रस, रसायन, गुटिका, गुग्गुल, आदि से होता है। ये बहुसंख्यक हैं, फिर भी उनमें से लगभग ३००० तो वैद्यों के प्रतिदिन के व्यवहार में आती हैं और उन्हें मौरूसी रूप में प्राप्त हुई हैं। ये ही सिद्ध औषधें आयुर्वेद और आयुर्वेदिकरसायन-शास्त्र की पृष्ठभूमि है।

(१२) आयुर्वेद के उपचार-शास्त्र (औषधि-पद्धति) में ऐसी व्यापक पद्धति प्रचलित है कि किसी प्रमुख रोग का निर्णय हो जाने के बाद, उसके लिए निश्चित दवा के सम्मिश्रण में उन सहायक औषधियों का भी संयोग आवश्यक है, जो उन अतिरिक्त रोगों पर काम कर सकें, जिनके लक्षण उस रोगी पर प्रकट होते हों। रोगी के

शरीर में इस औषधि के रूप में ५० से १०० तत्त्वों का समावेश हो जाता है और इसका परिणाम भी बड़ा ही उत्तम होता है।

(१३) हमलोगों के चिकित्सालय में उपचार के निमित्त स्थानीय और बाहरी हजारों रोगी आते हैं। उपर्युक्त रीति से ही हमलोग उनके लिए औषधि निश्चित करते हैं। उदाहरणार्थ हम दमे का रोगी लेते हैं। इस खास रोग के अलावे उसकी छाती में दर्द है। अपच, अजीर्ण, डकार, लिभर में सूजन और अन्य लक्षण भी हैं। उसके लिए हमलोग निम्नलिखित औषधें दे सकते हैं :—

(१) श्वास कालेश्वर	$\frac{१}{२}$ तोला
(२) श्वास गज केशरी	$\frac{१}{२}$,,
(३) यकृत प्लीहोदरारि	$\frac{१}{२}$,,
(४) अभ्रक भस्म १०० पुटी	$\frac{१}{२}$,,
(५) शुक्ति भस्म	१ ,,
(६) स्वयमग्नि रस	१ ,,

सब को एक साथ मिला कर बराबर बराबर ६४ खुराकें बना लेनी चाहिए। वासावलेह के साथ सुबह-शाम एक एक खुराक लेनी चाहिए। पैखाना शुद्ध हो, इसलिए रात में, बिस्तरे पर जाने के पहले, आरोग्यवर्द्धिनी $\frac{१}{२}$ तोला लेनी चाहिए।

(१४) दमे के भिन्न रोगी के भिन्न लक्षण होते हैं। उनमें से प्रत्येक के लिए, ऊपर-लिखित अनुसार, भिन्न औषधि-पत्र तैयार किये जा सकते हैं। अतः मुख्य रोग के साथ-साथ छोटे या सूक्ष्म अन्य लक्षणों पर विचार कर के औषधि का निर्णय किया जाता है।

(१५) अतः आयुर्वेदिक औषधि-निर्माण-शास्त्र तैयार करने के लिए संहिता-ग्रन्थों और प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों से पदार्थों के पोषक तत्त्वों के विवरण हमलोगों को संग्रह करना चाहिए और तब भारत भर के वैद्यों और औषधि-शालाओं से अनुभूत द्रव्य-गुणों और सिद्ध औषधों के लिए आग्रह करना चाहिए। इन तमाम संग्रहीत सामग्रियों के आधार पर आयुर्वेदीय औषध-निर्माण-शास्त्र का नवनिर्माण होना चाहिए।

(१६) आयुर्वेद और रसायन-शास्त्रों में १००० प्रकार की भस्मों, २०० तरह के कूपी-पक्कों, २०० विविध पर्पटियों, ३००० रस-रसायनों, बटियों और इनके योग से प्रस्तुत औषधियों, ४०० प्रकार के घृतों, ५०० तरह के तैलों, ८०० चूर्णों, २००० क्वाथों, २०० आसवों, ५०० अवलेहों और शेष क्षारों, सत्त्वों, अंजनों, नस्यों, मलहमों, लेपों और अन्यान्य सिद्ध औषधों के उल्लेख हैं। इनमें से कितनी, किस प्रकार व्यवहार में लायी जानी चाहिए, आदि का निर्णय अनुभवी वैद्यों, व्यवसायियों, और औषधि-शालाओं के परामर्श से किया जाना चाहिए।

(१७) चूँकि औषधि-शालाओं से आपने नमूनों की मांग की है, मैं समझता हूँ, आपको कुछ नमूने मिल जायँगे, किन्तु, मुझे सन्देह है कि वांछित कार्य-सिद्धि में अधिक कारगर नहीं होंगे। विभिन्न औषधि-शालाओं की एक ही वैज्ञानिक औषधि में, जहाँ तक उसकी बनावट, रंग, स्वाद, और तत्त्व का सम्बन्ध है एकरूप नहीं रहेगी। साथ ही एक नयी समस्या उपस्थित होगी कि क्या इस औषध में वे सब पदार्थ सम्मिलित हैं, जो वैज्ञानिक ढंग से इसकी प्रस्तुति के लिए आवश्यक हैं। वस्तुतः औषधियों की वैज्ञानिक और बनावटी प्रस्तुतियों के बीच भेद-पहचान, खोज, विश्लेषण या निर्णय करना असम्भव-सा हो जायगा। इसलिए औषध-निर्माण-शास्त्र के कार्य में कमिटी नमूनों का किस प्रकार उपयोग करेगी, यह समझना कठिन है।

(१८) सर्वप्रथम हमलोगों को प्रसिद्ध औषधिशालाओं और माननीय वैद्यों से सालाना बिक्री के यथार्थ अंकों या वैज्ञानिक प्रस्तुति के व्यवहार के सम्बन्ध में तथ्य संग्रह करना चाहिए। तब कहीं हमलोग उन से औष निर्माणशास्त्र और अन्य चुनी चुनाई औषधियां तैयार क सकते हैं। सरकार को तब इन औषधियों के निर्माण के लिए एक औषधिशाला खोलनी चाहिए। इस प्रक

इन औषधियों की विक्री और इनसे प्राप्य आर्थिक लाभ के अलावे वैज्ञानिक ढंग से उनके निर्माण, उनके वास्तविक रंग, स्वाद, पोषक तत्त्वों आदि का यह एक प्रमाण उपस्थित करेगा।

(१९) इस सम्म्बन्ध में साधारणतया मेरे ऐसे ही कुछ विचार हैं। जब वास्तविक रूप में कार्यारम्भ किया जायगा, इस विषय पर और अधिक गम्भीर चिन्तन किया जा सकता है और शान्तिपूर्ण विचार विवेचन करने के बाद अन्त में निर्णय दिया जा सकता है।

आपका विश्वासपात्र,
श्रीचरणतीर्थ (राजवैद्य जे० के० शास्त्री)

तामिलनाद आयुर्वेद म० सम्मेलन

तामिलनाद आयुर्वेद महासम्मेलन का सत्रहवाँ अधिवेशन वैद्यवाचस्पति श्री पी० एस० राम शर्मा, करूर-निवासी के सभापतित्व में ता० ८-९ मार्च १९५२ ई० को पुदुकोटा में हुआ।

डिस्ट्रिक्ट और सेशन जज श्री सी० आर० चक्रवर्ती ने धन्वन्तरि-पताका उत्तोलन करते हुए घोषित किया कि वैज्ञानिक दृष्टि से विश्व को आयुर्वेद की अनिवार्य आवश्यकता है; क्योंकि मानसिक और आत्मिक बीमारियों को रोकने और आराम करने में आयुर्वेद का बहुत बड़ा अवदान है।

मद्रास व्यवस्थापिका सभा के सदस्य, डा० पी० वरदराजुलु नायडू ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए घोषित किया, "भारत में आयुर्वेद-विज्ञान की उन्नति के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा भाषा के आधार पर विभिन्न पद्धतियों में ज्ञान-वैभिन्न्य है; छोटे-छोटे मतान्तर स्थिर उन्नति के अवरोधक हैं। यह समयानुकूल है कि अधिकारियों ने दिखावटी विभिन्न पद्धतियों के दावे को स्वीकार नहीं किया और एक ही भारतीय औषधि-पद्धति में सबको शामिल किया। भारतीय औषधि के कालेजों के विद्यार्थियों का योग्यता-स्तर उठाकर भारतीय औषधि और आधुनिक औषधि के व्यवसायियों के बीच के भेद और उसकी मान्यता हटा दी जानी चाहिए।"

वैद्य-वाचस्पति, पं० राम शर्मा ने सभापति-पद से अपना भाषण देते हुए आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कहकर बदनाम करने वालों की भर्त्सना की। उन्होंने कहा कि आयुर्वेद पञ्चभूतों के सिद्धान्त पर आधारित और निर्मित है और यह त्रिदोष के सिद्धान्त से मिलता-जुलता है और सब वैद्यों द्वारा यह जाना और व्यवहार में लाया जा सकता है। आयुर्वेद ने, वृहद् आधार और यथार्थ वैज्ञानिक ढंग पर, अपने तीन भावों—रोगोत्पत्ति, लक्षण और चिकित्सा का विकास किया है। प्लेग, सुजाक, टायफायड—जैसे आधुनिक रोगों के सम्बन्ध में, जो यह कहा जाता है कि आयुर्वेद की संहिताओं में उनका स्पष्टीकरण नहीं हुआ है, इसका खण्डन करते हुए पंडित शर्मा ने कहा कि त्रिदोष-सिद्धान्तों के अनुसार यदि लक्षणों की व्याख्या की जा सके तो रोगों के नाम ठीक-ठीक न मालूम होने पर भी, आयुर्वेदिक सिद्धान्तों का भली भाँति व्यवहार किया जा सकता है।

सरकार द्वारा उचित समर्थन-संरक्षण आयुर्वेद को दिलाने में, सरकार में अपने उच्च पद और मर्यादा के कारण, भारतवर्ष के कुछ नेता जो व्यवहार आयुर्वेद के साथ आजकल कर रहे हैं, उस पर खेद-प्रकाश करते हुए, उन्होंने कहा कि यह जान कर कि भारतीय संघ-राष्ट्र के प्रेसिडेंट, डा० राजेन्द्र प्रसाद जैसे कुछ शीर्षस्थानीय नेता हमारी प्राचीन संस्कृति और कला के संरक्षण में दिलचस्पी दिखला रहे हैं, उन्हें कुछ सन्तोष हो रहा है।

उचित तरीके से आयुर्वेद की उन्नति के लिये श्री शर्मा जी ने गवर्नमेंट के विचारार्थ निम्न सुझाव पेश किये हैं:—(क) त्रिदोष-सिद्धान्तों पर आधारित अनुसन्धान करने के लिए आयुर्वेद-अनुसन्धान-शाला की स्थापना। (ख) अनुसन्धान-शालाओं में शोधक आविष्कारों की पूर्ति के लिए सब जिलों के प्रधान कार्य-केन्द्रों पर आयुर्वेदीय अस्पतालों

की स्थापना। (ग) वैद्यों को आधुनिक डाक्टरों के मुकाबिले बराबरी का पद प्रदान करना।

महासम्मेलन के तत्त्वावधान में साहित्य-आयुर्वेद-शिरोमणि, वैद्य विशारद श्री वी० एस० वेंकट सुब्रह्मण्यम् शास्त्री की अध्यक्षता में विज्ञान समिति की बैठक ६ मार्च १९५२ ई० को हुई। आयुर्वेद शिरोमणि, वैद्य विशारद श्री एस० वी० राधाकृष्ण शास्त्री ने 'प्रमेहों' पर व्याख्यान दिया। चरक और सुश्रुत संहिताओं में उल्लिखित २० प्रकार के प्रमेहों का जिक्र करते हुए उन आधुनिक आयुर्वेदों के भ्रमात्मक दृष्टिकोण की आलोचना की, जिन्होंने आयुर्वेद और (आधुनिक औषध) डाक्टरी—दोनों पद्धतियों के रोगों के एकीकरण की उत्सुकता में दोनों पद्धतियों के मूल भेद को ताक पर रख दिया है।

'प्रमेह' पर लिखित अपने लेख के लिए श्री एस० वी० राधाकृष्ण शास्त्री को स्वर्ण पदक प्रदान किया गया।

महासम्मेलन के खुले अधिवेशन में कुछ प्रस्ताव भी स्वीकृत हुए।

महासम्मेलन के तत्त्वावधान में आर्य वैद्यशाला, कोट्टाकल, के प्रधान वैद्य श्री पी० माधव वैरियर के सभापतित्व में मद्रास राज्यान्तर्गत आयुर्वेदिक औषधालय संघ का सम्मेलन हुआ।

यक्ष्माराजेन्द्र इन्स्टीच्यूट ऑफ इन्डियन मेडिसिन के प्रधान मेडिकल अफसर और मैसूर राज के आयुर्वेद के डाइरेक्टर श्री वाई० पार्थनारायण पंडित ने इस सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए घोषित किया कि आयुर्वेदज्ञों के लिए कितने स्वर्ण सुयोग्य प्राप्य हैं और यह उनपर निर्भर करता कि वे अपनी अवस्था सुधारने में उनका किस तरह उपयोग करते हैं।

औषधालय संघ—सम्मेलन के सभापति श्री माधव वैरियर ने कहा :—

आयुर्वेदीय-पद्धति अनुयायी औषधियों के व्यवसायियों के सम्मुखीन साधारण परिस्थिति में भी विभिन्न समस्यायें हैं। अब युद्धोत्तर परिस्थिति ने हालत और भी बदतर बना दी है। हमारी तथा कथित प्रान्तीय सरकार ने भी उन कठिनाइयों को कम नहीं बढ़ाया है। हम लोगों जैसे औषधि व्यवसायियों को हमारे इस पवित्र और प्यारे देश में आयुर्वेदिक औषधियों को स्थायित्व प्रदान करने की दिशा में बहुत कुछ काम करना है। इसके बाद ही वैद्यों को अपना पार्ट अदा करना है। आयुर्वेदिक औषधिशाला संचालकों को निम्न विचारों पर ध्यान रखना चाहिए। जैसा कि शास्त्रों का दावा है और जैसा कि चिरकालिक व्यवहार द्वारा अनुभव किया गया है, जिन रोगों में औषधियों का प्रयोग किया जाय, उनमें वे वैसी ही कारगर हों। उनके फल, स्वाद, व्यावहारिक सुविधा आदि में और अधिक सुधार करने की चेष्टा करनी चाहिए। नयी-नयी औषधियां बाजार में लायी जावें, चाहे शास्त्रानुमोदित निर्माण पद्धति और परीक्षण द्वारा, चाहे उद्भिज्ज, खनिज या प्राणिज नयी औषधियों के निर्माण की चेष्टा द्वारा। औषधियों की उपयोगिता परीक्षा का भी कोई माध्यम स्थिर करना चाहिए, जिससे जाना जा सके कि विभिन्न ऋतुओं में, विभिन्न जगहों में निर्मित किसी औषधि का प्रभाव, उनके निर्माण काल में हुए परिवर्त्तनों के बावजूद भी, उसमें मिश्रित सब पदार्थों में उसी मात्रा में है। समस्त देश के डाक्टरों और वैद्यों को सचेष्ट होकर ऐसा यत्न करना चाहिए कि प्रत्येक विभाग की सर्वोत्तम और सर्वाधिक प्रभावपूर्ण औषधि की जानकारी सब को हो और सब उसी का व्यवहार करें। प्रत्येक आयुर्वेदिक औषधि विक्रेता के सामने एक समस्या है औषधियों की पहचान के संबंध में। बहुत सी औषधियां और पदार्थ जो पहले बहुतायत से मिलते थे, आजकल अप्राप्य हो रहे हैं। इसका कुछ कारण तो वृहत् परिमाण में जंगलों का काटा जाना है; जैसा कहा जाता है कि जंगल खाद्यान्न निमित्त खेती बढ़ाने की दृष्टि से काटे जा रहे हैं, नेल्लिकाई (आमलकी), विल्वमूलम, बला और नन्नारी (सरीफा) हमारी ओर महँगी और दुष्प्राप्य हो रहे हैं। यह हमलोगों

के लिए शर्म की बात है कि हमारी बहुत-सी ओषधियाँ विदेशी दवाइयों से भी बहुत ज्यादे महँगी हो गयी हैं। खास तौर पर जिन औषधियों में घी, तेल वगैरह या मिर्च, अदरक, पिप्पली पड़ती हैं, वे तो बड़ी ही महँगी पड़ती हैं। अन्यान्य कारणों में इसका एक कारण यह भी है कि कुछ राष्ट्रों के मन में विश्वव्यापी तनातनी और युद्धोन्माद घर कर गया है। अपने शास्त्रों के अनुसार कुछ आवश्यक विषयों को आधार मान कर, प्रत्येक ओषधि से बनने वाली प्रत्येक औषध के प्रभाव में पड़ने वाले अन्तर का सविस्तर अध्ययन होना चाहिए। ये सब बातें तभी हो सकती हैं जब कि एक रिसर्च इन्स्टीच्यूट हो और हम लोगों को अपने लिए आयुर्वेदिक पद्धति अनुयायी एक केन्द्रीय रिसर्च इन्स्टीच्यूट चाहिए ही। भारत में औषधि की समस्त भारतीय पद्धतियों के डाक्टरों वैद्यों को मालूम होना चाहिए कि हम सब एक हैं और सम्मिलित उद्देश्य की पूर्ति के लिए चेष्टा करनी चाहिए।

स्वागतकारिणी कमिटी के अध्यक्ष श्री वी० एस० गणपति शास्त्री के धन्यवाद देने पर सम्मेलन की कार्यवाही समाप्त हुई।

आगामी वर्ष के लिए तामिलनाद आयुर्वेद महामण्डल के निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये।—

वैद्य वाचस्पति श्री पी० एस० राम शर्मा, सभापति।

आयुर्वेदाचार्य श्री वी० बी० नटराज शास्त्री, तिरुची, उप सभापति।

डा० वी० सुब्रह्मण्यम्, श्रीरंगम् उप सभापति।

वैद्य वि० श्री एस० वी० राधाकृष्ण शास्त्री, तिरुची, मंत्री।

—मन्त्री

देशी चिकित्सा गवेषणाशाला निर्देशक की नियुक्ति का प्रश्न—

नयी दिल्ली, ८ मार्च, १९५२। देशी चिकित्सा प्रणालियों की प्रस्तावित केन्द्रीय गवेषणाशाला की प्रबन्ध-समिति ने हालकी अपनी एक बैठक में निश्चय किया है कि उक्त शाला का निर्देशक (डाइरेक्टर) देश के विख्यात आयुर्वेदिक चिकित्सकों और संस्थाओं के सुझावों पर विचार करने और स्थान का विज्ञापन निकालने के बाद नियुक्त किया जायगा।

परीक्षाकेन्द्र-पटना

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ, दिल्ली के पटना केन्द्र में परिक्षार्थियों की एक सभा पं० रामनिहोर ओझा आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में स्थानीय श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० स्थित परीक्षा केन्द्रस्थल पर हुई। सर्व प्रथम श्री रमावल्लभ चतुर्वेदी ने आयुर्वेद के विकास पर किये गये श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के कार्यों की प्रशंसा की। तत्पश्चात् श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री रामदयाल जी जोशी एवं वैद्य रामनारायण जी का आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति और विकास पर सारगर्भित भाषण हुआ। श्री विप्र जी ने भवन के सञ्चालकों को एक कविता भेंट की। अन्त में केन्द्राध्यक्ष श्री कपिलदेव त्रिपाठी वैद्यसर्जन ने भवन के सचालों को नि० भा० आ० शास्त्रचर्चा परिषदादि सुकार्यों पर प्रकाश डालते हुए परिक्षार्थियों के रहन-सहन एवं भोजनादि की व्यवस्था के लिये धन्यवाद दिया।

शोक समाचार

"सचित्र आयुर्वेद" के पाठक यह समाचार बहुत दुःख के साथ पढ़ेंगे कि बम्बई निवासी वैद्य गोपाल जी कुंवर जी ठक्कुर का देहावसान ता० ६-३-५२ को ५४ वर्ष की अवस्था में हो गया।

आप एक सफल चिकित्सक, पत्रकार-संपादक तथा सुलेखक थे। आपने गुजराती भाषा में आयुर्वेदीय साहित्य के अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। "आरोग्य सिन्धु" नामक पत्र का संचालन आपने ही किया था जो आज भी चल रहा है।

कई वर्षों से आप के स्वास्थ्य में गड़बड़ी चल रही थी, जो बीच-बीच में चिकित्सा से ठीक भी हो जाती थी, इधर १-२ महीनों से आप का स्वास्थ्य बराबर गिरता ही गया। देहावसान के चार रोज पूर्व ही स्मरणशक्ति तो बिल्कुल ही नहीं रही, इसी अवस्था में चार रोज तक रहकर ६ मार्च को अपने निवास स्थान—विलेपारले—बम्बई में इस नश्वर शरीर को हमेशा के लिए त्याग दिया।

आप की आकस्मिक मृत्यु से आयुर्वेद संसार को जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति शीघ्र होना असम्भव है। परमात्मा से प्रार्थना है दिवंगतात्मा को शान्ति मिले तथा दुःखी परिवार को सहन शक्ति प्रदान करे। —स० सम्पादक

ग्रीष्म ऋतुके उपद्रव शान्त रखनेके लिए

वैद्यनाथ शर्बत और अर्क

व्यवहार करें, क्योंकि

१. ये गुणकारी और असली होते हैं।

२. इनमें एसेन्स आदि कोई दूषित वस्तु नहीं डाली जाती।

३. ये बहुत समय तक रखने पर भी बिगड़ते नहीं।

जनता, चिकित्सक और दवा-विक्रेताओं का लड़ाई के पहले से ही यह जबदस्त आग्रह था कि "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन' को शर्वत और अर्क जरूर बनाने चाहिये; क्योंकि बाजार में उत्तम और विश्वासी शर्बत और अर्क नहीं मिलते। इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न हम कर ही रहे थे कि युद्ध ने इस कार्य को कठिन कर दिया। लड़ाई के समय में नकली दवाओं का प्रचार और अधिक बढ़ गया; इसलिये हमारे ग्राहकों का तकाजा भी निरन्तर बढ़ता ही गया। कर्त्तव्य-प्रेरणा से, अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी, हमने नीच लिखे शर्बत और अर्क बनाये हैं। इनके गुणकारी और असली होने की पूरी गारण्टी है। इनमें एसेन्स आदि कोई दूषित वस्तु नहीं डाली जाती है।

बैद्यनाथ केवड़ा शर्बत—सिर दर्द और तरावट आदि के लिये उत्तम है। कीमत—२४ औंस २॥)

बैद्यनाथ खश शर्बत—ग्रीष्म ऋतु के उपद्रवों को शान्त रखता है; पित्तशामक और तर है। कीमत—२४ औंस २॥)

बैद्यनाथ गुलाब शर्बत—बढ़िया गुलाबजल से बनाया गया है; गर्मी के मौसम में रोज पीने योग्य है। कीमत—२४ औंस २॥)

बैद्यनाथ गुलबनफ्सा शर्बत—सर्दी, जुकाम, खांसी आदि में फायदेमन्द है। दवाओं के अनुपान में भी काम आता है। कीमत—२४ औंस २॥)

बैद्यनाथ चन्दन शर्बत—कलेजे की गर्मी, पेशाब की जलन, दाह आदि की शान्ति के लिये अक्सीर है। कीमत—२४ औंस २॥)

बैद्यनाथ अजवायन अर्क—मन्दाग्नि और वायु आदि के लिये श्रेष्ठ है। कीमत—२४ औंस १॥), ८ औंस ॥=)

बैद्यनाथ अनन्तमूल अर्क—इसी को हिन्दुस्तानी सालसा-पारिला कहते हैं। खून साफ करने के लिये मशहूर है। कीमत—२४ औंस २।), ८ औंस ।।।=)

बैद्यनाथ गोरखमुन्डी अर्क—खून साफ करके फोड़ा-फुन्सी ठीक करने के लिये उत्तम है। कीमत २४ आंस १॥), ८ औंस ॥=)

बैद्यनाथ दशमूल अर्क—प्रसूत ज्वर एवं सब प्रकार के वात रोगों के लिये प्रसिद्ध है। कीमत—२४ औंस २।), ८ औंस ।।।=)

बैद्यनाथ महासुदर्शन अर्क—सब तरह के बुखारों में अक्सीर है। कीमत—२४ औंस २), ८ औंस ।।।)

बैद्यनाथ सौंफ अर्क—आंव, पेचिस आदि में महोपकारी है। कीमत—२४ औंस १॥), ८ औंस ॥=)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड, कलकत्ता, पटना, झाँसी, नागपुर।

कुछ बैद्यनाथ सुगन्धित केश तैल

बाजारू खराब तेल-साबुन आदि के व्यवहार से बाल तो असमय में झड़ने और पकने लगते ही हैं, मस्तिष्क पर भी उनका बहुत खराब असर पड़ता है। परन्तु विशुद्ध शास्त्रीय तलों के व्यवहार से केश सौंदर्य व दिमागी ताकत बढ़ती है। इसीलिए उत्तम तैलों का ही व्यवहार करना चाहिए। हमारे सुगन्धित तैल विशुद्ध तिल-तैल से ही बनाये जाते हैं। किसी भी तैल में हानिकारक दुर्गन्ध किरासिन तल आदि साबित करनेवाले को ५००) रु० दिया जायगा। सुगन्ध के साथ गुण चाहने वालों को सिर में "बैद्यनाथ केश तैल" ही लगाने चाहिए।

बैद्यनाथ आमला केश तैल—नित्य व्यवहार से बाल रेशम की तरह मुलायम और भौंरे की तरह काले हो जाते हैं। सुगन्ध २४ घण्टे तक स्थायी रहती है। दिमाग ठण्ढा रहता है। कीमत—चार औंस १॥)

बैद्यनाथ कामिनी बिलास तैल—इस महासुगन्धित तैल को इत्र ही समझिए। यह सुगन्धित तैलों का राजा है। कीमत दो औंस १≈)

बैद्यनाथ ब्राह्मी तैल (औषध सिद्ध)—उत्तम ब्राह्मी से बनाया गया है। यह बुद्धि बढ़ाता है। कीयत—चार औंस १≈), २ औंस ।।≋)

बैद्यनाथ ब्राह्मी तैल (औषध सिद्ध एवं सुगन्धित)—यह उपरोक्त गुणयुक्त एवं मधुर सुगन्ध-युक्त है। कीमत—चार औंस १।≈), दो औंस ॥।-)

बैद्यनाथ हिमानी कल्याण तैल—तैल लगाते ही बर्फ के जसी ठंढक मालूम होती है। सिरदर्द को ५ मिनट में अच्छा करता है। उत्तम सुगन्धयुक्त है। कीमत—दो औंस १।), १ औंस ॥।)

सुवासित और सुगन्धित तैल

नीचे लिखे तैल विभिन्न प्रकार के सुगन्धयुक्त ताजे फूलों से तिलको सुवासित कर तयार कियेजाते हैं। इनमें अन्यान्य किसी द्रव्य का मिश्रण नहीं है। निशुद्धता की पूर्ण गारण्टी है।

बैद्यनाथ गुलरोगन—उत्तम गुलाब के ताजे फूलों द्वारा तैयार किया जाता है। बीमारी की अवस्था में भी इसका व्यवहार अत्यन्त उपयोगी है। कीमत—एक पौंड ५॥), दस औंस ३॥≈), छह औंस २।≈)

बैद्यनाथ चमेली तैल—चमेली के ताजे फूलों की सुगन्ध का आनन्द लेना हो, तो इसका इस्तेमाल कीजिये। एक बार लगाने से २४ घण्टे तक सुगन्ध स्थायी बनी रहती है। कीमत—एक पौंड ५), दस औंस ३।-), छः औंस २।)

बैद्यनाथ बेला तैल—स्थायित्व के साथ-साथ सुगन्ध में तेजी भी आपको इस तैल में मिलेगी। इसके लगाने से मन सदा प्रसन्न रहता है। कीमत—एक पौंड ५), दस औंस ३।-), छह औंस २।)

निम्नलिखित तैल अनेक गुणदायक और सुगन्धित द्रव्यों के संयोग से विशुद्ध तिल तैल द्वारा तैयार किये जाते हैं।

बैद्यनाथ आमला तैल—बहुत ही उत्तम सुगन्धयुक्त यह आमला तल है। फायदेमन्द भी पूरा है। कीमत—एक पौंड ३॥), दस औंस २॥), छः औंस १॥)

बैद्यनाथ आमला तैल न० १०००—सुगन्ध में कम है, लेकिन गुणों में बहुत अच्छा है। कीमत एक पौंड ३) दस औंस २≈), छः औंस १।≈)

बैद्यनाथ ब्राह्मी आमला तैल—यह तैल ब्राह्मी और आंवले के स्वरस से तैयार किया है। माथे को ठण्ढा रखने एवं बुद्धि तथा स्मरणशक्ति बढ़ाने में अतुलनीय है। कीमत—एक पौंड ४।≈), दस औंस २॥।≋), छः औंस १॥≈)

पता—श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड, कलकत्ता, पटना, झाँसी, नागपुर।

आरोग्य-प्रकाश

(९ वां संस्करण)

(आरोग्य-स्वच्छता और चिकित्सापर सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ)

भारत प्रसिद्ध श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मैनेजिङ्ग डायरेक्टर वैद्यराज पण्डित रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री ने ५-६ वर्ष में बड़ी मेहनत से स्वयं इस ग्रन्थ को लिखा है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हजारों रुपयों का काम देता है। इसके ८ संस्करणों में ६८००० प्रतियाँ छपकर बिक चुकी हैं, और ९ वां संस्करण में १५ हजार फिर छापा गया है। इसीसे इसकी लोकप्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है।

मूल्य १।।।), डाक खर्च ।।=)

सिद्धयोग संग्रह

(तीसरा संस्करण)

आयुर्वेदोद्धारक आयुर्वेद-मार्त्तण्ड वैद्य वाचस्पति वैद्य यादव जी त्रिकमजी आचार्य द्वारा लिखित यह ग्रन्थरत्न है। इसमें जितने प्रयोग लिखे गये हैं, वे सब श्रीयुत आचाय जी के अनेक बार के अनुभव-सिद्ध हैं। इस पुस्तक में यह विशेषता है कि रोगाधिकार के अनुसार ही दवाओं के प्रयोग लिखे गये हैं, जिससे सर्वसाधारण जन भी इस पुस्तक के द्वारा सफलतापूर्वक चिकित्सा काय कर सकते हैं। वैद्यों के लिए तो बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ है। मूल्य—२।।)

प्रकाशक
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

शरीर-क्रिया विज्ञान

समस्त आयुर्वेदीय पाठ्यकोर्स में स्वीकृत

(दूसरा संस्करण)

इस ग्रन्थ के उदीयमान लेखक वैद्य रणजित राय ने आयुर्वेदीय सिद्धान्त के आधार पर इसे मौलिक रूप में लिखा है, जो आयुर्वेद की श्रेष्ठता का द्योतक है। आयुर्वेद में यह सर्वप्रथम स्तुत्य प्रयास हुआ है। इससे आयुर्वेद के एक प्रधान अंग की पूर्ति हुई है। वैद्यों पर डाक्टरों का यह आक्षेप रहा है कि वैद्यलोग शारीरिक ज्ञान से हीन चिकित्सक होते हैं। इस ग्रन्थ से उनको मुँहतोड़ उत्तर मिला है। मूल्य ६)

आयुर्वेदीय पदार्थविज्ञान

ले० वैद्य रणजित राय

वाइसप्रिन्सिपल आयुर्वेदिक म० वि० सूरत

आधुनिक मूलतत्त्वों के साथ आयुर्वेदोक्त तत्त्वों का समन्वय करने के लिए किस दृष्टि से प्रयास होना चाहिए। इस विषय में यथास्थान विद्वान लेखक ने अपना मत प्रकाशित किया है। आयुर्वेदीय पदार्थविज्ञान अन्य सभी आयुर्वेदीय विषयों का आधारभूत है। अतः उसका अध्यापन किस शैली से होना चाहिए, इस बात का विवेचन करते हुए विषय को नया ही रूप देने का सफल प्रयास किया गया है। मूल्य—६)

प्रकाशक
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

पदार्थविज्ञान

ले० वैद्य रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य्य,
प्रिन्सिपल, अ० शि० आयुर्वेदीय कालेज बेगूसराय

इस ग्रन्थ में प्रमाणों का तुलनात्मक विवेचन, स्वास्थ्य-संरक्षण तथा रोगप्रतीकारार्थ-उपयोग में आनेवाले पदार्थों का विवेचन करते हुए आयुर्वेद के मूलभूत त्रिदोष-सिद्धान्त की जननी-प्रकृति और उससे उद्भूत तत्त्वों की छान-बीन की गयी है। साथ ही यह भी दर्शाया गया है कि पूर्वजन्म कृत पापों का परिणाम भोगने के लिए किस प्रकार सगुण-आत्मा भिन्न-भिन्न योनियों में प्रवेश कर अपने कर्मों का फल भोगता है। मूल्य—३।।)

यूनानी सिद्धयोग संग्रह

यूनानी चिकित्सा-पद्धति का महत्त्व सभी जानते हैं। इसके नुस्खे आयुर्वेदीय नुस्खों की भाँति ही लाभदायक और तुरत फायदा करनेवाले तथा सस्ते होते हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सक भी यूनानी दवा से लाभ उठावें, इसलिये एक अनुभवी चिकित्सक से यह ग्रन्थ सरल हिन्दी भाषा में लिखवाया गया है। चिकित्सकों तथा सर्वसाधारण दोनों के लिए बहुत उपयोगी पुस्तक है। मूल्य—२।।)

उपचार-पद्धति

(चतुर्थ संस्करण)

सर्वसाधारण गृहस्थ के सैकड़ों रुपये प्रति वर्ष बच सकते हैं, यदि उन्हें रोगों के उपचार और पथ्य का साधारण ज्ञान भी हो जाय। इसी लक्ष्य को सन्मुख रखकर इस पुस्तक का प्रकाशन हमने किया है। इसमें रोगियों की परिचर्या का विवेचन दिया गया है।

मूल्य—।।।≈)

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

मानसरोग-विज्ञान

(ले० डा० बालकृष्णजी अमरजी पाठक)

आज के युग में जब कि काम, क्रोध आदि तथा मिरगी (अपस्मार), उन्माद, न्यूरिस्थिनिया, मानसिक अस्थिरता आदि मानसिक रोग मनुष्य जाति को बुरी तरह से त्रस्त कर रहे हैं, यह पुस्तक एक नवीन सन्देश देती है। अनुभवी लेखक की मँजीहुई लेखनी और तीक्ष्ण तर्कों ने प्रस्तुत पुस्तक के विषयों पर उपयुक्त सामग्री का सुन्दर और अधिकारपूर्ण रूप से सम्पादन किया है। हमारा विश्वास है कि वैद्य समाज, आयुर्वेद के शिक्षक और विद्यार्थी तथा साथ ही साथ सर्वसाधारण जनता के लिए भी यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी होगा। मूल्य—५।।)

त्रिदोषतत्त्व-विमर्श

ले० वैद्य रामरक्ष पाठक, आयुर्वेदाचार्य

इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के आधारभूत त्रिदोष-सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन विधिवत् किया गया है। मानव-शरीर के अनेकानेक द्रव्यों में वात-पित्त-कफ प्रधान हैं, इसी तथ्य को केन्द्रित कर विद्वान् लेखक ने त्रिदोष तत्त्व के विभिन्न स्वरूपों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है, जिससे ग्रन्थ की शास्त्रीयता निखर गयी है। प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन के बाद त्रिदोष तत्त्व और पञ्च महाभूत का ज्ञान सरलता से हो जाता है। आयुर्वेद के जिज्ञासुओं के लिए पुस्तक बहुत उपादेय है मूल्य—२।।≈)

किशोर-रक्षा और ब्रह्मचर्य

किशोर-बालकों को हस्तमैथुन-रूपी सर्वस्व नाशकारी व्याधि से बचाने के लिए सफल उद्योग किया गया है। मूल्य—।≡)

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

देशी दवाओं का सब से बड़ा विश्वासी कारखाना

४ निर्माणकेन्द्र ५० बिक्रीकेन्द्र १४ [illegible] एजेंसियाँ

बैद्यनाथ

द्राक्षासव

ताकत, ताजगी और स्फूर्ति के लिये सुमधुर टॉनिक

कीमत—६० तोला २॥=), ४० तोला २=), ३० तोला १॥-), २० तोला १≡)

बैद्यनाथ

च्यवनप्राश

(अष्टवर्ग युक्त)

श्वास, कास, तपेदिक आदि को नष्ट कर शरीर का कायाकल्प करनेवाला रसायन

कीमत—४० तोला ४।), २० तोला २।), १० तोला १।)

बैद्यनाथ

मृतसंजीवनी

प्रसूतिज्वर, कास, श्वास ,नाशक और शक्ति, स्फूर्ति व पुष्टि के लिये

स्वर्ण घटित बहुमूल्य रस, रसायन, चन्द्रोदय, मकरध्वज आदि कूपीपक्व रसायन, धातु, उपधातु, रत्न आदि की भस्में, लौह, मण्डूर, पर्पटी, गुग्गुल, बटी, गुटिका, चूर्ण, अवलेह, मोदक, पाक, उत्तम गुणयुक्त पुराने आसव, अरिष्ट, नवीन ताजा अर्कद्राव, शर्बत, ओषधि-सिद्ध घृत, तैल, सत्व, क्षार, मलहम, मृतसंजीवनी आदि आदि

आयुर्वेदीय दवाओं

तथा

बुखार, तिल्ली, खूनखराबी, शिरदर्द, श्वास, खांसी, बवासीर, मन्दाग्नि आदि सभी रोगों पर तत्काल फायदा पहुँचाने वाली

अनेक अचूक पेटेन्ट दवाओं के सबसे बड़े सिर्माता

बैद्यनाथ

अशोकारिष्ट

प्रदर आदि सभी स्त्रीरोगों के लिए फायदेमन्द

कीमत—६० तोला ३), ४० तोला २।), ३० तोला १॥=), २० तोला १।)

बैद्यनाथ

बालामृत

बच्चों के रोगों को दूर कर के उन्हें मोटा-ताजा बनाने वाली मीठी पुष्टई

कीमत—३२ खुराक १=), १६ खुराक ॥=)

बैद्यनाथ

अनन्तसालसा

खून को साफ करने व बढ़ाने वाला सर्वोत्तम सालसा

कीमत—१६ खुराक २॥), ८ खुराक १=)

४० साल से मशहूर व विज्ञान से सिद्ध

बैद्यनाथ प्राणदा

मलेरिया आदि बुखारों की सब से अच्छी निर्दोष दवा

कीमत—४ औंस ८ खुराक १।), २ औंस ४ खुराक ।॥)

स्थानीय एजेंट से खरीदें या [illegible] पटना, झाँसी या नागपुर आफिस से पत्रव्यवहार करें।

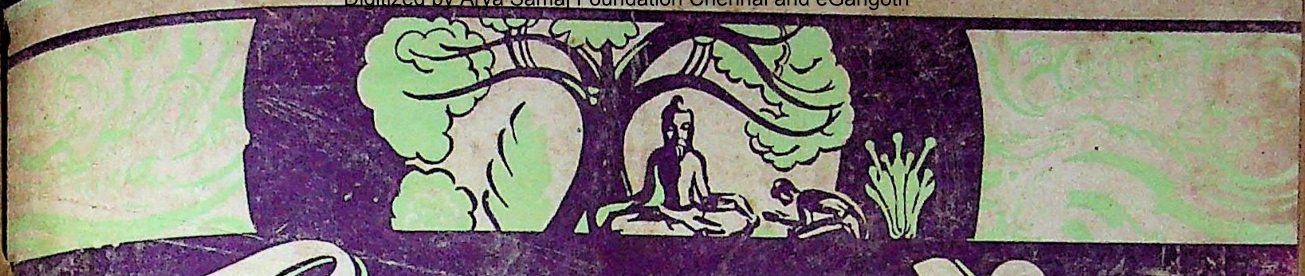

सचित्र आयुर्वेद

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल कांगड़ी

५] कलकत्ता, नवम्बर, १९५२ [अंक-

६.१.५३

डाक्टरों को आयुर्वेद की आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं

डा० पट्टाभि द्वारा चरक संहिता की प्रशंसा

अमरावती, १२ अक्तूबर। मध्यप्रदेश के राज्यपाल डा० पट्टाभि सीतारमैयाने मध्यप्रदेश राज्य-चिकित्सा-सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए कहा कि जहां प्राकृतिक साधनों व औषध-वनस्पतियों का बाहुल्य है, व्यक्तिगत और सार्वजनिक स्वास्थ्य को कायम रखना बहुत ही सुगम है। समाज और धर्म के संस्थापकों ने प्रथाओं और परम्पराओं एवं व्यक्तिगत स्वच्छता पर भी जो बल दिया है उसका सार्वजनिक स्वास्थ्य के उच्च स्तर को कायम रखने में अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।

डा० पट्टाभि ने, जो कि स्वयं एक डाक्टर हैं, आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति का उल्लेख करते हुए कहा : भारतीय मेडिकल एसोसिएशन के कुछ सदस्य यह पूछते हैं कि क्या आयुर्वेद कोई विज्ञान है? मैं उनसे पूछूंगा कि उन्हें इस प्रश्न को करने का क्या अधिकार है तथा उनकी क्या योग्यता है। क्या उन्हें यह विदित है कि आयुर्वेद ईसा से २७ सौ वर्ष पहले से और उसके बाद भी ७०० वर्ष तक भारत में एकमात्र चिकित्सापद्धति के रूप में प्रयुक्त और सम्मानित होता रहा है।

चरक संहिता में, जो कि आयुर्वेद की प्रमाणिक पुस्तिका है तथा जिसका अनुवाद जामनगर के डा० मेहता ने हिन्दी-अंग्रेजी और गुजराती में ६ जिल्दों में किया है, उसमें अनेक अत्यधिक आश्चर्यजनक नुस्खों और चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान का अद्भुत खजाना विद्यमान है।

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.
कलकत्ता

सचित्र आयुर्वेद का विशेषांक

"स्वास्थ्य-अंक" के लिए

डिप्टी डायरेक्टर ऑफ मेडिकल एण्ड हेल्थ सर्विसेज (आयुर्वेद) उत्तर प्रदेश लखनऊ से श्रीयुत् डी० ए० कुलकर्णीजी लिखते हैं--

"I was very pleased to see the special No. of 'Sachitra Ayurved Swasthya Ank.' You have really rendered a great service to the cause of Ayurved by the publication of this special Ank. All the articles have been of great interest and they will be of great use in popularising the rules of daily conduct as stated in Ayurved. I have a mind to purchase if possible 500 copies of this special. No. for distribution to the Govt. Ayurvedic & Unani Dispensaries in the State of Uttar Pradesh.

अर्थात्--"सचित्र आयुर्वेद का विशेषांक" स्वास्थ्य-अंक देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यह विशेषांक निकाल कर आपने आयुर्वेद के उन्नत्यर्थ महती सेवा अर्पित की है। इसमें प्रकाशित सभी लेख मनोरंजक होते हुए--आयुर्वेदोक्त दैनिकचर्या के सिद्धांत को लोकप्रिय बनाने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे।

मेरी इच्छा है कि, इसकी पाँच सौ प्रतियाँ मंगाकर (यदि उपलब्ध होंतो) उत्तर प्रदेश के आयुर्वेदिक व यूनानी-सरकारी औषधालयों में वितरणार्थ खरीदूँ।

लखनऊ
१४-१०-५२

ह० कुलकर्णी, डी० ए०

काशक पण्डित रामनारायण शर्मा (१[illegible] गुप्ता लेन, कलकत्ता) के लिए जनवाणी प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स लि०,
३६, वा[illegible]णसी [illegible]प स्ट्रीट, कलकत्ता में मुद्रित।

सचित्र आयुर्वेद के विशेषांक

"स्वास्थ्य-अंक" पर कुछ—

स्वतः प्राप्त अमूल्य सम्मतियाँ

लोकभोग्य लेख भी उत्तम बने हैं

आयुर्वेदीय क्रियाशारीर (शरीरक्रिया विज्ञान), आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान आदि पुस्तकों के सुप्रसिद्ध रचयिता तथा "सचित्र आयुर्वेद" के सुपरिचित लेखक एवं आयुर्वेद महाविद्यालय सूरत के उपाचार्य—श्रीयुत वैद्य रणजितरायजी लिखते हैं —

"स्वास्थ्य अंक" से मुझे वस्तुतः सन्तोष हुआ। लेखकों ने शास्त्र के उद्धरण दिये हैं, जिसमें कमसे कम उनका तो वाचन बढ़ा ही होगा। वाचकों को भी विशेष लाभ होगा। इसमें लोक-भोग्य लेख भी उत्तम बने हैं। ऐसे सफल विशेषांक निकालने के लिए इसके सञ्चालक श्री बैद्यनाथ आयुर्वद भवन लि० तथा सम्पादक मण्डल को अनेकशः धन्यवाद है।"

सूरत
१४-१०-५२

—*वैद्य रणजितराय*

उच्चकोटि के लेख देखने को मिले

यूनानी सिद्धयोग संग्रह, तथा यूनानी चिकित्सा-सार (छप रहा है) के अतिरिक्त अनेक यूनानी ग्रन्थों तथा आयुर्वेदीय विश्वकोष के रचयिता वैद्य हकीम ठाकुर दलजीत सिंह बी० ए० आयुर्वेदाचार्य लिखते हैं—

"सचित्र आयुर्वद का "स्वास्थ्य अङ्क" मिला, यह जैसे सज-धज के साथ प्रकाशित एवं सुन्दर चित्रों तथा उच्च कोटि के लेखों से परिपूर्ण है, वह इसके लिए कोई नवीन बात नहीं है। क्योंकि; इससे पूर्व के विशेषांक ही नहीं अपितु साधारण अङ्क भी सदा इसी प्रकार के लेखादि से परिपूर्ण रहते हैं। यूनानी पत्रों में उच्च कोटि के विद्वानों के लेख देखकर यह बात बराबर खटकती थी, कि आयुर्वदीय पत्रों में क्यों ऐसे लेखों का अभाव रहता है, सौभाग्य की बात है कि "सचित्र आयुर्वेद" के सञ्चालक एवं सम्पादकों ने अपने प्रयास से इस अभाव को दूर कर दिया है। सुतरां अब उच्च कोटि के लेख देखने को मिलने लगे हैं। इसके लिए श्री बैद्यनाथ आयुर्वद भवन के अध्यक्ष तथा सचित्र आयुर्वेद के प्रधान सम्पादक वैद्य रामनारायणजी धन्यवाद के पात्र हैं।"

रायपुरी चुनार
२६-१०-५२

—*वैद्य-हकीम ठा० दलजीत सिंह*

स्वास्थ्य अङ्क सभी के लिये उपयोगी है

साहित्य-आयुर्वेदाचार्य पं० सोमदेव शर्मा सारस्वत A. M. S. लेकचरार फार्मेकॉलोजी डिपार्टमेण्ट मेडिकल कॉलिज (लखनऊ) से लिखते हैं—

"सचित्र आयुर्वेद के 'स्वास्थ्य अङ्क' नामक विशेषाङ्क को पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। अल्पकाल में ऐसे उपयोगी विशेषाङ्क प्रकाशित कर आयुर्वेद की श्रीवृद्धि करने में 'सचित्र आयुर्वेद' ने जो प्रयत्न किया है, उसके लिये वैद्य-समाज इसके सञ्चालक और सम्पादक का कृतज्ञ रहेगा। यह 'स्वास्थ्य अङ्क' विशेषाङ्क उपादेय लेखों से परिपूर्ण होने के कारण वैद्य-बन्धुओं तथा आयुर्वद प्रेमी सर्वसाधारण के लिये अत्युपयोगी है।"

लखनऊ
ता० २३-१०-५२

—वैद्य सोमदेव शर्मा सारस्वत

स्वास्थ्य अङ्क के प्रत्येक लेख पठनीय-मननीय हैं

राजस्थान आयुर्वेदिक बोर्ड के सदस्य तथा आयुर्वेद विद्यालय जोधपुर के अध्यापक तथा जय आयुर्वेद के सम्पादक कविराज माधव प्रसाद शास्त्री (जोधपुर) से लिखते हैं ।

"आधुनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भ्रमवश ऐसा समझ बैठे हैं कि स्वास्थ्य सम्बन्धी विज्ञान का विकसित परिज्ञान तो आधुनिक-चिकित्सा-विज्ञान की ही देन है। किन्तु ; 'सचित्र आयुर्वेद' के "स्वास्थ्य अङ्क" विशेषाङ्क को देखने से उनके इन भ्रमपूर्ण विचारों में आवश्यक परिवर्तन होने के साथ ही साथ यह भी उन्हें पता चल जायगा कि आयुर्वेदीय स्वास्थ्य विज्ञान के निर्देशित मार्ग का अनुशरण न करने के कारण ही हमारा देश आज बीमारों का घर बना हुआ है। प्रतिमिनट तीन व्यक्तियों की मृत्यु का कारण आयुर्वेदीय ऋतुचर्या, प्रकृति, काल, वय—अवस्था व दोषों के ज्ञान-विज्ञान एवं परिपालन के प्रति उपेक्षा का निदर्शक है।

इसके सिवा इस अङ्क की प्रत्येक पंक्ति तो महत्त्वपूर्ण है ही ; फिर भी, पं० रामनारायण शास्त्री, आचार्य रघुवीर प्रसाद, वैद्य मङ्गलदास स्वामी, कविराज प्रताप सिंह, डा० प्रसादीलाल झा, वैद्य रामरक्ष पाठक, श्रीयुत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, डा० धीरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि उद्भट विद्वानों के लेख पठनीय ही नहीं अपितु मननीय भी हैं। ऐलोपैथी के इस चाकचक्य में ऐसे उपयोगी अङ्क ही आयुर्वेद की अक्षुण्ण कीर्ति-पताका फहरा सकेंगे।

अतः 'सचित्र आयुर्वेद' का यह विशाल विशेषाङ्क केवल साधारण जनता के लिये ही पथ-प्रदर्शक नहीं ; बल्कि विद्वान् वैद्य, सफल लेखक एवं आयुर्वेद के छात्र आदि सभी के लिये पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय हैं। अध्ययनशील सभी व्यक्ति स्वास्थ्य अङ्क की उपयोगिता व महत्ता का लाभ उठा सकते हैं।"

जोधपुर
ता० २५-१०-५२

—क० माधव प्रसाद शास्त्री

आपका उद्योग सराहनीय है

'प्रार्थना' मासिक पत्र के सम्पादक आयुर्वेदाचार्य पं० निशिकान्तजी शौनक A. L. I. M. (बटाला पंजाब) से लिखते हैं—

"आपका भेजा हुआ 'स्वास्थ्य अङ्क' देखने को मिला। पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। ऐसे साहित्य से जनता के स्वास्थ्य में बहुत कुछ उन्नति होने की सम्भावना है। आपका उद्योग सब प्रकार से सराहनीय है। इस प्रकार आयुर्वेद और जनता की सेवा करने के लिये मैं 'सचित्र आयुर्वेद' के सञ्चालक श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० को तथा इसके प्रधान सम्पादक वैद्य रामनारायणजी को अनेकशः धन्यवाद देता हूँ और साथ ही अपनी शुभकामना भी भेजता हूँ।"

बाटला-पञ्जाब
ता० १५-१०-५२

—वैद्य निशिकान्त शौनक

विशेषाङ्क के लेखों का संग्रह अच्छा है

भू० पू० अखिल भारतीय कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्य एवं बिहार राज्य कांग्रेस समिति के अध्यक्ष श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' (पटना) से लिखते हैं—

"सचित्र आयुर्वेद का विशेषाङ्क 'स्वास्थ्य अङ्क' मिला। कृपा के लिये धन्यवाद। इस विशेषाङ्क के लेखों का संग्रह तथा सम्पादन अच्छा है। स्वास्थ्य के विभिन्न पहलुओं पर विचारपूर्ण लेख हैं।"

पटना,
२४-१०-५२

—लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु

बैद्यनाथ दवाओं की लोकप्रियता

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड द्वारा निर्मित औषधों को व्यवहार में लानेवाले व्यक्ति इनके गुणों के कायल किस प्रकार बनजाते हैं, इसके उदाहरण स्वरूप नीचे हम दो पत्रों का अवतरण ज्यों का त्यों छाप रहे हैं।

(१) श्रीयुत वैद्यराज जी **सदर बाजार—विजनौर**

हम बहुत ही हर्ष के साथ लिखते हैं, कि हम श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड की औषधों का लगभग १० साल से अपने रोगियों पर उपयोग करते हैं, जो बहुत शीघ्र और चमत्कारी प्रभावपूर्ण मालूम हुई हैं। हमने कई ऐसे रोगियोंपर आज़माइश की है, जो हजारों रुपये खर्च करके निराश हो चुके थे और बैद्यनाथ की औषधों के सेवन से सदा के लिए रोग मुक्त हो गये। मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ, कि बैद्यनाथ की सभी दवाईयाँ बहुत ईमानदारीऔर सचाई के साथ बनायी जाती है। ईश्वर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की दिन-दिन उन्नति करें।

आपका—
वैद्य गुरुप्रसाद खन्ना

× × × ×

(२) आदणीय वैद्य जी, **भन्देमऊ**
२३-१०-५२

आपके यहाँ से श्वास की दवा मंगाई थी, जिसे मैंने क्वार (आश्विन) की पूर्णिमा को आपके बताये अनुसार सेवन कराई। उससे फायदा इतना हुआ, कि दवा सेवन के २ घन्टे बाद बड़ी जोर से वमन हुई, जिसमें बहुत परिमाण में बलगम (कफ) निकला, बस उसी रोज से श्वासरोग बिल्कुल जाता रहा। हमने इस रोगी को श्वास की अनेक दवाइयाँ सेवन कराई, परन्तु लाभ किसी से नहीं हुआ, आपकी दवा ने जादू-सा असर दिखाया। श्वास रोग के लिए आपकी दवा के समान संसार में कोई दवा नहीं हैं। मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ, कि श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० को तथा आपके जीवन को सदा उज्ज्वल रखें।

भवदीय—
जनगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठी

अशोकारिष्ट के गुण-धर्म

बैद्यनाथ अशोकारिष्ट का सेवन कर लाभ उठानेवाली

हजारों महिलाओं के अनुभव का सारांश

"बैद्यनाथ अशोकारिष्ट" गत ३३ वर्षों से हिन्दुस्तान के कोने-कोने में बिक रहा है। यह प्रति वर्ष हजारों मन बिकता है जिससे लाखों स्त्रियाँ रोगमुक्त होकर यौवन और सौन्दर्य लाभ करती हैं। आयुर्वेद में अशोक से बनी औषधों को स्त्रियों के लिए अमृततुल्य बताया है। इन सभी में अशोकारिष्ट सर्वश्रेष्ठ और अत्यन्त प्रसिद्ध महौषध है। "बैद्यनाथ अशोकारिष्ट" में प्रामाणिक शुद्ध अशोक-छाल दिया जाता है और सभी औषधें उचित मात्रा में देकर पूर्णतया शास्त्रीय विधि से योग्य और अनुभवी वैद्यों की देखरेख में प्रस्तुत किया जाता है। "बैद्यनाथ अशोकारिष्ट" का सेवन कर लाभ उठानेवाली महिलाओं ने हजारों प्रशंसा-पत्र भवन के पास भेजे हैं। जिनसे पता चलता है कि यह महौषध वास्तव में उनके लिए अमृत-तुल्य ही सिद्ध हुई है। उन पत्रों में इसके द्वारा जिन गुणों के होने की चर्चा हुई है उनका सारांश नीचे दिया जाता है :—

१—गर्भाशय पर इसका चमत्कार पूर्ण बलकारी असर हुआ। गर्भाशय की शिथिलता से होनेवाले अत्यार्तव रोग में इसका प्रयोग अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ।

२—गर्भाशय सम्बन्धी अन्य भी सभी रोगों पर यह लाभप्रद सिद्ध हुआ।

३—बहुत-सी ऐसी स्त्रियों ने "बैद्यनाथ अशोकारिष्ट" को सेवन किया, जिन्हें सदा गर्भस्राव या गर्भपात हो जाया करता था। इसके सेवन से उनका यह रोग दूर हो गया और उन्हें स्वस्थ तथा सुन्दर सन्तान की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

४—उग्र से उग्र रक्तप्रदर में भी इसका प्रयोग रामबाण साबित हुआ।

५—जिन स्त्रियों को मासिक धर्म होने के समय बहुत भयङ्कर रूप से दर्द होता था उन्हें भी इसके प्रयोग से निश्चित रूप से लाभ हुआ।

६—प्रदर, रक्तार्श आदि रोगों द्वारा नष्ट हुए रक्त की क्षतिपूर्ति इसने बहुत जल्दी कर दी। शरीर का खून बढ़ाकर देह को लाल कर दिया। रक्तातिसार में भी बहुत लाभ किया।

७—लाखों निरोग स्त्रियों ने "बैद्यनाथ अशोकारिष्ट" का सेवन करके स्वास्थ्य साधन तथा सौन्दर्य-वर्द्धन में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है।

८—अतिसार, संग्रहणी, अग्निमांद्य आदि रोगों में इसके सेवन से अत्यन्त लाभ हुआ।

९—पाचनग्रन्थियों को शुद्ध बनाकर अग्निवर्द्धन में इससे बड़ा लाभ हुआ।

१०—विटमिन 'बी' की कमी से होनेवाले रोग इसके प्रयोग से बहुत जल्दी नष्ट हुए। इस विटामिन की कमी से होनेवाले उदर-शूल, बदहजमी, सुस्ती, चिड़चिड़ापन, सिर दर्द, चक्कर आना, जीभ लाल हो जाना, मुँह में छाले पड़ना, शरीर में धब्बे निकलना, मस्तिष्क की दुर्बलता, निद्रा की कमी, हाथ-पैर तथा कमर के दर्द आदि को "बैद्यनाथ अशोकारिष्ट" ने आराम किया। मूल्य—६० तोला ३), ४० तोला २।), ३० तोला १॥=), २० तोला १।)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर।

बैद्यनाथ भस्मों की श्रेष्ठता

अब तो यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि बैद्यनाथ भस्में सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम होती हैं। हमारी भस्में ठीक उसी प्रकार तत्काल लाभ करती हैं, जैसे इंजेक्शन लाभ करता है। इसका यह कारण है कि हमारे यहाँ रसायन और भस्म बनाने के लिए रसायनशाला एक छोटे-से गाँव में है, जहाँ रसायन और भस्में बनाने के लिए सब तरह की सुविधाएँ प्राप्त हैं। इस जगह जंगल के कण्डे (वन्योपल-गोंइठे) हजारों मन आसानी से मिलते हैं और मजदूरी भी सस्ती है। यहाँ से सबसे नजदीक का रेलवे स्टेशन २४ मील पर है। स्टेशन पर भी पत्थर के कोयलों की बिक्री नहीं होती। इसपर देहात में बिजली या गैस का कोई प्रश्न ही नहीं। अतः शुद्ध आयुर्वेदीय पद्धति से भस्म और कूपीपक्व-रसायन बनाने का जैसा स्वतन्त्र सुप्रबन्ध हमारे यहाँ है, वैसा भारतवर्ष में किसी के यहाँ नहीं है। इस रसायनशाला के अध्यक्ष अत्यन्त सुयोग्य वैद्य हैं, जो पारद के संस्कार और भस्मों के निर्माण की विशेषता के लिए भारत में प्रसिद्ध हैं। निरीक्षण-कार्य स्वयं मालिक करते हैं। इस प्रकार बैद्यनाथ रसायन और भस्में सर्वश्रेष्ठ तैयार होकर हमारे कलकत्ता, पटना, झाँसी और नागपुर के कार्यालयों में जाकर, पैक होकर, तथा सील मोहर लगा कर एजेण्टों के पास बिक्री के लिए भेजी जाती हैं। भस्में जितनी पुरानी होती हैं, उतनी ही ज्यादे गुणकारी होती हैं। हमारे यहाँ वजन में मनों भस्में एक साथ तैयार होती हैं और पुरानी होने पर ही बिक्री की जाती हैं। कई दूसरे प्रतिष्ठित औषध-निर्माता भी हैं जो भस्में अच्छी बनाते हैं, परन्तु उनके मूल्य बहुत ज्यादा होने के कारण अमीर लोग ही खरीद सकते हैं, साधारण जनता नहीं। इसके विपरीत कई औषध-निर्माता बहुत ही सस्ते भाव में भस्में बेचते हैं, जो किसी भी हालत में विश्वसनीय नहीं हो सकतीं। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा बनायी हुई भस्में उत्तम श्रेणी की होने पर भी मूल्य में अधिक नहीं हैं। थोड़ा-सा अधिक मूल्य देकर आप बैद्यनाथ भस्में खरीद कर निश्चित रूप से फायदा उठायेंगे। हम आपको गारण्टी देते हैं कि बैद्यनाथ भस्में निश्चित रूप से फायदा दिखलाती हैं और मा के दूध की तरह निर्दोष होती हैं। इस तरह की उत्तम भस्में डालकर बनानेवाले रस भी पूर्ण गुणकारी होते हैं।

इन भस्मों के बारे में अधिक जानकारी हासिल करने के लिए हमारे यहाँ से प्रकाशित "रस भस्मों की सेवन-विधि" नाम की पुस्तक पढ़नी चाहिए। यह पुस्तक हमारे सभी एजेण्टों के पास मिलेगी। नीचे कुछ मुख्य भस्मों के नाम दिए जाते हैं, जिनके प्रधान गुण लिख दिये गये हैं।

अकीक भस्म—यह भस्म हृदय की निर्बलता, नेत्ररोग, रक्तप्रदर, रक्तपित्त आदि रोग दूर, कर शरीर को बलवान बनाती तथा थूक के साथ रक्त आने को रोकती है। कीमत—१ तोला १।।), आठ आना भर ।।।-), चार आना भर ।≡)

अभ्रक भस्म—हिमालय पर्वत के वज्राभ्र से बनाई गई है। हृदय, फेफड़े, यकृत्, स्नायु और मन्दाग्नि से उत्पन्न रोगों की सुप्रसिद्ध दवा है। क्षय, खाँसी, श्वास, रक्ताल्पता अम्लपित्त, संग्रहणी, पांडु, धातुदौर्बल्य, हृदयदौर्बल्य, पुरुषत्व हीनता आदि में निश्चित फल दिखलानेवाली महौषधि है। सहस्रपुटी कीमत—१ तोला ६४), चार आना भर १६-), दो आना भर ८-), एक आना भर ४-) : शतपुटी १ तोला ६), चार आना भर २।-), दो आना भर १≡), एक आना भर ।।=), साधारण १ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=) चार आना भर ।≡)।।

कपर्दक भस्म—पेट का दर्द, परिमाण शूल, अम्लपित्त और अग्निमांद्य में यह बहुत गुण करती है। कीमत—तोला ।।) आठ आना भर ।-)

कहरवा (तृणकांत मणि) पिष्टी--पित्तविकार, रक्तपित्त, सिर-दर्द, हृदय रोग, चक्कर आना, मस्तिष्क के क्रिमिरोग, सब प्रकार के रक्तस्राव आदि में उपयोगी। कीमत--१ तोला १६), चार आना भर ४-), दो आना भर २-), एक आना भर १-)

काशीस भस्म--रक्ताल्पता की अमोघ औषध है। पांडु, रक्त की कमी, क्षय, तिल्ली, लीवर बढ़ जाना, आम विकार, उदर रोग, गुल्म, शूल, नेत्र -विकार आदि रोगों के लिए बहुत ही उपयोगी है। कीमत--१ तोला ।।), आठ आना भर ।-)

कांस्य भस्म--प्रमेह, रक्तविकार, कुष्ठ, पेट में कीड़े पड़ जाना आदि-आदि रोगों को नष्ट करती है। नेत्र रोग में अति हितकर है। कीमत--१ तोला ।।।≡), आठ आना भर ।।)।।, चार आना भर ।)।।।

खर्पर भस्म--वात-पित्त के बढ़ जाने से पैदा होनेवाले रोगों में तथा ज्वर, प्रमेह, ज्ञक्षय, खाँसी और नेत्र-रोगों के लिये यह विशेष लाभ दायक है। कीमत--१ तोला ।।।=) आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

जहर मोहरा खताई प्रिष्टी--यह पिष्टी हृदय एवं दिमाग को बल देनेवाली तथा विषनाशक है। अजीर्ण, वमन (कै), दाह (जलन), हैजा, अतिसार एवं यकृत्-विकार, दिल की घबराहट, जीर्णज्वर, बालकों के हरे-पीले दस्त एवं सूखा रोग में इसका सेवन अति लाभदायक है। भस्म से पिष्टी मातदिल है। कीमत--१ तोला १), आठ आना भर ।।-), चार आना भर ।-)

जहर मोहरा खताई भस्म--गुण उपर्युक्त पिष्टी के समान कीमत--१ तोला १), आठ आना भर ।।-), चार आना भर ।-)

ताम्र भस्म--शत प्रतिशत विशुद्ध ताम्बे से बनाई गई है। उदर रोग, यकृत्, प्लीहा, शूलरोग, मन्दाग्नि, अम्लपित्त, शोथ, कुष्ठ, हिचकी, मांसार्बुद, और गुर्दों के विकार आदि रोगों की मानी हुई दवा है। क्लांति-भ्रांति नहीं करती। कीमत--१ तोला ३।), आठ आना भर १।।≡), चार आना भर ।।।=)

त्रिवंग भस्म--प्रमेह, मधुमेह, प्रदर एवं सोम रोग की अव्यर्थ महौषध है। शुक्रस्थान एवं गर्भाशय को बलवान बना कर नपुंसकता एवं बन्ध्यत्व को मिटाती है। कीमत--१ तोला २।।), आठ आना भर १।-), चार आना भर ।।≡)

तीक्ष्णलौह भस्म--रक्त को बढ़ा कर मनुष्य के जीर्ण शरीर को फिर से निर्माण कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने में खास महत्त्व रखती है। पाण्डु, मन्दाग्नि, रक्त-पित्त, खाँसी, क्षय, ज्वर, अम्लपित्त, हृदयरोग आदि रोगों में यह भस्म अत्यन्त गुणदायक है। कीमत--१ तोला ५।।=), आठ आना भर २।।।=), चार आना भर १।≡)।।, दो आना भर ।।।)।।

नाग भस्म--इस भस्म के सेवन से मधुमेह, गण्डमाला, अपची, मेद बढ़ना, प्रदर, धातुक्षीणता, मन्दाग्नि, खाँसी, कमजोरी आदि रोग नष्ट होते हैं तथा शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। कीमत--१ तोला २=), आठ आना भर १=), चार आना भर ।।-)।।

पन्ना भस्म--हृदय की गति को सीमित करके विषदोष को नष्ट करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। यह ओजवर्द्धक है तथा अग्नि-प्रदीप्त कर भूख बढ़ाती है। क्षय, कास-श्वास और दिमाग की कमजोरी में गुण-कारी है। कीमत--१ तोला १६), चार आना भर ४-), दो आना भर २-), एक आना भर १-)

प्रवाल भस्म--पित्त की अधिकता से होनेवाले रोगों की खास दवा है। राजयक्ष्मा, पित्तज कास, रक्तपित्त, तृष्णारोग, ज्वर, प्रमेह, प्रदर आदि में पूर्ण लाभ करती है। दिल श्री कमजोरी को मिटाने की खास दवा और उत्तम कैलसियम है। कीमत--१ तोला २), आठ आना भर १-), चार आना भर ।।-)

प्रवाल पिष्टी--भस्म की अपेक्षा यह पित्त-शामक और शौम्य होने के कारण पित्तयुक्त शुष्क कास, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, प्रमेह, अम्लपित्त, आँख की जलन, अनिद्रा, उन्माद और वमन आदि में विशेष लाभदायक है। इसी को प्रवाल भस्म सूर्यपुटित भी कहते हैं। कीमत --१ तोला २), आठ आना भर १-), चार आना भर ।।-)

प्रवाल भस्म (चन्द्रपुटित)--गुण-धर्म प्रवाल पिष्टी के समान है। इसमें पित्तशामकता और शीतलता विशेष है। कीमत--१ तोला २=), आठ आना भर १=), चार आना भर ।।-)।।

पीतल भस्म--रक्त-पित्त, श्वेतकुष्ठ, तिल्ली और लीवर का विकार, अर्श, संग्रहणी, पाण्डु, शूल, आदि रोगों में सेवन करना चाहिए। कीमत--१ तोला ।।।=), आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

वङ्ग भस्म--धातुस्राव से पैदा होनेवाले सभी रोग इससे शर्तिया अच्छे होते हैं। यह वीर्य को बढ़ाती और शुद्ध एवं गाढ़ा करती है। नपुंसकता मिटाती और शरीर पुष्ट करती है तथा मूत्राशय की दुर्बलता को नष्ट करती है। कीमत--१ तोला २।।), आठ आना भर १।-), चार आना भर ।।≡)

विमल भस्म--पांडु, कमला, क्षय, संग्रहणी, बवासीर भगन्दर आदि रोगों में रक्त की कमी की पूर्ति कर शरीर को नीरोग बनाने में उत्तम है। कीमत--१ तोला १।।), आठ आना भर ।।।-), चार आना भर ।≡)

वैक्रांत भस्म--हीरा भस्म के अभाव में वैक्रान्त भस्म का उपयोग होता है। यह हीरे का उपरत्न है। यह भस्म सब प्रकार के धातुविकार, राजयक्ष्मा, प्रमेह तथा वात पित्त और कफ के विकारों में फायदेमन्द है तथा आयुवर्द्धक है। कीमत--१ तोला १६), चार आना भर ४-), दो आना भर २-), एक आना भर १-)

मण्डूर भस्म--हमारी रसायनशाला के पास हजारों मन मण्डूर पड़ा हुआ है। प्राचीन काल में वहाँ लोह बनता था। सौभाग्य से इतना पुराना मण्डूर हम को विना मूल्य प्राप्त है। यह मण्डूर निश्चय ही १०० वर्ष से ज्यादा का पुराना है। यकृत् रोग, पांडु, कामला, रक्ताल्पता, मन्दाग्नि, संग्रहणी आदि की दिव्यौषध है। ऐसी सस्ती और सर्वोत्तम मण्डूर भस्म शायद ही दूसरी जगह मिलेगी। कीमत--१ तोला ।।=), आठ आना भर ।=) चार आना भर ≡)।।

मधुमण्डूर भस्म--पांडु रोग, रक्ताल्पता, यकृत्-विकार आदि पर विशेष लाभकारी है। कीमत--१ तोला २=), आठ आना भर १=), चार आना भर ।।-)।।

मयूरचन्द्रिका भस्म--हिचकी और श्वास (दमा) में अत्यन्त गुणकारी है। कीमत--१ तोला ३=), आठ आना भर १।।=), चार आना भर ।।।-)।।

माणिक्य भस्म--यह नपुंसकता, धातुक्षीणता, हृदयरोग, ग्रहबाधा, भूतबाधा और क्षय रोग को नाश कर शरीर के धातुओं को पुष्ट करती और बुद्धि को बढ़ाती है। कीमत १ तोला १६), चार आना भर ४-), दो आना भर २-), एक आना भर १-)

मुक्ताशुक्ति पिष्टी--क्षय, श्वास, खाँसी, पित्तज, दाह, पित्तज परिणामशूल, यकृत्-शूल, अम्लपित्त, श्वेतप्रदर आदि में अत्यन्त लाभदायक है। कीमत--१ तोला १।।), आठ आना भर ।।।-), चार आना भर ।≡)

मुक्ताशुक्ति भस्म--यह भी मुक्ताशुक्ति पिष्टी के समान ही लाभदायक है। कीमत--१ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=), चार आना भर ।≡)।।

मुक्ता भस्म (चन्द्रपुटित)--गुण और उपयोग में मोती भस्म के समान है। विशेषता में पित्तशामकता और शीतवीर्यता अधिक है। कीमत--१ तोला ८५), दो आना भर १०।।≡), एक आना भर ५।=), दो पैसा भर २।।≡)।।

मोती भस्म--दिल और दिमाग को पुष्टि करने की बेजोड़ दवा है। यह सौम्य और शीतवीर्य है। नाक, मुंह, मलद्वार, और गर्भाशय से गिरनेवाले रक्त को बन्द करती है। कीमत--१ तोला ५०), दो आना भर ६।-), एक आना भर ३≡), दो पैसा भर १।।=)

मोती भस्म नं० १--मोती भस्म से यह विशेष गुणयुक्त है। कीमत--१ तोला ८०), दो आना भर १०-), एक आना भर ५-), दो पैसा भर २।।-)

मोतीपिष्टी सर्वोत्तम नं० १--१ तोला ७६), दो आना भर ९।।-), एक आना भर ४।।।-), दो पैसा भर २।≡)

मोती पिष्टी--१ तोला ४६), दो आना भर ५।।।-), एक आना भर २।।।≡), दो पैसा भर १।।)

यशद भस्म--यह कफ-पित्त शामक है। नेत्र-रोग, दाह, प्रदर, पित्तज प्रमेह, खाँसी, अतिसार, संग्रहणी, क्षय, पांडु, जीर्ण ज्वर आदि रोगों में लाभदायक है। कीमत--१ तोला १।।), आठ आना भर ।।।-) चार आना भर ।≡)

रौप्य (चाँदी) भस्म--प्रमेह, धातुदौर्बल्य, उन्माद, हिस्टीरिया, क्षय, नपुंसकता, शोथ, यकृत् और प्लीहा के बढ़ने आदि में विशेष लाभकारी औषध है। वात और पित्त विकारों को शमन करती है। आयुवर्द्धक और पुष्टिकारक है। उदर की वायु विकृति में अत्यन्त लाभ करती है। कीमत--१ तोला ६), चार आना भर १।।-), दो आना भर ।।।-), एक आना भर ।≡)

रौप्य माक्षिक भस्म--इसका उपयोग चाँदी भस्म की जगह किया जाता है। परन्तु गुण में चाँदी भस्म से

कम है। यह पांडु, प्रमेह, बवासीर, शोथ, नेत्र-रोग, और शरीर की कमजोरी को दूर करती है। कीमत---१ तोला ।।।≡), आठ आना भर ।।)।।, चार आना भर ।)।।।

लौह भस्म---खून को बढ़ाकर सभी धातुओं को बढ़ाना इसका मुख्य गुण है। रक्त की कमी के तमाम रोगों में शर्तिया लाभ करती है। यकृत्, प्लीहा, उदररोग, पांडु, कामला, कृमिरोग, शोथ, मन्दाग्निमूलक रोग, ज्वर आदि अनेक रोगों में अच्छा लाभ करती है। आयुर्वेद की भस्मों में यह सब से अधिक काम में आने वाली भस्म है। कीमत---१तोला १।), आठ आना भर ।।≡), चार आना भर ।≈)

लोह भस्म शतपुटी---कीमत---१ तोला ६), चार आना भर २।-), दो आना भर १≡), एक आना भर ।।≈)

लोह भस्म सहस्त्रपुटी---कीमत---१ तोला ६०), चार आना भर १५-); दो आना भर ७।।-), एक आना भर ३।।।-)

लोहसार---लोह भस्म साधारण की अपेक्षा यह विशेष गुणकारी है। कीमत---१ तोला ३।), आठ आना भर १।।≡), चार आना भर ।।।≈)

कान्त लोह भस्म---कान्त लोह सब लोहों में श्रेष्ठ होता है। इसलिए; लोह भस्म के पूर्ण विकसित गुण इसी में होते हैं। कीमत---१ तोला ७।।), चार आना भर १।।।≡), दो आना भर १), एक आना भर ।।)।।

शङ्खभस्म---यकृत्, तिल्ली, उदर के विकार, आमांश संग्रहणी, पेटदर्द, अम्ल-पित्त, गुल्म, अजीर्ण आदि में विशेष उपयोगी है। नेत्र के फूले में अंजन से लाभ होता है। कीमत---१ तोला ।।≈), आठ आना भर ।≈), चार आना भर ≡)।।

शृङ्ग भस्म---निमोनियाँ, हृदयशूल, पार्श्वशूल, और क्षयजकास में विशेष लाभ करती है तथा बालकों की हड्डी बनाने में सहायक है। कीमत---१ तोला ।।।), आठ आना भर ।≡), चार आना भर ।)

स्वर्ण भस्म---जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, हृदयरोग, कास-श्वास, अशक्ति, दुर्बलता, उन्माद, मन्दाग्नि, संग्रहणी आदि की अद्वितीय महौषध है। यह दिमाग को पुष्ट करके मानसिक रोगों को नष्ट करती है। नपुंसकता के लिये अमृत है। रसायन और बाजीकरण में मुख्य है। कीमत---१ तोला १५६), दो आना भर १६।।-), एक आना भर ६।।।-), दो पैसा भर ४।।।≡), १ रत्ती भर १।।≡)

स्वर्णमाक्षिक भस्म---नींद न आना, दिमाग की कमजोरी, पित्तविकार, हृदयकी दुर्बलता, पांडु, प्रदर तथा प्रमेह नाशक एवं खून बढ़ाने में अति उपयोगी है। सभी बाल रोगों में हितकर है। सुकुमार प्रकृतिवालों के लिये विशेष लाभदायक है। कीमत---१ तोला १।।), आठ आना भर ।।।-), चार आना भर ।≡)

हजरुलयहूद भस्म---यह पथरी रोग की प्रारांम्भक अवस्था में देने से पथरी को गला कर बहा देती है, पेशाब साफ लाती है और मूत्रकृच्छ्, पेशाब में जलन आदि को दूर करती है। कीमत १ तोला ।।।≈), आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

हरिताल (गोदन्ती) भस्म---ज्वर, सर्दी, खाँसी, जुकाम, सिरदर्द, मलेरिया बुखार आदि में विशेष लाभ करती है। इन्फ्लुएन्जा की अनुभूत दवा है। कीमत-१ तोला ।।), आठ आना भर ।-)

[देशी दवाओं का सबसे बड़ा विश्वासी कारखाना]

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर ।

आवश्यकीय सूचनाएँ

“सचित्र आयुर्वेद” के जिन ग्राहकों का वार्षिक मूल्य जनवरी, १९५२ से दिसम्बर, १९५२ तक जमा था उनका चन्दा इस अंक के बाद सिर्फ एक अंक और (दिसम्बर के) मिलने पर पूरा हो जायगा, तथा जिनका वार्षिक मूल्य फरवरी, १९५२ से जनवरी, १९५३ तक जमा है, उनका इस अंक के बाद दिसम्बर और जनवरी के दो अंक मिलने के बाद पूरा हो जायगा। ऐसे कृपालु ग्राहकों की सेवा में पूर्व ही सूचना देकर मैं निवेदन करना चाहता हूं कि आप अपना चन्दा उचित समय पर अवश्य भेजने की कृपा करें।

“सचित्र आयुर्वेद” कर्यालय से पत्राचार करते समय—अपनी ग्राहक संख्या, अथवा कार्यालय द्वारा यदि कोई आपको प्राप्त हो तो उस पत्र की संख्या (जो उस पत्र में हाथ से लिखा रहता है), तथा पते में—सम्पादक सचित्र आयुर्वेद, लिखना न भूलें। इस साधारण-सी भूल के कारण कार्यालय को उचित व्यवस्था करने में अधिक कठिनाई उठानी पड़ती हैं, तथा ग्राहकों को भी देर में पत्रोत्तर मिलता है। अतः उपरोक्त बातों पर अवश्य ध्यान रखें।

सचित्र आयुर्वेद का विशेषांक “स्वास्थ्य अंक”

“स्वास्थ्य-अंक” विशेषांक की बहुत थोड़ी प्रतियाँ अब रह गयी हैं, अतः जो अभी तक “सचित्र आयुर्वेद” के ग्राहक नहीं बने हैं और बनने की इच्छुक हों, या जो ग्राहक बनने के सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार कर चुके हों, उन्हें चाहिये कि—बहुत शीघ्र “सचित्र आयुर्वेद” का वार्षिक मूल्य ४) भेजकर ग्राहक बन जाएँ या पत्र द्वारा वी० पी० भेजने की आज्ञा दें। अन्यथा विलम्ब होने से शायद “स्वास्थ्य अंक” विशेषांक नहीं मिल सकेगा। अतः शीघ्रता करें।

सचित्र आयुर्वेद के ग्राहक बनने और बनाने में सुविधा

जो श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के एजेण्ट हैं, वे अपना एजेण्ट नम्बर लिखकर ४) की जगह सिर्फ ३) रुपये में ही ग्राहक बन सकते हैं।, या वे जितने सचित्र आयुर्वेद के नवीन ग्राहक बनाकर भेजेंगे प्रति ग्राहक पर १) कमीशन देने का भी नियम है। इससे वैद्यनाथ के एजेण्ट गण काफी लाभ उठा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त भी जो वैद्य या आयुर्वेदानुरागी अथवा “सचित्र आयुर्वेद” के ग्राहक महानुभाव सचित्र आयुर्वेद के चार ग्राहक बनाकर एक मुस्त १६) भेज देंगे, उन्हें एक वर्ष तक सचित्र आयुर्वेद मुफ्त दिया जायेगा। चार से ज्यादे ग्राहक बनने पर प्रति ग्राहक १) कमीशन भी दिया जायगा। इस सुविधा से सर्वसाधारण भी लाभान्वित हो सकते हैं। आशा है, सचित्र आयुर्वेद के प्रेमीजन इसमें अवश्य भाग लेकर इस शुभ कार्य में हाथ बँटायेंगे।

—व्यवस्थापक

सम्पादक–मण्डल

निर्देशक––आ० म० म० पं० भागीरथ स्वामी, रसायनाचार्य

प्रधान सम्पादक––पं० रामनारायण शर्मा, वैद्य शास्त्री

सहायक सम्पादक––वैद्य सभाकान्त झा, आयुर्वेद शास्त्री

वार्षिक मूल्य ४)
स्वास्थ्य-अंक ३)

विषय-सूची

साधारण अंक-एक प्रति ।=)

विषय	लेखक	पृष्ठ
श्री धन्वन्तरि की जय (श्लोक) ...	आयुर्वेदाचार्य वैद्य मंगलदत्त शास्त्री, बी० ए० ...	४२७
श्री धन्वन्तरि-वन्दना (श्लोक) ...	वैद्य राजेन्द्रनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य ...	४२८
न आओ (कविता) ...	वैद्य रणजितराय ...	४२८
सम्पादकीय ...	... ...	४२९
चरक संहिता च श्रीमानरुणदत्तश्च ...	आचार्य हनुमत्प्रसाद शास्त्री ...	४३३
मनोवह स्रोतस् ...	प्रो० डी० एस० अन्तरकर ...	४३४
वातिक कास उसका निदान और चिकित्सा ...	वैद्य रणजितराय ...	४३७
आन्त्रिक ज्वर (टाइफाइड) ...	डा० शंकरलाल भेड़ा, आयुर्वेदाचार्य, एम० बी०-एस०	४४८
स्वेदावरोधक––स्वेदापनयन ...	वैद्य विश्वनाथ द्विवेदी, आयुर्वेद शास्त्राचार्य ...	४५२
मन और शारीरिक स्वास्थ्य ...	प्रो० लालजी राम शुक्ल, बी. ए० बी० टी० ...	४५४
गठिया ...	कविराज मूलशंकर त्रिपाठी, आयुर्वेदाचार्य ...	४५७
ओजक्षय ...	कविराज नित्यानन्द शर्मा, वैद्य बाचस्पति, डिप्टी डायरेक्टर राजस्थान-सरकार ...	४६०
मालिश और स्वास्थ्य ...	श्रीयुत पं० रामनारायण दूबे ...	४६३
शिशुपालन में माता-पिता के स्नेह का ही प्रमुख स्थान है	... ...	४७०
बिहार की वनस्पतियाँ ...	प्रो० ठा० बलवन्त सिंह, एम० एस–सी० ...	४७३
मलेरिया से बचने का एक सरल उपाय ...	वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा वैद्य शास्त्री ...	४८१
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० में देशव्यापी धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह ...	...	४८४-५०७

आगामी अंक में––

नि० भा० आयुर्वेद महा-सम्मेलन के ३८ वें अधिवेशन (इन्दौर) का सविस्तर समाचार पढ़ें ।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के
पटना निर्माण केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

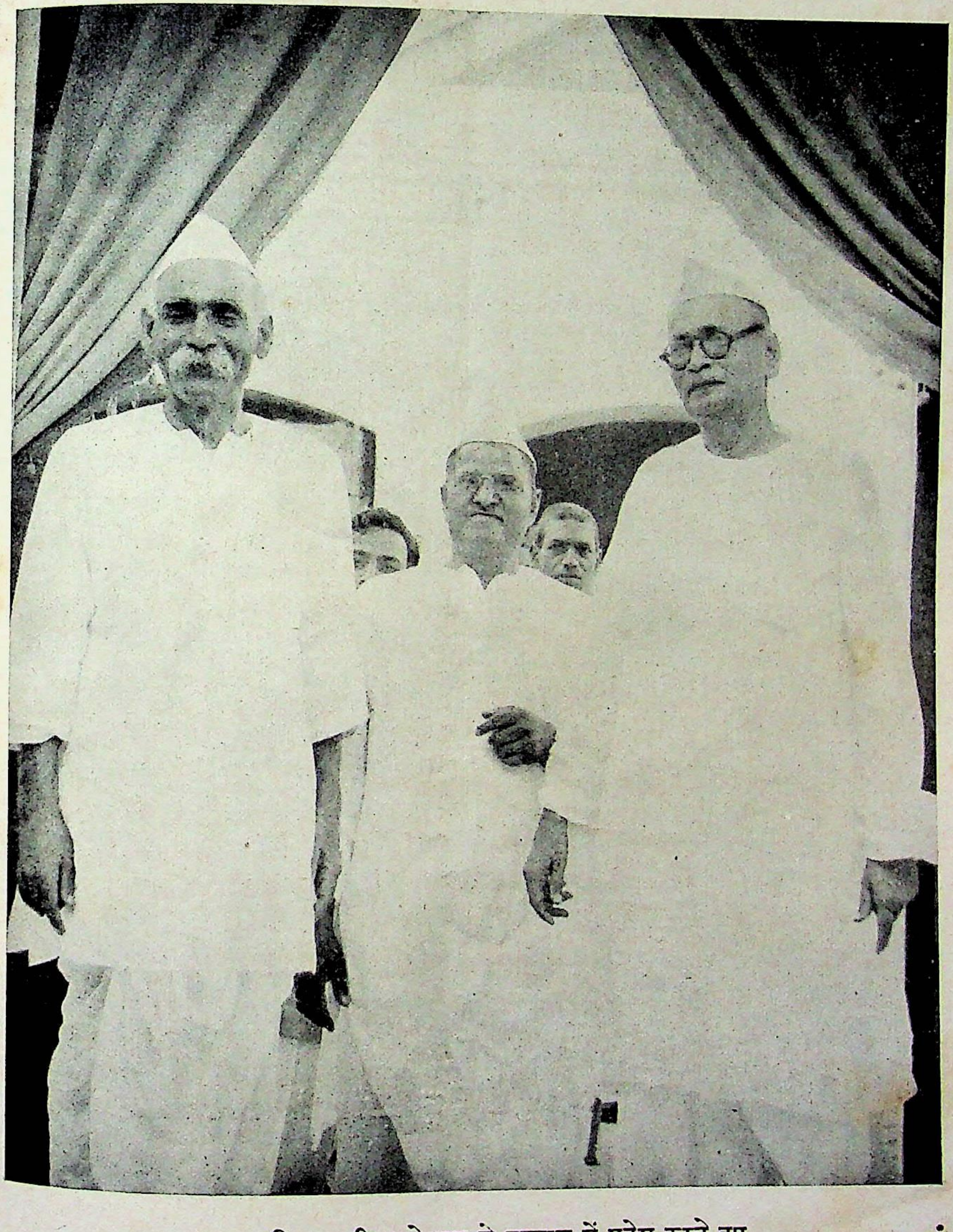

धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के पण्डाल में प्रवेश करते हुए

चित्र परिचय—दाहिनी ओर धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के सम्मानीय अध्यक्ष—डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह, उप-मुख्य मन्त्री बिहार, बीच में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री पं० रामदयाल जी जोशी तथा बाईं ओर माननीय दीपनारायण सिंह, पशुपालन एवं सहकारी मन्त्री प्रसन्न मुद्रा में महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए पण्डाल में प्रवेश कर रहे हैं।

❀ श्री धन्वन्तरये नमः ❀

सचित्र आयुर्वेद

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ५ | कलकत्ता, नवम्बर, १९५२ | अंक ५

श्री धन्वन्तरि की जय

श्री—भूषितः सुरसुपूजितपुण्यकर्मा,
धन्—यः सुधासरसकुम्भकरः प्रशस्तः ।
वन्—यौषधीष्टकृतकर्मसुशोभितात्मा,
त—न्त्रादिशिक्षणपटुः कृतदेहशुद्धिः ॥ १ ॥
रि—त्नाकरः फरहिताय सुदानदाता,
की—र्त्यासुमण्डितविशालदिगन्तभागः ।
ज—न्मापि यस्य भुवि देहभृतां शिवाय,
य—च्छास्त्रशीलनपरश्च हि मङ्गलाय ॥ २ ॥

आयुर्वेदाचार्य वैद्य मंगलदत्त शास्त्री बी० ए०

श्री धन्वन्तरि वन्दना

आविर्वभूव जगतः परिपालनाय
कृत्वा करे कलशमम्बुनिधेः सुधायाः ।
यश्चामरत्व करणाय दिवि स्थितानां
धन्वन्तरिं तमहमाद्यविदं समीड्ये ।।१।।

ये नाम केचिदिहते प्रथयन्त्यवज्ञां
विद्यानवद्य गदने विमुखाग्रगास्ते ।
वाचां भटाः स्वभवने विभवो भवन्तु
प्राप्स्यन्ति किं सुपदवीं तव शिष्यकाणाम् ।।२।।

दृष्ट्वेदमस्ति किमपि प्रथितुं प्रभूताः
सन्तीह तस्य करणे किलतेऽभिभूताः ।
त्वन्नाथ किन्तु रचना चतुराढ्य चक्र-
चूड़ामणि प्रखर कान्ति रसीति सत्यम् ।।३।।

अद्यापि यद्यपि विदो विचरन्ति वैद्याः
सन्तस्त्वनन्त महतामपि ते भवन्तः ।
सन्तीहि किन्तु वहवः किल वैद्य कल्पा
धन्वन्तरेऽद्य गत सत्व हरा हि दुःखम् ।४।।

वाचामगोचर चरित्र न चित्रमत्र
यत्रास्तिका ननु भवन्ति चिकित्सकाज्ञाः ।
अम्भोमलापनयन प्रभविष्णुकोऽपि
पंकं प्रसादयति किं कतकः कदाचित् ।।५।।

अष्टांग प्रज्ञ रहितान्विहिताभिमाना-
न्मूढ़ान् दरिद्र हृदयांश्च दया विहीनान् ।
वैद्याम् नियम्य वितरिष्यति यः सुभाषं
धन्वन्तरिः स भगवानवतु त्रिलोकीम् ।।६।।

रचयिता—वैद्य राजेन्द्रनाथ मिश्र आयुर्वेदचार्य

न आओ !

अमृतकुम्भधारी
न आओ, न आओ !
भले व्याधियाँ बस
गयी-सीं हों घर-घर,
उतर ही न आया
हो यम-लोक भू-पर,
दुखों का उमड़ता
रहे क्यों न सागर,
न हम पामरों पर
दया उर में लाओ ।।

नहीं देवताओं—
का वह बुद्धि—कौशल,
नहीं दानवों का
अतुल वह तपोबल,
न बलिदान वह
नाग-पति का सु-निश्छल,
न कुछ भूमिका आ—
गमन की ; न आओ ।।

मुखों में विजय—
घोष तो आपका है ;
न कृति में पता
बोध के आपका है ।
सजा साज सारा
त्रिविध ताप का है ।
यहाँ देव, कैसे
कहाँ ठौर पाओ ?

—वैद्य रणजितराय

सम्पादकीय

श्री धन्वन्तरि–त्रयोदशी

श्री धन्वन्तरि-त्रयोदशी इस वर्ष और भी अधिक धूमधाम से राष्ट्र के प्रायः प्रत्येक नगर में मनाई गई। सब जगह से तो सूचनाएँ समाचार-पत्रों को भेजी नहीं जातीं; परन्तु फिर भी जो समाचार प्राप्त हो रहे हैं, अत्यन्त उत्साह वर्द्धन हैं। इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि अति बुद्धिमान् लोग चाहे जो कहते रहें, राष्ट्र अपने हित-अहित की बात जानता है और अपनी चीज पहचानता है। दूसरी बात यह कि राष्ट्र दिन पर दिन रोगी होता जा रहा है। इसलिए; धन्वन्तरि-पूजा की ओर झुकाव हुआ है। यही कारण है कि आयुर्वेद के प्रति जनता की परिष्कृत अभिरुचि दिनों दिन बढ़ रही है और श्री धन्वन्तरि - त्रयोदशी को राष्ट्रीय स्वास्थ्य-दिवस के रूप में परिणत होते हम देख रहे हैं। हम आशा करते हैं कि हमारे वैद्य बन्धु राष्ट्र की इस नैसर्गिक प्रवृत्ति को पहचान कर ऐसा उद्योग करेंगे जिस से धन्वन्तरि-त्रयोदशी को सरकारी मान्यता प्राप्त हो, सरकारी छुट्टी इस दिन रहा करे और राष्ट्र भर में यह पर्व राष्ट्रीय स्वास्थ्य-दिवस के रूपमें मनाया जाया करे। जिस ऋतु में यह दिवस पड़ता है, वह स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक चिन्तनीय है। वर्षा के अनन्तर आने-वाली शरद् मलेरिया आदि नाना व्याधियाँ साथ लाती हैं। इसलिए; राष्ट्रीय स्वास्थ्य-दिवस का इस ऋतु में पड़ना अत्यधिक समीचीन है।

जो वैद्य संसद में या किसी विधान सभा में हैं, उन्हें सक्रिय रूप से इस के लिए उद्योग करना चाहिए। जिन के मित्र वैसे स्थानों में हैं, उन्हें प्रेरणा देने का काम बहुत है। जो वैद्य काँग्रेस की अन्तरंगता में हैं, वे तो सब से अधिक काम कर सकते हैं; अन्यथा वहां रहने का फल ही क्या? साधारण वैद्य भी - अपनी शक्ति के अनुसार जनता को प्रेरणा दें। राष्ट्र का यह सब से बड़ा काम है। कम से कम फिल्म महोत्सव के बराबर तो सरकार द्वारा भी यह पर्व महत्त्व प्राप्त करने का अधिकारी है। सैकड़ों छुट्टियों में एक यह स्वास्थ्य-पर्व की भी छुट्टी जोड़ दी जाय, तो कोई बड़ी बात नहीं है। परन्तु; सरकार बहुत देर में सुनती है। जोर से आवाज उठनी चाहिए।

एलोपैथी के डाक्टरों का भी झुकाव

जहाँ अधिकांश एलोपैथी-डाक्टर अनेक सुविदित कारणों से आयुर्वेद की निन्दा या उपेक्षा करते देखे जाते हैं, वहीं कुछ राष्ट्रीय रंग में रमे हुए सुविज्ञ तथा अनुभवी डाक्टर आयुर्वेद की ओर अग्रसर हो रहे हैं—पहले की अपेक्षा आकर्षण बढ़ रहा है। डा० पट्टाभिसीतारमैय्या महोदय का नाम राष्ट्र के लिए अविदित नहीं है। आपने अपनी आजीविका के लिए जन्म भर एलोपैथी पद्धति अपनाई; परन्तु स्वतन्त्र रीतिसे विचार करना भी आप की प्रवृत्ति में है। डा०पट्टाभि ने अपना जीवन राष्ट्र की सेवा में लगाया है। इसीलिए आप काँग्रेस-अध्यक्ष निर्वाचित हुए और एक अर्से तक राष्ट्र की राजनीति आपके हाथों में रही। आज कल आप मध्य प्रदेश के राज्यपाल हैं। इस समय आपकी जीविका का साधन एलोपैथी नहीं है। अभी पिछले दिनों अमरावती में जो आयुर्वेद के महत्व पर आपने अपने विचार प्रकट किये, उन से उन्हें प्रेरणा मिलनी चाहिए, जिनके हाथों में राष्ट्र का स्वास्थ्य है; पर जो राष्ट्र के स्वास्थ्य से खिलवाड़ कर रहे हैं! डा०. पट्टाभि ने डाक्टरों की सभा में ही आयुर्वेद के महत्त्व पर अपने विचार प्रकट किए थे; परन्तु आपके इस तथ्य-कथन का उन लोगों पर क्या प्रभाव

पड़ा होगा, हम जानते हैं। जिस में राष्ट्रीयता नहीं ,जो एलोपैथी से रोटी कमाता है, वह डाक्टर कभी भी डा० पट्टाभि से प्रभावित न हो सकेगा। परन्तु; राष्ट्र के ऐसे भाषणों से जागरण मिलता है । इसीलिए; श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०और 'सचित्र आयुर्वेद 'की ओर से आप को बधाई तथा धन्यवाद का तार भेज कर कृतज्ञता प्रकट की गई है।

(मध्यप्रदेश राज्य की 'मेडीकल कान्फ्रेंस' का चौथा अधिवेशन अमरावती में (अक्टूबर की १२ ता० को) हुआ था। इस कान्फ्रेंस की उद्घाटन करते हुए डा० पट्टाभि महोदय का भाषण इसी अंक के मुखपृष्ठ पर देखें।)

दूध-घी की समस्या

स्वास्थ्य-संवर्द्धक तत्त्व 'रसायन' कहे गए हैं–रस के अयन और; जितने भी रसायन हैं, उन में घी-दूध सर्वोपरि हैं––'क्षीरघृताभ्यासो रसायनानां श्रेष्ठतमः।' सतत सेवन को 'अभ्यास' कहते हैं। भोजन में स्निग्ध तत्त्व की कितनी जरूरत है, छिपी बात नहीं है। हमारे 'दाना दुश्मन' जब हमारे ऊपर आल दे, तब हमारे भोजन की समस्या को उन्हीं ने भी भुलाया नहीं। 'जैल मैनुअल' में कैदियों के भोजन के बाद में स्पष्ट निर्देश-आदेश दिये गये कि प्रति दिन मधुर तथा स्निग्ध भोजन दिया जाय। तब से आज तक बराबर कैदियों को संध्या के भोजन में गुड़ साथ दिया जाता है और स्निग्धता के लिये दोनों समय बढ़ियाँ खालिस सरसों का तेल दाल में दिया जाता है, इस परिणाम में कि प्रत्येक कैदी को आधी छटाँक तेल प्रति दिन जरूर मिल जाय। चोर-डाकू-चाहे जैसा कैदी हो, उसे भोजन में स्निग्ध तथा मधुर तत्त्व जरूर मिलेंगे। परन्तु; जेल से बाहर इस पैंतीस-चालीस करोड़ जनता में कितने ऐसे हैं, जिन्हें इतना गुड़ तेल-भी प्रति दिन नियमित रूप से मिलता हो? तब क्षीर घृत के अभ्यास की चर्चा ही क्या? इस का कारण स्पष्टतः दूध देनेवाले पशुओं का अभाव है। माँस तथा चमड़े के लिए कितने पशु प्रति दिन कसाईखानों में कटते हैं, सब जानते हैं। पाकिस्तान जैसे कट्टर मुसलमान देश ने भी दूध देने वाले तथा खेत आदि में काम करने वाले पशुओं का मारना कानून द्वारा बन्दकर दिया है। परन्तु हमारे अहिंसावादी राष्ट्र में अभी यह भी नहीं हुआ है। कदाचित् तैयारी हो रही है! गोरक्षा हमारे 'धर्म' में सम्मिलित है; परन्तु हमारे 'विरादरे वतन' अपने 'पुण्य' पर्वों पर गो-हिंसा को 'धर्म' समझते हैं! कदाचित् इसी लिए 'धर्म-निरपेक्ष' सरकार कानून द्वारा दुधारु पशुओं की भी हिंसा रोकने में आनाकानी कर रही है! पर पाकिस्तान ने कैसे रोक लगा दी? जो धर्मपर आघात करता है, 'न स धर्मः, कुवर्त्मतत्'––वह धर्म नहीं बहुत बुरा मार्ग है। एक का धर्म दूसरे धर्म वालों को आघात पहुँचाए, तो क्या वह ठीक है? परन्तु हम तो स्वास्थ्य की बात कहते हैं, यह पत्र किसी मत-मजहब का नहीं है। जो मत-मजहब किसी ऐसी वात के लिए आग्रह करे, जिस से राष्ट्र की प्रत्यक्ष क्षति हो रही हो, तो उस राष्ट्र की सरकार का क्या कर्तव्य है? पहले लोग 'सती' होने के पक्ष में थे––धर्म समझते थे। अब भी कुछ लोग वैसे हैं। परन्तु अंग्रेज सरकार ने वैसे 'धर्म' की बात न सुनी और उस प्रथा को कानून द्वारा बन्द कर दिया। शाक्त लोग देवी-पूजा में नर-वलि दिया करते थे; पर उसे बन्द कर दिया गया। आज भी शाक्त हैं और वे नर-वलि को अपने मत के अनुसार धर्म समझते हैं। परन्तु उनके इस 'धर्म' पर कौन सहमति देगा? इसी तरह वैसे किसी भी धर्म का कानून द्वारा कड़ाई से प्रतिरोध होना चाहिए, जिस से राष्ट्र का प्रत्यक्ष अहित हो। राष्ट्र के स्वास्थ्य का ध्यान सरकार को

है, तो उसे घी-दूध की चिन्ता करनी चाहिए। यदि सरकार को राष्ट्रीय स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं है, तो वह सरकार ही फिर कैसी? उसे कितने दिन लोग सहन करेंगे?

सन्तति-निग्रह और स्वास्थ्य

दूसरे देशों में भी राशन-व्यवस्था हुई तो, उसमें मक्खन तथा दूध भी सम्मिलित किया गया। साधारण जनता को मक्खन आदि उचित कीमत पर मिल सके, इस की चिन्ता की गई। अपने देश में भी राशन-व्यवस्था हुई, तीन छटाँक गेहूँ के लिए घी-दूध की चर्चा ही व्यर्थ। अनाज के लिए हमें भीख माँगनी पड़ी! भारत की विजय लक्ष्मी ने झलक दिखाई, लोग एकदम प्रभावित हुए और तुरन्त ही गेहुँ के चार दानों के लिए उसे अमेरिका के सामने हाथ पसारते देखा गया! तस्बीरें छपीं, दुनिया भर के अखबारों में। रूस तथा चीन ने भी हमें अन्न दिया, पर यहाँ हमें इतना 'जलील' नहीं किया गया!

पर यह सब क्यों हुआ? इसलिए कि हमारे यहाँ जन-संख्या बहुत बढ़ गई है! इतना अन्न पृथ्वी कैसे दे? तो, प्रश्न यह है कि इस का उपाय क्या है? कैसे हम अन्न के लिए आत्म-निर्भर बनें? अन्न नहीं तो स्वास्थ्य कहाँ? इस के दो ही उपाय हैं। विज्ञान के द्वारा खेतों की उपज बढ़ाई जाय। रूस तथा चीन के उदाहरण सामने हैं। दूसरा उपाय है——सन्तति-निग्रह। 'सन्तति-निग्रह' शब्द भ्रामक है। निग्रह-अनुग्रह की बात नहीं, सन्तति के उत्पादन पर विचार है। सन्तति कम पैदा की जाय, जिस से आगे अधिक चिन्ता न बढ़े। इस विषय पर चर्चा इस देश में पिछले तीस वर्षों से हो रही है। एक बार प्रयाग के एक मासिक पत्र ने बड़े जोर से यह चर्चा उठाई थी; पर उसने कृत्रिम साधनों का पक्ष लिया था। इसीलिए महात्मा गाँधी तक को इस पत्र के विरुद्ध कुछ लिखना पड़ा था। महात्मा जी कृत्रिम साधनों के पक्ष में न थे। वे संयम का समर्थन करते थे। संयम से संतति की बढ़ती पर रोक और अपने जीवन में शक्ति तथा स्फूर्ति आती है। कृत्रिम साधन रोग पैदा करते हैं।

कहने का मतलब यह कि इस विषय पर चर्चा करते समय एक युग हो गया; पर अमल कुछ भी नहीं! इधर चार-पाँच वर्षों से फिर सन्तति-निरोध की चर्चा जोरों पर है। राजकुमारी अमृत कौर तो जगह-जगह कहती हैं कि 'लड़कियों विवाह मत करो, देश सेवा के लिये कौमार-व्रत धारण करो।' इस तरह राजकुमारी जी सन्तति-निरोध चाहती हैं। 'हैं जो पड़ोसिन मोसी।' राजकुमारी ने तो कठोर ब्रह्मचर्य से जन्म निकाल दिया; परन्तु सब से वैसी आशा नहीं। 'मिस'-जीवन पर भारतीय विश्वास नहीं। इस की अपेक्षा वैधव्य-व्रत यहाँ अधिक अच्छा समझा गया है। जिसने संसार देखा नहीं, उसकी अपेक्षा वह अधिक अच्छा, जिसने कुछ देख लिया है। देख लिया, इतना बहुत है। आगे अपने दिवंगत पति के नाम पर, समाज-सेवा के प्रतीक अपने कुटुम्ब की सेवा में लीन हो जाना बहुत बड़ा काम है। सनातनधर्मियों में अब भी विधवा विवाह की चाल नहीं है। इस से बहुत मदद सन्तति-निरोध को मिली है, मिल रही है। यही बहुत है। स्कूल-काँलेजों के तितलियों को समाज-बन्धन विवाह——से अलग रखना एक भयंकर भूल होगी। जरूरत तो इस बात की है कि युवक-युवतियों में संयम और ब्रह्मचर्य के प्रति अनुराग पैदा किया जाय, जिससे कि वे अपने गृहस्थ जीवन का निर्वाह इस तरह करें कि वे, उनके कुटुम्ब तथा देश सुख की ओर बढ़े। अच्छे युवक और युवतियाँ यदि विवाह न करें और देश के निम्न कोटि के लोग बराबर सन्तान पैदा करते रहें, तो हालत क्या हो जायगी! निषिद्ध पँचकौड़ी सन्तान से देश भर जायगा।

राजकुमारी जी की बातें वे सब सुनेंगे नहीं, जिन्हें वस्तुतः सन्तान न पैदा करनी चाहिए। जो अपने उत्तम प्रतिनिधि देश को दे सकते हैं, उन पर राज कुमारी जी का उद्देश असर कर जाएगा! कौन गृहस्थी की झंझट में पड़े, मौज से रहो। इस तरह पढ़े-लिखे निहंगों की एक और पलटन सामने आ जाएगी देश को बद से बदतर नक बना देगी! इसलिए; विवाह न करने का उपदेश देना अत्यन्त भयावह है।

संयम बड़ी शक्ति है। परन्तु इस महाशक्ति का नाश करने में सब से ज्यादा हाथ है सिनेमा का। सरकार चाहे तो अपने सेंसर बोर्ड, को आदेश देकर एक दिन में गन्दे सिनेमाओं को नष्ट करा सकती है। पर ऐसा न करके पुराने सूचना-मन्त्री श्री दिवाकर ने 'फिल्म महोत्सव' रचाया और प्रधान मन्त्री जी ने अपनी बराबरी में फिल्म नटिनियों को बैठा कर तस्वीरें उतरवाईं। उधर धन उनके चरणों पर लोटता है और राज-दरबार में यह अनुपम सम्मान। तब क्यों न युवक-युवतियाँ उस ओर झुकें? क्यों न विलासिता की वैसी गन्दगी देश को बर्बाद करे? प्रसन्नता की बात है कि नए सूचना-मन्त्री डाँ० केसकर ने इधर कुछ ध्यान दिया है। यदि ठीक काम हुआ, तो सम्भव है, सिनेमा और रेडियो का विष कुछ कम हो जाय! परन्तु जो विष फैल चुका है, उससे संयम बहुत दिन तक मूर्च्छित रहेगा। यदि चिकित्सा अच्छी हो, तो विष-विकार जल्दी भी दूर हो सकता है। छात्रों को और छात्राओं को वैसी शिक्षा दी जाय——'मुस्किराने' की और 'नाचने' की वैसी नहीं!

संयम-पूर्ण जीवन के लिए पुरानी कुटुम्ब-प्रथा बड़ी अच्छी व्यवस्था है। विवाह होते ही मियाँ-बीबी कुटुम्ब से अलग हो कर सदा ही साथ-साथ विहरेंगे, तो संयम कम संभावित है। पर इस 'अति' मधुरता का फल बहुत कड़वा सामने आता है। सदा साथ रहने से मन-मुटाव जल्दी ही हो जाता है और तब जन्म भर खड़भड़ाहट में ही बीतता है। पहले नयी बहू कुटुम्ब में रहती थी और एक दो संतान हो जाने पर फिर पति के साथ बराबर रहने का अवसर आता था। दोनों के बीच में सन्तान आ जाती थी। सदा अविवाहित रहना अच्छा या इस तरह का व्यवस्थित गृहस्थ-जीवन अच्छा?

हमारे देश में जन संख्या बढ़ने का एक बहुत बड़ा कारण है देश का विभाजन। हिन्दू बहुत बड़ी संख्या में इधर धकेल दिये गये, बचे-खुचे धकेले ये जा रहे हैं। अपने भारत के अतिरिक्त वे और कहाँ जाएँ? परन्तु पाकिस्तान बनानेवाले 'विरादरे वतन' यहीं जमें हुए हैं। इस तरह बहुत बड़ी जन-संख्या इस तरह बढ़ी है। इसकी जिम्मेदारी किस पर है और इसका इलाज क्या है, यह सब सोचना हमारा काम नहीं है। इस काम के लिए जिन लोगों ने अपने उपर जिम्मेदारी ली है और जिन्हें जिम्मेदारी आपने सौंपी है, वे सोचेंगे। सोचना पड़ेगा ही!

जन-संख्या का निरोध करने के लिए यह भी जरूरी है कि देश के भिखमंगे, कोढ़-तपेदिक आदि वीमारिओं से ग्रस्त लोग तथा अन्य इसी तरह के जन प्रजनन-शक्ति से रहित कर दिये जाएँ। संसद के एक सदस्य ने पिछले दिनों यह चर्चा उठाई थी; परन्तु जनतन्त्रीय तथा अहिंसावादी जनों ने इसे हिटलर शाही क्रूरता कहकर धता बता दिया! इस पर आगे आप सोचिए।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के

पटना निर्माण केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि

श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री पं० रामदयालजी जोशी (बायीं ओर खड़े हुए) अभिनन्दन पत्र पढ़ रहे हैं।

बैठे हुए बायें से—(१) श्रीयुत् लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' (२) माननीय डॉ० अनुग्रहनारायण सिंह, उप-मुख्य मन्त्री बिहार सरकार, (३) माननीय श्री रामचरित्र सिंह, सिंचाई एवं विद्युत् मन्त्री बिहार, (४) माननीय श्री दीपनाराण सिंह, पशुपालन एवं सहकारी मन्त्री बिहार हैं।

चरक संहिता च श्रीमानरुणदत्तश्च

आचार्य हनुमत्प्रसाद शास्त्री

श्रीमानरुणदत्तः सुप्रसिद्धोऽष्टाङ्ग हृदय टीकाकारः परिचित एव वैद्यविदुषाम्। तेन हि सर्वाङ्ग सुन्दराभिधायाष्टीकायाः प्रारम्भे एव महर्षिप्रणीतेभ्योऽन्यतन्त्रेभ्योऽष्टाङ्गहृदयस्य वैशिष्ट्यं प्रतिपादयता अपरतन्त्राणां सावद्यत्वमुक्त्वा चरक संहिताया अपि सदोषत्वमुक्तं निम्नाङ्कितरीत्या। चरके श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवनकृते विज्ञानभाष्यलेखाय यथामति व्याप्रियमाणेन जनेनानेन तत्पाठनिर्णयं महत्वपूर्णं मन्यमानेन पूर्वाङ्के समामन्त्रिता एव तदर्थं विद्वांसः। अथाद्य अरुणदत्तोद्भाविता दोषाः क्रमशो निर्दिश्यन्ते। सविनयं चेदं प्रार्थये—नाहं चरक संहितायां कदाचिदपि दोषदर्शी, केवलंत्विदमेव कामये यत्—आचार्य श्री यादव सदृशेषु एकद्वेषु शास्त्रमर्मज्ञेषु तिष्ठत्स्वपि आयुर्वेदागमशोधनाय यदि नाम न भविष्यति प्रयत्नस्तर्हि को ऽस्मांस्तदर्थमुद्योजयिष्यति कश्च भविष्यति तदभ्युपायस्तद्विरहे? तदस्माकं मान्यासु संहितासु संभाव्यमाना अमी दोषाः किमु सत्याः किमु वाप्यसत्या इति तु निर्णेयमेव। अथ विचार्यन्तां श्रीमदरुणदत्तोक्तयः—

१—"यदेतत्तावद् भगवता चरक मुनिना प्रणीतं तन्त्रं रत्नाकर इव गाम्भीर्यातिशययोगाद्दुर्बोधम्। तस्यापि सदोषतां प्रकटयन्ति वाचाटाः। तथाह्यादौ तत्सूत्रम्—'अथातो दीर्घंजीवितीयमध्यायं व्याख्यास्याम' इति। अत्र 'दीर्घंजीवितीय' इति शास्त्रादावयुक्तम्। यतो दीर्घं जीवितमन्विच्छन्नित्यस्यानुकरणं दीर्घंजीवितमिति। सोऽस्मिन्नध्य येऽस्तीति छः। तस्याध्यायानुवाकयोर्लुकि सति दीर्घंजीवितमिति प्राप्नोति। तदिदमविदित परमार्थ शब्द स्वरूपाणां वचनम्। तथा हि—'अध्यायानुवाकयोरिति सूत्रे विकल्पेन चायं लुगिष्यते' इति जगाद जयादित्यः। तेन लुकः पाक्षिकत्वादत्र लुङ् न भवतीत्येवं युक्तमुक्तमिदम्।"

२—"तथा दीर्घं शब्देन गुणोऽभिधीयते, जीवित शब्देनाति गुण एव। तस्माद् द्वयोरपि गुणत्वादाधाराघयभावो न युक्तः, यतो गुणाश्रयो गुणोनोक्त इति। तथा च वैशेषिकाः—'निर्गुणा गुणा' इति। अथ काल शब्दं लुप्त स्वरूपं निर्दिश्य दीर्घंजीवितीय शब्दो निर्दिश्यते तदा युक्तमेवैतत्।"

३—"तथा इन्द्रियोपक्रमणीयेऽध्याये छप्रत्ययोत्पत्तिः कथमेवं विधीयतां, यतोऽस्मिन्नध्याये इन्द्रियोपक्रमण शब्दो नास्त्येव।"

४—"एवमपामार्गतण्डुलीये अपामार्ग तण्डुल शब्द स्याभावाच्छ प्रत्ययोत्पत्तिर्दुर्लभा।"

५—"तथा, दिव्याम्भसो गाङ्गसमुद्रभेदः परीक्षा च नोक्ता। प्रत्युत तत्र पठ्यते—(च० सू० २७।१९१)

जलमेकविधं सर्वं पतत्यैन्द्रं नभस्तलात्।
तत्पतत्पतितं चैव देशकालावपेक्षते ॥ इति ॥

६—"तथा, नालिकेरोदकस्य गुणानोक्ताः।"

७—"तथा अपक्व क्वथित क्षीरस्य स्वरूप विशेषोनोक्तः।"

८—"तथा, कषाये कियदौषधं किमवशेषं क्वथनीयमित्यादि च नोक्तम्। मिश्रके स्नेहे एवमभ्यधादसौ—

"त्रिवृतां त्रिफलां दन्तीं दशमूलं पलोन्मितम्। चतुर्गुणं जलं दत्वा०' इत्यादि। तदेषामौषधानां कियन्मानमपि सलिले नैतावता कीदृश किमुत क्वाथ निर्यासाविति?

९—"तथा, क्वथितशीततोयमपि कियता पाकेन पथ्यं भवतीति नोक्तम्।"

१०—मुद्गो ग्राहीति च नोक्तम्। तथाच तत्पाठः—

'कषाय मधुरो रूक्षः शीतः पाके कटुर्लघुः।
विशदः श्लेष्मपित्तघ्नो मुद्गः सूप्योत्तमो मतः ॥इति॥
(च० सू० २७।२२)

११—"तथा, वास्तुकादीनां लघुत्वं नोक्तम्। तथा च तत्पाठः

पाठासुषासठीशाकं वास्तुकं सुनिषण्णकम्।
विद्याद् ग्राहि त्रिदोषघ्नं भिन्नवर्चस्तु वास्तुकम् ॥ इति ॥
(च० सू० २७।८५)

१२—"तथा, इक्षुवर्गे—(च० सू० २७।१३४) 'शैत्यात्प्रसादान्माधुर्या त्पौण्ड्रकाद्वांशिकोवरः' इत्यसावभ्यधात। पौण्ड्रकश्चवांशिकाद्वर इति सुप्रसिद्धमेतत्। अत्र मतिवैभवाद् भट्टारक हरिश्चन्द्रौ व्याख्या विशेषमवोचताम्। यथा 'पौण्ड्रकाद्वांशिकोऽवर' इति।

(शेष पृष्ठ ४४७ पर)

मनोवह स्रोतस्

प्रो० डी० एस० अन्तरकर

आत्मा ज्ञाता होते हुए भी अकर्ता होने के कारण उसको ज्ञान प्राप्ति के लिये कुछ करण अर्थात् साधनों की आवश्यकता होती है। मन उन करणों में से प्रमुख है। श्रोत्र त्वक्, नेत्र, जिह्वा आदि इंद्रियों द्वारा शब्द-स्पर्श-रस आदि इंद्रियार्थों का ग्रहण होकर आत्मा को जो ज्ञान प्राप्त होता है वह इद्रियों में मनके अनुपस्थिति में नहीं हो सकता। नख, लोम, केश आदि अचेतन अवयवों को छोड़कर मन सर्व शरीर चर है। लेकिन वह हृदय को ही केन्द्र बनाकर सर्व शरीर में संचार करता है इसलिये हृदय मन[1] का प्रमुख स्थान बतलाया जाता है।

आधुनिक विज्ञान में मन का मस्तिष्क के साथ संबंध देखकर कुछ वैद्य हृदय का अर्थ मस्तिष्क कर लेते हैं और वह हृदय (मस्तिष्क) मन का स्थान बतलाते हैं। ठीक है कि मस्तिष्क इन्द्रियाधिष्ठान है और वही शरीर में ज्ञान प्राप्ति का सबसे बड़ा साधन है और वहां सब ज्ञानेन्द्रियां उपस्थित रहती हैं, इसलिये मन भी वहां पर अधिक उपस्थित रहता है इसमें भी कोई संदेह नहीं लेकिन इतने पर ही हृदय शब्द से मस्तिष्क नहीं लेना चाहिये क्यों की--

(१) "हृदय एक मांस पेशियों[2] का बना हुआ कमल मुकुलाकार अधोमुख सुषिर अवयव है।" इस तरह का हृदय का वर्णन मिलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि हृदयसे मस्तिष्क न समझकर उरोगुहास्थित हृदय ही समझना चाहिये।

(२) हृदय रस[3] का स्थान है--रस हृदय में एकक्षण भी स्थिर नहीं रहता लेकिन हृदय को आधार बनाकार व्यानवायु रसको सर्व शरीर में शरीरावयवों के पोषणार्थ प्रेषित करता है इस बात को देखकर ही हृदय को रस का प्रमुख स्थान माना गया है। प्रत्यक्ष में भी देखा जाता है कि रसक्षय हृद्रोगों में (Heart Diseases) एक प्रमुख कारण होता है इससे यह निष्कर्ष निकलता है की हृदय से मस्तिष्क न समझकर उरोगुहास्थित हृदयही समझना चाहिये।

(३) हृदय चेतना का स्थान है, इस आधार पर हृदय का अर्थ मस्तिष्क किया जाता है; क्योंकि आधुनिक विज्ञानानुसार मस्तिष्क को ही चेतनाका ज्ञान होता है; लेकिन जिसके द्वारा शारीरिक धातुओं को चेतना मिलती हैं अथवा चैतन्य (Life) का ज्ञान जिसके द्वारा होता है उसे चेतना का स्थान कहा जाता है। हृदय प्राण, ओज तथा चैतन्ययुक्त रस द्वारा प्रत्येक शरीरावयव का पोषण करता है; जिसके फलस्वरूप संपूर्ण शरीर चैतन्ययुक्त रहता है। हृदय के एकाध सेकण्ड कार्य न करने से आंखों के सामने चिनगारियाँ उड़ती प्रतीत होती हैं। चक्कर आता है, पांव कांपने लगते हैं, मृत्यु का भय लगता है। संक्षेप में प्राण शरीर से निकल रहे हों ऐसा प्रतीत होता है। और जब सर्वथा हृदय कार्यावरोध (Heart failure) होता है तब मस्तिष्कादि अन्य महत्त्व के अवयव कार्यक्षय होने पर भी शरीर से चैतन्य शक्ति नष्ट होती है अर्थात् मनुष्य मर जाता है। इन्ही बातों को सोचकर भारतीय वैज्ञानिकों ने हृदय को चेतनास्थान बताया जो उरोगुहास्थित हृदय के लिये ही है। चेतना शब्द का अर्थ आत्मा[1] भी हो सकता है। शरीर में वातादि दोष रसरक्तादि धातु मूत्र पुरीषादि मल मन आदि सब होते हुए भी आत्मा के बिना शरीर सर्वथा अचेतन रहता है इसलिये आत्मा चेतना का समवायि कारण है। अर्थात् चेतना स्थान का अर्थ आत्मा का स्थान जो कि उरोगुहास्थित हृदय ही है।

---

[1] --चेतना सहितं मनोऽपि विशेषेण हृदयाधिष्ठानम्
सु० शा० ४

हृदयं मनसः स्थानम्। (अष्टांग हृदय)

[2] --मांसपेशीचयोरक्त पद्माकारमधोमुखम्। (अ० हृ०)

[3] --तस्य (रसस्य) च हृदयं स्थानम्। स हृदयाच्चतुर्विंशतिर्धमनीरनुप्रवेश्य ... ... (सु० सू० १४)

रसो यः स्वच्छतां याव्रः स तत्रैवावतिष्ठते।

ततो व्यानेन विक्षिप्तः कृत्स्नं देहं प्रपद्यते ।। (अष्टांग)

---

[1] --चेतनाशब्देन आत्मा गृह्यते चेतना समवायिकारणत्वात्।

(४) हृदय और धमनिओं का आश्रयाश्रयिभाव[1] बतलाया जाता है। धमनिओं के दृष्टि से हृदय आश्रय है। आश्रय वह कहलाता है जो धारण, पोषण या रक्षण द्वारा आश्रितों का कार्य चलाता है। रस, प्राण, ओज आदिओं के लिये धमनियां हृदय की आश्रित होती हैं। धमनिओं के द्वारा ही रस, प्राण आदि सर्व शरीरमें शरीरावयवों के पोषणार्थ हृदय से प्रेषित किये जाते हैं। अर्थात् धमनियां सुषिर होती हैं और इस तरह की सुषिर धमनियां मस्तिष्क से न निकलकर उरोगुहास्थित हृदय से ही निकलती हैं।

(५) हृदय का स्थान कोष्ठ बताया जाता है। कोष्ठ शब्द का अर्थ मध्यकाय होता है, जिससे यह स्पष्ट है की हृदय उरोगुहास्थित अवयव है।

इन सब आपत्तिओं को दूर करने के लिये कुछ विद्वज्जन——

अर्धइत्याह हृदयं तस्मिन्
धमनयो दश।
ऊर्ध्वं चतस्त्रो द्वे तीर्यक्
चतस्त्रश्चाप्यधः क्रमात्॥
(भेल)

इस भेल के सूत्र को अर्ध के स्थान में ऊर्ध्व संशोधित कर, दो हृदयों की कल्पना करते हैं और चेतना तथा मन का स्थान ऊर्ध्व हृदय और रसादि का स्थान उरोगुहास्थित अधो हृदय बतलाते हैं। किन्तु यह प्रत्यक्ष तथा शास्त्र दोनों से विरुद्ध है। तथा अग्निवेश, हारीत आदि आचार्य भेलके समकालीन और एक ही गुरु के शिष्य होते हुए भी उनकी संहिताओं में दो हृदयों का वर्णन नहीं मिलता। अपितु अग्निवेश कृत संहिता में इस विषय के लिये——

"अर्थे दशमहामूलाः सिराः सक्ताः महाफलाः।
महच्चार्थश्च हृदयं पर्यायैरुच्यते बुधैः॥" (चरक)

इस प्रकार का वर्णन मिलता है; जिसका तात्पर्य यह है कि महत् अर्थ और हृदय ये पर्यायवाचक शब्द हैं और हृदय में दश सिराएँ संसक्त इस प्रकार का "अर्ध इत्याह" इस भेल के सूत्रका कुछ भी संगत अर्थ नहीं निकलता है। 'अर्ध इत्याह' इस सूत्र को यदि 'अर्थ इत्याह' इस प्रकार संशोधित किया जाय तो "अर्थ हृदय का नाम है और उसमें दश धमनियां जूड़ी हुई हैं" इस प्रकार का उचित अर्थ निकलता है। साथ-साथ ही मस्तिष्क से दश धमनियाँ नहीं निकलतीं अपितु बारह असुषिर नाड़ियाँ निकलती हैं। ऊपर देख चुके हैं की धमनी शब्द का अर्थ शरीरान्तर्गत अवकाशयुक्त नालियाँ होता है, जिनमें से रस-रक्त, प्राण, ओज आदि का वहन होता है। धमनिओं[1] का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, आदि विशेषों के वहन का काम देखते हुए कुछ लोग धमनी का अर्थ नाड़ी (Nerve) कर लेते हैं क्योंकि आधुनिक विज्ञानानुसार यह काम नाड़ी संस्थान का होता है। किन्तु ध्यान रहे की नाड़िओं का कार्य धमनियों के उपर ही अवलंबित रहता है। देखा जाता है की किसी भी इंद्रिय में पोषणार्थ जानेवाली धमनी में विकृति होने से अथवा अन्य किसी कारण से उस इंद्रियों का पोषण नहीं होता है तब उस इंद्रिय में क्षय (Atrophy) होने से अन्य नाड़ी आदि अंग कार्यक्षम होते हुये भी वह इंद्रिय अपने अर्थ को ग्रहण नहीं कर सकता। इस बात को देखकर ही प्राचीन संहिताकारों ने धमनियों को अप्रत्यक्ष रूप से शब्द स्पर्श आदिका बहन करनेवाली बतलायी है।

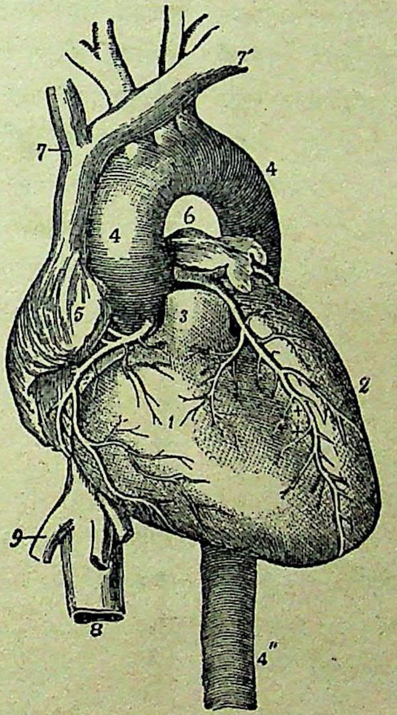

हृदय तथा उससे संबद्ध वाहिनियाँ।

1—दक्षिण निलय; 2—वाम निलय; 5—दक्षिण निलय; 6—वाम अलिन्द; 4-4-4—महाधमनी; 3—फुप्फुसाभिगा धमनी; 7—उत्तरा महासिरा; ९—अधरा महासिरा; 3 के दोनों ओर हृदय की पोषक वाहिनियाँ।

---

[1] १—शोणितकफप्रसादजं हृदयं यदाश्रया हि धमन्यः प्राणवहाः। (सु० शा० ४)

[1] १—ऊर्ध्वगाः (धमन्यः) शब्द स्पर्श रूप रस गंध प्रश्वासोच्छ्वास जृम्भित क्षुद्धसित कथित रुदितादीन् विशेषानभिवहन्त्यः शरीरं धारयन्ति। (सु० शा० ९)

तात्पर्य यह है कि हृदय शब्द से उरोगुहास्थित कमलमुकुलाकार मांसपेशिओं का बना हुआ सुषिर अवयव अभिप्रेत है। और वही मनका प्रमुख स्थान है। प्रत्यक्ष में भी देखा जाता है कि हृद्रोग से पीड़ित व्यक्ति में चिन्ता आदि मानसिक लक्षण देखे जाते हैं तथा अत्यधिक चिन्ता आदि मानसिक कारणों से शीघ्र ही हृदय दुर्बल होकर हृद्रोग उत्पन्न होते हुए देखा जाता है।

मन अणु[1] और एक है। हम ऊपर देख चुके हैं कि इन्द्रियों द्वारा[2] इन्द्रियार्थों का ग्रहण मन के अनुपस्थिति में नहीं होता है। यथा हम किसी चीज को एकाग्र चित्त से देख रहे हैं तो समीप में ही होनेवाले ध्वनि को हम सुन नहीं सकते क्योंकी मन चक्षुरिन्द्रियों में उपस्थित होने के कारण श्रवणेन्द्रिय में नहीं पहुँचता इसलिये श्रवणेन्द्रिय शब्द को ग्रहण नहीं कर सकता। किन्तु मन अत्यन्त चंचल और वेगवान होने के कारण इस प्रकार की परिस्थितियां बहुत कम आती हैं। मन शीघ्रता से ही एक स्थान से दूसरे स्थान में अथवा एक इन्द्रिय से दूसरे इन्द्रिय में पहुँचता है इसलिये एक से अधिक इन्द्रियाँ अपने अर्थों को ग्रहण करते हुए मालूम पड़ती हैं।

इस प्रकार मन को हृदय से इन्द्रियों में या सर्व शरीर में जाने के लिए कोई भी तो मार्ग या स्रोतस् होना चाहिए। जिस प्रकार वात, पित्त, और कफ ये तीनों दोष सर्व शरीरचर होने के कारण सभी स्रोतस् उनके गमन के मार्ग बतलाने पर भी वातस्थान में दश वात वह सिराओं, पित्त स्थान में दस पित्त वह सिराओं और कफ स्थान में दस कंफ वह सियराओं का वर्णन है, क्योंकि उस स्थान के सिराओं में उस दोष का ही प्राधान्य देखा जाता है, उसी प्रकार मन सर्व शरीरचर होने के कारण सभी स्रोतस् उसके गमन के मार्ग होते हैं तथापि मन का प्रमुख स्थान हृदय होने के कारण हृदय से निकलने वाली दश धमनिओं को ही[1] मनोवह स्रोतस् कहना चाहिए। आधुनिक विज्ञान से आयुर्वेद का साम्य दिखाने के लिए हृदय का अर्थ मस्तिष्क करके मस्तिष्क मन का स्थान और मस्तिष्क से संबन्धित नाड़ियां (Nerves) मनोवह स्त्रोतस् इस प्रकार का सिद्धान्त प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया जाता है। लेकिन, हम ऊपर देख चुके हैं कि हृदय का अर्थ मस्तिष्क नहीं हो सकता, उसी प्रकार मस्तिष्क से संबन्धित नाड़ियों को भी मनोवह स्रोतस् नहीं कह सकते। स्रोतस् उत्तरोत्तर परिणाम को प्राप्त होने वाले धातुओं का वहन करते हैं। शरीरान्तर्गत विविध मूर्त्तिमन्त भावों का क्षय या वृद्धि स्रोतसों पर ही आधार रखती है। अर्थात् विविध मूर्त्तिमन्त भावों के वहन के कारण स्रोतस् शरीरान्तर्गत नालियों के समान अवकाश युक्त अवयव होने चाहिये मस्तिष्क से संबंधित नाड़ियां असुषिर या ठोस होती हैं, इस लिए उनको स्रोतस् नहीं कह सकते और मन अणु होने के कारण इस प्रकार के ठोस नाड़िओं से उसका वहन भी नहीं हो सकता ह

तात्पर्य यह है कि मनोवह स्रोतस् से हृदयाश्रित दश धमनियाँ ही अभिप्रेत हैं और उनके द्वारा ही मन सर्व शरीर में भ्रमण करते हुए अपना कार्य करता रहता है।

१—अणुत्वमथचैकत्वं द्वौ गुणौ मनसः स्मृतौ।
च० शा० १

२—इन्द्रियेणेन्द्रियार्थोहि समनस्केन गृह्यते।
च० शा० १

१—मनोवहानि स्रोतांसि यद्यपि पृथङ्गोक्तानि, तथापि मनसः "केवलं चेतनावच्छरीरमयनभूतं" इत्यभिधानात् सर्व शरीर स्रोतांसि गृह्यन्ते। विशेषेण तु हृदयाश्रितत्वान्मनसस्तदाश्रितो दश धमन्यो मनोवहा अभिधीयन्ते।
चरक इं० ६–४१ पर—चक्रपाणि

वातिक कास : : उसका निदान और चिकित्सा

वैद्य रणजित राय

कास का रोगी उपस्थित होने पर वैद्य की प्रथम जिज्ञासा (प्रश्न) यह होती है कि : कास "शुष्क" है या "आर्द्र"। चरक ने कास की संप्राप्ति के अन्त में स्पष्ट ही कहा है :

> शुष्को वा सकफो वाऽपि कसनात् कास उच्यते ।।
>
> च. चि. १८।८

दोषज कासों में[1] कास के वेग के सकफ या निष्कफ (शुष्क) होनेसे इस प्रकार प्रथम ही कास के व्यवहारोपयोगी उल्लिखित दो भेद हो जाते हैं। कफ-प्रधान या

---

[1] १—क्षतज तथा क्षयज कास : कुछ स्पष्टीकरण—कास के पाँच भेद हैं : वातज, पित्तज, श्लेष्मज, क्षतज नाम उरःक्षतज तथा क्षयज। इनमें अभीष्ट होने से लेख में मुख्यतया वातज का तथा प्रसंगवश अल्पशः शेष दोषज कासों का विचार किया है। विशेषतया नवीन विद्यार्थियोंके लिए उपयोगी होने से अन्य दो कासों के प्रति भी अंगुली-निर्देश कर दूं।

क्षतज कास–वही है जिसका आचार्य ने यक्ष्मा के प्रकरण में साहसज यक्ष्मा के लक्षण के रूप में उल्लेख किया है। च. चि. १८।२०–२३ की टीका में चक्रपाणि ने स्पष्ट कहा है। अयं च (उरः—क्षतजः) कासः साहसज "यक्ष्मरूपेऽप्युक्तो ज्ञेयः।" इसी अध्याय में आरम्भ में—च. चि. १८।३–४ की टीका में उसी ने क्षतज कास के दो भेद बताते हुए कहा है। "क्षतजेन उरःक्षतपूर्वक यक्ष्मभवस्य तथा क्षतक्षीणस्य च कासस्य ग्रहणं भवति।" इसका अर्थ यह है। क्षतज या उरःक्षतज कास के दो प्रभेद हैं। एक, साहस (शक्ति से अधिक कायिक, वाचिक, मानसिक कर्म) के कारण प्रथम उरःक्षत और पश्चात् रोग की वृद्धि होकर यक्ष्मा होने से जो कास होता है वह। इस प्रभेद से उरःक्षत कालिक तथा तज्जन्य यक्ष्मा के लक्षण के रूप में हुए दोनों ही कासों का ग्रहण है। द्वितीय क्षतज कास वह है, जिसमें सद्भाग्य से रोगी का रोग बढ़कर यक्ष्मा तक नहीं पहुंचता है, परन्तु निरन्तर और अतिरक्त प्रवृत्ति से वह क्षीण धातु हो चुका होता है। इसमें रक्त तथा इतर धातुओं का क्षय होने से वात का प्रकोप होकर रोगी को कास के वेग होते हैं।

चक्रपाणि का इतना स्पष्ट लेख होने पर भी प्रश्न हो सकता है, उरःक्षत और साहसज राजयक्ष्मा एक ही हैं तो साहसज राजयक्ष्मा से उरःक्षत का पाठ भिन्न क्यों पढ़ा ? उत्तर यह है कि : लोक में दोनों ही रोग पृथक् देखे जाते हैं। इसीसे चक्रपाणि ने उनका स्पष्ट निर्देश किया भी है। यों देखें तो—साहस से उर में क्षत उत्पन्न होने-पर्यन्त उरःक्षत तथा साहसज राजयक्ष्मा दोनों की संप्राप्ति (रोगोत्पत्ति का विवरण) समान ही है। जिस रोगी को राजयक्ष्मा होता है, उसकी विशेष संप्राप्ति, साहसज यक्ष्मा के प्रकरण में, इससे आगे बतायी है (देखिये—च. चि. ११। ४–८ —उरःक्षत या क्षतक्षय का निदान, तथा—च० नि० ६।४-५, और च० चि० ८।१४—१९ साहसज राजयक्ष्मा का निदान)।

शेष क्षयज कास के भी चक्रपाणि ने दो भेद किये हैं। वह लिखता है : क्षयज इति क्षयो धातुक्षयः। "तेन राजयक्ष्म संबन्धानां क्षीणधातुपुरुषभवानां तथा जराकासस्य च धातुक्षयजस्य क्षयजशब्देन ग्रहणं भवति—च. चि. १८।३–४ पर टीका।" अर्थात्—क्षय का यहाँ अर्थ है धातुक्षय। और इस धातुक्षय से राजयक्ष्मी पुरुषों को हुआ धातुक्षय तथा वृद्धावस्था में वयःस्वभाववश हुआ धातुक्षय भी गृहीत है। आशय यह है कि: क्षयज कास के दो भेद हैं : साहस को छोड़ कर शेष तीन कारणों से हुए राजयक्ष्मा का अङ्गभूत कास तथा वृद्धों को होनेवाला कास, जिसका जराकास यह विशेष नामान्तर है। और वस्तुतः यह बात आगे ही चक्रपाणि ने कण्ठरव से (स्पष्ट शब्दों में) कही है। देखियेः—"अत्र च विषमासात्म्यभोज्येन तथा व्यावायेन तथा वेगनिग्रहेण विषमाशनज—धातुक्षयज—वेगसंधारणजानां यक्ष्मणां लक्षणभूतकास हेतुत्रयं पृथगुक्तं भवति—च. चि. १८। २४ पर टीका।"

जराकास के भी चक्रपाणि ने पुनः दो भेद किये हैं : एक—वृद्धावस्था के कारण हुए देहक्षय से हुआ जरा कास,

श्लैष्मिक तथा पित्त-प्रधान या पैत्तिक कासों में आगे कहे जाने वाले दोष–स्वभाववश कफ की सुगमता से प्रवृत्ति होती है, अतः उन्हें सकफ या आर्द्र तथा शेष वात-प्रधान या वातिक कास में वात-स्वभाव वश कफ़ शुष्क हो गया

जो याप्य होता है तथा दूसरा––दोषज, जो दोष-व्याधि-प्रत्यनीक चिकित्सा से शान्त होता है। देखिये––स्थविराणामित्युक्त्वाऽपि जराकास इति वचनेन स्थविराणां यो जरया देहक्षयकारिकया कृतः स याप्यः; यस्तु दोषकृतः स साध्य एवं भवतीति दर्शयति––च. चि. १८।३० पर टीका।" यहाँ कहा दोषज जराकास विशेष वक्तव्य की अपेक्षा नहीं रखता। शेष देहक्षयजनित जराकास का साम्य आधुनिकों के ब्रॉङ्किएक्टेसिस (Bronchiectasis) के साथ देखा जा सकता है। इस रोग में अपस्तम्भों (श्वासपथ की शाखाओं)के अङ्गभूत मांससूत्रों का शैथिल्य हो जाने से वे अपस्तम्भ––दृढ़ नहीं रह पाते––उलटे विस्तृत ––चौड़े––हो जाते हैं। परिणामतया, अन्तःस्थ कफ को निकालने के पूर्व उसे पकड़ में लेने के हेतु उनका जैसा और जितना संकोच होना चाहिए वह नहीं हो पाता। होत यह है कि एक ओर तो उस कफ को निकालने के प्रयत्न के रूप में कास के प्रसक्त (सतत, निरन्तर) वेग होते रहते हैं, पर उल्लिखित स्थिति होने से वह (कफ) चिरकाल तक अपस्तम्भों में ही पड़ा रहता है। अन्त को इसका प्रमाण संचय-वश जब इतना हो जाता है कि अपस्तम्भों की पकड़ में आ सके तभी, जितना भाग उनकी पकड़ में आता है, उसका कास के वेग वश ष्ठीवन (बहिः प्रवृत्ति) होता है। अर्थात्––संचय के कारण प्रवृत्त कफ का प्रमाण बहुत होता है। अन्य परिणाम यह होता है कि: संचित कफ पर कोथ (सड़ाँद) और पूय के उत्पादक (Putrefactive & Pyogenic Micro organism–प्यूट्रिफैक्टिव एण्ड पायोजेनिक माइक्रोऑर्गेनिज्म्स) जीवाणुओं की क्रिया होती है, जिससे कफ दुर्गन्धयुक्त और पूय–सदृश होता है। चरक ने अधोलिखित शब्दों में यही बात कही है।

दुर्गन्धं हरितं रक्तं ष्ठीवेत् पूयोपमं कफम्।।
च. चि. १८।२५

अपस्तम्भों की यह विकृति सुधारी जा सके ऐसा न होने से यह रोग स्वभावतः याप्य होता है। दोनों पद्धतियों में इसकी याप्यता का निर्देश समान ही है।

क्षयज कास में ठीक वही स्थिति फुप्फुसों में छोटे-बड़े कोटर (Cavities––केविटीज) बन जाने पर होती है। दौर्बल्यवश तथा संचय स्थान अधिक होने से कफादि द्रव्य कोटरों से बाहर नहीं निकल पाते––एवं, उनमें कोथ और पूयोत्पत्ति होती है। परिणामतया, वैसा ही दुर्गन्ध युक्त पूयोपम; हरित, रक्त द्रव्य इस रोग में भी कास के वेग से प्रवृत्त होता है।

उरःक्षत का साहसज यक्ष्मा से पृथक् निर्देश चिकित्सादि के भेदार्थ भी है। यथा, कहा है कि : उरःक्षत की उपेक्षा (या अयथोपचार) हो तो वह यक्ष्मा में परिणत हो जाता है। देखिये––

उपेक्षिते भवेत् तस्मिन्ननुबन्धो हि यक्ष्मणः।।
च. चि. ११।९५

अतः उसे शीघ्र शान्त करने का प्रयास सर्वोपाय से करें।

क्षयज कासों का भी यक्ष्मा के भेदों से पृथक् पुनः निर्देश यक्ष्मा की अन्तिम अवस्था और तदनुरूप साध्या-साध्यता, चिकित्सा भेद प्रभृति के विवरणार्थ है। जैसे, यों अतिसार और प्रवाहिका की जीर्णता ही ग्रहणी है, परन्तु ग्रहणी में चिकित्सादि भिन्न होने से उसका पृथक् उपदेश किया है। (प्रसंगवश कह दूं––अतीसारे निवृत्तेऽपि... इत्यादि ग्रहणी निदान में अतिसार का ही एक भेद होने से प्रवाहिका भी गृहीत है। चरक और सुश्रुत दोनों ने प्रवाहिका का निर्देश इसी प्रकार किया है––चरक ने अतिसार चिकित्सा का उल्लेख करते हुए च० चि० १९।३४ इत्यादि में; जहाँ चक्रपाणि की टीका में––इस बात का स्पष्ट उल्लेख है; तथा सुश्रुत ने अतीसार प्रतिषेधाध्याय (सु० उ० ४०) में––श्लोक १३८ इत्यादि में, जहाँ डल्हन ने भी टीका में प्रवाहिका को अतिसार–भेद ही कहा है। व्यवहार में भी अतिसार की अपेक्षया प्रवाहिका ही की जीर्णता का ग्रहणी-रोग में परिणाम देखा जाता है। नवीन विद्यार्थियों के बुद्धि-वैशद्यार्थ 'अतिसारे निवृत्ते' की स्पष्टता के लिए अतिसार के साथ प्रवाहिका का भी निर्देश करना उपयुक्त होगा। कारण, आधुनिक विज्ञान के प्रभाव से प्रवाहिका स्वतन्त्र रोग माना जाने लगा है। अस्तु)

प्रसंगवश लिखना उचित प्रतीत होता है कि, सुश्रुत ने उरःक्षत का साहसज राजयक्ष्मा से पृथक् निर्देश नहीं किया है। हाँ, शोषप्रतिषेधाध्याय में, एकीय मत से उरःक्षत

होने से उसका मोक्ष सुगमता से और शीघ्र नहीं होता ; अतः उसे शुष्क कास कहते हैं। संक्षेपतः कहे इस स्वरूप-भेद की कुछ व्याख्या करता हूं।

कफज-कास में गुरु-मधुरादि गुणवाले द्रव्योंके अत्यादान (अति सेवन) तथा अ-विचेष्टन के कारण अग्निमान्द्य होता है। नाम (यानी) ––जठराग्नि और धात्वग्नियाँ यों सम हो सकती हैं तथापि उनके सामर्थ्य से अधिक इन्धन के उपयोग का भार उन पर आ पड़ने से तथा शरीर को (चेष्टा-शून्यता के कारण) उनकी आवश्यकता इतने प्रमाण में न होने से, धातुओं द्वारा रस धातु का प्रसाद-रूप में परिणमन और ग्रहण उतना नहीं हो पाता। परिणामतया, जठराग्नि मन्द हो तो जैसे आहार का मल (पुरीष) अधिक मात्रा में बनता है, उसी प्रकार, विशेषतया धात्वग्नियों के मन्द होने से रस धातु का यथावत् उपयोग न होने के कारण कफ (शरीर-पोषक सामग्री) मलरूप में विभिन्न द्वारों से बाहिर निकलता है, यथा-सान्द्रमेह के रूप में मूत्रमार्ग से[1]। इसी प्रकार प्रसिद्ध कफके रूपमें श्लेष्म-कला से स्रुत होनेवाला कफ भी प्रमाणातीत होकर प्रवृत्त होता है और संप्राप्ति भेद से कास या श्वास को उत्पन्न करता है। यही सब देखकर बहिःप्रवृत्त कफ को रसधातु का मल आचार्यों ने कहा है।

पित्तज कास में पित्त के स्निग्ध और द्रव गुण[2] के कारण सम प्रमाण में स्थित कफ भी शिथिल होने से कास के वेग के समय सरलता से प्रवृत्त होता है। कफ की यह सुखप्रवृत्ति, रोग का स्थान (उर) कफस्थान होने से, स्वभाव वश कफ की भी किंचित् वृद्धि होने के कारण और भी सुकर हो जाती है। चक्रपाणि ने लिखा भी है :

पित्तजेऽप्यस्मिन् श्लेष्म–निष्ठीवनं व्याधेरुरःप्रभृति कफस्थान भूतत्वेन श्लेष्मपित्तसंसर्गजतयेति ज्ञेयम्।––

च. चि. १८।१६ पर

नव्यमत से इसका आशय यह है कि, पैत्तिक कास में मुख्य दोष पित्त होता है। परन्तु रोग-स्थान उर आदि कफ-स्थान हैं। कफ स्थान का अर्थ यहाँ यह है कि––ये श्लेष्म-कला से व्याप्त होते हैं। इनसे स्वस्थ दशा में भी यत्किंचित् कफ (म्युकस) का स्राव होता ही है। पित्त-नामक रोगोत्पादक द्रव्य जब इन स्थानों में आता है तो उससे हुई विकृति के उपशमन के लिए रस-रक्त का अधिक प्रमाण में आयात इन स्थानों पर होता है। स्वभावतः कफग्रन्थियों पर भी इसका प्रभाव होता है। वे इस रस-रक्त का अधिक उपयोग कर सामान्य से अधिक प्रमाण में कफ का स्रवण करने लगती हैं। यही आयुर्वेदोक्त स्थानीय दोष की वृद्धि का स्वरूप है। अन्यत्र भी अतत्स्थानीय दोष का अन्य दोषके स्थान पर प्रकोप होने पर स्थानीय दोष की वृद्धि की इसी प्रकार यथोपलब्ध व्याख्या करनी चाहिए।

कफज और पित्तज कास के निदानादि में भेद होता है। उससे इनका भेद जाना जा सकता है। प्रमुख भेद इनके कफ में होता है––कफप्रधान कास में निर्गत कफ––अधिक, मधुर, धन (गाढ़ा) और स्निग्ध होता है। तथा हि––

बहलं मधुरं स्निग्धं निष्ठीवति घनं कफम्॥

च० चि० १८-१९

शेष वातिक नाम वात-प्रकोप जन्य कास ही शुष्क कास होता है। अर्थात्––इसमें कफ की प्रवृत्ति अति स्वल्प, स-कृच्छ और चिरकाल से होती है। संक्षेप में, इसका स्वरूप समझ लें।

वात के प्राकृत कर्मों का उल्लेख करते हुए चरक ने कहा है : "क्षेप्ता बहिर्मलानाम्"––च. सू. १२।८।नाम––वायु समावस्था में रहता हुआ मलों को मल द्वारों से बाहर निकालता रहता है––और इस प्रकार शरीर में उनके साम्य को स्थिर रखता है। इसका सीधा अर्थ यह है कि : वायु यदि कुपित हो जाय तो उसकी इस क्रिया में व्याघात होता है। परिणामतया, मलों और दोषों का शरीर में संचय और वृद्धि हो कर उनके प्रकोप से होनेवाले रोग तो होते ही हैं, दूष्य भी इन मलों और दोषों के संसर्ग से दूषित होकर

शोष का भी निदान बताया है। उसके लक्षणों में क्षयज कास के ही सदृश द्रव्य की प्रवृत्ति जतायी है (देखिये––सु. उ. ४१।२४–२६)। जिज्ञासुओं से प्रार्थना है, इस प्रकरण में संकेतित प्रकरणों का साद्यन्त प्राचीन टीका-समेत अध्ययन कर सत्य का अन्वेषण करें।

[1] ––सान्द्रमेह––नव्य मत से यूरीआ या एल्ब्युमिन की मूत्र मार्ग से प्रवृत्ति (देखिए–– सचित्र आयुर्वेद, दिसम्बर १९५१, पृ० ४२८–२९)।

[2] ––स्निग्ध और द्रव गुणों की व्याख्या इसी लेख में आगे देखिये।

रुग्ण हो जाते हैं। आशय--इस दृष्टि से रोगों का विचार करने जायें तो रोगमात्र का कारण एक वायु ही है, यही फलितार्थ निकलता है। रोगों का शेष भेद केवल दोष किस स्थान का संश्रय कर कौन लक्षण उत्पन्न करते हैं, इसी बात पर आश्रित है। यह बात आचार्य ने कण्ठरव से जिन पद्यों में कही है—प्रत्येक वैद्य के सुपरिचित भी उन पुराण पद्यों का पुनरावर्तन पाठकों को अप्रिय न होकर आयुर्वेदीय सिद्धान्तों का स्मृति-हेतु ही सिद्ध होगा:--

शाखागताः कोष्ठगताश्च रोगा
मर्मोर्ध्वसर्वावयवाङ्गजाश्च ।
ये सन्ति तेषां नहि कश्चिदन्यो
वायोः परं जन्मनि हेतुरस्ति ।।
विण्मूत्रपित्तादिमलाशयानां
विक्षेप संघातकरः स यस्मात् ।
तस्यातिवृद्धस्य शमाय नान्यद्
बस्ति बिना भेषजमस्ति किंचित् ।।
तस्माच्चिकित्सार्धमिति ब्रुवन्ति
सर्वां चिकित्सामपि बस्तिमेके ।। च. सि. १।३८-४०

पद्यावलि के अन्त भाग में कहा है कि, वायु के विजय के लिए बस्ति सर्वोपरि उपक्रम है। इसीसे कोई आचार्य इसे ही संपूर्ण चिकित्सा का अर्धांश कहते हैं; और कोई तो इससे भी आगे बढ़कर संपूर्ण चिकित्सा एकमात्र बस्ति को मानते हैं। अन्यत्र यही बात निम्न पद्यों के रूप में कही है :

बस्तिर्वयः स्थापयिता सुखायु
र्बलाग्निमेधास्वरवर्णकृच्च ।
सर्वार्थकारी शिशुवृद्धयूनां-
निरत्ययः सर्वगदापहश्च ।।
विट्श्लेष्मपित्तानिलमूत्रकर्षी
दार्ढ्यावहः शुक्रबलप्रदश्च ।
विष्वक् स्थितं दोषचयं निरस्य
सर्वान् विकारान् शमयेन्निरूहः ।।
च. सि. १।२७-२८[1]

कास के प्रकरण में वात द्वारा तत्-तत् मल के सम प्रमाण में बहिः क्षेपण (बाहर निकालना) और परम्परया शरीर में उसके साम्य को स्थिर रखने के सिद्धान्त के निर्देश में कुछ प्रयोजन है। प्राणवहस्रोतनाम श्वासपथ का उपलेपन[1] कर प्राणापान की गति को सरल बनानेवाला, एवं इस प्रकार अन्य प्राणों (वायुओं) का अवलम्बन करने वाला--उनके प्राकृत कर्म में सहायता देनेवाला कफ अवलम्बक नाम से आयुर्वेद में प्रसिद्ध है। यह जैसे-जैसे क्षरित होता है, वैसे-वैसे वायु की क्रिया से बाहर की ओर नाम नासिका और मुख के द्वार की ओर वाहित होता रहता है। नव्य मत से इस क्रिया का स्वरूप जानने योग्य होने से नीचे दिया जाता है।

"त्वचा का बाह्य पृष्ठ और आशयों, स्रोतों तथा रस-रक्तादि वह मार्गों के आभ्यन्तर पृष्ठ एक विशेष प्रकार के धातु से बने हैं। इसे आस्तरण धातु[2] कहा जाता है। आस्तरण धातु के अनेक भेदों में एक पक्ष्मल आस्तरण[3] है। इसमें विशेषता यह होती है कि, इसके घटक कोषों के ऊर्ध्वभाग पर प्रोटोप्लाज्म के अत्यन्त सूक्ष्म सूत्र होते हैं। ये सूत्र पलकों के बालों (पक्ष्मों) के तुल्य होने से इन कोषों तथा तद्घटित आस्तरण को पक्ष्मल नाम दिया गया है; जीवित दशा में ये सूत्र निरन्तर, नियमित (तालबद्ध) अति वेग से और एक ही दिशा में--बाह्य छिद्र की ओर--गति करते रहते हैं। इस गति का स्वरूप यह होता है --सूत्र लम्बाई के रुख मुड़ते और सीधे होते हैं--इनकी इस अविरत गति को अणुवीक्षण के नीचे देखने से ऐसी प्रतीति होती है, जैसे कोई धान्य का खेत वायु के प्रवाह से लहरा रहा

---

[1] —इन प्रकरणों में तथा आयुर्वेदीय वाङ्मयमें अन्यत्र बस्ति की जो फलश्रुति कही है, वह एवं ऐसे ही अन्य समान सिद्धान्त इतर चिकित्सा-पद्धतियों की अपेक्षया आयुर्वेद का निसर्गोपचार से अति गाढसाम्य सूचित करते हैं।

[1] —मल और प्रसाद संज्ञाओं की चरकोक्त परिभाषा (च. शा. ६।१७) की टीका में चक्रपाणि ने इस शब्द का उपयोग किया है। देखिये—ये तु स्रोत उपलेपमात्रकारकास्ते गुणकर्तृतया न मलाख्याः ।।

[2] —एपीथीलियम (Epithelium) ; बहुवचन—एपीथीलिया (Epithelia) ; या— एपीथीलिअल टिश्यु (Epithelial Tissue)। आस्तरण शब्द में आच्छादन अर्थ की स्तृ (ञ्) धातु है।

[3] —सिलिएटेड एपीथीलिअम (Ciliated epithelium), सिलिअम (Cilium)—नेत्रलोम।

हो। तालबद्ध तथा बाह्य छिद्र की ओर होनेवाली इन गतियों का परिणाम यह होता है कि, इनके अन्दर स्थित द्रव्य निरन्तर बाहर की ओर वाहित होता रहता है।

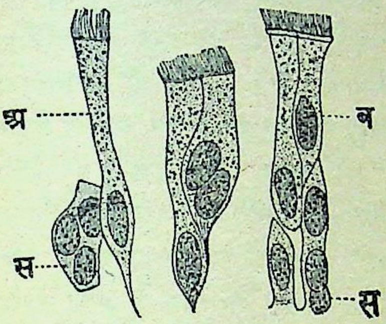

श्वास पथके पक्ष्मल अणु

“मानव-शरीर में पक्ष्मल कोष मुख्यतः निम्न स्थलों पर होते हैं--वायु कोषों[1] को छोड़कर अन्यत्र श्वास पथ में; यहाँ इनका उद्देश्य कफ तथा धूलि, धूम आदि के कणों को बाहर की ओर धकेलना और एकत्र करना है, जिससे अनेक कण मिलकर उनका बड़ा समुदाय बने जो कास के वेग से सुगमता से बाहर निकाला अथवा निगला जा सकता है। बीजवाहिनी तथा गर्भाशय के ऊर्ध्व भाग में; यहां इनका उद्देश्य स्त्री-बीज को गर्भाशय की ओर प्रवृत्त करना है। वृषण-ग्रन्थियों के उत्सर्जक स्रोतों में; यहां इनका प्रयोजन पुं-बीजों को बाहर निकालना है। मस्तिष्क के कोष्ठों तथा सुषुम्णा के विवर में पुंबीजों की पुच्छ को पक्ष्म ही कहा जा सकता है[2]।”

इस प्रकार प्राणवह स्रोतों में कफ के प्रवर्तन की क्रिया स्पष्टतः दो विभागों में विभक्त की जा सकती है। प्रथम, पक्ष्मल कोषों द्वारा उसका समूहन तथा द्वितीय, इस प्रकार पिण्डित कफ का कास के वेग से बहिः--प्रवर्तन। इन क्रियाओं को मैं एक उपमा से स्पष्ट करना ठीक समझता हूँ। मार्गों पर बुहारने की क्रिया, आपने देखा होगा, सेवकों के दो वर्गों के अधीन होती है। पहला वर्ग प्रथम आकर सलियों से बनी हुई विभिन्न प्रकार की झाड़ूओं से कचरे को थोड़े-थोड़े अन्तर पर एकत्र कर देता है। कुछ काल पीछे दूसरा वर्ग आकर क्रमशः एक-एक ढ़ेरी को ढोकर गाड़ियों में ले जाता है। श्वास-पथ में पक्ष्मल कोषों द्वारा कफ के पिण्डी करण की क्रिया का साम्य पहले वर्ग से और पिण्डित उसके बाहर निकालने की क्रिया का साम्य मार्ग-शोधक द्वितीय वर्ग से देखा जा सकता है। इस उपमा को थोड़ा आगे ले जाकर देखें तो कभी-कभी स्थिति यह होती है कि, प्रथम वर्ग किसी कारण उचित काल पर कचरे को एकत्र न कर सका और नियोजित काल पर द्वितीय वर्ग आ पहुँचा तो वह दौड़-धूप कर प्रथम वर्ग के कार्य में सहायता करता है। शुष्क कास में ठीक यही स्थिति होती है। वात के प्रभाव से कफ शुष्क हो जाता है और उसका प्रवाहण सम्यक् नहीं होता। अयत्र, कास का वेग उठ-उठकर अपने बन्धु की सहायता में लगता है। परन्तु सिद्धि तो उसे भी नहीं मिलती। परिणामतया, कास का प्रसक्त वेग और तज्जन्य इतर लक्षण उत्पन्न होते हैं। थोड़ा रुककर इस स्थिति को कुछ अच्छी तरह समझ लें।

दोषों से रोगोत्पत्ति के विषय में एक सिद्धान्त है। वात, पित्त, कफ के अनेकानेक गुण और कर्म हैं। किसी भी एक दो या तीन दोषों से जब रोगोत्पत्ति होती है तो कुपित दोष के सभी गुण या सभी कर्म कुपित होकर अपनी विकृति प्रकट करते हों, सो बात नहीं। प्रत्युत, दोष-प्रकोपक आहार, विहार, औषध, देश या काल अपने स्वभाव-वश (अपने में विद्यमान उत्कृष्ट गुण के कारण) जिस दोष के जिस भी समान गुण की विशेषतया वृद्धि करने वाले हों उस दोष के उसी गुण की वृद्धि और प्रकोप विशेषतया होते हैं। तथा हि--

सर्वैर्भावैस्त्रिभिर्वाऽपि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः।
संसर्गे कुपितः क्रुद्धं दोषं दोषोऽनुधावति[1] ॥
सु० सू० २१।३८

रोग-परीक्षा में यही द्रष्टव्य होता है कि दोष के प्रकोपक या क्षयकारक किस आहार आदि ने किस दोष के किस गुण किंवा कर्म को किस प्रमाण में प्रकुपित या क्षीण किया है। इसी परीक्षा का नाम विकल्प या अंशांशकल्पना है। यह संप्राप्ति का एक अङ्ग है। उपाय-योजना करते हुए यही

---

[1] १--प्राणवह स्रोतों की अन्तिम शाखाएँ, जहाँ प्राण-अपान का विनिमय होता है--Alveoli–एलविओलाई या Air cells--एअर सेल्स।

[2] २--मल्लिखित आयुर्वेदीय क्रिया शारीर से।

[1] १--पद्य के इस अर्थ के लिए देखिए--डल्हण की टीका।

दृष्टिगत रखना चाहिए कि, किस आहार, औषधादि, में प्रकुपित दोष के प्रकुपित गुण या कर्म का विरोधी गुण या कर्म अधिकतम प्रमाण में विद्यमान है। वस्तुतः प्राचीन काल में इस प्रकार मधुरादि रसों से ही अर्थेति चिकित्सा करने वाला एक संप्रदाय विद्यमान भी था[1] ।

प्रसंगवश और एक सिद्धान्त के प्रति भी चित्त आकृष्ट कर दूँ। दोष का प्रकोप आहार-विशेष के सेवन से हुआ हो तो विरोधी गुण वाले आहार-द्रव्य-विशेष का ही उपयोग करने से उसका साम्य होता है। एवं, प्रकोप विहार-विशेष से हुआ हो तो उसका उपशमन विरुद्ध गुण वाले विहार-विशेष से ही होता है। यही बात औषध, देश और काल के संबन्ध में भी जाननी चाहिए। यथा---आस्यासुख (निरन्तर बैठे रहने) तथा अव्यायाम के कारण मधुर प्रमेह हुआ हो तो उसका उपचार प्रतिदिन इन्सुलीन (औषध-विशेष) के इञ्जेक्शन लेना नहीं। उसके लिए तो उत्कृष्ट व्यायाम ही उपाय है। आयुर्वेद ने इसीलिए इस रोग में विभिन्न कर्कश व्यायामों का विधान किया है। इसी प्रकार अव्यायाम के कारण कफ-प्रकोप हुआ हो तो उसका उचित उपाय शुण्ठी आदि उष्ण द्रव्यों का सेवन नहीं। समुचित व्यायाम ही इसमें विधेय है। किं बहुना।

विषय को विशद करने के लिए एक उदाहरण लें। वह भी वात के रूक्ष गुण के विषय में, जिस का ही सविशेष कोप शुष्क-कास में हुआ करता है। वेगावरोधादि प्रसिद्ध कारणों से वात के इस गुण का प्रकोप हो तो स्थान-भेद से विकार-भेद होता है। तथा हि--पक्वाशय में इसका प्रकोप हो तो मल शुष्क होकर ग्रथित हो जाता है, तथा आध्मान परिकर्तिका[2] आदि विकार होते हैं। याकृत पित्त के कोष या मूत्रयन्त्र में यह गुण संश्रय करे तो पित्त या मूत्र का शोष होकर पित्त कोषाश्मरी या मूत्राश्मरी बन जाती है। यही स्थिति यदि प्राणवह स्रोतों में हो---नाम वात के रूक्ष गुण के प्रकोप का स्थान-संश्रय यदि प्राणवह स्रोतों में हो तो शुष्क कास होता है। शुष्क कास की यह संप्राप्ति एकवार समझ ली जाय तो चिकित्सा का मार्ग सुबोध हो सकता है। प्रथम तो आयुर्वेद-मत से शुष्क कास की यही संप्राप्ति देख लें कि, वात के प्रकोप से प्राणवह स्रोतोगत कफ शुष्क हो जाता है। देखिये---वातिक कास के निदान का निर्देश कर, अन्य लक्षणों के साथ 'शुष्कोरःकण्ठवक्त्रता' (छाती, कण्ठ---स्वरयन्त्र और मुख की शुष्कता) का उल्लेख का अन्त में चरक कहता है।

शुष्ककासः कफं शुष्कं कृच्छ्रान्मुक्त्वाऽल्पतां व्रजेत् ।।
च० चि० १८।१३

नाम--चिरकाल तक कास का शुष्क वेग होकर बड़ी कठिनाई से जब शुष्क कफ की प्रवृत्ति होती है तब कास का वेग कुछ हलका होता है। सुश्रुत ने भी कहा है---

प्रसक्तमन्तः कफमीरणेन
कासेत्तु शुष्कं स्वरभेदयुक्तः ।। सु० उ., ५२।८

अर्थात्---वातिक कास में कफ अन्दर ही रहता है---शिथिल होकर बाहर नहीं निकलता, जिससे शुष्क (कफ-शून्य) कास के प्रसक्त (निरन्तर) वेग होते हैं; यहां तक कि---खाँसते-खाँसते श्रमवश रोगी के हृदय (छाती), पार्श्व, मूर्धा (ललाट) शङ्ख और उदर में शूल[1] हो आता है;

---

[1] क्वचिदेको रसः कल्प्यः संयुक्ताश्च रसाःक्वचित् ।
दोषौषधादीन् संचिन्त्य भिषजा सिद्धिमिच्छता ।
द्रव्याणि द्विरसादीनि संयुक्तांश्च रसान् बुधाः ।
रसानेकैकशो वाऽपि कल्पयन्ति गदान् प्रति ।।
यः स्याद्रसविकल्पज्ञः स्याच्च दोष विकल्पवित् ।
न स मुह्येद्विकाराणां हेतुलिङ्गोपशान्तिषु ।।
च० सू० २६।२५---२७

[2] कैंची से काटने की सी वेदना (Groaning pain)

[1] हृदय और छाती में वेदना की इस संप्राप्ति की ओर नवीन विद्यार्थियों को विशेष ध्यान देना चाहिए। बहुधा रोगी इतिवृत्त के निवेदन की बुद्धि न होने से किंवा अपने रोग का ही सम्यक् ज्ञान न होने से शुष्क कास की बात न कहकर केवल उदर या छाती के मध्य में दुखने की ही शिकायत करता है। ऐसे समय कास का उपचार न करने से इन रोगों में क्या फल हो सकता है? अपरंच, छाती की वेदना में, कदाचित् वेदना शामक तथा प्रसिद्ध होने से चिकित्सक शृङ्गभस्म का उपयोग कर दे तो वह अपने उष्ण-रूक्ष गुण से कफ को शुष्क कर वातिक कास में, तथा परंपरया उरोवेदना में सुतरां वृद्धि करेगा।

इस सामान्य उदाहरण से रोगियों के दो प्रकारों के प्रति नये चिकित्सक का ध्यान खेंचा जा सकता है। कई

दौर्बल्य आदि अन्य लक्षण प्रकट होते हैं। तथापि, चिकित्सा न हो तो उरः-क्षत भी होना संभव है, जो स्वरूप से चिन्तनीय–रोग है।

अन्यत्र चरक ने कास की सामान्य संप्राप्ति बताते हुए कहा है, अधोमार्ग से वायु की गति में अवरोध होने से वह ऊर्ध्वगामी स्रोतों में पहुँचकर कास के वेग उत्पन्न करता है। देखिये—

अधःप्रतिहतो वायुरूर्ध्वस्रोतः समाश्रितः।
उदान भावमापन्नः[1] कण्ठे सक्तस्तथोरसि।।

च० चि० १८।६

जो हो। अबतक के लेखका आशय यह है कि शुष्क कास का कारण वात का प्रकोप––उसके भी रूक्ष गुण का प्रकोप और उसका प्राणवह स्रोतों में संश्रय होता है। अन्य दोषों की अपेक्षया वायु के प्रकोप के कारणों में कुछ विशेष होता है। वात प्रकोप के कारणों का संक्षेप में निर्देश करते हुए चरक ने कहा हैं :

वायोर्धातुक्षयात्कोपो मार्गस्यावरणेन वा।।

च० चि० २८।५६

वायु का प्रकोप दो प्रकार से होता है––धातुक्षय से तथा मार्ग का आवरण होने से। यहां धातु का अर्थ दोष, धातु, उपधातु, और मल तथा इनके स्रोत[1] सभी हैं। वात-प्रकोपक द्रव्यों के सेवन से इनमें रूक्षता, लघुता, शीतता, दारुणता (कठिनता), खरता, विशदता और शुषिरता (सच्छिद्रता, अल्पघनत्व)[2] उत्पन्न होते हैं। धातुक्षय इस एक शब्द से इसी स्थिति का निर्देश किया गया है। शरीरमें प्रतिक्षण विचरण करता हुआ वायु जब इन स्थलों-में पहुँचता है तो वहां स्थिर होकर आत्मप्रभावोचित रोगोत्पत्ति करता है[3]।

वात-प्रकोपक अन्य कारण उसके मार्ग का आवरण है। इसका अर्थ यह है कि वृद्धि को प्राप्त पुरीष, कफ, पित्त आदि वायु की प्राकृत क्रिया में बाधा पहुँचाते हैं और आवरण के स्थान के भेद से तत्तद्रोगोत्पत्ति करते हैं। यथा संक्षेप में कास का भी उदाहरण लें। प्राणवह स्रोतों में संचित कफ से श्वसन क्रिया के हेतु भूत वायु का मार्गावरोध हो जाय तो उसका कोप होकर कास या श्वास होता है।

प्रकृत (प्रस्तुत) रोग वातिक कास में भी वात के प्रकोप का कारण उसके प्रकोपक (अनुपशय) आहार, विहार, औषध, देश या काल का सेवन किंवा उसके मार्ग का आवरण दोनों हैं। अतएव उपक्रम में इन दोनों को दृष्टिगत रखना चाहिए।

आयुर्वेद के साधारण विद्यार्थी को भी यह जताने की आवश्यकता नहीं कि, वायु के प्रकोप का स्थान पक्वाशय (स्थूलान्त्र) है। वायु का कोप होने पर प्रकोप के कारण भूत आहारादि का परिवर्जन तो करना ही चाहिए, विशेष कर्तव्य तो ऐसे द्रव्यों का सेवन है, जो मल और वात का अनुलोमन करने वाले हों। ऊपर धृत वचन में चरक ने

सुबुद्ध रोगी अपनी मूल व्यथा का ही निर्देश करते हैं। गुरूपदेशानुसार उस व्यथा के ज्ञात लक्षणों के विषय में प्रश्न करें तो उस व्यथा के सब चिह्न रोगी में प्रायः पाये जायेंगे। ऐसे रोगी का निदान करना अति सुकर होता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। ये रोगी जानो अपने रोग-रूपी नदी के उद्गमस्थान पर हमको ले जाते हैं, जहां से उसकी शाखा या सहायक प्रवाह रूपी लक्षणों एवं अनन्तरोत्पन्न व्याधियों का ज्ञान बहुत सुगम हो जाता है। इसके विपरित कई रोगी अपने रोग का एक लक्षण बताकर हमें जानो अपने समुद्र के ऐसे किनारे पर छोड़ देते हैं, जिसमें अनेक दिशाओं से आकर अनेक नदियाँ गिरती हों और उनका उद्गम जानने के लिए हमें प्रत्येक प्रवाह के मूल स्थान का निर्णय करना पड़ता है। कारण, एक ही लक्षण अनेक रोगों में पाया जाता है। सो, प्रश्नादि द्वारा यह विनिश्चय करना गलेपतित होता है कि, रोगी का कहा लक्षण उसे पीड़ित करने वाले किस रोग के कारण है? यथा, यही, उदर-वेदना शुष्क कास के कारण हो सकती है, शुष्क वमन के कारण हो सकती है, विबन्ध, प्रवाहिका आदि अन्य कारणों से भी इसका होना संभव है। इत्यलं पल्लवितेन।

१—उवानभावमापन्न इति ऊर्ध्वगति स्वभावमापन्नः।
––चक्रपाणि

१—देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली। करोति विविधान् व्याधिन्—च० चि० २८।१८ के अनुसार स्रोतों का भी ग्रहण यहां किया है।

२—Porosity Low Density—पोरोसिटी; लो डेन्सिटी।

३—यह विषय मूल में च० सू० १२।७ तथा च० चि० २८।१५—१६ में देखिये।

स्पष्ट कहा है कि--वायु की अधोमार्ग से प्रवृत्ति में अवरोध होता है तब ही वह प्रसृत होकर ऊर्ध्वमार्ग में आता है। बहुधा इसमें दौर्बल्यवश वात की अप्रवृत्ति किंवा वेगावरोधादिवश मल ग्रथित होना और उससे वात की प्रवृत्ति में विघात होना कारण होता है। ऐसी स्थिति में चिकित्सक का कर्तव्य स्पष्ट है--मलवातानुलोमन द्रव्यों का विधान। मल ग्रथित (गाठों के रूप में परिणत) हो तो आवश्यकता देखकर कभी-कभी बस्ति देनी पड़ती है। चरक ने कहा भी है।

बस्तिभिर्बद्धविड्वातम्-- च० चि० १८।३४

प्रायः देखा जाता है कि प्रसक्त (अविरत) कास के शुष्क वेगों के समय रोगी संडास जा आय तो यत्किंचित् ग्रथित या मृदुमल अथवा और वायु की प्रवृत्ति होने पर कास के वेग स्वयं शान्त हो जाते हैं। यह उपाय भी कर देखना चाहिए। गुदवर्ति का भी कभी उपयोग कर सकते हैं। विशेषतः शिशुओं और बालों में।

प्रश्न-परीक्षा से जान सकते हैं कि, रोगी को कास के वेग दिन में अधिक होते हैं या रात में? रात को अधिक होते हैं तो बैठते-उठते विशेष होते हैं या लेटने पर? लेटने (सोने) पर अधिक होने का अर्थ है--चलने या फिरने की दशा में वायु का अनुलोमन यत्किंचित् होते रहने से उसकी ऊर्ध्वगति नहीं होती। लेटने से विपरीत गति होकर कास के--कभी श्वास के भी--वेग होते हैं। मल और वात पूरित पक्वामाशय से साक्षात् पीड़न प्राणवह स्रोतों का होने से भी श्वास के वेग होते हैं। जो हो, इस प्रकार निदान की शुद्धि होती है। काकलक (गलमणि) की लम्बाई की दिशा में वृद्धि होकर गलशुण्डी[१] रोग होता है। खड़े या बैठे रोगी में यह अधर लटकती है। लेटते ही इसका कोण पीछे लटक कर गल के संपर्क में आकर क्षोभ उत्पन्न करता है, जिससे शुष्क कास होता है। इस स्थिति में भी आगे कहे कफहर द्रव्यों का आभ्यन्तर सेवन या मुख में धारण करने से गुण होता है।

उठते-बैठते भी सायंकाल या रात को कास के वेग हों तो शीत वायु का स्पर्श प्राणवह स्रोतों में वात को प्रकुपित करता है। ऐसी स्थिति में गले पर गलेबन्द (मफलर) लपेटने से ही गुण होता है। आवश्यक हो तो कानों पर भी गलेबन्द लपेटवा दें। और भी योग्य हो तो निवातशयन (हवा न लगे ऐसे स्थान में सोना) तथा वस्त्र ओढ़ाकर सुलाने का विधान करें।

विशेषतः मध्यरात्रि में कास के वेग हों तो श्वास रोगी के समान वातिक कास के रोगी को भी सायंकालिक भोजन कोई चार-पाँच बजे कर लेने की सलाह दें। सायंकालिक भोजन विलम्ब से किया जाय--मान लीजिए नौ-दस बजे--तो भोजन कालिक दोष-प्रकोप के नियमानुसार वात का प्रकोप कोई बारह बजे होता है और तभी श्वास-कास के वेग होते हैं। उधर, शीघ्र भोजन कर लिया जाय तो वात का यह प्रकोप रोगी की जागरित अवस्था में ही नौ-दस बजे तक हो जाता है। उसकाल रोगी चलता फिरता होने से वात का सहज ही अनुलोमन होता है, और कास या श्वास के वेग सुलभ नहीं होते।

शुष्क कास का कारण प्रायः प्रतिश्याय होता है। चरक ने कहा है: 'स्रोतांसि स्रोतांस्येव, धातवश्च धातूनेव प्रदूषयन्ति प्रदुष्टाः,-च० वि० ५।९--अर्थात् स्रोत दूषित होकर समीपवर्ती[१] स्रोतों को दूषित (रोगाक्रान्त) करते हैं तथा धातु दूषित होकर समीपवर्ती धातुओं को दूषित करते हैं। इस संप्राप्ति से नासास्रोत दूषित होकर जब समीपवर्ती गलस्रोत को दूषित करते हैं तो कास होता है। प्रसंगवश कह दूँ कि, दुष्टि जब शिरःकपाल के विभिन्न वाताशयों[२] में जाती है तो दुष्टि के स्थान के भेद से अर्ध या संपूर्ण कपाल में वेदना होती है। कपोल के एक या दोनों ओर के वाताशय में दुष्टि जाती है तो वहां वेदना होती है। नेत्र में जाती है तो अश्रु, वेदना आदि लक्षण होते हैं। कर्णमार्ग में (पटहपूरणिका द्वारा) जाती है तो बाधिर्य आदि विकृतियाँ होती हैं। रचना शारीर में विद्यार्थी ने इन सब स्रोतों के परस्पर संबन्ध को भली भांति देखा है।

प्रसंगोपात्त यह भी स्मरण किया जा सकता है कि,

---

[१] --Elongated Uvula--एलोंगेटेड यूव्युला।

[१] --स्रोतांसि धातवश्च दुष्टाः प्रत्यासन्नानि स्रोतांसि धातवन्तराणि च स्वदोषसंक्रान्त्या दूषयन्तीत्यर्थः
--चक्रपाणि।

[२] --Air Sinuses एअर-साइनसेज।

शुष्क कास के समान प्रतिश्याय (शुष्क) का भी कारण बहुधा धूमोपघात, वेगधारण या अन्य हेतुओं से हुआ विबन्ध प्रजागर आदि होता है। इसमें भी उपाय शुष्क कास के सदृश ही करना चाहिए। प्रतिश्याय अभी चालू हो तो 'त्रिभुवन कीर्ति' की आगे कहे अन्य कल्पों के साथ योजना करनी चाहिए। प्रतिश्याय शान्त होकर केवल शुष्क कास हो तो यह अनुपयुक्त--प्रत्युत कदाचित् हानिकर होती है।

शुष्क कास के रोगी को सीधा प्रश्न करें कि उसे जुकाम (प्रतिश्याय), हुआ था क्या ? तो अज्ञान रोगी कदाचित् 'न' भी कहता है। परन्तु उसे पूछें--नाक में से पानी कभी पड़ा था, छींकें आयी थीं इत्यादि तो उत्तर साधक (हां में--प्रतिश्याय का सूचक--पॉज़िटिव) होता है। नवीन चिकित्सकों को ऐसे मुद्दों पर ध्यान देना चाहिए।

शास्त्र में 'धूमोपघात' की गणना प्रतिश्याय और शुष्क कास के कारणों में की है[1]। बहुधा यह असात्म्य धूम-बीड़ी, सिगरेट आदि का ही होता है। सो, प्रश्न-परीक्षा में, विशेषतया जीर्ण प्रतिश्याय तथा कास के रोगियों में, इस निदान को अवश्य दृष्टिगत रखें। और यही कारण मिले तो उसे छुड़ाने का प्रयास करें।

मल और वात का विबन्ध तीव्र हो तो कभी बस्ति की आवश्यकता पड़ती है। सामान्यतया मुख मार्ग से ही स्निग्ध, उष्ण, सर (मल-वातानुलोमन) आहारौषध द्रव्य देना पर्याप्त होता है। वात रोगों का सामान्य उपक्रम बताते हुए चरक ने कहा भी है।

मृदूनि च संशोधनानि स्नेहोष्णमधुराम्ल लवणयुक्तानि तद्वदभ्यवहार्याणि ।। च० वि० ६।१६

प्रत्येक चिकित्सक का उपदेश तथा अनुभव से प्राप्त मलवातानुलोमन कल्प पृथक् होता है। जिन्हें जिस कल्प पर विश्वास हो वे उसका उपयोग कर सकते हैं। शास्त्रों में एतदर्थ दन्ती, द्रवन्ती, अभया, त्रिफला, हिङ्गु, सैन्धव, यवक्षार, यवानी, धान्यक आदि द्रव्यों के कल्पों--विशेषतया घृतों का विधान है। वात संशमनार्थ चित्रक, शुण्ठी, त्रिकटु, मरिच, दालचीनी, आदि दीपन-पाचन द्रव्य विहित हैं। इन द्रव्यों के उपयोग में एक सावधानी रखनी चाहिए। प्रायः परिचारक कास-श्वास को कफ-प्रधान समझकर त्रिकटु, शुण्ठी आदि से साधित चाय आदि रोगी को देते हैं। परन्तु ये द्रव्य उष्ण होते हुए भी रूक्ष हैं, जिससे प्रारम्भ में इनसे वात का किंचित् शमन होता है, परन्तु कुछ काल पीछे रूक्षगुण के प्रभाव से वात की वृद्धि होकर मल और वात का विबन्ध तथा कास का प्रकोप होता है। वायु के शामक द्रव्य उष्ण-स्निग्ध होने चाहिए। तथा हि लघुवाग्भट कहता है।

उष्णेन युक्ता रूक्षाद्याः वायोः कुर्वन्ति संचयम् ।
शीतेन कोपमुष्णेन शमं स्निग्धादयो गुणाः ।।
अ० हृ० सू० १२।१६

औषध द्रव्यों में इस दृष्टि से शृङ्ग का अवगुण सदा स्मरण रखना चाहिए। कास के अध्याय में इसका उल्लेख तथा वेदनाहर रूप में प्रसिद्ध होने से नये चिकित्सक भूल से विशेष कर वातिक कास में वेदना भी विद्यमान हो तो इसका उपयोग करते हैं तो यह वात की वृद्धि कर कास और वेदना को बढ़ाता ही है। कफ प्रधान कास में अलबत्ता शृङ्ग अति उत्तम कफघ्न–कफ का पचन कर उसका प्रमाण न्यून करने वाला है। कफ प्रधान कास में वचा और तुवरी (फिटकरी) भी सुप्रशस्त है।

आगे हम शुष्क कास में सौभाग्य (टंकण) और कण्टकारी की योजना का निर्देश करेंगे। शास्त्र में उन्हें भी रूक्ष कहा है। तथापि उनका कफ-विलयन गुण प्रसिद्ध है। इनका अधिक उपयोग करने से कफ का लेखन अति प्रमाण में हो जाने से रूक्षता आती है। अतः शुष्क कास के वेग औषध के उपयोग से शांत हो जायँ कि तत्काल इन द्रव्यों का स्वतन्त्र या कल्पों के रूप में (अग्नि रस, चन्द्रामृत आदि के रूप में) उपयोग रोक देना चाहिए। अन्यथा प्राणवह स्रोतों की शुष्कता से पुनः कास के वेगों का उदय हो आता है। अपरंच, कफ का अति लेखन होकर, प्रादेशिक पित्त से श्लेष्मकला की रक्षा न हो सकने से उसपर व्रण (मुखपाक) हो जाते हैं। सौभाग्य का चिर-प्रयोग करने से वमन की भी आशङ्का होती है। कफहर द्रव्य अधिक मात्रा में या अधिक दिन उपयोग से वामक होते हैं। वामक द्रव्य अल्प मात्रा में देने से कफहर होते हैं। सो, स्थिति देखकर सौभाग्य का प्रमाण प्रतिदिन न्यून करते जाना चाहिए। इन द्रव्यों के साथ मधुयष्टी का मात्रावत् उपयोग करना

---

[1] —देखिये—सु० उ० ५२।४

चाहिए। वह स्निग्ध गुण के कारण इनका कुप्रभाव नहीं होने देती-वात का शमन तथा अनुलोमन करती है। धातु क्षीणता से वायु का कोप होकर कास हुआ हो तो धातुओं की वृद्धि कर कास का शमन करती है।

अम्ल द्रव्य भी इसी प्रकार कफ की वृद्धि और धातुओं की पुष्टि कर वात का और परम्परा या शुष्क कास का प्रशमन करते हैं। यों अम्ल रस कास को बढ़ाता है, ऐसी भ्रान्ति है, पर वातिक कास में वह सात्म्य है। संहिताओं में वात कास में सीधु, सौवीरक, बदरीफल आदि का विधान किया गया है।

वात के प्रकोप का एक कारण धातुक्षय है। अतः धातुओं की जिससे पुष्टि हो ऐसे उपचार करने चाहिए। प्राचीनों ने इस दृष्टि से मांसरस, अजमांस, विदारी, बला, गोक्षुर, आमलक, शतावरी, द्राक्षा, एरण्ड, कपिकच्छू, विभिन्न पर्णियां, दशमूल, जीवन्ती, देवदारु, सितोपला, वंशलोचन, मधुयष्टी, आदि धातुपोषक द्रव्यों के क्षीरपाक, घृत आदि लेह, बस्ति, पेया, यूष इत्यादि कल्पों का विधान किया है। ऊर्ध्वभक्तिक (भोजन के पूर्व) घृत धातुओं की पुष्टि तो करता ही है, वायु का अनुलोमक भी है। कई चूर्णों का अनुपान भी घृत बताया है। ऐसे भी द्रव्य विहित हैं जो अग्नि की दीप्ति कर रसधातु की और परम्परया अन्य धातुओं की पुष्टि करके वात का एवं तत्द्वारा वातिक कास का उपशम करते हैं। चरकोक्त अगस्त्य हरीतकी में अग्नि दीप्ति और साक्षात् धातु पुष्टि करने वाले द्रव्यों का अच्छा संयोग है। इसका व्यवहार वैद्यों में है भी। चित्रकादि लेह भी पाठ देखने से अच्छा प्रतीत होता है।

धातुक्षय जन्य कासों के लिए प्रचलित कल्पों में सितोपलादि चूर्ण, तालिसादि चूर्ण तथा एलादि गुटी (चूसने के लिए) अति गुणकारी हैं। ये पैत्तिक कास में भी वैसे ही सात्म्य हैं। मुंबई की पोद्दार आयुर्वेदिक कॉलेज के भूतपूर्व प्रिंसिपल डॉ० आशानन्द जी[1] तथा वहीं के निदान-चिकित्सा के अध्यापक मेरे परम सुहृत् वैद्य रामशिरोमणिजी—

रूक्षस्यानिलजं कासमादौ स्नेहैरुपाचरेत्।।

च० चि० १८।३२

इत्यादि चरक-वचनों का अनुसरण करते हुए शुष्क कास में नारायण तैल का व्यवहार करते हैं। उनके आयुधागार का यह एक अप्रतिम आयुध सिद्ध हुआ है। अन्य वैद्यों को भी इसका प्रयोग कर देखना चाहिए। मात्रा १ तोला, प्रातः दूध में।

हमारी ओर शुष्क कास में सैन्धव, घृत और जल (कभी हरिद्रा सिद्ध दूध) इन्हें उष्ण कर पीने का घरेलू प्रचार है। यह अति गुणकारी है। सैन्धव कफहर (कफ को निकालने वाला) और अनुलोमन, घृत वातघ्न, वातहर, तथा धातु पोषक और उष्ण जल भी इन्हीं गुणों वाला होने से यह संयोग उत्कृष्ट और तत्काल लाभ करता है। भुना हुआ टंकण, छिलके सहित भुनी इलायची के साथ देने का भी प्रचार है। यह भी शुष्क कास में उत्तम गुणकारी है। टंकण कफहर (कफ को विलयन कर निकालने वाला), सर (मलवातानुलोमन) तथा इलायची दीपक और अनुलोमन है। छोटे बच्चों में शुष्क कास के वेग हों तो सैन्धव, अधिक अच्छा है। सौवर्चल, चटा देने से कफहरण और अनुलोमन होकर शीघ्र गुण होता है। यवक्षार, कर्कट शृङ्गी और भार्गी भी उत्तम कफहर और वैद्यों में सुव्यवहृत हैं। अनुपान में घृत दे सकते हैं। वासा विशेषतः पित्तानुबन्धी कास में उत्तम गुणकारी होने से सुप्रचलित है।

प्रत्येक वैद्य का अपना-अपना अनुभव होता है। हम और हमारे इधर के मित्र वातिक कास में सामान्यतया जो योजना करते हैं वह नीचे दी जाती है। कण्टकारी-लवण ३ रत्ती, सौभाग्य (टङ्कण भर्जित) ३ रत्ती, मधुयष्टी चूर्ण ३ रत्ती—ऐसी तीन मात्रा प्रातः—मध्याह्न—सायं मधु या जल के अनुपात से दें। विबन्ध हो तो मधुयष्ट्यादि चूर्ण आदि योग्य विरेचन दें। आवश्यक हो तो चूसने के लिए लवङ्गादि वटी अथवा अधिक सस्ती और गुणकारी मधुयष्टी-धनवटी दें। त्रिफला की मधुयष्टी की गृह-निर्मित रस-क्रियामें बनायी गोली मुखपाक, कास, शरीर की उष्णता आदि में उत्तम प्रमाणित हुई है। इसे कषाय वटी नाम दे सकते हैं। गोलियां यन्त्र में बनवाने से गुण नहीं होता यह अनुभव हुआ है। कण्टकारी लवण समभाग कण्टकारी पञ्चाङ्ग और सैन्धव को अन्तर्धूम जारित कर बनाया जाता है। कण्टकारी क्षारप्रधान द्रव्य होने से उत्तम कफहर है। इस योजना का कुछ विचार ऊपर कर आये हैं।

---

[1] १—संप्रति हैदराबाद के राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज के प्रिंसिपल।

तुण्डीकेरी (टॉन्सिल), हृदय रोग या कास-श्वास प्रधान संतत ज्वर (न्यूमोनिया) में हुए प्राणवह स्रोतों के आवरण से वात का प्रकोप होकर शुष्क कास के वेग हों तब भी यह योजना कार्य करती है। बालकों में होनेवाली कुत्ताखांसी वातिक कास ही है। इसमें वयो भेद से कण्टकारी लवण आदि का प्रमाण यथा योग्य न्यून करके प्रतिमात्रा अर्धगुञ्जा रसमाणिक्य (हरताल चूर्ण को अभ्रक के पत्रों या बिजली के गोले में तपाकर बनाया कल्प-विशेष) बढ़ा दें। आवश्यकतानुसार वायु तथा मल के अनुलोमक द्रव्यों या गुदवर्ति का उपयोग करें।

अनेक वैद्य वयःस्थों के वातिक कास (स्वतन्त्र या न्यूमोनिया के अङ्गभूत) में सौराष्ट्री (फिटकरी) की खील का उपयोग कर यशोलाभ करते हैं। यह अपने संकोचन गुण से कफ का निर्हरण कर कास को शांत करती है। बच्चों के वातिक कास (कुत्ता-खांसी) में यह अत्युपयोगी है। प्राचीन वैद्य इसका उपयोग तैल के अनुपान से (तैल मिश्र कर) करते हैं। संहिताओं में वातिक कास में तैल के अनुपान का पुष्कल विधान है भी। श्रद्धा उपजाने के लिए प्राचीन वैद्य सौराष्ट्री की गोली देकर कहते हैं--इसे कटोरी में रख इतना तैल डालें कि यह पूरी डूब जाय। पीछे दोनों को मिश्र कर पिला दें। तैल का वात शामक गुण सुविदित होने से इसकी व्याख्या यहां नहीं की जाती। अरुचि हो तो सौराष्ट्री को घृत के अनुपान से दे सकते हैं। तालीसपत्र भी बालकों के वातिक कास में गुणकारी पाया है। कोई सितोपलादि चूर्ण ही देते हैं।

टंकण के योगों में चन्द्रामृत, अग्निरस तथा भागोत्तर वैद्यों में सुप्रचलित और उत्तम गुणकारी हैं। केवल टंकण ही परम्परागत वैद्य देते हैं। टंकण, कण्टकारी, सैन्धव, यवक्षार आदि द्रव्य जिस अवयव में पहुँचते हैं वहां अपने द्रवाकर्षण[१] गुण (द्रवगुण) से अधिक जल खेंच कर स्थान-भेद से भिन्न-भिन्न कर्म करते हैं। प्राणवह स्रोतों में ये पहुँचते हैं तो जल का आकर्षण कर संसक्त कफ को पृथक् करते हैं, जिससे वह कास के वेग से सरलता से निकल आता है, और कास शांत होता है।

प्राचीनों ने विभिन्न धूमों का भी विधान शुष्क कास में किया है। मेरा इस विषय में विशेष अनुभव नहीं है।

१--Osmotic Pressure--ऑज्मोटिक प्रेशर।

(४३३ वें पृष्ठ का शेष)

एवंचैतदुपपन्नमेव। तदेवमात्रेयस्यापितन्त्र यतो बहवो दोषा उद्भाव्यन्ते ततः का गणना तन्त्रान्तराणाम्।"

अवधेयमिदं यत्–श्रीमताऽरुणदत्तेन चरके सदोषतां प्रकटयतां वाचाटतां वदता ख्यापितमात्मनस्तत्र सभक्तिकत्वम् आंशिकानि समाधानान्यपीह तेन प्रकाशितानि। ततश्च तद्विषये न बहु वक्तव्यम्। वाचाटेन अवाचाटेन येन केनापि वा तदिदमुक्तं स्यात्, किन्तु गवेषणा प्रधानेऽस्मिन्युगे ऽधीयानानां छात्राणां पुरतः अरुणदत्तविहितं चरकालोचनं यावन्न समाधीयते तावत्तेषाँ चरक विषये सदोषताबुद्धिः कथमिवापगच्छेत्। इमे एव भक्ति हीनतां नीताश्छात्राः स्वयमार्षग्रन्थान्निन्दन्ति परैर्निन्द्यमानांश्च न समाधातुमीषते इति।

विलिख्यमाने चरकस्य विज्ञानभाष्ये न केवलमक्षरार्थस्फोरणमेवास्माकमुद्देश्यम्। प्रत्युत तदीयदोषपरिमार्जनं, विसंष्ठुल पाठ निर्णयः, संदिग्धस्थलयोजनमित्यादयोऽप्यस्माकं मनोरथाः। तस्मात्सविनयं सेयं प्रार्थना यत्–कृपथा श्रीमदरुणदत्तनिर्दिष्टान् चरकीयदोषानुन्माज्यं समुद्धरन्तु शास्त्र सर्वस्वमिदमिति।

अपि च नायं कश्चिच्छास्त्रार्थः, अपितु परमेण सौभ्रात्रेण शास्त्रीय तत्त्व परामर्शः। तत्--"चरक के पाठ पर विचार कीजिये" इत्यक्षरैः पूर्वं यत्प्रार्थितं, तत्र मोहमयी स्थायुर्वेद हितैषिणी सभा मन्त्रिभिः 'आयुर्वेद' पत्रे नाग पुरीये मदीयनिर्णयमेवादिशद्भिः क्षन्तव्योऽहम्। भवतां विचारैः स्व विचारान् परिशोध्यैवममात्र किंचिद्वचनं युक्तं मन्ये। यतो लेखन व्यापृतोऽहं पूर्वं यत्र तत्र विसंष्ठुलतया प्रतिभातान् पाठान् श्रीमतां पुरस्तादुपस्थापयितुमेव यतिष्ये। इतोऽधिकः समग्रोऽपितु नास्ति।

--:०:--

आंत्रिक ज्वर (टाइफाइड)

डा० शंकरलाल भेड़ा एम० बी० बी-एस०,

बम्बई के कुछ ख्याति प्राप्त विद्वान वैद्यों के सत्प्रयत्न से, बम्बई में वर्तमान ३-४ आयुर्वेदीय संस्थाओं द्वारा संयुक्त सभा के रूप में "आयुर्वेद शास्त्रचर्चा व्याख्यान माला" के नाम से एक सभा आयुर्वेदाचार्य पण्डित कन्हैयालालजी भेड़ा के सभापतित्व में दो मास तक प्रति रविवार को चलती रही, इस सभा में "आन्त्रिकज्वर" (टाइफाइड) पर विद्वानों के विचार-विमर्श हुये। अनेक विद्वान वैद्यों ने इसमें भाग लिये, उसमें डा० शंकरलालजी भेड़ा एम० बी० बी० एस० आयुर्वेदाचार्य ने जो अपने भाषण में कहा था, उसीका संक्षेप सार नीचे प्रकाशित किया जाता है। आशा है "सचित्र आयुर्वेद" के विद्वान वाचकों के लिये यह ज्ञानवर्द्धक होगा।——स० सम्पादक

आंत्रिक ज्वर के वर्णन के पहले यह प्रश्न आवश्यक होता है कि ज्वर क्या है, यह एक पारिभाषिक शब्द है। ज्वर शब्द से केवल ताप वृद्धि का बोध होता है। संक्षेप में यह भी कहना पर्याप्त होगा कि जो गर्मी (ऊष्मा) सम मात्रा में रह कर शरीर का उपकार करती है, वही ऊष्मा मिथ्याहार तथा मिथ्या विहार से वृद्धिगत होकर भीषण रूप धारण करके आपाद मस्तक समस्त शरीर को उत्तप्त कर देती है। "ऊष्मा की इस अनुपयुक्त वृद्धि को ही ज्वर कहते हैं" इससे शरीर का ताप बढ़ जाता है और स्वेद मल-मूत्रादि सबों का ह्रास हो जाता है। नाड़ी की गति साधारणतः तीव्र हो जाती है। "ज्वरयति शरीराणीति ज्वरः। ज्वरयति संताप यति इति चक्रपाणिः। नान्ये व्याधयस्तथाविधा दारुणाः सोपद्रवा दुश्चिकित्स्याश्च यथायमिति। स सर्व रोगाधिपतिः, नानातिर्यग् योनिषु बहुबिधैः शब्दैरभिधीयते, सर्वप्राणभृतश्च स ज्वरा एवं जायन्ते सज्वरा एव म्रियन्ते। इत्यादि। (चरक)"

ज्वरः प्रधानो रोगाणां त्वचि सन्ताप लक्षणः।
देहेन्द्रिय मनस्तापी निजश्चागन्तुजश्चसः॥

यद्यपि ज्वर बहुधा भिन्न रूप होने पर भी मूलतः एक ही प्रकार का होता है, जैसा चरकानुशासन से स्पष्ट होता है। "ज्वरस्त्वेक एव सन्ताप लक्षणः" इति (च० नि० १ अ०) अर्थात् ज्वर तो एक ही प्रकार का है। क्योंकि सब प्रकार के ज्वरों में सन्ताप (त्वचा में गर्मी) होती है। सन्ताप शब्द का अर्थ है शरीर की स्वाभाविक ऊष्मा। यह प्राकृत पित्त का कर्म है। अग्नि रूप पित्त का कर्म है। अग्नि रूप पित्त से शरीर धातुओं के दह्यमान होने पर इस ऊष्मा रूपी सन्ताप की उत्पति होती है। जैसा चरक कहते हैं॥ "दर्शनं पक्तिरुष्माच क्षुत्तृष्णा देह मार्दवम्। प्रभा प्रसादो मेधाच पित्त कर्मा विकारजम्॥" यह सन्ताप ज्वर की रक्षा के लिए स्वाभाविक है, यदि सन्ताप का क्षय हो जावे तो अवश्य मृत्यु हो सकती है। किन्तु स्वाभाविक सन्ताप की सीमा का अतिक्रमण होना ही यहां सन्ताप शब्द से अभिप्रेत है। साधारण सन्ताप तो रोगी या वैद्य ही जान सकता है। यह सन्ताप तो त्वचा गत सन्ताप के विशेष होने से सर्व साधारण जन भी जान सकता है। इसीलिए ज्वर के साधारण लक्षण में "त्वचि सन्ताप लक्षणः" देहेन्द्रियमनस्तापी बतलाया है। स्वाभाविक संताप की परीक्षा नवीनतम से थर्मामीटर (तापमानयंत्र) द्वारा ९७ डिग्री से ९८ अंश पर्यन्त बलमात्रा भेद से मानी जाती है। इससे ऊपर को ज्वर सन्ताप कहते हैं। किसी किसी हीन सन्ताप वाले को ९८ डिग्री से देहेन्द्रिय मनस्ताप लक्षण युक्त ज्वर होता है। आंत्रिक ज्वर भी प्राचीन वैद्यक में सन्निपात विशेष अवस्था का नाम है। चरक ने १३ प्रकार के तथा भालुकि ने दो-दो दोषों की अधिकता से जो सन्निपात बताए हैं, उनके लक्षणों में भी इसका समावेश हो सकता है। सम्प्रति सन्तत ज्वर को आंत्रिक ज्वर कहते हैं। क्योंकि सन्तत ज्वर को दो तरह का आचार्य लोग मानते हैं। एक सन्तत के विषय में डल्हन लिखते हैं—

सन्निपातारब्धस्य सन्ततज्वरस्य, सप्तमे दिवसे प्राप्ते इत्यादिना मोक्षवधयोरवधिमभिधायेदानीमेकदोषज द्विदोषस्य विसर्गावधि कारेण लक्षणमाह—"सप्ताहं वा दशाहं वा

द्वादशाह मथापिवा। सन्तत्या यो विसर्गी स्यात् सन्ततः स निगद्यते।" अपरञ्च सुख साध्यः प्रकीर्तितः। चरक में "प्रायशः सन्निपातेन दृष्टः पञ्चविधो ज्वरः। सन्निपातेतु यो भूयात् सदोषः परिकीर्तितः॥" सन्तत ज्वर मे वातादि दोष एक साथ ही रसादि धातुओं तथा मलमूत्रादि को भी दूषित करते हैं, तथा "सशुध्यावाप्यशुध्यावा नवा शुध्यन्ति सर्वशः" इत्यादि वचनों से दोषों की सर्वथा शुद्धि न होने से यह २४ दिन तक तथा इससे अधिक समय तक भी चलता है। इसलिए प्राचीन आचार्य सन्तत ही इसको मानते हैं। म.म.स्व. कविराज श्री गणनाथ सेन सरस्वती जी ने इस को आंत्रिक ज्वर नाम दिया है। "अंत्राश्चयित्वादांत्रिकः।" सिद्ध भेषज मणिमाला कार श्री भट्ट जी ने इसे मौक्तिक ज्वर नाम दिया है। वे एक प्रयोग में लिखते हैं "मौक्तिक सुर्वण मिलनं लवंग मण्डूक पर्णिका तोयम्। मक्षीशीतकषायी ब्रज्रांत मौक्तिके शस्तम्।" इसकी टिप्पणी में आयुर्वेद जगद्गुरु स्वर्गीय श्री स्वामी लक्ष्मीराम जी लिखते हैं:—लोक में मोतीझरा के नाम से प्रसिद्ध यह सन्निपात ज्वर है।

कई इसे मन्थर ज्वर भी कहते हैं। जैसा योग चिन्तामणि, निदान दीपिका, योगरत्नाकर आदि में मिलता है। "ज्वरो दाहोभ्रमो मूर्च्छा ह्यतिसारोवमिस्तृषा। ग्रीवायां परिदृश्यन्ते स्फोटकाः सर्षपोपमाः। घृताशनात् स्वेदरोधान्मन्थरो जायतेनृणाम्।" इति। क. स्व. श्री गणनाथ सेनजीने तथा तदनुयायी उमयज्ञ विद्वानों नें विषाभिषंगज आगन्तु ज्वरों में आंत्रिक ज्वर का समावेश किया है। उन्होंने "विषं च तेषु प्रायेण भवेद् जीवाणु संभवम्। क्वचिदन्य विधंवापि द्वित्रिदोष प्रकोपणम्। विषंसर्वाशियान् प्राप्य कंचित् कस्यापि पीड़येत्।" इत्यादि श्लोकों से विष स्वभाव वैचित्यजन्य रोगों में इस का वर्णन करते हुए—"विष वृक्षा निलस्पर्शात् तथान्यैः विष संभवैः। अभिषक्तस्य चाप्याहु ज्वरमेकेऽभिषंगजम्।" इस चरक वचन के "विष संभवैः विकृत पर्युषितमत्स्य मांसादिभिरुपयुक्तैः सविष जीवाण्वादिभिश्च कृता ये ज्वरास्तेपि अभिषंगजाः। केचिदिति निर्देशेऽपि परमतमप्रतिषिद्धमनुमतमेव चरकेण। ये च सन्ततकादयः परंच विषमज्वरा अपि जीवाणुकृता एवेति वक्ष्यते तत्रापि अभिषंगज्वरजाः केचनप्राञ्चः "आगन्तुरनुबन्धोहि प्रायशो विषम ज्वरे" केचिद् भूताभिषंगोत्थं ब्रुवते विषम ज्वरम् इति अत्र भूताभिषंगजोजीवाणुकृतोऽभिषंगा इति व्याचक्षीरन् नव्याः।" इति। इस रीति से इस को जीवाणु जन्य प्रतिपादन किया है, तदनुसार ही मैं भी इसका वर्णन करता हूँ। आंत्रिक ज्वर प्रायः समस्त भूमंडल में होता है। विशेषतः उष्ण प्रदेशों में सभी ऋतुओं में विशेषतः ग्रीष्म वर्षा और शरद् ऋतु में भीषण लक्षण वाला होता है।

पूर्वरूप—एक सप्ताह तक शिर में पीड़ा, अरुचितम, अरति, मलकी विबद्धता यह लक्षण अस्पष्ट तथा स्पष्ट होते हैं।

लक्षण—यह रोग धीरे-धीरे बढ़ता है तथा इसमें शिरः शूल, अंगदर्द, अनुत्साह, ज्वर की अपेक्षा नाड़ी की गति मन्द, जिह्वा मलिन, जिह्वांकुर लाल, कोष्ठ बद्धता अथवा अतिसार, पीड़ा एवं यकृत् वृद्धि आदि लक्षण होते हैं। यह प्रथम सप्ताह में होता है।'

द्वितिय सप्ताह— इस सप्ताह में ज्वर तीव्र बना रहता है। किन्तु ज्वर की तीव्रता में भी नाड़ी कुछ ही चन्चल होती है, अधिक नहीं। अधिक वेग में तन्द्रा, प्रलाप, प्रमूढ़ावस्था, दुर्बलता, कास, उरुशोष, अरति, आक्षेपक, आध्मान आदि लक्षण विशेष रूप से होते हैं। इसमें जिह्वा लाल किनारों वाली-कर्कश तथा मध्यभाग में मलीन होती है। रोगी बेचैनी के कारण अपना सिर इधर-उधर पटकता है। कई बार सन्ताप अधिक, मुखाकृति चिन्ता शून्य, नेत्र स्तब्ध तथा तेज हीन हो जाते हैं। तथा इसमें अन्य भी सान्निपातिक लक्षण दीखते हैं। कभी-कभी इन्द्रियाँ नष्ट हो जाती हैं। तथा प्राणान्त भी हो जाता है। "अथ द्वितीय सप्ताहे प्रवृद्ध स्तिष्ठति ज्वरः। तदास्युररति स्तद्रा मुख शोषः प्रमीलकः।१। कासः प्रलापो दौर्वल्य आध्मानंच विशेषतः। जिह्वाच रक्त पर्यन्ता कर्कशा स्फुटितोपमा॥ सन्तापोऽभ्यधिकश्चापि धमनी नातिचन्चला। सान्निपातिक लिंगानामन्येषांचापि संभवः।" तीसरे-चौथे सप्ताह में यदि दोष पाक हो जाय तो ज्वर धीरे-धीरे कम होने लग जाता है। कहीं-कहीं विषमगति से ज्वर उतर जाता है, पसीना रुकने से गले के आस पास उदर तथा जंघा में मौक्तिकाकार पिड़िकाएँ होती हैं, जो हो-हो कर लीन हो जाती हैं। बहुत वैद्य इनको प्रायः आंत्रिक ज्वर की पिड़िकाएँ बताते हैं।

दोषपाक के लक्षण—"दोष प्रकृति वैकृत्यं लघुता ज्वर देहयोः। इन्द्रियाणाञ्च वैमल्यं दोषाणां पाक लक्षणम्।" जिस दोष की प्रकृति का अर्थात् जिस स्थिति में जाकर दोष ने

रोग उत्पन्न किया हो, उसके विपरित होना, ज्वर तथा शरीर हल्का होना, इन्द्रियों का अपने अपने विषयों के ग्रहण में समर्थ होना, ये दोषपाक (मल-पाक) के लक्षण हैं। मलपाक हो जाने से रोगी अच्छा हो जाता है। धातुपाक से रोगी की मृत्यु हो जाती है। जैसा लिखा है—"धातुपाकाद्धन्ति मल पाकात् विमुंचतीति व्यवस्थित विकल्पः। धातुमल पाकेच दैवमेव हेतुः।" उत्तरोत्तर रोग की बृद्धि तथा बल की हानि एवं शुक्र आदि धातुओं के सहित मूत्रादिका पाक होना धातुपाक कहलाता है। जैसा कहा भी है—"निद्रानाशो हृदिस्तम्भो विष्टम्भो गौरवा रुची। अरतिर्बल हानिश्च धातूनां पाक लक्षणम्॥ नाभेरूर्ध्वमधोद्धस्तात् पीड़ितेचेद् व्यथाभवेत्। धातोः पाकं विजानीया-दन्य-थातुमलस्यच।" नींद का न आना, हृदय का जकड़ जाना, मल का रुकना, गुरुता, अरुचि, पीड़ा और बलहानि ये धातु पाक के लक्षॅण हैं। ज्वर से पीड़ित मनुष्य के हृदय में नाभि से ऊपर पाक के कारण दुखते हुए अंगों को अंगुलियों से दबाने से पीड़ा हो तो धातु पाक समझना चाहिए। अन्यथा मलपाक जानना चाहिए। क्योंकि ऐसे रोगियों का जीवन मरण विशेष कर इन्हीं लक्षणों से मालूम होता है। यदि अंगों में होने वाले व्रणों में धमनी आदि फट जावें तो मल के साथ रक्त भी आने लगता है, यदि व्रण अधिक बढ़ जावें तो उदर्यकला शोथ भी हो जाता है। यह सप्ताह अत्यन्त भयानक होता है। इसीमें अतितीव्र ताप, प्रमूढ़ता, अतिसार, रक्तपात आदि हो जाने से मृत्यु हो जाने का भय भी रहता है।

तृतीय सप्ताह में ज्वर शनै-शनैः कम होने लगता है। अतिसरादि लक्षण भी कम होने लगते हैं। ज्वर भी सप्ताह के अन्त में उतर जाता है। चतुथ सप्ताह में ज्वर निकल जाता है परन्तु दुर्बलता रहती है, वह क्रमशः कम हो जाती है। यदि इसी समय पथ्यादि की अव्यवस्था हो जाय तो उदरकला शोथ में व्रणादि होने से ज्वर पुनः हो जाता है।

रोग परिक्षा :—

यह रोग पहिचानना कठिन नहीं है। क्योंकि इसमें ज्वर क्रमशः चढ़ता है। ज्वर की अपेक्षा नाड़ी की मन्दगति, जिव्हा मलिन, जिह्वांकुर लाल, कोष्ठबद्धता, अथवा अतिसार इन लक्षणों से स्पष्ट मीमांसा हो जाती है। विशेष पुनरावृत्त हो जाने से फिर उसी क्रम से ज्वर रहता है। और उतने दिन तक प्रायः ज्वर उतरता है। कभी-कभी अधिक रक्तश्राव होकर दशम दिन ही दुःसाध्य अथवा असाध्य अवस्था हो जाती है। उस समय रोगी की नाड़ी लुप्त हो जाने से मृत्यु भी हो जाती है। ऐसी बीमारी के अन्त में किसी किसी को बहिरापन, गूंगापन तथा पक्षाघात आदि उपद्रव हो जाते हैं। जो प्रायः उचित चिकित्सा से शान्त भी हो जाते हैं। आंत्रिक ज्वर का विस्तृत विवरण पाश्चात्य वैद्यक में लिखा है। ज्ञानवृद्धि के लिए वह भी जान लेना आवश्यक है। यह वर्णन विस्तृत रूप से होने से कई वर्तमान कालिक आचार्य सन्तत ज्वर से अलग मानते हैं। प्राचीन आचार्य इसे सन्तत या मन्थर ज्वर ही मानते हैं। क्योंकि चरक में लिखा है कि "यथाधातूं स्तथा मूत्रं पुरीषं चानिलादयः। अनुवध्नन्तियुगपदवश्यं सन्तते ज्वरे। "यदातु नातिशुध्यन्ति नवा शुध्यन्ति सर्वशः। द्वादशैते समुद्दिष्टाः सन्ततस्याश्रयास्तदा। विसर्गं द्वादशे कृत्वा दिवसे व्यक्त लक्षणम्। दुर्लभोपशमः कालं दीर्घमप्यनुवर्तते।" सन्तत ज्वर का निरन्तर दीर्घ काल तक बना रहने से प्राचीन आचार्य सन्तत को सान्निपातिक मानते हैं, अतएव रस-रक्तादि सात धातु मलादि तथा अंत्रों को दूषित करने से सन्तत ज्वर ही दुर्बल एवं हीन सत्त्व पुरुषों में बलवान होकर आंत्रिक अथवा मन्थर तथा मौक्तिक ज्वर के रूप में परिणत हो गया है। कई वैद्य इसे भिन्न ही मानते हैं।

चिकित्सा :—

अंशांशं यत्र दोषाणां विवेक्तुं नैवशक्नुयात्।
किंवा साधारणं तत्र विदध्यात्तु चिकित्सकः॥

यह ज्वर की सामान्य चिकित्सा सूत्र है। जिन रोगों में दोषों की अंशांश कल्पना का विवेक पूर्वक निश्चय करना कठिन हो वहां चिकित्सक को चाहिए कि साधारण चिकित्सा करे। जो किसी भी दोष को दूषित नहीं करे तथा साधारणतः दोष और व्याधि के शमन करने में अनुकूल हो। चिकित्सा में सर्वप्रथम पाचन कषाय का सुश्रुत उपदेश देते हैं।

नागरं देवकाष्ठञ्च ध्यामकं वृहती द्वयम्।
दद्यात् पाचनकं पूर्वं ज्वरितेभ्यो ज्वरापहम्॥

सोंठ, देवदारु, रोहिष (इसके अभाव में खस), दोनों कण्टकारी इन औषधियों का ज्वर नाशक पाचन ज्वर रोगी को देना चाहिए। यह अत्यन्त ही लाभ दायक योग है।

चक्रदत्त में ध्यामकम्" के स्थान पर "धान्यक" लिखा है। हमने धानिया डाल कर प्रयोग किया है, अच्छा लाभ होता है। "उदकांशस्त्रयः क्षीरे शिंशपासार संयुतम्। तत्क्षीर शेषं क्वथितं पेयं सर्व ज्वरापहम्।" शीशम का बुरादा १ तो०, दूध ८ तो० जल २४ तो०, डालकर पकाने से दूध मात्र वाकी रख कर पीने से इस सामान्य ज्वरावस्था में प्रशस्त फल होता है।

ज्वर में जल की व्यवस्था :—

ज्वर में प्रायः उष्णजल ही पीने को देना चाहिए। जैसा चरक आज्ञा देते हैं, ज्वरितस्य कायसमुत्थान देश कालानभिसमीक्ष्य पाचानार्थं पानीयमुष्णं प्रयच्छन्ति-भिषजः। ज्वरोह्यामाशय समुत्थः प्रायो भेषजानि चामाशय समुत्थानां विकाराणां पाचन शममनापतर्पण समर्थानिभवन्ति पाचनार्थंच पानीयमुष्णं तस्मादेव ज्वरितेभ्यः प्रयच्छन्ति भिषजोभूयिष्टम्। च. वि. अ. ३।

इस ज्वर में सम्यक् कृत लंघन के अधोवायु मूत्र और मल का विसर्ग, गात्रलाघव, हृदय, उद्गार, कण्ठ कफरहित मुख शुद्धि होना, अन्न में रुचि, क्षुत्, पीपासा, सहोदय आदि लक्षण होने पर भी अन्न नहीं देना चाहिए। विरेचन हो तो नागर मोथा से पक्व दूध देना चाहिए। रक्तातिसार हो तो ह्रीवेरादि क्वाथ, शोणितार्गल रस अथवा मौक्तिक पिष्टी, अकीक पिष्टी देनी चाहिए। पथ्य में दाड़िम पुट पक्क रस, सेव, तक्र, फटा हुआ दूध आदि दें। ज्वर को क्रम पूर्वक शांत करने के लिए गोदन्ती मिश्रण, संशमनी बटी, सिद्ध-योगसंग्रह का कालारिरस निरन्तर उपयोग करना चाहिए। दुर्बल अवस्था में मौक्तिक-सुर्वण प्रयोग लाभदायी है। नाड़ी लोप में कस्तूरी भैरव, जवाहर मोहरा (यूनानी) चतुर्भुज रस देना चाहिए। प्रलापावस्था में तगरादि क्वाथ या मांस्यादि क्वाथ के साथ ब्राह्मी वटी, वृ० वात चिन्तामणि देना चाहिए। प्रबल ज्वर में मस्तक पर शीतोपचार करना चाहिए।

मलावरोध तथा आध्मान हो तो देवदार्वादि लेप लगाना चाहिए। कास अधिक हो तो अभ्रक, प्रवाल, चन्द्रामृत, देना चाहिए। शिरदर्द ज्यादा हो तो श्रृंगभस्म, प्रवाल, गोदन्ती, मौक्तिक, शिरोवज्र रस देना चाहिए।

मूत्र कृच्छ्र हो तो क्षारपर्पटी का प्रयोग करना चाहिए। यह सामान्यतया चिकित्सा क्रम है। रोगी की अवस्थानुसार परिवर्तन होता रहता है।

मलेरिया आदि बुखार मात्र की
अचूक निर्दोष दवा
बैद्यनाथ प्राणदा
के
निर्माता
हिन्दुस्तान के औषध निर्माण कार्य में अग्रगण्य हैं
वे
आयुर्वेद शास्त्र की सभी दवाएँ
जैसे—आसव, अरिष्ट, चूर्ण, बटी, गोलियाँ, अवलेह, मोदक, पाक, तैल, घृत, लौह, मण्डूर, गूगल, पर्पटी, रस, रसायन, कूपीपक्व-रसायन धातुभस्म, शर्बत, अर्क आदि-आदि के साथ
सुप्रसिद्ध अचूक पेटेण्ट दवाएँ
जैसे—बैद्यनाथ प्राणदा, बालामृत, दादूरीन, सालसा, कफमिक्श्चर, कासवटी, श्वासकल्प, हीलर मलहम, हिमालय सुरमा, नेत्र-रक्षक, दन्तमंजन, क्षुधाकारीवटी, अर्ककपूर, अर्क-पुदीना, आदि-आदि सब बैद्यनाथ
विशेषताओं के साथ
निर्माण करते हैं
और ये अमोघ-गुणकारी दवाएँ आपको सारे हिन्दुस्तान में बैद्यनाथ की ४ निर्माण शालाओं, ५५ बिक्री केन्द्रों, तथा १५००० एजेन्सियों द्वारा सब जगह एक ही मूल्य में प्राप्त होती हैं।
श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

स्वेदावरोधक—स्वेदापनयन

वैद्य विश्वनाथ द्विवेदी, आयुर्वेद शास्त्राचार्य

पर्याय--स्वेदावरोधक--स्वेदापनयन, घर्मरोधक, अन-हाइड्रोटिक्स (unhydrotics), एन्टीहाइड्रोटिक्स (Antihydrotics)।

परिभाषा—जोओषधि पसीने के प्रवाह को या उत्पादन की क्रिया का अवरोध करके पसीना आना बन्द कर दे, उन्हें स्वेदावरोधक ओषधि कहते हैं।

अतिस्वेद निःसरण–पित्तज्वर, ज्वरान्तकाल, राजयक्ष्मा, विशूचिका, वमनकाल, आमवात, शीतांगावस्था, और ग्रीष्मऋतु में स्वेदका अति निर्गम होता है। पित्त ज्वर में ज्वर के वेग वृद्धि के साथ-साथ वमन के साथ प्रभूत स्वेद निकलता है। ज्वर की तीव्रावस्था के बाद शीत ज्वरों में पसीना देकर ज्वर उतर जाता है। राजयक्ष्मा में रात्रि में या रात्रि के अन्तकाल में स्वेद अधिक निकलता है। विशूचिका और वस्तों की तीव्रावस्था में स्वेद अत्यधिक निकल कर शीतांगावस्था होती है। सन्निपातज्वरों में तीव्रताप होने से स्वेद आकर पसीना आता है और शीतांगावस्था होती है। ग्रीष्मऋतु में स्वेद आता है अथवा उष्ण वस्तु ओषधि या ऊनी वस्त्रावगुण्ठन से स्वेद निकलता है। इनमें रोगावस्था में प्रभूत स्वेद निकलकर दुर्बलता होती है अथवा दुर्बलता होकर शीतांगावस्था होती है। आमवात में भी पसीना अधिक और दुर्गन्धित आया करता है। मोटे मनुष्य जो अति स्थूल होते हैं, उनको भी पसीना अधिक आता है। अतः इन अवस्थाओं में स्वेद के अति निर्गम का अवरोध करना स्वेदावरोधक ओषधियों का प्रधान कर्तव्य है।

ओषधियां—लौह, अभ्र, नागभस्म, रससिंदूर, यशद-भस्म, कुपिलु, पद्मकाष्ठ, कुलत्थ, लोध्र, सोंठ, वंशलोचन, कपर्द, प्रवाल, अरहर, कण्डे की भस्म, तथा इन से बनी हुई औषधियां तथा इनका उपयोग स्वेद को कम कर देता है।

आजवायन, भृंगराज, शराब-सुरा, ब्रह्मदण्डी, धतूरा, कायफल, वच, वत्सनाभ, अफीम, भुनाचना, शीतल उपचार, शीतलवायु, शीतपेय ये भी स्वेद प्रशमक होती हैं। इन औषधियों का उपयोग अंतः व बाह्य प्रयोग द्वारा होता है। अंतः प्रयोग में मुख द्वारा औषधि देते हैं। बाह्य प्रयोगमें उद्धूलन, घर्षण, लेप, प्रक्षालन इन क्रियाओं में प्रयोग करके स्वेद शमन किया जाता है।

भेद—स्वेदावरोधक औषधियां चार प्रकार से कार्य करती हैं।

(१) घर्मोत्पादक नाड़ी केन्द्र की उग्रता को शांत करके या उग्रता के हेतु को परित्याग करके।

(२) नाड्यन्त भागों की उत्तेजना को कम करके।

(३) त्वचागत रक्तवाही शिराओं के प्रसारण में अवरोध लाकर।

(४) केन्द्राभिमुखी वातवाहिनी नाड़ियों के क्रिया को ह्रास कराकर।

१--घर्मोत्पादक स्वेद केन्द्र की उग्रता

इस प्रकार केन्द्र की उग्रता को कम करने पर रक्त की सिरागत चाप का ह्रास होता है। स्वेद केंन्द्रकी उग्रता कम होते ही स्वेद आना कम हो जाता है। इस क्रिया के होनेपर रोगी में क्षीणता--दुर्बलता आती है। औषधि के अतिरिक्त उन औषधियों में जिनमें क्षीणता आ जाती हैं, शीतलस्वेद आने लगता है, तो इसके शमनार्थ--लौहभस्म, लौह के योग, अभ्रक, नागभस्म, रससिंदूर, द्राक्षासव, सुरा, कुपिलु या कुपिलुमिश्रित योग लाभप्रद होते हैं। स्थानान्तरण द्वारा शीत प्रधान देशों में वायु परिवर्तन लघु तथा बलकारक भोजन इस प्रकार के स्वेदागम को रोकता है। ज्वरान्त की दुर्बलता व स्वेदागम में पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह, सर्वज्वरहर लौह, बालरस, स्वर्ण माक्षिक भस्म, मालती वसंत, लघुमालती वसंत, द्राक्षासव, मृतसंजीवनी सुरा इत्यादि औषधियां दुर्बलता दमन कर स्वेद केन्द्र की उग्रता को शांत करके स्वेद-रोक देती है।

२--नाड्यन्त भाग की उत्तेजना

इस प्रकार की क्रिया करने वाली औषधियां चर्म के भीतर स्वेद ग्रन्थियों की उत्तेजना कम करके स्वेद निर्गमन रोक देती है। धतूरा, खुरासानी आजवायन, महुआ, अम्ल

प्रधान औषधियां, कनकासव, शुक्त, आरनाल, अम्लद्रव इत्यादि।

इनका प्रयोग स्थानिक भी होता है। अम्लरस की आरनाल या कांजी अथवा शुक्त या गंधकाम्ल के घोल में कपड़ा भिगोकर चर्म प्रान्त पर बार-बार प्रक्षालन करने पर उस स्थान की उग्रता कम हो जाती है। दाड़िम का रस जो अम्ल होता है या जम्बीर रस को जल मिश्रित कर यही प्रयोग करने पर चर्म प्रान्तस्थ उग्रता कम हो जाती है। कनकासव का प्रयोग श्वास-कास की अवस्था में जब चर्मस्थ उग्रता की वृद्धि हो जाती है, खांसते-खांसते स्वेदनिर्गम होने लगता है, तब इसका प्रयोग उग्रता कम करके स्वेद शमन कर देता है। अति स्वेदागम में उद्धूलन क्रिया का भी यही प्रभाव है। स्थानिक क्रिया होकर त्वगीय नाड्यन्त प्रान्त की उग्रता कम होने से स्वेदावरोधक लक्षण बन जाता है। दग्ध-वराट भस्म, कुलत्थ को भूनकर बना चूर्ण, अरहर, या चने का भुना हुआ चूर्ण, शुण्ठी—मिश्रित करके उद्धूलन करने पर स्वेद ग्रंथियों के नाड्यन्त भाग की उग्रता कम हो जाती है। लोध्र, कायफल इनका चूर्ण भी कण्डे की राख के साथ मिश्रित कर उद्धूलन-करने पर शीघ्र स्वेदावरोधक हो जाता है। केवल कण्डे की राख को छान कर उद्धूलन करने पर भी घर्म निर्गम कम हो जाता है। कर्पूर, रक्तचन्दन, चंदन और कमल का स्पर्श भी स्वेदावरोधक हैं।

३—त्वचागत रक्तवाही शिरा

त्वचा स्थित रक्तवाहिनी नाड़ियों के प्रसारण से रक्त-भार तथा मात्रा वृद्धि हो करके स्वेद आता है। इसका अवरोध इनकी प्रसारण-क्रियावरोध से हो जाता है। राजयक्ष्मा, आमवात या अन्य रोगों में स्वेद निर्गम को रोकने के लिए यशद भस्म, नागभस्म, अहिफेन व इसके बने योग, मालती वसंत, लघुमालती वसंत तथा इस प्रकार के यशद भस्म मिश्रित योगों का प्रयोग इन्हें शांत कर देता है। राजमृगांक, मृगांक, लोकनाथ रस, प्रवाल पंचामृत, सितोपलादि, तालिसादि, तथा वंशलोचन के अन्ययोग इसमें परमोत्तम लाभदायक होते हैं। प्रवाल, मुक्ता, शंख, शुक्ति, कपर्द इत्यादि चूनेके योग इसमें लाभप्रद होते हैं। मुक्ता की भस्म, पिष्ठी व मुक्ता की अधिक मात्राके सब योग इसमें लाभप्रद होते हैं। केवल कपर्द भस्म २ रत्ती की मात्रा में प्रयुक्त होने पर निशाघर्म या घर्म का अवरोधक होता है। अहिफेन, वत्सनाभ के योग स्वेद-केन्द्र व नाड्यन्त भाग की उग्रता कम करके स्वेदावरोधक होते हैं। अहिफेनासव, कर्पूरासव, कनकासव में रक्त भार शैथिल्य करने की क्षमता है और इसी कारण स्वेदावरोधक होते हैं।

४—केन्द्राभिमुखी वातवाहिनी नाड़ी

त्वगीय प्रान्त की उत्तेजनात्मक क्रिया को घटाने के लिए शीतोपचार की क्रिया, शीत वायु का सेवन, व्यजन, पंखा आदि का प्रयोग, खस की टट्टी का प्रयोग स्वेदावरोधक हो जाता है।

शीतल जल-स्नान, शीतल वस्त्रावगुंठन, शीतल लेप—कर्पूर, चंदन, कुंकुम, कमल, कल्हार, कर्दम का लेपन कर पंखा झलने से, वर्फ का शीत वस्त्र रखने से स्वेद कम हो जाता है। अम्लपानक (शर्बत)—नीबू का शर्बत, (स्केश) नीबू का पानक, शहतूत का शर्बत, शुक्त व सिरका का सेवन, अम्ल रस युक्त द्रव का सेवन, तिक्त रस वाले द्रव्य का क्वाथ, चिरायता, गुडूची, सप्तपर्ण के क्वाथ शीत आदि का सेवन भी नाड़ियों की क्रिया का ह्रास कर देता है। कुपिलु मिश्रित औषधियों का प्रयोग भी स्वेदावरोधक होता है।

इस प्रकार स्वेदवरोधक क्रियाओं का प्रयोग करते हैं। सामान्यतया दुर्बलावस्था, तीव्रतापावस्थामें विशेष कर सद्यः प्रभावरोधक क्रिया का प्रयोग करना पड़ता है। पित्ताधिक्य होकर यदि पित्त ज्वर में स्वेद आ रहा हो तो पित्त शामक उपचार, क्वाथ, लेप आदि का प्रयोग लाभकर होता है। तिक्त व अम्लरस की औषधियाँ लाभप्रद होती हैं। तीव्रता की दशा में मधुर व तिक्त रस की औषधियाँ पित्त शामक गुण करके लाभप्रद हो जाती हैं। सन्निपात ज्वरों की तीव्रतापावस्था, मलेरिया व जीर्ण विषम ज्वरोंकी तापावस्था में स्वेदाधिक्य होकर दुर्बलता में लौह, यशद, नाग, अभ्रक, स्वर्ण माक्षिक व मण्डूर के योग लाभप्रद होते हैं। मलेरिया में हेतु दूर होते ही स्वेद बंद हो जाता है।

आमवात में गुडूच्यादि कषाय, आरग्वधादि क्वाथ का प्रयोग लाभप्रद होता है। मेदस्वी स्त्री-पुरुष में स्वेद की ग्रंथियाँ उष्णता की समता रखने के लिए स्वेद देती हैं। इसमें मेद की कमी करना ही स्वेदावरोधक कर्म होता है।

—:o:—

मन और शारीरिक स्वास्थ्य

प्रो० लालजी राम शुक्ल बी. ए. बी. टी.

सभ्यता का जैसे-जैसे विकास होते जाता है, वैसे-वैसे रोगों की वृद्धि होती जाती है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ नई चिकित्सा विधियों का आविष्कार होता है। परन्तु, रोग भी नये-नये रूप में प्रकट होना सीख लेता है। इसका कारण कुछ तो जिस प्राकृतिक वातावरण में मनुष्य रहता है, उसका दूषित होना है; परन्तु इसका प्रधान कारण मनुष्य की मानसिक जटिलता बढ़ना है। सभ्यता मनुष्य की बौद्धिक उन्नति का परिणाम है। बुद्धि की उन्नति के साथ-साथ मनुष्य की शक्ति बढ़ती है और इसके साथ-साथ उसका अभिमान भी बढ़ता है। जिस मनुष्य का अभिमान जितना अधिक होता है, उसकी आन्तरिक समस्याएँ भी उतनी ही अधिक होती हैं। समाज में प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये उसे अपने आपको दूसरों से छिपाना पड़ता है। यही आदत उसे अपने आपको स्वीकार करने से रोकती है। वह आन्तरिक स्वत्व को दूसरों के समक्ष नहीं आने देता। फिर यह दमित स्वत्व अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोगों में प्रकाशित होता है।

यदि हमने कोई कार्य अपने आप द्वारा सही समझे गये नैतिक नियम के विरुद्ध किया, तो उसका दण्ड हमें अवश्य मिलता है। मनुष्य अपनी नैतिक बुद्धि के अनुसार चलकर शरीर और मन में बलवान होता है। नैतिक बुद्धि की अवहेलना करने पर मनुष्य का मन अर्थात् उसकी इच्छा शक्ति निर्बल हो जाती है। फिर उसे किसी प्रकार का भय उत्पन्न हो जाता है। साधारण विचार ही मनुष्य को त्रास देने लगता है। जिस प्रकार की बात से मनुष्य सदा भयभीत रहता है, वही उसके जीवन में चरितार्थ हो जाती है। मनुष्य का भय उसका विकृत आत्म-निर्देश बन जाता है। और; आत्म-निर्देश से अनेक प्रकार के शारीरिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

लेखक के एक युवा शिष्य को कुछ काल पूर्व क्षय रोग का भ्रम हो गया था। इस रोग के पूर्व उसका मन भारी असंतोष की अवस्था में रहता था। वह इस असंतोष का कारण नहीं जानता था। क्षय रोग के होने के पूर्व यह शिष्य लेखक की संरक्षता में दो वर्ष तक रह चुका था। और अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक प्रश्न पूछ चुका था। उसके विचारों से मानसिक समस्याओं का कुछ पता अवश्य चलता था। परन्तु; उससे यह पता नहीं चलता था कि उसके मन में अपराध की मानसिक ग्रन्थि है। उसकी स्त्री मर चुकी थी और अब वह संसार से विरक्त-सा होकर रहता था। दूसरे विवाह करने का प्रयत्न जब माता पिता ने किया, तो उसने अस्वीकार कर दिया। बनारस विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा पास कर लेने पर उसने एक साधु के पास रहना प्रारम्भ कर दिया। साधु महात्मा ने मानसिक शान्ति प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार साधनाएँ कराईं। उनमें एक साधना तेरह दिन तक साधु के साथ-साथ निराहार उपवास की थी। इस साधना के बाद यह शिष्य इतना कृष्णकाय हो गया कि वह चल फिर नहीं सकता था। इसके बाद ही उसे क्षय रोग हुआ।

जब उक्त शिष्य एक क्षय रोग के उपचार गृह में पड़ा था, तब वह आन्तरिक शान्ति के लिये लेखक से पत्र व्यवहार करता रहता था। इस प्रकार के पत्र व्यवहार में लेखक ने उसे बताया कि कई क्षय रोग के रोगी मानसिक कारणों से रोगी हो गये थे और जब उनके रोग का मानसिक कारण जाता रहा, तो वे स्वस्थ हो गये। रोग कभी-कभी प्रायश्चित के रूप में बुलाया जाता है और कभी-कभी दूसरे लोगों की सहानुभूति पाने के लिये रोगी उसे पकड़ लेता है। इस शिष्य को बताया गया कि उसके पुराने जीवन के अध्ययन से पता चलता है कि वह किसी दबी हुई पाप भावना के लिये अपने अनजाने ही प्रायश्चित कर रहा है। यदि वह उसे स्वीकार करले और जानबूझकर उचित प्रायश्चित करे, तो उस रोग से वह मुक्त हो जायगा।

इस प्रकार के सुझाव के पश्चात् उसे अपनी पुरानी स्मृति याद आई। उसने लिखा कि उसकी पहली स्त्री की मृत्यु का कारण वही है। वह बड़ा ही कामुक था। स्त्री रूपवती, शीलवती तथा गुणवती थी। जब वह रोग ग्रस्त हो जाती थी, तब भी वह अपनी इच्छा तृप्ति के

लिये उसे त्रास देता ही रहता था। इस प्रकार उसे क्षय रोग हो गया। इस समय भी उसने उसके साथ काम-क्रीड़ा करना न छोड़ा था। सम्भवतः उसकी विषय गामिता के कारण ही उसकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार की भावना रोगी को बहुत दिन तक आत्म-ग्लानि के रूप में त्रास देती रही। फिर उसने उसे भुलाने की चेष्टा की। जब स्मृति भुला दी गई, तो उसे भारी मानसिक अशान्ति हो गई। वह सदा अकारण चिन्ता, भय और आत्म भर्त्सना के भाव से त्रसित रहता था। छोटी-छोटी बातों के लिये वह अपने आपको कोसता था। और; कभी-कभी उनके लिये भारी प्रायश्चित भी करता रहता था। परन्तु; इससे उसका मन शान्त न हुआ। अन्त में उसे क्षय रोग हो गया।

आत्म-स्वीकृति से रोगी का मन हल्का हो गया। उसे मैत्री भावना का अभ्यास करने को कहा गया। पुरानी भूल का सुधार उस भूल के लिये करना नहीं, वरन् कुछ भले काम करना है। यदि अपनी भूल के कारण किसी व्यक्ति की जान चली गई, तो उसका सुधार दूसरे अनेक लोगों की सेवा करके और उन्हें प्राण दान देकर ही हो सकता है। इस शिष्य ने अपने जीवन का लक्ष्य ही समाज सेवा बना लिया और उसे व्यवहारिक रूप से करने लगा। इसके परिणाम स्वरूप उसके रोग में धीरे-धीरे सुधार हो गया। जब मनुष्य सोचने लगता है कि उसका स्वास्थ्य सुधर जायगा, तो वह अवश्य ही स्वास्थ्य लाभ कर लेता है। और; जब वह सोचता है कि उसका स्वास्थ्य लाभ करना सम्भव नहीं, तो वह स्वास्थ्य लाभ नहीं कर पाता।

मन की दुर्बल अवस्था में मनुष्य के मन में स्वास्थ्य वर्धक निर्देश ठहरते ही नहीं। कभी-कभी रोगी किसी रोग का आवाहन करते रहता है ताकि वह आत्म-वेदना से बच जाय। इस तरह कितने ही रोगी दमा, क्षय, उक्वत, शूल आदि रोगों से पीड़ित रहते हैं। इन रोगों को ये रोग नहीं पकड़े रहते वरन् रोगी ही इन रोगों को पकड़े रहता है। यहाँ रोग इनके जीवन का सहारा रहता है। ऐसे रोगियों का यदि शारीरिक रोग हटा दिया जाय, तो वे परेशान होकर आत्म-हत्या ही कर डालें। रोग उनकी आन्तरिक वेदना को कम करता है अथवा वह उसे बाहर निकालते रहता है।

लेखक के पास दो साल पूर्व एक सिर की पीड़ा से त्रस्त एक प्रतिभावान युवक आया। इसकी आयु २१ वर्ष की थी। वह बी० एस० सी० पास था और सरकारी काम के लिये ट्रेनिंग पा रहा था। इसे सिर की पीड़ा चार साल से त्रास दे रही थी। उसने अनेक डाक्टर और वैद्यों से चिकित्सा कराई, परन्तु रोग न गया। जब मानसोपचार के परिणाम स्वरूप उसका रोग कम हुआ, तब उसे एक दिक्कत आ गई। वह कहने लगा कि मेरी मानसिक परेशानी अब और भी बढ़ गई है। पहले मैं सोचता था कि मेरा रोग मेरे सिर में है और इसी के कारण मैं परेशान हूँ। परन्तु; अब मुझे ज्ञात हो गया कि सिर की पीड़ा कल्पित ही है, तब इस मानसिक बेचैनी को कैसे हटाऊँ। इस व्यक्ति का मन अनेक कारणों से दुखी था। वह रोगी बनकर अपने सम्बन्धियों का विशेषकर अपने पिता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता था। जब इस प्रकार के प्रेम की भूख की पूर्त्ति हो गई, तो उसके सिर की पीड़ा जाती रही।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि मनुष्य की प्रेम की भूख भी उसका रोग बन जाती है। ऐसा रोगी अपने सम्बन्धियों का ध्यान किसी न किसी प्रकार अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है। यदि ध्यान स्वस्थ रूप से आकर्षित हुआ, तो रोग नहीं होता। परन्तु; जब स्वस्थ रूप से ध्यान आकर्षित नहीं होता, तो रोग की सृष्टि व्यक्ति का अचेतन मन अपने आप ही कर डालता है। बच्चों के और स्त्रियों के बहुत से रोग इसी प्रकार के होते हैं। बहुत से अविकसित मन के लोगों के रोगों का भी यही कारण होता है। अविकसित मन का अर्थ बुद्धि में कम नहीं वरन् भावात्मक दृष्टि से अतृप्त व्यक्ति के हैं। बहुत से लोग बुद्धि में प्रखर होते हैं, परन्तु भावों की दृष्टि से बच्चे ही रहते हैं। जो व्यक्ति दूसरे के प्रेम और प्रशंसा का इच्छुक हो, वह भावों की दृष्टि से बच्चा ही है। जब ऐसे व्यक्ति के हृदय की माँग की पूर्ति हो जाती है, तो उसका रोग चला जाता है।

कभी-कभी मनुष्य का मन बड़ी जिम्मेदारी से बचने के लिये रोग का आविष्कार कर लेता है। कितने ही विद्यार्थियों को ठीक परीक्षा के समय इसी कारण अनिद्रा का रोग हो जाता है। कितने ही दूसरे लोगों को दूसरे प्रकार के रोग इसी कारण से उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार के रोग रोगी को आत्म-सम्मान खोने से बचा देते हैं। संसार

के लोग कहने लगते हैं कि अमुक व्यक्ति में योग्यता तो पर्याप्त है, परन्तु रोग के कारण ही वह किसी कार्य में अपेक्षित सफलता प्राप्त न कर सका। लड़ाई में कितने ही सिपाहियों को अप्रिय जिम्मेदारी से बचने के लिये लकवा हो जाता है। जब ऐसे व्यक्तियों के ऊपर से जिम्मेदारी हटा ली जाती है, तो वे स्वस्थ्य हो जाते हैं।

उक्त दो प्रकार के रोग अपने आप में आत्म विश्वास की कमी के परिचायक हैं। जिस व्यक्ति में आत्म-विश्वास बढ़ा रहता है, वह न तो किसी दूसरे व्यक्ति के प्रेम की लालसा रखता है और न वह अपने ऊपर आई जिम्मेदारी से जी चुराता है। परन्तु; आत्म-विश्वास मनुष्य में धीरे-धीरे आता है। जिस व्यक्ति को बचपन में माता-पिता का तथा दूसरे सम्बन्धियों का पर्याप्त प्रेम नहीं मिलता, उसमें आत्म-विश्वास का विकास नहीं होता। मनुष्य की शक्तियों का विकास व्यक्तिगत वस्तु नहीं, अपितु सामाजिक वस्तु है। हममें अपने आपसे उतना ही विश्वास रहता है, जितना विश्वास हमारे सम्पर्क में आनेवाले लोग हमारे विषय में रखते हैं। मनुष्य के अतीत के अनुभव उसके स्वभावके अंग बन जाते हैं। जिस व्यक्ति को सभी लोगों का प्रेम मिलता है, जिसपर सभी ने विश्वास किया है, वह अपने ऊपर भी विश्वास करता है। ऐसा व्यक्ति दूसरे लोगों के प्रेम और प्रशंसा का भूखा न रहकर दूसरे लोगों को अपना प्रेम देता है और उनकी सेवा में मन लगाता है। हम अभी तक अपनी चिकित्सा विधि में केवल बाहरी लक्षणों की चिकित्सा मात्र करते आये हैं। संसार के वैद्य और डाक्टर यदि मनुष्य के रोगों की शारीरिक चिकित्सा करने के साथ-साथ उसकी मानसिक चिकित्सा भी करें, तो न केवल उनका काम सरल हो जावे, वरन् रोगी को अधिक लाभ भी पहुँचे। रोगी का रोग उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में किसी प्रकार की कमी का द्योतक है। इस कमी को पहचानना उसे रोग से मुक्त करने के लिये आवश्यक है। चिकित्सक को चाहिये कि रोगी को स्थायी आरोग्य प्रदान करने के लिये वह उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की चिकित्सा करें। इसका अर्थ उसके मन को समझे और उसकी दमित इच्छा की शक्ति को सदुपयोग में लाने के उपाय की खोज करे।

हमारे कितने ही डाक्टरों को यह पता ही नहीं कि मानसिक व्याधि शारीरिक व्याधि बन सकती है। इस प्रकार के वैद्य और डाक्टर रोग का बाहरी उपचार करते रहते हैं। परन्तु; रोग शरीर से नहीं जाता। यदि वह कुछ काल के लिये जाता भी है, तो बाद को वह भयानक रूप लेकर आता है। कभी-कभी रोग रुपान्तरित होकर ठहरा रहता है। देखा गया है कि उकवत (एक्जिमा) के रोगियों का जब बाहरी रोग हल्का हो जाता है, तो उनकी मानसिक वेदना बढ़ जाती है। उकवत के एक रोगी ने लेखक से कहा कि जब उसका उकवत का रोग कम हो जाता है, तो उसका मन बहुत अशान्त हो जाता है। वास्तव में भीतरी आत्म ग्लानि की भावना ही उकवत का रूप धारण करके प्रकट होती है। जब तक उसे प्रकट होने दिया जाता है, तब तक रोगी का मानसिक खिंचाव कम रहता है। जब इसका दमन किया जाता है, तब मानसिक खिंचाव बढ़ जाता है। वह फिर अकारण चिन्ता और भय तथा चिड़चिड़ेपन में प्रकट होता है।

गत वर्ष लेखक के पास एक डाक्टर मित्र ने एक कॉलेज के विद्यार्थी को भेजा। इस विद्यार्थी के दो साल से पेट की पीड़ा थी। इसका उपचार उसने अनेक वैद्य और डाक्टरों से कराया। परन्तु; रोग दिन-प्रति दिन बढ़ता ही गया। इस विद्यार्थी से मानसिक शैथिलीकरण का अभ्यास कराया गया। उसे अनेक प्रकार से प्रेम और सहानुभूति के साथ अपने पास रक्खा, इसके परिणाम स्वरूप उसका रोग कम हो गया। इसके मनोवैज्ञानिक अध्ययन से पता चला कि यह व्यक्ति प्रेम का भूखा है। उसके स्वाभिमान को उसके बड़े भाइयों ने तथा उससे स्नेह करने वाली एक लड़की ने ठेस पहुँचाया था। लेखक के समक्ष उसने अपनी सभी भावात्मक घटनाओं को कहा। सहानुभूति पूर्वक उन्हें सुनने पर और अपने सम्बन्धियों के प्रति उससे मैत्री भावना का अभ्यास कराने पर उसका रोग सदाके लिये चला गया। आज यह विद्यार्थी एक मेडिकल कालेज में भली प्रकार से पढ़ रहा है। इस विद्यार्थी की मानसिक व्याधि हट जाने पर उसकी शारीरिक व्याधि अपने आप ही हट गई।

आधुनिक मनोविज्ञान की खोजों से पता चला है कि प्रायः सभी पेट के रोगियों के रोग का मूल कारण मानसिक होता है। वियना नगर के प्रसिद्ध मानसिक चिकित्सक,

(शेषांश ४५९ पर)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के
झाँसी निर्माण केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

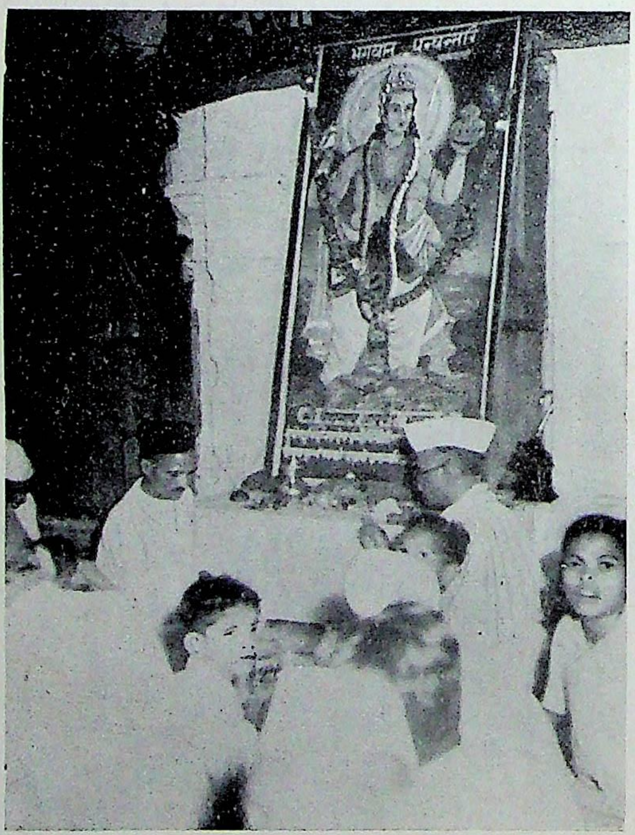
भगवान धन्वन्तरि

श्री धन्वन्तरि पूजन

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के अध्यक्ष श्रीयुत् पं० रामनारायणजी वैद्य (बायीं तरफ काली टोपी लगाए हुए) भगवान् धन्वन्तरि का पूजन कर रहे हैं।

श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि
धन्वन्तरिजयन्तीमहोत्सव

श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह झाँसी

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के झाँसी निर्माण केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर समुपस्थित वैद्यों तथा नागरिकों का एक दृश्य।

गठिया

कविराज मूलशंकर त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य

(गत जौलाई अंक से आगे)

आयुर्वेद के विद्वान अति प्राचीन काल ही से आमवात के सर्वांगगत, अस्थिगत, मज्जागत और संधिगत रूपों को भली भांति जानते हैं। आयुर्वेद के विभिन्न ग्रन्थों में आमवात पर अच्छा साहित्य उपलब्ध है अतएव स्पष्ट है कि वैद्य समुदाय के लिये यह व्याधि नई नहीं है। जन साधारण 'गठिया' अथवा 'गठियावात' संज्ञा द्वारा इससे भली भांति परिचित हैं। यही कारण है कि मैंने इसे ही उपयुक्त संज्ञा माना है।

गठिया चिकित्सा

यह देखते हुए कि गठिया का उद्गम बहुत अंशों में वंशानुगत है, उसकी चिकित्सा स्वयं में ही निहित है। अतः औषधियों के नियमित प्रयोग से गठिया के विष के उत्पन्न होने तथा उसके संचित होने की प्रवृत्ति को रोकना अनिवार्य है।

गठिया के दौरे के समय तात्कालिक चिकित्सा के सम्बन्ध में एलौपैथी के इस विषय (गठिया) के विशेषज्ञ जो कि स्वयं भी बहुत समय तक इससे पीड़ित रहे 'डाक्टर साय डन हम लिखते हैं—"गठिया की वेदना यें यदि प्रलेप की आवश्यकता अनिवार्यतः हो तो इस सम्बन्ध में मैं तो यही कहूंगा कि मैंने स्वयं अनेक औषधियों का प्रलेप किया और अन्य रोगियों पर भी उसका प्रयोग किया किन्तु मुझे उससे कोई संतोषजनक परिणाम नहीं मिला।" यह असंभव नहीं कि आज भी एलोपैथी में ऐसे प्रलेपों का अभाव ही है, जो गठिया की वेदना दूर कर सके; किन्तु आयुर्वेद में ऐसे प्रलेपों की कमी नहीं है। गठिया की चिकित्सा में—

लंघनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनिच।
विरेचनं स्नेहपानं वान्तयश्चाम-मारुते।
रूक्षः स्वेदोविधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा॥

लंघन कराना, पसीना निकलवाना, चरपरे, कड़वे और दीपन पदार्थों का भक्षण कराना, विरेचन, स्नेहपात वस्ति और बालू की पोटली के द्वारा रूक्ष पसीना देना यह सब उपचार कराने चाहिये।

यह तथ्य सर्वमान्य है कि ठंड इस व्याधि के लिये हानिकारक तथा उष्णता आरामदायिनी होती है। कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं जबकि 'यूरेट आफ सोडा' इतने अधिक परिमाण में संचित हो जाते हैं कि त्वचा में व्रण हो जाते हैं और उससे यह लवण तरल रूप में प्रवाहित होता है। पुलटिस आदि के यत्न से इस तरल पदार्थ के प्रवाह को प्रोत्साहित करना चाहिये जिससे संधि की रक्षा हो सके। साथ ही यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि रोगी अधिक कमजोर न होने पाये।

जल चिकित्सा का हार्वे और उसके बाद अनेक चिकित्सकों ने प्रयोग किया। डा० पेरी के पास एक समय दो रोगी आये। वे गठिया के दौरे में वेदना से अविलम्ब मुक्ति पाने के लिये ठंडे जल में पैर डुबोये रखे। इससे उन्हें आराम तो अवश्य मिला किन्तु कुछ ही घंटो में दोनों की मृत्यु सन्यास रोग से हो गई। सर फ्रेंसिसबरडेट के भी एक प्रयोग से उक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

गठिया और एरण्ड तेल

आमवात गजेन्द्रस्य शरीर वनचारिणः।
एक एव निहन्त्याशु एरण्ड स्नेह-केसरी॥

विनोले, कुलथी, तिल, जौ, अंड की जड़, अलसी पुनर्नवा और सन के बीज, इन सब द्रव्यों को एकत्र कर अथवा एक-एक को अलग-अलग कूट कर कांजी में भिजो के पोटली बना लें, उन पोटलियों से प्रभावित अंगों को सेंकने से भंयकर वेदना दूर होती है।

मकोय, केऊँआ, सैंजिनी की जड़ और बांबी की मट्टी यह सब समान भाग एकत्र कर गो मूत्र में पीस उष्ण कर प्रलेप करायें।

अरण्ड के बीजों को दूध में खीर बनाकर पिलाने से गठिया और गृध्रसी दोनों दूर होते हैं।

लहसुन का रस और घृत समान भाग पिलाना लाभदायक है।

सोंठ और गोखुरू का क्वाथ गठिया के लिये हितकर हैं। किरमाले (अमलतास) के पत्ते तेल में भूंजकर चावलों के साथ नित्य खिलाने से गठिया दूर होता है।

रास्ना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखुरु, अण्ड की जड़ और पुनर्नवा इनके क्वाथ में पीपल का चूर्ण डालकर पीने से जंघा, उरु, पृष्ठ, त्रिक और पार्श्व शूल आदि दूर होते हैं।

दशमूल, गिलोय, अण्ड, रास्ना, सोंठ और देवदारु इनके काढ़े में अण्डी का तेल मिलाकर पान कराने से गठिया नष्ट होता है।

दशमूल के काढ़े में पीपल का चूर्ण डालकर पिलाने से गठिया दूर होता है।

खरेंटी, अडूसा, अरण्ड की जड़, धमासा, दारु हल्दी नागर मोथा, सोंठ, अतीस, हर्रे की छाल, गोखुरू, चव्य, दोनों कटियाली, सहजना और एक से चौगुना रास्ना इन सबके चूर्ण का क्वाथ बनाकर पिलाने से गठिया, पक्षाघात, कंप, संधिवात आदि अनेक रोग शांत होते हैं।

हरड़, सोंठ, और गिलोय के काढ़े में सोंठ का चूर्ण मिलाकर पिलाने से अथवा सौंफ, बाय विडंग, सेंधा नमक, काली मिर्च ये समान भाग बारीक चूर्ण को किञ्चित् उष्ण जल के साथ पीने से गठिया दूर होता है तथा जल के साथ अग्नि दीप्ति होती है।

सेंधा नमक दो तोले, अजमोद तीन तोले, सोंठ पांच तोले और हरड़ बारह तोले ले उसका बारीक चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को दहीका तोड़, काञ्जी, तक्र, घी, और गरम जल इनमें से किसी एक अनुपान के साथ पीने से गठिया, गुल्म, हृदय रोग, प्लीहा, ग्रन्थि रोग, शूल, अर्श, उदररोग आदि नष्ट होते हैं।

अजमोदा, काली मिर्च, पीपली, वायविडंग, देवदारु चित्रक, सौंफ, सेंधा नमक, पीपला मूल प्रत्येक समान भाग, दस भाग सोंठ, दस भाग विधारा, पांच भाग हर्रे की छाल और इन सब के बराबर गुड़ लेकर विधिवत गोलियां बना लें। उष्ण जल के साथ इन गोलियों के सेवन से गठिया, शूल, अफरा, गृध्रसी, शोथ, अस्थि पीड़ा आदि नष्ट होती है।

अलम्बुषा, गोखुरू, गिलोय, विधारा, पीपल, निसोथ, नागर मोथा, वरना, पुनर्नवा, त्रिफला, सोंठ इन सबका बारीक चूर्ण दही के पानी दूध और मांस रस इनमें से किसी एक के साथ सेवन कराने से गठिया और संधिज शोथ नष्ट होता है।

योगराज गुग्गुल, सिंह नाद गुग्गुल, वृहत् सिंहनाद गुग्गुल, अमृत गुग्गुल, व्याधि शार्दूल गुग्गुल, त्रिफला गुग्गुल- इस व्याधि के लिये अमृत तुल्य औषधियां हैं।

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, सोंठ, कुटकी, त्रिफला, किरमाले की गिरी समभाग और एक से तिगुनी हर्रे की छाल इन सबों का चूर्ण और पारे-गंधक की कज्जली दोनों को मिलाकर भली भांति खरल करें। एक माशे इस निर्मित रस का सोंठ और अरण्ड की जड़ के क्वाथ के साथ सेवन कराने से गठिया बहुत ही थोड़े समय में नष्ट हो जाता है।

विधारा, निसोत, दन्ती, हस्तिकर्ण-पलाश, चीता, मानकन्द, त्रिकुटा, त्रिफला और त्रिमद यह सब समान भाग और सबके समान लौह लें, सबको एकत्र कर चूर्ण बना सेबन कराने से आमवात रोग नष्ट हो जाता है।

ग्रन्थकारने इस लौह की प्रशंसा में लिखा, है—'सर्वानेतान्गदान्हन्तिदन्तिनः केसरी यथा' हर्रेकी छाल, सेंधा नमक, निसोत, इन्द्रायण के फल की गिरी, इन्द्रायण की जड़ और सोंठ का चूर्ण जल के साथ लोहे के पात्र में डालकर मंद-मंद आंच में पकायें। जल औटकर गाढ़ा होने पर बेर के समान गोलियां बना लें। एक गोली प्रातः काल उष्ण जल के साथ सेवन करने तथा तदुपरांत घृतयुक्त चावल खिलाने से गठिया दूर हो जाता है।

जारित और पुटित लोहे का चूर्ण पांच पल, शुद्ध गूगल पांच पल, अभ्रक की भस्म ढ़ाई पल, क्वाथ के लिये त्रिफला प्रत्येक बारह पल पांच तोले लेकर छः सौ तोले जल में पाकवें जब अष्टमांश शेष रह जाये तब उसे उतार लें तदुपरांत उसमें लोहे का चूर्ण, गूगल, अभ्रक, दूध, शतावर का रस, प्रत्येक एक-एक प्रस्थ डालकर लोहे अथवा मिट्टी के पात्र में मंद-मंद अग्नि में पकावें तथा लोहे की करछी से चलाते रहें, जब पाक सिद्ध हो जाये तब किंचित् गरम में ही गंधक और पारे की कज्जली पांच पल, वाय विडग, सोंठ, धनियां, गिलोय का सत्व, जीरा, पंच कोल, निसोथ, दन्ती, त्रिफला इलायची और नागर मोथा प्रत्येक का चूर्ण दो-दो तोला मिला देवें तथा उतारकर किसी चिकने पाक में रख छोड़ें। इसे शहद और घृत में मिला सेवन करायें। यह गठिया के लिये महौषधि है। इसके सेवन से संधिवात, कर्णशूल, कुक्षि शूल, जंघाओं की पीड़ा, पदांगुली शूल, गृध्रसी वात,

अग्नि की मंदता गुल्म, सूजन, कामला और दुरुह पाण्डुरोग दूर होते हैं।——इसे "आमवात गजेन्द्रस्य केसरी मुनि निर्मितः" कहा गया है।

सुंठी पाक तथा मेथी पाक भी इस व्याधि के लियें लाभ दायक हैं।

पथ्य और अपथ्य

अभिष्यन्द करा ये च येचान्ये गुरु पिच्छिलाः।
वर्जनीयाः प्रयत्नेन आमवातार्दितैर्नरैः।।

अभिष्यन्द कारी, भारी और पिच्छिल द्रव्य गठिया रोगों में त्याग ने चाहिये।

आचार्य भाव मिश्र के अनुसार दूध, दही, गुड़, उर्द, मांस और मछली ये पदार्थ वर्जित हैं।

पटोलं गोक्षुरं चैव वरुणं कारवेल्लकम्।
यवकोद्रव शाल्यादि प्रपुराणं सतिक्तकम्।।
लावादीनां तथा मांसंतक्रेण मस्तुनाहितम्।
कुलत्थयूष सूपैश्च रूक्षमन्नं प्रदापयेत्।।

परवल, गोखुरू, वरना, करेला, जौ, कोदों पुराने शालिधान्य, पित्त पापड़ा, लावादि पक्षियों का मांस, तक्र, दही का पानी, कुलथी का यूष और दाल के साथ रूक्ष अन्न गठिया में दें।

(४५६ वें पृष्ठका शेष)

विलियम स्टेफिक महाशय अपनी मानसिक चिकित्सा की पुस्तक में लिखते हैं कि अभी तक उन्हें कोई पेट का रोगी ऐसा नहीं मिला, जिसके रोग का मूल कारण मानसिक न हो। क्रोध, ईर्ष्या, आत्म-ग्लानि, बदला लेने की भावना—— ऐसा कोई भी मानसिक विकार जिसे हम दूसरों से छिपाना चाहते हैं,- पेट के रोग उत्पन्न करते हैं। कभी-कभी कलुषित भावों को छिपाकर रखने से पेट में फोड़े भी उत्पन्न हो जाते हैं। बार-बार वमन होना भी किसी ऐसे भाव के दमन का द्योतक है, जिसके प्रकाशित होने से व्यक्ति के आत्म-सम्मान को खो देने की सम्भावना रहती है। पेट की गुप्त बात कभी-कभी पेट में वायु बढ़ जाने की कल्पित भावना उत्पन्न करती है। ये गुप्त बातें वर्तमान समय की नहीं, वरन् पुराने समय की रहती हैं। इनके प्रकाशित होने से रोगी की क्षति नहीं होती, परन्तु पुरानी ही धारणा उसे दबाती रहती है।

जब मनुष्य का मन स्वस्थ रहता है, तो अपने शारीरिक क्लेश को भी वह सरलता से सह लेता है। स्वस्थ मन में भले विचार आते हैं। मनुष्य की कल्पनाएँ भली होती हैं। वह आशावादी होता है। ऐसी अवस्था में पहले तो रोग आता ही नहीं और यदि आ भी जाय, तो वह देर तक नहीं ठहरता। वह अपने शुभ आत्म-निर्देश से सरलता से चला जाता है। स्वस्थ मन के न रहने पर व्यक्ति रोग से परेशान हो जाता है और जितना ही अधिक रोगी अपने रोग से परेशान होता है। उसका रोग उतना ही बढ़ते जाता है। यदि कोई व्यक्ति अपने स्वस्थ अवस्था में अपने आपको भले आत्म-निर्देश दे, तो उसे रोग उत्पन्न ही न हो। परन्तु ; यह तभी होता है जबकि मनुष्य भले कामों में अपने आपको लगाये रहता है।

स्वार्थी मनुष्य न तो स्वस्थ मन का रह सकता है और न वह शारीरिक स्वास्थ्य का ही उपभोग कर सकता है। अपने सुखों की खोज मनुष्य के मन को निर्बल बना देती है। इसके कारण मनुष्य अनेक प्रकार के अनैतिक कार्य करता है, जिनके परिणाम स्वरूप उसके मन में मानसिक संघर्ष पैदा हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में रोगों का आना अनिवार्य होता है। दूसरों के सुख में लगा हुआ व्यक्ति ही सुखी और स्वस्थ मन का रहता है। ऐसे व्यक्ति के अनेक प्रकार के रोग बिना चेष्टा किये ही अपने आप नष्ट हो जाते हैं।

ओजक्षय (Neurasthenia)

वैद्य नित्यानन्द शर्मा, वैद्य वाचस्पति, डिप्टी डायरेक्टर राजस्थान सरकार

प्रस्तुत लेखक के विद्वान लेखक कविराज नित्यानन्दजी की विद्वत्ता तथा कार्यक्षमता से वैद्य समाज खूब परिचित है। सचित्र आयुर्वेद पर आपकी बहुत ही कृपा दृष्टि रहती है, जब आप बूँदी में आयुर्वेदिक इन्सपेक्टर के पद पर कार्य करते थे, उस समय आपने सचित्र आयुर्वेद के ३५ ग्राहक बनाकर भेज दिया था। जिसके लिए अनेकशः धन्यवाद। आपकी विद्वत्ता और कार्यक्षमता से प्रभावित होकर ही राजस्थान सरकार ने आपको डिप्टी-डायरेक्टर का प्रद प्रदानकर गौरवान्वित किया है, वधाई, आशा है आपके कार्य काल में राजस्थान में आयुर्वेद खूब फूले फलेगा, परमात्मा आपको सफलता प्रदान करे, यही कामना है।

—स० सम्पादक

एलोपैथी में जिस रोग को न्यूरस्थीनियां (Neurasthenia) कहते हैं, वह इन दिनों अधिक देखा जा रहा है। इस नाम का दुरुपयोग भी हो रहा है। एलोपैथी के अधिकारी चिकित्सक श्री फ्रेड्रिक डब्लू प्राइस (Fredric W. Price) ने अपनी पुस्तकमें लिखा है "This term has been over used and ill used, like most of the more palatable diagnosis" जो रोग समझ में नहीं आवे और कुछ अस्पष्ट लक्षणों की दीर्घकाल से बार-बार रोगी शिकायत करता रहे, प्रायः ऐसे रोगों को न्यूरस्थीनिया कहने की प्रथा सी हो गई हैं।

इस व्याधि को एक प्रकार का वहम सा माना जाता है और चिकित्सक प्रायः इसको साधारण विकृति कहकर टाल देते हैं। इससे रोगी को सन्तोष नहीं होता है और रोगी को भिन्न-भिन्न चिकित्सकों के द्वार खटखटाने पड़ते हैं। एलोपैथिक शास्त्रों में अभी तक इसकी निश्चित सम्प्राप्ति एवं कारण स्थिर नहीं हो सके हैं। केवल लक्षणों से इस व्याधि का वर्णन एवं चिकित्सा मिलती है।

कविराज नरेन्द्र नाथ मित्र द्वारा संशोधित एवं परिवर्द्धित "भैषज्य रत्नावली" में इसको नवीन रोग मानकर "गदोद्वेगाधिकार" (Anxiety Neurosis) से इसका पृथक् वर्णन किया गया है।

प्रश्न यह है कि प्राचीन समय में यह रोग होता था या नहीं? क्या तत्तुल्य कोई रोग आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है?. इस विषय में चरक सुश्रुत का "ओजक्षय" और एलोपैथी के पण्डित प्राइस (Price) और डोरलॉन्ड (Dorland) आदि के "न्यूरस्थीनिया" सम्बन्धी विचारों का तुलनात्मक वर्णन पाठकों के मननार्थ प्रस्तुत किया जाता है।

ओजक्षय के लक्षण

विभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं ध्यायति व्यथितेन्द्रियः।
दुश्छायो दुर्मनारूक्षः क्षामश्चैवोजलक्षये ॥

च० सू० अ० १७.

तथा च

गुरुत्वं स्तब्धताङ्गेषु ग्लानिर्वर्णस्य भेदनम् ।
तन्द्रा, निद्रा वात शोफो वल व्यापदि लक्षणम् ॥

सु० सू० १५

अर्थात् जिसका ओजक्षय हो गया है, वह :—

विभेति—डरता रहता है। मनमें उत्पन्नकाल्पनिक आशंकाओं के परिणामों से वह भय खाता रहता है, छोटी-मोटी घटनाओं से भयंकर परिणाम हो जाने का भय उसे लगा रहता है। नित्य की सांसारिक बातों में वह अनिष्ट का भय देखता है तथा भ्रमित होकर रस्सी से सर्प का भय खाता है।

दुर्बल :—शरीर कृश एवं बलहीन हो जाता है तथा मांस क्षीण होने लगता है।

अभीक्ष्णं ध्यायति—निरन्तर चिन्तामग्न रहता है। काल्पनिक कष्टों और समस्याओं की सृष्टि रचकर, उन पर ऊहापोह करता है। ऐसा हो गया तो यूं हो जायगा, यह नहीं हुआ तो वह नहीं होगा, आदि अवास्तविक व

असामयिक विचारों एवं चिन्ताओंमें डूबा रहता है। इसको (Obsessive Neurasthenia) कहते हैं।

व्यथितेन्द्रिय--शरीर की समस्त ज्ञान एवं कर्मेन्द्रिय अस्थिर, उत्तेजित एवं विकल रहती है। किसी भी विचार भावना, दृश्य आदि से चंचल एवं पीड़ित हो उठती हैं।

दुश्छाया--शरीर की विशेषतः मुख की कान्ति एवं तेज का लोप होकर कुछ कालापन, धूसरता, पाण्डुता आदि आ जाती है। व्यक्तित्त्व का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

दुर्मना—मनोबल विहीन हो जाता है। किसी भी विषय पर एकाग्रचित्त नहीं हो सकता है। वह किसी से भी दब जाता है।

रूक्षः - त्वचा में स्निग्धता नहीं रहती है।

क्षामः—सब शक्तियां निर्बल होकर उत्साहहीन हो जाती हैं। कोई कार्य, सम्भोग आदि करने में वह उत्साह एवं शक्ति अनुभव नहीं करता है। इसको Sexual Neurasthenia कहते है।

गुरुत्व—सम्पूर्ण शरीर में भारीपन अनुभव करता है। उदर का परिपूर्ण एवं भरा हुआ अनुभव करता है। आन्त्र की गतियाँ शिथिल हो जाने के कारण वह गुरुत्व मालूम होता है।

अङ्गेषु स्तब्धता—शरीरावयवों का जकड़ सा जाना, मांस पेशियों में हल्की सी वेदना युक्त जकड़ाहट प्रतीति होना।

ग्लानि :—किसी भी विषय में रुचि का अभाव।

वर्णस्य भेदनम् :—शारीरिक सौन्दर्य का नष्ट होना एवं कुरूपता का आ जाना।

तन्द्रा, निद्रा—झपकियाँ लगा करती हैं और निद्रा आया करती हैं।

वातशोफ :—रक्त का समुचित संचालन नहीं होने से त्वचा वर्णहीन होकर फूली हुई सी नजर आती है।

उपर्युक्त लक्षणों में कुछ लक्षण मानसिक (Psychic) है—यथा विभेति, ध्यायति, दुर्मना आदि और कुछ लक्षण शारीरिक (Physiological) है। यथा, रूक्ष, गुरुत्व शोफादि। जहां ओज शारीरिक विकृतियों के कारण क्षीण होता है; वहां अधिकांश लक्षण शारीरिक होते हैं और शारीरिक विकृतिजन्य (Physiogenic) कहलाता है। जहाँ मानसिक विकृति के कारण होता है; वहाँ मानसिक लक्षण अधिक दृष्टिगोचर होते हैं और मनोविकृति जन्य (Physiogenic) कहलाता है।

एलोपैथी में न्यूरस्थीनिया का शाब्दिक अर्थ है Ven Pou=Nerve=स्नायु+90A Euia=debility= दौर्बल्य। W. A. Newman Dorland ने इसका निरूपण करते हुए लिखा है—

"A Psychoneurosis or nervous exhaustion characterised by abnormal fatigality. The name for a group of symptoms resulting from some functional disorder of the nervous system with severe depression of the vital forces"

अर्थात् साधारण श्रान्ति द्वारा स्नायविक शिथिलता का द्योतन जिससे हो, वह न्यूरस्थीनिया है। स्नायु के उन व्यापारिक विकृतियों के लक्षण समूह का नाम है, जिसमें मुख्य शक्तियों का तीव्र अवसाद होता है।

Fredrick W. Price ने अपनी पुस्तक में इस व्याधि के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं :—Active deep reflexes, increased sensory iritability (व्यथितेन्द्रिय) Feelings of pressure on the head and pains in the muscles and else where. (अङ्गेषु स्तब्धता) giddiness, Vaso motor lability (दुर्मना) delayed peristalois and feeling of fulness in the abdomen (गरुत्व) Diminished Libido, (क्षाम) Slight clumsiness. (वर्णस्य भेदनम्) and tremor of the muscles of the face tongue and hands on the more Psychological side there are feelings of Languor and incapacity to concentrate on any mental work (दुर्मना) doubts as to the accuracy of memory, loss of interest (ग्लानि) slight depersonalisation, (दुरामयः) irritability and tenseness, lessened control of emotion, (दुर्मना) and perhaps slight paranoid, obsessional, (अभीक्ष्णं ध्यायति) or hypochondria trends."

उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि एक-दो लक्षणों के अधिक्य अथवा न्यूनता से "ओजक्षय" और "न्यूरस्थीनिया" का वर्णन समान लक्षणात्मक है।

इस प्रकार की मानसिक व्याधियों में एलोपैथी कुलज (Hereditary) प्रवृत्ति मानती है अर्थात् मानसिक रोगी की सन्तान में भी अल्प या अधिक मानसिक विकृति के चिन्ह पाये जाते हैं, जैसा Price ने लिखा है--

"Moreover hereditary factors can be of great importance in these (Psychosis) organic affections"

अर्थात्, कुलजके वृत्त इस प्रकार रोगों में अत्यन्त महत्व रखते हैं। ओज का प्रभाव गर्भावस्था में कलल निर्माण के समय से ही होना प्रारम्भ हो जाता है। इस सम्बन्ध में चरक का वर्णन उल्लेखनीय है:--

यत् सारमादौ गर्भस्य यत्तद्गर्भ रसाद्रसः।
संवर्त्तमानं हृदयं समाविशति यत्पुरा ।।

च० सू० ३०

इस पर चक्रपाणि लिखते हैं "शुक्र शोणित संयोगे जीवाधिष्ठित मात्रे यत्सार भूतं तत्रापि तिष्ठति। यत्तद्-गर्भ रसाद्रस इति--गर्भ रसाद् शुक्र शोणित संयोग परिणामेन कलल रूपात्, रस इति सार भूतम्······। एतेन गर्भावस्था त्रयेऽपि तदोजस्तिष्ठतीत्युच्यते, परं गर्भादौ शुक्र शोणित सार रूप तया कललावस्थायां तु रस सार रूपतया-अवयव निष्पत्तौ तु स्व लक्षण युक्तमेव भवत्योज इत्योजसः सर्वावस्था व्यापकत्त्वेन महत्त्वमुच्यते"।

अर्थात्--गर्भाधान के पूर्व माता के शोणित और पिता के शुक्र में ओज सार रूप रहता है। जब गर्भाशय में इन दोनों का संयोग होता है, तब कलल रस के सार रूप में ओज बनता है और जब शरीरावयव का निर्माण होता है तो उनमें यह ओज मृत्यु पर्यन्त रहता है। कुलज प्रवृत्ति का कितना सुन्दर वर्णन है। जिस प्रकार का जितनी शक्ति एवं मात्रा का ओज माता पिता के शुक्र शोणित द्वारा कलल को प्राप्त होता है, उतनी ही ओजस्वी अथवा ओजहीन (न्यूरस्थेनिक) सन्तान उत्पन्न होती है।

न्यूरस्थीनियाँ व्याधि के उक्त तुलनात्मक वर्णन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि यह वात नाड़ियों (स्नायु) की श्रान्ति का रोग है। इन नाड़ियों का मूल मस्तिष्क है; जिसकी चेतना मन है। अतः इसको मानसिक व्याधि कहा जाता है। पुनः ये नाड़ियाँ समस्त शरीर में व्यापक हैं और समस्त चेतनामय व्यापार इन नाड़ियों द्वारा सम्पादन होता है। ऐच्छिक एवं अनैच्छिक (Voluntary and involuntary) समस्त प्रकार के शारीरिक व्यापार के लिये उत्तरदायी हैं। वात का वहन इन्हीं द्वारा होता है। इसलिये चरक ने वायु को "तन्त्र यन्त्र धर" संज्ञा दी है।

नाड़ियाँ (स्नायु) उस समय विकृत होती हैं, जब इनको पोषण नहीं मिलता है। इन नाड़ियों का पोषण मुख्यतया ओज द्वारा होता है। ये अपनी पुष्टि, शक्ति एवं आहार सीधा ओज से ग्रहण करती हैं। ओज सब शक्तियों एवं सब धातुओं का सार है, जो रक्त के साथ सारे शरीर में संक्रमण करता है और वात नाड़ियाँ रक्त में परिप्लावित होकर उसमें से जितनी मात्रा में ओज चाहिये, अपने पोषण के लिये ग्रहण करके पुष्ट होती रहती हैं। यथा :--

रस धातोः परं धाम पच्यमानात्प्रदीपति।
सौम्य स्वभावं रक्ताग्रे यत्तदोजः प्रकीर्त्तितम् ।।

अष्टाङ्ग--आयुर्वेद रसायन व्याख्या

जितनी-जितनी इस ओजकी मात्रा शरीरमें व्यय होती चली जाती है, उतना ही वात नाड़ियों का पोषण करता चला जाता है। उससे मनोबल, चेतनाबल घटता है और न्यूरस्थीनिया आदि मानस रोग का जन्म होता है। ये मानस रोग ओजक्षय के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हैं? ओज ही मानस रोग क्षमता है। (क्रमशः)

मालिश और स्वास्थ्य

श्रीयुत रामनारायण दुवे

मालिश यह एक ऐसी कला है, जो शरीर के रोम-रोम में रक्त का अभिसरण भली भाँति कर देती है और किसी भी अंग-प्रत्यंग में जमे हुए खून को पिघलाकर एवं पतला करके उसे उस जगह से आगे की ओर को जाने के लिए विवश करती है। इससे शरीर के उस विशेष अंग को रक्त-वाहिनी बेकार नसों को फिर अपने काम में जुट जाना पड़ता है। रक्त पतला पड़ जाने पर फिर फेफड़े भी उसमें के विषैले परमाणुओं को बाहर निकाल फेंकते हैं। जो शरीर के मल-मूत्र और पसीने द्वारा बाहर निकल जाता है, दूसरे इसके द्वार शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग की कसरत हो जाती है, जो और किसी क्रिया से नहीं होती। इसलिए; सारा शरीर चैतन्य एवं स्फूर्तिमय हो जाता है--सुन्दर और सुडौल बन जाता है।

इसके द्वारा रीढ़ के सातों चक्र (सालर प्लक्सेज) गले की ग्रन्थियों, (थारा डाईज ग्लेण्ड्स) फेफड़े, जिगर, (लिवर) तिल्ली (स्प्लीन) कोलन, बड़ी आँत और छोटी आँतों की बीमारी, कमजोरी तथा खराबियाँ दूर होती हैं और ये अवयव सशक्त और स्वस्थ बनते हैं। इनमें मुस्तैदी से काम करने की शक्ति आ जाती है।

मर्दन का व्यवहार प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। आजकल अमेरिका तथा जापान में यह अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है। अमेरिका में तो इसके द्वारा सभी रोगों का इलाज बड़ी सफलता के साथ होता है। इसकी शिक्षा एक बहुत बड़े कॉलेज में होती है। उस कॉलेज में शरीर की सारी नसों, हड्डियों और इन्द्रियों का पाण्डित्य-पूर्ण परिचय करा देते हैं और अलग-अलग रोगों से सम्बन्ध रखनेवाली नसों का बहुत बारीकी के साथ ज्ञान करा दिया जाता है। इसके फलस्वरूप किसी भी रोग को मालिश से बहुत जल्द आरामे कर देते हैं।

अपनें देश में मलावार और करेल में मर्दन-चिकित्सालय हैं, जहाँ पर जड़ी-बूटियों से तैयार किये हुए तैल में शरीर को डुवोकर खूब मालिश करते हैं। (कूटने सरीखा, शरीर को खूब मसल डालते हैं।) और; फिर उस तैल को गड्ढे में फेंक देते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन तैल की मालिश करते हैं और उसे फेंक देते हैं। तीन सप्ताह में करीब छः सौ रुपये खर्च होते हैं। वह भी केवल गठिया, लकवा और साइटिका के रोगों में ही दक्ष हैं और किसी अन्य रोग में नहीं।

अखाड़े में मल्ल-युद्ध के सिलसिले में, शरीर को सुन्दर सुडौल बनानें के निमित्त, प्राचीन समय से मालिश का होना प्रचलित है। कहावत प्रसिद्ध है कि "सौ लड़न्त एक मलन्त" पर अखाड़े की मालिश, शरीर को केवल कड़ा एवं कठोर बनाने वाली होती है, जो एक प्रकार से अधूरी दशा में है। इसी अखाड़े की मालिश को नाइयों ने भी अपना यिला है, जो केवल शरीर की थकावट को ही दूर कर पाते हैं, अगर इन नाइयों को शिक्षा दी जाय, तो ये एक अच्छे मर्दक हो सकते हैं।

आजकल स्टेशनों और बाजारों में कुछ मालिश करने वाले जो बिल्कुल अनभिज्ञ होते हैं वे घूम-घूमकर मालिश किया करते हैं। उनसे मालिश कराने में नुकसान के सिवा जरा भी लाभ नहीं होता; क्योंकि वे बेहद रगड़ और तोड़-मरोड़ की मालिश करते हैं।

मर्दन करने का सरल ढंग--मर्दन करने में रक्त की क्रिया की चाल में तेजी आ जाती है और सारा खून फेफड़ों में जाता है। फेफड़े उसकी सफाई करके फिर सारे शरीर में भेजते हैं। शरीर की मालिश जब कभी की जाय, इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि सारे शरीर की मालिश में रक्त का चढ़ाव फेफड़ों की तरफ हो, इसलिए; सभी अंग-प्रत्यंगों की मालिश नीचे से ऊपर की ओर होनी चाहिए।

मालिश के लिए एक मोटा गद्दा और दो-तीन तकिए होने चाहिए। तैल भी भिन्न-भिन्न रोगों के मुताविक अलग-अलग होना चाहिए। जैसे--बादाम, शतावरी, आँवला, मालकंगनी इत्यादि। सारे शरीर में शक्ति लाना हो, तो बादाम और शतावरी का तैल ~~[illegible]~~। सिर के समस्त विकारों में बादाम, शतावरी, आँवला और ब्राह्मी का तैल लाभदायक होगा।

गठिया, लकवा और शरीर के किसी भी हिस्से में दर्द हो रहा हो, तो मालकंगनी का तैल लाभ प्रद होगा। परन्तु सिर में यह तैल न लगावें। तैल को एक छोटी शीशी में लेकर मालिश करने को तैयार हो जायँ। तैल मलने के पहले अपने कपड़े और मालिश कराने वाले के कपड़े उतार दें। इसके लिए एक अलग अंगौछा रखना चाहिए। मालिश करने की जगह एकान्त में हों। अगर वहाँ धूप आती हो, तो खासकर जाड़े के मौसम में विशेष अच्छा है। गर्मी के मौसम में बन्द कमरे में मालिश करनी चाहिए। वर्षा के दिनों में या और किसी मौसम में जब आकाश में बादल घिरे हों और ठंढी हवा चल रही हो, तो उस दिन मालिश बन्द रखनी चाहिए। अगर उन दिनों भी किसी रोग विशेष में मालिश करना बहुत जरूरी हो, तो बन्द कमरे में करें और कमरा तब तक बन्द रखना चाहिए, जबतक कि मालिश करानेवाला व्यक्ति स्नान करके कपड़े बदल न ले। कपड़े बदल लेने के बाद एक कम्बल या रजाई ओढ़कर पन्द्रह-बीस मिनट वहीं पड़े रहना चाहिए। इसके बाद दरवाजे और खिड़कियाँ खोल देना चाहिए। अब प्रश्न यह होता है कि ऐसी झंझट क्यों की जाय? ऐसी सतर्कता इसलिए की जाती है कि मालिश के समय शरीर में गर्मी पैदा हो जाती है, जिससे रक्त पतला पड़कर बड़ी तेजी के साथ सारे शरीर में रक्त संचार करने लग जाता है। उस समय शरीर को गर्म रखना आवश्यक है। ठंढ़ी हवा शरीर में न लगने पावे, क्योंकि गर्म हवा खून की बढ़ी हुई गर्मी और तेजी में सहायक सिद्ध होगी और सर्द हवा शरीर की गर्मी और उसकी तेज रफ्तार में न केवल रुकावट डालेगी, बल्कि गर्मी को ठंढी पहुँचाकर रक्त-संचार की रफ्तार को धीमा कर देगी और पतले पड़ते हुए रक्त को गाढ़ा कर देगी। यहीं पर शरीर में संघर्ष उत्पन्न हो जायगा। एक ओर मर्दन-क्रिया से गर्मी पैदा होगी, तो दूसरी ओर सर्द हवा शरीर को ठंढक पहुँचाएगी। इन दोनों के परस्पर संघर्ष में बेचारे गरीब, दुःखी, कमजोर रोगी के शरीर को बेहद नुक्सान पहुँचेगा। क्योंकि; उसके शरीर में जीवनी-शक्ति (अन्दरूनी गर्मी) की कमी रहती है, जिससे वह कुछ भी सहन करने में असमर्थ रहता है।

बलवान व्यक्ति को भी नुक्सान पहुँचेगा। पर उस समय उसे किसी प्रकार का कोई नया उपद्रव नहीं होगा। इसलिए; आकाश मंडल में जब बादल घिरे हुए हों और नमी अधिक हो, तो ऐसे वातावरण में मर्दन-क्रिया भूलकर भी नहीं करनी चाहिए।

मालिश करने का वैज्ञानिक ढंग--

मालिश करानेवाले को मोटे गद्दे पर पेट के बल लिटा देना चाहिए। उसके दोनों हाथों को दोनों बगल में रखवाना चाहिए। गर्दन को सीधी रखकर, ठुड्डी को गद्दे के सहारे करके, शरीर को एकदम शिथिल करके पड़ जाना चाहिए। अब मर्दन-कर्त्ता दाहिने हाथ की हथेली में तैल लेकर आधार (रेक्टम) चक्र के ऊपर रखकर (जहाँ पर रीढ़ की हड्डी समाप्त हुई है, उससे चार अंगुल ऊपर) से रीढ़ की हड्डी पर हथेली से ऊपर की तरह दो-दो मिनट चलाना चाहिए।

इसके बाद नाभि के ठीक ऊपर, रीढ़ के ऊपर, उपर्युक्त ढंग से हथेली को चक्कर देते हुए दस मिनट तक मालिश करनी चाहिए। यहाँ पर हथेली को घुमाते समय बीच-बीच में तनिक गहरा दाब देते जाना चाहिए। अब चार अंगुल ऊपर की ओर (जहाँ से दोनों पसलियाँ अलग-अलग दाहिने-बाएँ गयी हैं) ठीक कोलन के ऊपर उपर्युक्त ढंग से मर्दन-क्रिया करनी चाहिए। यहाँ पर भी गहरा दाब देते रहें (रोगी को तनिक भी कष्ट न पहुँचे। तनिक भी दर्द मालूम पड़ने पर हथेली के दाब को ढीला कर दें, पर दाब देना बन्द न करें) अब ऊपर की ओर कोमलता के साथ हथेलिओं को दबाते हुए, गर्दन के पास, जहाँ पर रीढ़ समाप्त हुई है, ले जावें। अब पुनः जहाँ से रीढ़ आरम्भ होती है, हथेलीसे जल्दी-जल्दी रगड़ते हुए ऊपर को जावें। इस प्रकार नीचे से ऊपर को बारम्बार दस मिनट तक हाथ चलावें।

दूसरा प्रकार--दोनों हाथों के अँगूठे से अन्दर की ओर दबाते और कम्पन करते हुए रीढ़ को दोनों ओर की मोटी नसों को आरम्भ से अन्त तक नीचे से ऊपर की ओर पांच मिनट तक मर्दन करना चाहिए।

तीसरा प्रकार--दोनों हाथों की हथेलियों को नीचे से ऊपर को, बाएँ हाथ से बाईं ओर और दाहिने हाथ से दाहिनी ओर घुमाते हुए, पूरी पीठको पाँच मिनट तक मालिश करनी चाहिए।

चौथा प्रकार--दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों ओर की पसलियों के गड्ढों के भीतर हल्के हाथ से, एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर पाँच मिनट तक मालिश करनी चाहिए।

पाँचवाँ प्रकार--दोनों हाथों की हथेलियों से पीठ के दोनों ओर रीढ़ के पास से शुरू करके पीठके अन्तिम भाग तक दबाते हुए ले जाना चाहिए। इस प्रकार नितम्ब से शुरू करके कंधों के पास पाँच मिनट तक मर्दन करना चाहिए।

छठा प्रकार--दाहिने हाथ की हथेली से थपकी (टैपिंग) मारना-आधार-चक्र (रेक्टम) से आरम्भ करके गले तक थपकी मारते जाना चाहिए। थपकी रीढ़ की हड्डी पर ही पड़नी चाहिए।

सातवाँ प्रकार--सारे पीठ पर (विशेष कर रीढ़ पर) हल्की मुक्की मारना चाहिए। बाद में तीसरे प्रकार से आठ-दस बार मालिश करके पीठ की मालिश समाप्त कर देनी चाहिए।

ऊपर के इन सातों प्रकार की मालिशों के प्रयोग से, आधार, मणिपूर तथा हृदय चक्रों के भीतर जागृति आ जाती है, जिससे सारे शरीर में चेतना आ जाती है। विशेष कर मणिपुर चक्र या नाभि-चक्र में जो सारे शरीर का नर्वस सेंटर (नसाजाल-समूह) है और जहाँ से समस्त शरीर में फैली हुई हैं: इसके जागृत एवं चेतन हो जाने से बड़ा काम सध जाता है। इसके सशक्त होते ही, सारा शरीर शक्तिमान हो जाता है। इसके प्रमाण में गर्भावस्था के बालक का पोषण होना जीता-जागता प्रमाण है और यही कारण है कि अमेरिका के बड़े से बड़े मानसोपचारक भी अपनी मानसिक चिकित्सा में, मणिपुर वा नाभि-चक्र को जागृत करना बहुत आवश्यक समझते हैं। मणिपुर चक्र को जागृत किये बिना मानसिक-चिकित्सा को अधूरी बतलाया है। क्योंकि; कब्ज सब रोगों की जननी है, और बिना कब्ज दूर किये कोई भी रोग जा नहीं सकता। यही कारण है कि इसे जागृत करके कब्ज भी दूर करते हैं।

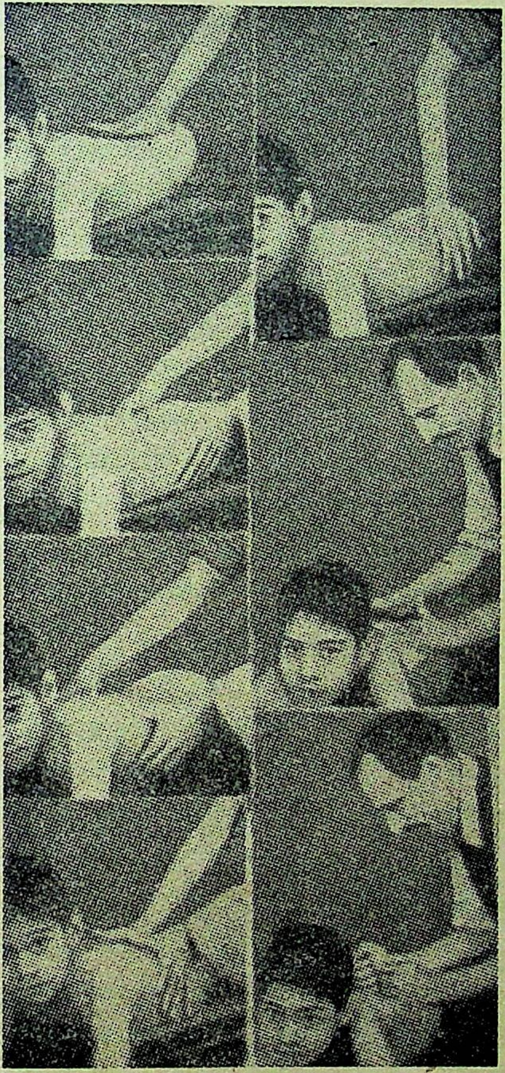

मालिश के अनेक प्रकार

चक्रों की मालिश के साथ-साथ उससे सम्बन्ध रखने वाली सब नसों की भी मालिश हो जाती हैं और इससे उनके अन्दर स्फूर्ति एवं चेतनता आ जाती है। कमजोरी, सिकुड़न आदि विकार दूर होकर, उनमें सुचारु रूप से संचार होने लग जाता है। पसलियों (रिब्स) के मर्दन हो जाने से उनके गड्ढों में छिपे हुए मल वहाँ से खिसक कर निकल जाते हैं, जिससे उनकी स्वच्छता हो जाती है और वे सशक्त भी हो जाती हैं।

आठवाँ प्रकार--मर्दन-कर्त्ता को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से, सारी पीठ पर नजर दौड़ानी चाहिए और अँगूठों से टटोल-टटोल कर खराबियों की खोज करनी चाहिए। वे देखेंगे कि रोगी के आधार चक्र (रेक्टम) के ऊपर का हिस्सा उठा हुआ है। नाभि-चक्र के चार-छः अंगुल ऊपर भी बहुत उठा हुआ पायेंगे। रीढ़के बगलवाली मोटी नसोंमें अनेक गाठें मिलेंगी। इसी प्रकार मर्दन-कर्त्ता को चाहिए कि वह उन्हें खोज-खोज कर अच्छी तरह समझ लें कि कहाँ-कहाँ पर विकार इकट्ठा हो गया है। फिर उन सबकी मालिश दोनों अंगूठों की गोलाई में घुमाते हुए कोमलता से करनी चाहिए।

उठे हुए भागों की मालिश करने में हथेली ~~की एक~~ गदोरी से (अँगूठे के पास और कलाई के ऊपरी भाग से)

अर्द्ध चन्द्राकार घुमाव देकर, जल्दी-जल्दी हाथ चलाना चाहिए। फिर कुछ देर उस उठान को कम करने के लिए कमर, कोख और पेट की ओर मलना चाहिए। अब ध्यान से देखना चाहिए की नाभि के ऊपर से लेकर गले के चार-छः अंगुल नीचे तक का भाग कैसी हालत में है। ध्यान देने पर आप देखेंगे कि प्रायः सभी बीमार लोगों का यह भाग कूबड़ की तरह ऊपर को उठा रहता है। रोग के अनुसार किसी का कम और किसी का अधिक। किसी की दूरी कम रहती है, किसी की ज्यादा। इस कूबड़ को ठीक करने से रोग अपने आप कम होने लगता है। अन्त में अपनी असली हालत पर आ जाने से, रोग का नामोनिशान नहीं रह जाता।

इस कूबड़ और इसके अन्दर पड़ी हुई रसौलियों (गाँठों) को ठीक करने के लिए ऊपर के सभी प्रकार की मालिश कर लेने के बाद एक नरम तकिया सीने के नीचे और दूसरा पेट के नीचे रखकर रोगी को खूब ढीला शरीर छोड़ देने के लिए कह दें। फिर हथेली को उस कूबड़ पर रखकर कोमलता के साथ जर्क (गहरा दाब या झटका) देना चाहिए। जर्क ऐसा हो जिसे रोगी सहन कर सके। रोगी की सहन-शक्ति के अनुसार झटके में कमीबेशी की जा सकती है। प्रति-दिन तीन-चार जर्क या झटके या अचानक नीचे की ओर झटके के द्वारा दबाने की क्रिया करनी चाहिए।

इसे जल्द कम करने के लिए रात को (लाल-या-पीली बोतल में चार्ज किये हुए) नीम के तेल की पट्टी गरम करके, सारे कूबड़ पर लगाकर ऊपर-से गरम-गरम अरंड, महुआ या टेसू के फूल या केले के पत्ते रखकर उसके ऊपर चौड़े कपड़े की पट्टी बाँध देनी चाहिए। फिर प्रातः काल पट्टी खोलकर थोड़ा थप-थपा देना चाहिए। इस प्रकार प्रति दिन की मालिश और पट्टी के प्रयोग से कूबड़ और गाठें ठीक हो जायेंगी और रोग भी जाता रहेगा।

कूबड़ निकल आने का कारण---बाल्यावस्था से लेकर अनुचित ढंग से उठने, बैठने, पढ़ने और खड़े होने के कारण कमर को झुकाने की आदत पड़ जाती है और कूबड़ निकल आता है। शुरू-शुरू में लड़कपन की चंचलता या जवानी की उमंग में, इस दोष तथा दुष्परिणाम की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। कुछ लोग तो जानते हुए भी, आलस्य-वश ध्यान नहीं देते और कुछ अज्ञान के कारण नहीं जानते कि उचित और अनुचित प्रकार से बैठने, खड़े होने और चलने का अच्छा और बुरा परिणाम क्या होता है?

रीढ़ को हमेशा एक सीध में रखने से, शरीर में किसी प्रकार की कोई खराबी नहीं आती। क्योंकि रीढ़ ही शरीर का सर्वेसर्वा है। रीढ़ ही शरीर का मूल स्तम्भ है। इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं आने देना चाहिए। इसमें दोष आ जाने पर आँतों, जिगर-तिल्ली, कोलन, फुफ्फुसों और श्वास-नलिकाओं में विकार आकर नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे--आँतों में विकार आ जाने पर कब्ज रहने लगता है और कब्ज सारे रोगोंकी जड़ है। यह क्यों होता है? झुककर बहुत देर तक बैठने पर, जब कि आँतें खाये-पीये हुए पदार्थों को पचाने में लगी रहती हैं, वे सिकुड़ जाती हैं तथा पचाने का कार्य अच्छी तरह पूरा नहीं कर पातीं। भोजन के पचने में चौबीस घण्टे लगते हैं, इसलिए सीध में बैठने, उठने, और खड़े होने में हमेशा सावधानी रखनी चाहिए। विद्यार्थियों, कुर्सी पर बैठकर व्यापार करने वाले साहुकारों को, जिन्हें लगातार चार, छः, बारह घण्टे स्टूल, कुर्सी और गद्दी पर बैठे रहना पड़ता है। इस ओर विशेष सतर्क रहना चाहिए।

जिगर (लिवर)--के खराब होने से पित्त का काम सुचारु रूप से नहीं हो पाता और पित्त के बिगड़ने से भोज्य तथा पेय-पदार्थों का भलीभाँति पाचन नहीं हो पाता; क्योंकि पचाने में पित्त ही प्रधान है।

तिल्ली (स्प्लीन) के बढ़ जाने से ज्वर वगैरह रोग स्वभावतः हमेशा बने रहते हैं।

कोलन में विकार आ जाने पर वहाँ से खाये-पीये हुए पदार्थों को आँतों में भेजने में सुस्ती आ जाती है। इससे उसी के आस-पास भोजन का कच्चान्न कुछ अंशों में रहकर तथा कुछ पाचन होकर आम (म्युकस) बन जाता है, जो पेट में दर्द, शूल (कॉलिक पेन) वगैरह पैदा करता है।

फुफ्फुसों में विकार आ जाने पर रक्ताभिसरण की क्रिया में फरक पड़ जाता है और रक्त शरीर के सारे अवयवों में ठीक-ठीक न पहुँच पाने के कारण वहाँ, उस अंग की क्षीणता आरम्भ हो जाती है और वह अंग रोगी बन जाता है।

श्वास-नलिका में विकार आ जाने पर उसमें कफ का जमाव होकर श्वास के आवागमन में रुकावट पड़ने लग जाती है। इससे श्वास लेने में भी कष्ट होने लगता है,

श्वास फूलने लगता है तथा दमा और हृदय-शूल रोग हो जाता है। इसलिए; अनुचित ढंग से बैठने और खड़े होने की आदत का परित्याग कर देना चाहिए।

चूतड़ों की मालिश भी हथेलियों से घुमाव के साथ करनी चाहिए। यहाँ पर मलने से आधार चक्र को बल मिलता है और पैरों के मोटर नर्वस् को शक्ति मिलती है। इससे सायटिका के दर्द, लकवा और गठिया में लाभ होता है।

अब रोगी को पीठ के बल लिटा दीजिए और दोनों पैरों को मोड़कर खड़ा कर दीजिये। तेल दाहिने हाथ में लेकर नाभि में रखकर, हथेली की गदोरी बाएँ से दाहिनी ओर चक्राकार घुमाते हुए पाँच मिनट तक मलिए। बीच-बीच में कम्पन के साथ नाभि-चक्र को भीतर की ओर दबाइये और ऊपर आइये। इस प्रकार दस बार दबाना चाहिए। धीरे-धीरे इस दाब को, पीठ की ओर रीढ़ में, गहराई तक ले जाने का प्रयोग करना चाहिए। जहाँ पर तनिक भी सन्देह हो, वहीं पर दाब रोक रखना चाहिए और फिर थोड़ा ऊपर को ही दाब का स्थान नियत कर लेना चाहिए। क्रमशः धीरे-धीरे दाब नीचे की ओर बढ़ता जायगा और रोगी का कष्ट कम होता जायगा। नाभि-चक्र ठीक हो जाने पर फिर कभी कोई कष्ट नहीं होगा।

अब पेड़ू के दाहिने भाग को दाहिने से बाएँ और पूरे आधे भाग में, हथेली को बहुत हल्के हाथ घुमाना चाहिए—दो मिनट तक। फिर पेड़ू के बाएँ अर्द्ध भाग को, दाहिने से बाईं ओर नीचे दो मिनट तक गोलाकार घुमाना चाहिए अब पेड़ू के दाहिने भाग के बीच से (जहाँ से बड़ी आँत आरम्भ होती है) दाहिने हाथ की हथेली को कम्पन करते हुए बहुत धीमी चाल से, धीरे-धीरे आगे की ओर कोलन और बाएँ तरफ अन्न नलिका पर से ब्लाडर के पास तक पहुंचाना चाहिए। इस प्रकार पाँच मिनट तक पेड़ू की मालिश करनी चाहिए।

पुनः पेड़ू की मालिश—दोनों कोखों को अन्दर की ओर दबाते और मलते हुए, नाभि के पास, इस प्रकार आना चाहिए कि दोनों हथेलियों के बीच में नाभिका सम्पूर्ण भाग आना चाहिए। इसप्रकार लगातार कई बार मलना चाहिए।

दूसरा प्रकार—दाहिने हाथ की हथेली और पंजे ऊपर की ओर रखकर हथेली की गदोरी कोख को स्पर्श करे और पंजे पेड़ू के ऊपरी भाग को स्पर्श करे, अब अन्दर की ओर जितना गहरा ले जा सकें, ले जाकर दबावें, और मलें। इसी प्रकार बाएँ हाथ से दाहिनी ओर बारी-बारी से एक के बाद एक हाथ का दाब और मलना जारी रहे।

अब कोलन (जहाँ से दोनों पसलियाँ अलग हुई हैं) का भी चक्राकार दो मिनट तक मर्दन करना चाहिए। इसके बाद जिगर और तिल्ली (लिवर और स्प्लीन) की मालिश दोनों हाथों से दाहिने से बाएँ तरफ घुमाते हुए करनी चाहिए। बाद में दोनों अँगूठों से पसलियों के गड्ढे की मालिश कमर तक कम्पन के साथ करनी चाहिए। प्रत्येक को पाँच-पाँच बार जल्दी-जल्दी मलना चाहिए। इस प्रकार मलने के बाद, दोनों हथेलियों की गदोरियों से, सीने के ठीक बीच से दोनों ओर नीचे को दस बार मलते हुए जाना चाहिए।

फेफड़ों की मालिश—दोनों हाथों से, दाहिने से बाएँ को पूरे सीने की मालिश करनी चाहिए। इस प्रकार मल चुकने पर छाती के चारों ओर गोलाकार मलना चाहिए। यहाँ भी हाथ कोमलता के साथ चलाना चाहिए।

पैरों की मालिश—मालिश करने वाले को चाहिए कि खड़े होकर और तनिक झुककर एक पैर को ऊपर उठाकर अपनी जाँघ के ऊपर रखकर रोलिंग मालिश करे, जैसे बेलन घमता है। उसी प्रकार दोनों हाथ पाँच मिनट तक घुमाते रहें। दूसरे पैर की मालिश भी इसी प्रकार करनी चाहिए। पैर की जाँघों की मालिश के बाद घुटने के नीचले हिस्से की, पंजों की तथा तलुओं की मालिश करें, पैरों की मोटी-मोटी नसों और एड़ी के ऊपर वाली बीच की नस और पिंडलियों की मालिश दोनों हाथों के अँगूठे, तर्जनी और मध्यमा से, चुटकी की तरफ पकड़ कर कम्पन के साथ गहरी पकड़ से, हाथों को एक सिरे से दूसरे छोर तक मलते हुए ले जावें।

अब रोगी को बैठा दें और आप एक-एक हाथ को बारी-बारी से मलें। बाएँ हाथ से कलाई पकड़कर, दाहिने हाथ घुमाते हुए सारे हाथ को दो मिनट तक मलें। बाद में रोगी से कहें कि वह आपकी धोती-लंगोट या जंघिये को कमर की जगह जोर से पकड़ रखे और आप दोनों हाथों की हथेलियों से गोलाकार घुमाते हुए, कन्धे के पास से कलाई तक मलें। फिर रोगी का हाथ सीधा रखाकर दोनों हाथों से ऊपर की चुटकी द्वारा कम्पन के साथ क्रमशः धीरे-धीरे कलाई से कोहनी तक कई बार मलें। बाद में हाथों की हथेलियों और पंजों के ऊपरी भाग को अपनी हथेलियों

से घुमाते हुए मलें। तदनंतर प्रत्येक अंगुली को चुटकी से मलें।

सिर की मालिश--हथेली में तैल लेकर चाँद पर रखें और बहुत जल्दी-जल्दी अपनी हथेली को कोमलता से चलावें। फिर दसों अंगुलियों के पोरों से बहुत हल्के हाथों सारे सिर में तैल को फैला दें। बाद में दोनों हाथों की चुटकियों (इसमें कनिष्ठिका को छोड़कर बाकी चारों के पोरों से) द्वारा खूब हल्के के साथ सारे सिर में, मांसल भाग तक स्पर्श करते हुए मलें। बाद में अँगूठे, तर्जनी और मध्यमा की चुटकी द्वारा पकड़ और छोड़ते हुए सारे सिर पर हाथ चलावें। अब अपनी दोनों हथेलियों की गदोरियों से, रोगी की दोनों कनपटियों को कोमलता और कम्पन के साथ मलें; कम्पन के साथ हल्का दाब भी दें। इसके पश्चात् दाहिना हाथ ललाट पर और बायाँ हाथ सिर के पीछे रखकर कम्पन के साथ मलते-दबाते हुए मलें। फिर चुटकियों द्वारा ललाट से शुरू करके सिर के पीछे तक जाकर फिर सिर के मध्य में आवें और वापस आवें। इस प्रकार बारम्बार हाथों को लावें और ले जायँ। फिर सारे सिर में चुटकी दें। बाद में बहुत हल्के हाथों से ललाट और सिर के पिछले भाग को टैंपिंग करें। बाद में सारे सिर की टैंपिंग बहुत जल्दी-जल्दी और अत्यन्त कोमलता से करें।

अब रोगी की पीठ की ओर बैठकर गर्दन की मोटी-मोटी नसों और कन्धों की ऊपरी मोटी नसों को चुटकी से दबाते हुए कन्धों के किनारे से आरम्भ करके गले के दोनों ओर की मोटी-मोटी नसों को मलें। बाद में दोनों अँगूठों को गोलाकार घुमाते हुए पूरी गर्दन को मलें। इसके बाद कंधों की नसों को केवल कंधे तक ही कई बार चुटकियों द्वारा मलें। अब कन्धे और गले को चुटकी दें (चुटकी से पकड़ें और जल्दी-जल्दी छोड़ें) फिर बाद में सारे सिर को अपनी हथेलियों से कंपन के साथ मलें और टैंपिग दें।

नाभि-चक्र के मर्दन और कम्पन से नाभि-चक्र में जागृति आती है; सारे शरीर के नसाजाल (नर्वस सेंटर्स) में रक्त-संचार होता है तथा उनकी क्रियाशीलता बढ़ जाती है। अतएव; शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग और अवयव [illegible] मिलने से शक्ति-सम्पन्न होने लगते हैं और शरीर सुन्दर, स्वस्थ एवं ओजस्वी बन जाता है।

विशेषकर आँतें, जिगर, तिल्ली, कोलन और आधार चक्र में जो अति निकट हैं अद्‌भुत् शक्ति जागृत होती है। पाचन और मल-निष्कासन का कार्य बड़ी मुस्तैदी से होने लगता है, जो शरीर की नीरोगता का एक अत्यन्त आवश्यक कर्म है।

बड़ी और छोटी आँत, जिगर तथा तिल्ली की मालिश से भी उन्हें क्रियाशील बनाने में सहायता मिलती है। इससे पित्त एवं क्लोम रस अपना-अपना काम अच्छी तरह करने लग जाते हैं और मलोत्सर्ग ठीक तरह से होने लगता है।

पसलियों के मर्दन से उनके भीतर भरे हुए मल, अपनी जगह से आगे को खिसक जाते हैं, जिससे वे स्वच्छ हो जाती हैं तथा पसलियों की हड्डियाँ सुदृढ़ हो जाती हैं। इस कारण जिगर, तिल्ली और फेफड़े भी शक्तिशाली बने रहते हैं।

छाती की मालिश से फुफ्फुसों में रक्ताभिसरण की क्रिया शक्तिमय बनी रहती है, जिससे क्षय होने की आशंका नहीं रह जाती।

सिर की मालिश से उसके भीतर के सारे नर्वस सेंटर्स (नसाजाल समूह) में सजीवता तथा स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है। सिर के समस्त भाग में अनेक बुद्धि-सम्बन्धी छोटे-छोटे सेल्स के रूप में जिनके स्थान अलग-अलग नियत हैं, ये सोचने, समझने, बदला लेने, ईर्ष्या करने के बुद्धि को, चिन्ता और काम-वासना वगैरह के सेल्स समयानुकूल स्वभावतः अपना कार्य सम्पादन करने में तुरन्त तैयार रहते हैं। ये सेल्स किसी में कम और किसी में अधिक विस्तार से रहते हैं, जिसके कारण मनुष्य अल्पबुद्धि या तीक्ष्ण-बुद्धि के होते हैं। ऐसे मनुष्यों में किसी में प्रतिभा की कमी रहती है, तो किसी में अधिकता। कोई दयालु है तो कोई क्रूर; कोई लोभी है, तो कोई दानी; कोई संग्रही है, तो कोई खर्चीला; कोई क्रोधी है, तो कोई नम्र; कोई अति कामी है, तो कोई सन्तोषी--इस प्रकार स्वभाव, अपने-अपने सेल्स की बनावट की कमी-बेशी के ऊपर निर्भर हैं।

इन सभी सेलों को मर्दन और इससे भी बढ़कर, अपनी विचारशक्ति से, कम और ज्यादा बनाया जा सकता है। इन सभी सेलों का चित्र देखकर कि वे कौन-कौन कहाँ-कहाँ पर हैं, ध्यान रखकर उनकी मालिश करें, तो और अत्युत्तम होगा।

कन्धे की मोटी नसों की मालिश से बुद्धि के ऊपर असर पड़ता है और गले के पीछेवाले भाग की नसों की मालिश

से भी बुद्धि पर विशेष प्रभाव पड़ता है; क्योंकि ये नसें ब्रेन (छोटा मस्तिष्क) से सम्बन्ध रखती हैं। ब्रेन सिर के पीछे और गर्दन के चार अंगुल ऊपर स्थित है। इसकी मालिश से, अनिद्रा, दिमाग की कमजोरी और दिमागी थकावट आदि खराबियाँ दूर होकर उसमें शक्ति आ जाती है।

गले के अगले भाग की मालिश अत्यन्त कोमलता से करनी चाहिए। यह चुटकी और हथेलियों से की जा सकती है। विशेषकर गल-ग्रंथियों (थाराडाइज़ ग्लैंड्स) की मालिश बहुत धीरे-धीरे कोमल हाथों से, पकड़-छोड़ की चुटकी द्वारा करनी चाहिए। यह थाराडाइज़ ग्लैंड्स सारे शरीर का राजा है। इनमें ही कमजोरी आने से बुढ़ापा का आगमन होता है। इसलिए; मर्दन, सर्वाङ्ग आसन, संयम, ब्रह्मचर्य और पौष्टिक-पदार्थों के सेवन से इन्हें सशक्त बनाये रहना चाहिए।

मर्दन के कई प्रकार हैं--रगड़, गूंधना, थपथपाना (टैंपिंग), मुक्की मारना, कम्पन, वगैरह। ऊपर के सब प्रकारों में से रगड़ की मालिश हमारे देश में, प्रायः अखाड़ों में प्रचलित होकर सर्व साधारण में भी चल पड़ी है। कहीं-कहीं दाब और मुक्की मारना भी प्रचलित है। पर गूंधना, कम्पन, टैंपिंग और चुटकी वगैरह के ढंग विदेश से आये हैं।

मर्दन ऐसा होना चाहिए, जिससे शरीर में कठोरता न आने पावे। क्योंकि शरीरके कठोर एवं कड़ा हो जाने से फिर अंग-प्रत्यंगों को आसानी से मोड़ा या घुमाया-फिराया नहीं जा सकता। मर्दन ऐसा होना चाहिए, जिससे शरीर में लोच बनी रहे तथा अंगों को मनमाने ढंग से घुमा-फिरा और मोड़ सकें।

इसलिए; रगड़वाली मालिश बिल्कुल बेकार है। लेकिन; रगड़ की मालिश की आवश्यकता भी पड़ती है। खासकर थुल-थुल शरीर वाले व्यक्ति में कुछ कड़ापन लाने के लिये, रगड़ की जरूरत है और कड़े शरीर को ढीला बनान के लिये गूंधने की मालिश अपेक्षित है। तात्पर्य यह है कि शरीर में न बहुत कड़ापन होना चाहिए और न वह थुल थुल ही हो।

शरीर में कठोरता आ जाने पर फिर उसको किसी भयानक रोग के प्रकोप से मुक्त करने में बहुत कठिनाई पड़ती है। क्योंकि; कठोरता के कारण "विजातीय" द्रव्य आसानी से आगे को खिसकने में असमर्थ से हो जाते हैं और शरीर से विजातीय द्रव्यों का बाहर न निकल पाना मानो मृत्यु का आवाहन करना है अथवा किसी पुराने (क्रानिक) रोग का रोगी बनकर कष्ट भोगते रहना है। यह बात अनेकों रोगियों पर घटित होने के अनुभव से सिद्ध है। इसकी ठीक विपरीत दशा लचीले शरीर की है। पहले तो ऐसे शरीरमें जल्दी कोई रोग नहीं होता और यदि होता भी है, तो विजातीय-द्रव्य आसानी से बाहर निकाले जा सकते हैं। इसलिए; रगड़ की मालिश की मात्रा बहुत कम रखनी चाहिए।

——:o:——

बैद्यनाथ जयमङ्गल रस

स्वर्ण, लौह, ताम्र और वंग जैसे प्रधान उपादानोंके कारण यह रस बहुत प्रसिद्ध है। पुराने बुखारकी तो यह सर्वविदित महौषध है। हृदय, मस्तिष्क, फुफ्फुस, मूत्रपिण्ड आदि सभी शारीरिक रोगोंपर इसका अच्छा प्रभाव होता है। सभी प्रकारके पुराने बुखार, बिगड़े हुए ज्वर, धातुगत ज्वर और ज्वरोंके उपद्रव इससे शान्त हो जाते हैं।

मूल्य—१ तोला ३३), एक आना भर २=), दो आना भर ४≡), चार आना भर ८-)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर।

शिशु-पालन में माता-पिता के स्नेह का ही प्रमुख स्थान है

* * *

बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा के लिए माता-पिता को यह जानना उतना उपयोगी नहीं है कि इसके लिए कौन-सा नियम ठीक रहेगा, जितना उनका अपने बच्चों के लिए स्नेह-पूर्ण सतर्कता रखना। यदि अपनी सहज प्रेरणा और चिकित्सकों के निर्देशों का उचित रूप में पालन किया जाए, तो किसी बच्चे का प्रारम्भिक शिक्षण बड़ा सरल बन जाता है।

लोग शिशु पालन का कार्य तरह-तरह से सीखते हैं, पर इसका सबसे अच्छा तरीका यह है कि वही कार्य किया जाए, जो अच्छे माता-पिता अपनी सहज प्रेरणा से अपने बच्चे के लिए करते हैं।

बच्चे को सुखी और प्रफुल्लित रखने के लिए उसके होने से पूर्व कुछ तैयारियाँ की जानी चाहिए। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि मां शिशु के जन्म से पूर्व ही उसके सोने की व्यवस्था कर ले। इसके लिए टोकरी, बक्स, या मेज की दराज का पालना बनाया जा सकता है। उसमें एक मुलायम पर साथ ही न सिकुड़ने वाला गद्दा या बिछौना होना आवश्यक है। तकिया रखना जरूरी नहीं, पर गद्दे की दोनों बगलों में हल्के तकिये लगाना उचित है। गद्दे के ऊपर रबड़, मोमजामे या किरमिच के बड़े टुकड़े को बिछाया जाए और उसके ऊपर दो तहों वाला कोई कपड़ा डाला जाए ताकि उसमें बच्चे का पेशाब या पसीना समा जाए और साथ ही बच्चे की पीठ की ओर भी हवा पहुँचती रहे। बच्चे के लिए कई गद्दियाँ बनाकर तैयार रखनी चाहिए, क्योंकि उन्हें बार-बार बदलना पड़ता है। इन गद्दियों को ढकने के लिए चादर रखनी चाहिए। बच्चे को ओढ़ने के लिए हल्के कम्बल या बुने हुए शाल अच्छे रहते हैं। इससे वह गर्म रहता है और भार भी अनुभव नहीं करता।

बच्चे के वस्त्रों का चुनाव उसके जन्म स्थान की जलवायु के अनुकूल होना चाहिए। बच्चे को बहुत अधिक कपड़ों में लपेट देना या बाँध देना ठीक नहीं, क्योंकि इससे उसके हाथ-पैर की गति निर्बाध नहीं हो सकती, जो कि उसकी वृद्धि के लिए आवश्यक है। बच्चे के लिए सबसे अधिक आवश्यकता पोतड़ों की होती है, इसलिए हर समय कम से कम २ दर्जन पोतड़े रखने चाहिए। ये पोतड़े जालीदार कपड़े के हों तो अच्छा है, क्योंकि वे पानी सोखने और जल्दी सूखने की दृष्टि से उपयुक्त रहते हैं।

यदि बच्चे को बोतल से दूध पिलाना हो, तो ४ छटाँक दूध अटने लायक आधा दर्जन बोतलें खरीद कर रखनी चाहिए। ये बोतलें ताप सहने वाली और गोल या अठपहलू ठीक रहती हैं, जिन में मध्यम आकार के निपल लगाकर काम लेना चाहिए।

बच्चे के स्नान के लिए तेल, पाउडर और साबुन या उबटन का उपयोग किया जाता है। बच्चे को बाहर घुमाने के लिए बच्चागाड़ी सुखद है।

बच्चे की उचित देख रेख के लिए समय-समय पर पारिवारिक चिकित्सक को बुलाकर परामर्श लेते रहना अच्छा है। प्रारम्भ में बच्चे की शरीर-परीक्षा प्रतिमास करवाना और दूसरे वर्ष में हर तिमाही में एक बार करवाना ठीक रहेगा।

चिकित्सक ऐसा होना चाहिए जो शिशु-पालन का जानकार हो या वही हो जिस ने प्रसव-काल से बच्चे का निरीक्षण किया हो। ऐसा करने से बच्चे के आगे कभी रोगग्रस्त हो जाने पर उपचार में सुगमता होगी। नगर में उत्पन्न बच्चे को शिशु-स्वास्थ्य केन्द्र में भी दिखाया जा सकता है।

बच्चे से प्यार कीजिए

प्रत्येक बच्चे के लिए आवश्यक है कि उससे प्यार किया जाए, उससे हँसा जाए, बात की जाए, खेला जाए और दुलार किया जाए। ये चीजें बच्चे के लिए वैसी ही जरूरी हैं जैसे विटामिन और पौष्टिक तत्वों वाला आहार। जो बच्चा प्यार नहीं पाता, वह बड़ा रूखा और विरक्त बन जाता है। जब बच्चा रोता है, तो उसका कोई कारण अवश्य होता है। सम्भव है वह भूखा हो, गीला हो गया हो, उसके पेट में गड़बड़ हो अथवा वह भयभीत हुआ हो और उसे थपथपाने की जरूरत हो।

प्रत्येक माता-पिता की इच्छा होती है कि उसका बच्चा स्वस्थ हो और वह परेशान करने वाला न हो। किन्तु,

बच्चा चाहता है कि उसे अपने ऊपर छोड़ दिया जाए अर्थात् भूख लगने पर खा सके और उसे सभ्य-समाज में बैठने की आदतें सीखने को परेशान न किया जाए। बच्चा अपनी सुविधा और आवश्यकता के अनुसार अपने सोने का क्रम बना लेता है। मां के विशेष प्रयत्न करने के बिना भी वह देर-सबेर में पारिवारिक व्यवस्था के अनुरूप अपनी आदतें बना लेता है। बच्चे के अनुशासन, सद्व्यवहार और शिष्टाचार के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यदि वह स्नेहशील और आत्म सम्मान वाले माता-पिता के बीच में रहकर पलता है, तो भविष्य के लिए उसमें अच्छी आदतों की नींव पड़ जाती है। तथापि, प्रत्येक बच्चे का विकासक्रम भिन्न होता है। एक बच्चा शरीर की दृष्टि से हृष्ट-पुष्ट होकर भी काम करने में मन्द हो सकता है और उसके बोलने या हाथ से काम करने में अटपटपन हो सकता है। दूसरे बच्चे की हड्डियाँ बड़ी और शरीर का गठन स्थूल हो सकता है, पर तीसरा पौष्टिक आहार पाकर भी छोटा और दुर्बल रह सकता है। शिशु जैसा भी हो, उससे प्यार कीजिए और उसकी क्रियाओं की सराहना कीजिए। इससे वह प्रफुल्लित होगा और आत्म-विश्वास अनुभव करके जल्दी बढ़ेगा।

शिशु का आहार

आहार की दृष्टि से शिशु का प्रथम वर्ष महत्वपूर्ण होता है। ४-४ घंटे बाद उसे नियमित रूप से दूध देना चाहिए। बच्चा अपना समय जानता है। वह ठीक समय पर जागेगा और दूध के लिए रोएगा। जब वह अपनी तृप्ति कर लेगा, तब फिर सो जाएगा। बच्चे को कभी उसकी इच्छा से अधिक लेने के लिए विवश मत कीजिए। इसी प्रकार उसे अपने प्रथम वर्ष में आत्मविश्वास, जीवन का आनन्द और जन-प्रेम की भावना बनाने का अवसर मिलेगा।

बच्चे में चूसने की सहज प्रवृत्ति के दो कारण होते हैं, एक तो वह भूखा होता है और दूसरे उसे चूसना अच्छा लगता है। शुरू के महीनों में अँगूठा चूसने की प्रवृत्ति उसकी माँग को बताती है। प्रायः यह देखा जाता है कि जिन बच्चों को ३-३ घण्टे बाद दूध दिया जाता है, वे उतना अँगूठा नहीं चूसते, जितना ४-४ घण्टे में दूध लेने वाले बच्चे। जो बच्चे १० मिनट में ही अपनी बोतल खाली कर देते हैं, वे आध घण्टे में दूध पीने वालों की अपेक्षा अँगूठा अधिक चूसते हैं। जिन बच्चों पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता या मां की गोदी में सोने से वंचित रहते हैं, उनमें यह आदत पड़ जाती है। जब बच्चा पहली बार अंगूठा चूसे तभी उसे रोकना चाहिए। यदि बच्चा ठीक दूध पिलाने पर भी अँगूठा चूसना न छोड़े, तो उसके अन्य आहार छुड़ाने में समझदारी से काम लेना चाहिए।

शिशु की दिनचर्या

बच्चे की आवश्यकताओं के आधार पर पारिवारिक चिकित्सक उसका दूध लेने का समय-विभाग तय कर सकेगा। ६० वर्ष पूर्व बच्चे को भूखा मालूम होने पर ही दूध दिया जाता था। अब भी बहुत सी माताएँ नियत समय पर दूध देने को बड़ा विचित्र समझती हैं। किन्तु; ऐसा करना निस्सन्देह लाभदायक है। बच्चे का वजन देखकर कोई डाक्टर या नर्स यह परामर्श दे सकता है कि उसे ३-३ घण्टे में दूध दिया जाए अथवा ४-४ घण्टे में।

कुछ बच्चे रात को २ बजे दूध माँगते हैं। किन्तु; इससे घबराने की कोई बात नहीं। वह बड़ा होते-होते स्वयं इस आदत को छोड़ देगा। यदि बच्चा आहार के समय सोया हुआ हो, तो उसे जगा देना चाहिए। कुछ ही क्षणों में वह भूख अनुभव करेगा और दूध ले लेगा। यदि बच्चा सदैव समय से पहले जाग जाता हो, तो संभव है कि उसे पर्याप्त आहार न मिल रहा हो। ७ पौंड से कम वजन वाले शिशुओं को दूध ३-३ घण्टे में देना चाहिए। इस प्रकार ३ घण्टे बाद दूध लेने वाले अधिकांश बच्चे रात में ४-४ घण्टे बाद ही दूध माँगते हैं।

दूध का समय दिन में ६ बजे, ९ बजे, १२ बजे, और फिर रात में १० बजे और २ बजे रखना चाहिए। '२ बजे रात को दूध पिलाना आवश्यक नहीं, यह तो बच्चे के माँगने पर ही देना चाहिए।

१० बजे रात का दूध बिल्कुल नियत समय पर ही देना चाहिए। यदि बच्चा आध घण्टे पहले जाग जाए, तो उसे दूध पिलाया जा सकता है, पर एक-दो घण्टे का अन्तर होने पर उसे दूध नहीं देना चाहिए। संभवतः उसका कारण बदहज्मी या पेट की गड़बड़ी होगा।

बच्चे का सबसे अच्छा आहार गाय के दूध में पानी और चीनी मिलाकर देना है। यह मां के दूध जैसा हो जाता है। दुग्धचूर्ण या डब्बाबन्द दूध भी दिया जा सकता

है। चीनी की जगह शर्बत, फलशर्करा आदि भी दी जा सकती हैं।

बच्चे का दूध छुड़ाना

बच्चे के जन्म के १२ घण्टे बाद उसे बोतल से दूध दिया जाता है। पहले कुछ घण्टों में तो उसके मुंह में रूई से बूंदें टपकाई जा सकती हैं। ३-४ दिन में बच्चा अपना ठीक आहार लेने लगता है। इसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। जब बच्चा शान्त और सन्तुष्ट दीखे, उसे दूध देना बन्द कर दें। बच्चा अपनी मात्रा और शरीर के लिए विविध आहारों की माँग को समझता है। यदि उसे जबर्दस्ती दूध दिया जाए, तो भूख मर जाती है और बच्चा कमजोर होने लगता है।

आधी छोड़ी हुई बोतल से दुबारा दूध नहीं पिलाना चाहिए। यदि उसकी भूख में सुधार न हो और वह आधी बोतल ही छोड़ देता हो, तो डाक्टर को दिखाना चाहिए या ३-४ दिन के लिए दूध को हल्का कर देना चाहिए। बच्चे दूध पीते हुए हवा खींच लेते हैं। इसके लिए बच्चे को सीधा रखकर और उसकी पीठ थपथपा कर बुलबुले न जाने का प्रयत्न करना चाहिए।

बोतल से दूध लेने वाले बच्चे को एक मास के होने पर किसी रूप में विटामिन 'डी' देना चाहिए। इससे हड्डियों की कमजोरी तथा मांसपेशियों की पिलपिलाहट दूर हो जाती है। सबसे अच्छी चीज 'कॉड लिवर आयल' है। रक्त रोग की रोकथाम के लिए विटामिन 'सी' अच्छा है जो नारंगी के रस में मिलता है। इसे उबले पानी में मिलाकर देना चाहिए।

बच्चे का स्नान

बच्चे की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए स्नान का विशेष स्थान है। यह आहार से पहले, सामान्यतः प्रातः १० बजे दूध से पूर्व, होना चाहिए। बच्चे को गर्म कमरे में कोसे पानी से स्नान कराना चाहिए। पानी को अंगुली डालकर देख लेना चाहिए। किसी हल्के साबुन का प्रयोग करके तौलिए से शरीर पोंछ देना चाहिए। ५ पौंड वजन के बच्चों को ६८ से ७२ तापांश वाले कमरे में स्नान कराना उपयुक्त है। हृष्टपुष्ट बच्चे को अधिक कपड़ों में ढकने की जरूरत नहीं होती। जाड़ों में बच्चे को धूप में बाहर निकालना चाहिए। गर्मियों में तेज धूप और लू चलने से पूर्व वह जितना अधिक बाहर रहे, उतना ही अच्छा है। पेट की गड़बड़ी न हो तो बच्चे सामान्यता दूध पीकर दूसरी बार भूख लगने तक सोए रहते हैं। बड़े होने पर धीरे-धीरे नींद घटती जाती है।

अपने बच्चे पर अधिक ध्यान दीजिए। वह दूध पीते, नहाते, कपड़े पहनते और पोतड़े बदलते समय आप की क्रियाओं से आपके स्नेह को अनुभव करेगा। किन्तु; अधिक लाड़-प्यार भी ठीक नहीं, उससे वह बिगड़ जाता है।

—यू० एस० आई० एस०

बैद्यनाथ अरविन्दासव

बालकों के सूखा (सूखण्डी) रोग, अतिसार, दूध न पचना आदि रोगों को दूर कर हृष्टपुष्ट एवं बलवान् बनाने में उपयोगी है। ग्रहदोषनाशक एवं आयुवर्द्धक भी है।
कीमत—४० तोला २॥=), २० तोला १।≡), १० तोला ।॥−)।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर।

बिहार की वनस्पतियाँ

प्रो० ठा० बलवन्त सिंह, एम०-एस-सी०

(गताङ्क से आगे)

१४९—गोड़ार,

Millettia auriculata, Baker

इसकी विस्तृत, काष्ठीय और आरोही लताएँ होती हैं जिसकी असम-पक्षवत् पत्तियाँ १-२ फीट लम्बी और पत्रक ३-४ जोड़े, स्पष्ट और दृढ़ सिराओं से युक्त और अधरतल पर रेशम की तरह रोएँदार होते हैं। पत्रक यकायक नोकीले, अभिलट्वाकार-आयताकार ३-८ इञ्च लम्बे और उपपत्रक सूक्ष्म होते हैं। पुष्प मलाई (Cream) के रङ्ग के और ४-६ इञ्च लम्बी तथा गुच्छोंमें निकली हुई मंजरियोंमें होते हैं। फली चिपटी परन्तु मोटी और कठोर, ४-६"×¾" बड़ी और मोटी सन्धियों वाली होती हैं। ये लताएँ प्रान्त में सर्वत्र पाई जाती हैं। मूल या पत्र मछलियों को मारने के लिये अथवा पशुओं के शरीर या घाव में पड़े हुए कृमियों को नष्ट करने के लिये काम में लाये जाते हैं। यह लता इतनी कसरत से इस प्रान्त में होती है कि इससे किसी स्थायी कृमिनाशक ओषधि का निर्माण करके उसका व्यापारिकीय ढङ्ग से प्रचार किया जा सकता है। इसे गोड़ार, गोलायर लरङ्ग, गोरा, गज या गञ्ज (था.), हेहल (को०, संथा,) कहते हैं। इसकी एक दूसरी जाति (M. racemosa, Benth) को भी प्रायः इन्हीं नामों से पुकारते हैं। इसमें पत्रकों के ५-८ जोड़े और फलियाँ रम्भाकार परन्तु बीच-बीचमें पतली होती हैं। इसका भी पहले जैसा ही उपयोग होता है।

१५०—करजनीं, गुञ्जा

Abrus precatorius, L.

गुञ्जा की सुन्दर चक्रारोही लताएँ होती है जिनकी पत्तियाँ २-३½ इञ्च लम्बी, पत्रक १०-२०, पुष्प प्रायः सफेद या गुलाबी छाया लिये हुये और १-३" लम्बी और गुच्छे में निकली हुई मंजरियों में होते हैं। फलियाँ १½ इञ्च लम्बी, बीज चिकने-चमकीले, काली दाग के साथ और सिन्दूर वर्ण के या कभी-कभी सफेद होते हैं। झाड़ियों आदि पर ऊसर भूमि में इसकी लताएँ पाई जाती है। गुञ्जा मूल का मुलेठी के स्थान में उपयोग होता है। बीजों का शोधन के बाद चिकित्सा में उपयोग होता है। पत्र स्वरस श्वेत कुष्ठ की दाग को दूर करने में उपयोगी बतलाया जाता है।

१५१—यवासा

Alhagi camelorum, Fisch

यवासा के छोटे-छोटे काँटेदार गुल्म होते हैं जिसकी पत्तियाँ अपत्रक, आयताकार, रोमश-कुँठताग्र, चिकनी और नीचे की ओर झुकी हुई रहती हैं। पत्रकोणों में सामान्य शखाओं के अतिरिक्त प्रायः १½" तक लम्बे काँटे निकलते हैं। पुष्प लाल और मंजरियाँ १½ इञ्च लम्बी होती हैं। फली १ इञ्च लम्बी सीधी या टेढ़ी तथा भालाकार होती है। इसके गुल्म शुष्क ऊसर भूमि में या नदियों के किनारे पाये जाते हैं।

१५२— दुपतया

Zornia diphylla, Pers

इसके छोटे-छोटे क्षुप होते हैं जिसके कायड तार की तरह पतले, पत्तियाँ सवृन्त (वृन्त लम्बे), द्वि-पत्रक, पत्रक

प्रासवत् ½-१ इञ्च लम्बे, पुष्प अवृन्त, पीले, और कोण-पुष्पकों के अन्दर छिपे हुये रहते हैं। कोण-पुष्पक दो प्रासवत् खण्डों वाले, पीठ से जुड़े हुये और पत्तियों की तरह ग्रन्थिविन्दुओं से युक्त रहते हैं। खुले हुये घास के मैदानों में ये क्षुप अधिक पाये जाते हैं। यह अज्ञात-सी वनस्पति है अतः दो-दो पत्रकों के कारण इसका दुपतिया (लेखक द्वारा) नाम रख दिया गया है। कहीं-कहीं के वैद्य इसे गुड़मार की तरह मधुमेह में उपयोगी बतलाते हैं।

१५३—पृश्निपर्णी

Uraria picta, Desv.

इसके २-४ फीट ऊँचे गुल्मक होते हैं जिसमें पत्तियाँ एक ही पौधे में भिन्न तरह की होती हैं। नीचे की पत्तियाँ छोटी और लगभग वृत्ताकार, इनके ऊपर ३-५ पत्रक सदल-पर्ण जिनके पत्रक रेखाकार और इनके साथ कभी-कभी बड़े-बड़े आयताकार, प्रासवत्, ६″×१½″ बड़े अपत्रक पर्ण भी रहते हैं। ऊपर की पत्तियाँ ५-९ पत्रक और पत्रक ३½″-६″ बड़े होते हैं। पत्रकों के मध्य में प्रायः सफेदी होती है। पुष्प छोटे, लाल और ३-४″ लम्बी, सघन, अग्र्य और रम्भाकार मंजरियों में निकले रहते हैं। फलवती होने पर ये मंजरियाँ पुच्छाकार मालूम होती हैं। ऊसर भूमि और खुले हुए जंगलों में इसके पौधे प्रायः सर्वत्र मिलते हैं। उत्तर प्रदेश में इसे कुछ लोग शालपर्णी कहते हैं परन्तु इसे पृश्निपर्णी ही मानना चाहिए। इसकी एक दूसरी जाति का वर्णन नीचे दिया गया है।

१५४—पृश्निपर्णी भेद, सियार पुछिया

Uraria lagopodioides, Merr.

इसके क्षुप बहुवर्षायु काष्ठीय मूल से प्रतिवर्ष निकलते हैं। शाखाएँ प्रसरी या उत्थित प्रसरी और लगभग १२″ लंबी होती हैं जो मूल के समीप निकलती हैं। पत्तियाँ किंचित् वृत्ताकार या चौड़ाई लिये हुए आयताकार, एकपत्रक और त्रिपत्रक दोनों प्रकार की पत्तियाँ मिली हुईं या कभी-कभी केवल अपत्रक पत्तियाँ होती हैं। १-२″ लम्बी; गोल तथा पुच्छाकार मंजरियाँ होती हैं जो स्थायी बाह्यकोश के पंख सदृश खंडों के कारण बहुत सघन और श्रृगाल पुच्छ जैसी दिखाई देती है इसीसे कहीं-कहीं जंगलों में इसे सियार पुछिया भी कहते हैं। यह नाम श्रृगालविन्ना का समानार्थक है जो पृश्निपर्णी के लिये दिया गया है। छोटानागपुर तथा अन्यत्र भी इसके पौधे जंगलों में मिलते हैं।

इसकी एक तीसरी जाति Uraria hamosa, Wall होती है, जिसमें मंजरियाँ लम्बी परन्तु सघन नहीं होतीं। पर्ण अपत्रक या त्रिपत्रक होते हैं। इसे उड़ीसा में सालपानी (शालपर्णी) कहते हैं। वस्तुतः सालपानी नाम कई जाति के पौधों को दिये जाते हैं जिनका वर्णन नीचे किया गया है।

१५५—शालपर्णी

Desmodium gangeticum, Dc.

इसके पौधे शाकीय या काष्ठीय होते हैं जिनके काण्ड किंचित् कोणदार, पत्तियाँ एक-पत्रक, प्रासवत्-आयताकार या कम चौड़ी और लट्वाकार, क्रमशः तीक्ष्णाग्र, पुष्प छोटे और ६-१२″ लम्बी विरल पतली मंजरियों (अग्र्य) में रहते हैं। फलियाँ ६-८ संधियों की, टेढ़ी और टेढ़े सूक्ष्म रोमों से युक्त होने के कारण कपड़ों में चिपक जाने वाली होती हैं। इस जाति के पौधे जंगल में या ऊसर भूमि में प्रायः बागों की छायादार जगहों में भिन्न-भिन्न रूप में पाये जाते हैं और प्रान्त भर में मिलते हैं। जमीन पर फैले हुए अथवा न्यूनाधिक स्वावलम्बी दोनों प्रकार के पौधे होते हैं। अल्प वृद्धि वाले पौधों में पत्तियाँ केवल ½-१½″ लम्बी और अतिवृद्धि वाले पौधों में ३-६″ लम्बी पत्तियाँ होती हैं। पत्तिओं का आकार शालपर्ण सदृश होने के कारण इसे शालपर्णी मानना चाहिए। Desmodium poly carpum, Dc. नामक दूसरी जाति के पौधे भी साल-

पानी (वायफूल-संथा, कृष्णपानी या सालपानी-उड़िया) कहे जाते हैं। इसके पौधे शालवनों में सर्वत्र होते हैं।

१५६—Flemingia bracteata, Wight.

इसके १-३ फीट ऊँचे गुल्म होते हैं, जिनके काण्ड मृदुरोमश और कोणदार, पत्तियाँ अपत्रक, आधार पर तीन-सिराओं वाली, प्रासवत् अथवा आयताकार-प्रासवत्, लम्बाग्र ३-७″×१-२½″ बड़ी और सवृन्त (वृन्त छोटा परन्तु मोटा), मंजरी प्रायः अग्रय, सशाख, २-५″ लम्बी और पुष्प बड़े-बड़े थैले के आकार के बने हुए कोण पुष्पकों में बन्द रहते हैं। इसके पौधे प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं। इसके मूल epilepsy में दिये जाते हैं।

१५७—वीरव्रट

Flemingia semialata, Roxb.

इसके ४-६ फीट (कभी-कभी ९ फीट तक) ऊँचे स्वावलम्बी गुल्म होते हैं, जिसकी शाखाएँ रोमश, पत्तियाँ त्रि-पत्रक, पर्णवृन्त सपक्ष और पत्रक तिर्यगायताकार (rhomboidly) प्रासवत् या अण्डाकार, प्रायः ४-५½″ लम्बे और और नोकीले होते हैं। काण्ड ९″ तक मोटे हो जाते हैं और नवीन शाखाओं पर रेशम तुल्य रोएँ होते हैं। प्रान्त भर में आर्द्र जङ्गलों में यह पाया जाता है, इस प्रजाति में कुछ जातियों को गलफुली के नाम से पुकारते हैं और कुछ को सालपानी और कुछ को दतकट्टा भी कहते हैं।

१५८—वन कुल्थी

Atylosia scarabaeoides, Beuth.

इसके क्षुप अनेक शाखाओं वाले, मृदुरोमश और श्वेताभहरित होते हैं जिसकी शाखाएँ प्रसरी या चक्रारोही होती हैं। पत्तियाँ त्रिपत्रक, पत्रक छोटे, स्पष्ट सिराओं वाले, पुष्प छोटे पीताभ या रक्ताभ और फली लगभग ५ बीजों वाली, रोमश और १″ तक लम्बी होती है। इसे गायसानी (को.), वीरहोड़े (संथा.), वनकुल्थिया (ह०) कहते हैं और मध्य तथा दक्षिणी भागों में अधिक और सर्वत्र होती है। पशुओं अथवा मनुष्यों के अतिसार में इसका प्रयोग किया जाता है। इसका बफारा शोथघ्न माना जाता है। आदि निवासियों में प्रायः सर्वत्र यह एक मुख्य चिकित्सोपयोगी वनस्पति मानी जाती है।

१५९—माषपर्णी

Teramnus labialis, Spreng.

इसकी पतली और चक्रारोही लताएँ होती हैं। पत्तियाँ त्रि-पत्रक और पत्रक भिन्न-भिन्न कद के होते हैं। कभी तो वे .६-१.३″ और कभी १-३″ लम्बे होते हैं। पत्रक अंडाकार या लट्वाकार (अग्र्य पत्रक कभी-कभी अभिलट्वाकार) नीचे के तल पर तलशायी रोमों से युक्त होते हैं। सवृन्त पुष्पों की मंजरी बहुत पतली १½-५″ लम्बी और पुष्प आपद्म, नीलारुण (Pink purple) या सफेद होते हैं। फली पतली लम्बी, सीधी या कुछ-कुछ टेढ़ी और ताजे बीज लाल एवं सूखने पर काले तथा संख्या में लगभग १० होते हैं। ये लताएँ झाड़ियों पर फैली हुई प्रायः सर्वत्र ही पाई जाती हैं।

१६०—तिनिश, पानन

Ougeinia dalbergioides

पानन के प्रायः छोटे-छोटे और टेढ़ेमेढ़े वृक्ष इस प्रान्त के जंगलों में सर्वत्र पाये जाते हैं। शाखाएँ पतली और श्वेताभ होती हैं। पत्तियाँ त्रि-पत्रक और अग्र्य पत्रक लट्वाकार, वृत्ताकार या अभिलट्वाकार, ३-६″ लम्बे, कुण्ठिताग्र, अखण्ड या गोल-दन्तुर होते हैं। पुष्प सफेद या आपद्म (Pink) होते हैं और प्रायः पुराने काण्ड से बहुत बड़ी संख्या में निकलते हैं। इसकी लकड़ी प्रायः गाड़ी के धुरों के लिये ली जाती है, क्योंकि यह इसके लिये बहुत ही उपयुक्त समझी जाती है। इसे रूटा, पंजन (को०), रोट (संथा०), सान्दन, पानन (हिं०), तिनसा (सम्बलपुर) पन्दन (खर०) कहते हैं।

तिनसा तथा सानन निघण्टुओं के पर्याय नाम तिनिश तथा स्पन्दन के ही अपभ्रंश हैं। रथाङ्ग तथा रथादि पर्याय रथ के धुरों के लिये इसके उपयोग की ओर संकेत करते हैं।

१६१—मखान सेम

Canavalia ensiformis, Dc.

इसकी बड़ी आरोही लताएँ होती हैं। काँड चिकने, हरे, तीन में से अग्र्य् पत्रक ५-६″ लम्बा, चिकना, लट्वाकार प्रायः किंचित् लम्बाग्र, पुष्प बड़े, सफेद या आपद्म (Pink) फली प्रायः ८-१०″ लम्बी और १.२″ चौड़ी और बीज गुलाबी और बहुत चिपटे होते हैं। यह उपजाने से सर्वत्र होती है पर उपर्युक्त लक्षण केवल वन्यलता के हैं। बीज और फली खाद्य होती है, परन्तु एकबार फलने-फूलने के बाद लताएँ नष्ट कर दी जाती हैं, क्योंकि ग्रामीणों के अनुसार दूसरी फसल के बीज विषैले हो जाते हैं। इसकी एक दूसरी जाति C. virosa, W&A. होती है, जिसके बीज सर्वदा विषैले होते हैंयद्यपि कच्ची फलियाँ खाई जाती हैं। यह पुर्णिया तथा केवल दक्षिणी भाग में अधिक होती है। इसे काठ-सेम, काला-सेम (बं०) और महुरहा (द०) कहते हैं। पहली को तिहुन (को० संथा०) या माखनसेम (बं०) कहते हैं।

१६२—पलाश, ढाक

Butea frondesa, Roxb.

प्रसिद्ध पलाश या ढाक के छोटे या मध्यम ऊँचाई के वृक्ष पलामू तथा हजारीबाग में समूहवद्ध होकर पाये जाते हैं। प्रान्त के मध्य और दक्षिणी भागों में यह अधिक मिलता है। उत्तरी चम्पारन और मोरंग में भी इसके वृक्ष होते हैं। इसे मोरुद (को०); मुरुप (संथा०) या ढाक तथा परास (हि०) कहते हैं। पुष्प, गोंद और बीज चिकित्सा में लिये जाते हैं। पलाश प्रजाति में दो लता जातियाँ होती हैं, जो इस प्रान्त में पाई जाती हैं। इन्हें अथवा इनमें लालफूल की जाति को लतापलाश कह सकते हैं। लाल फूल की जाति को B. superba, Roxb, मोरुद (को०), नारी-मुरूप (संथा०), डोरंग (खर०), नोई पलाश (उ०) और सफेद फूलवाली जाति को B. parvi flora, Roxb. वन्दू, वन्दन (को०), सिहट (संथा०) विव्रि (खर०), रामबोरला (था०) और मौला (हिं०) कहते हैं। केवल पत्तियाँ रहने पर दोनों में अधिक अन्तर नहीं मालूम होता। पहली में पत्रक १२-१८″ लम्बे और दूसरी में ५-१०″ लम्बे होते हैं।

१६३—पताल कोंहड़ा

Pueraria tuberosa, Dc.

इसकी विशाल लताएँ होती हैं, जो पत्तियों के गिरजाने पर फूलती हैं। तीन-तीन पत्रकों में अग्र्य पत्रक तीर्यागायताकार (Rhomboid) और पार्श्वपत्रक तिरछे लट्वाकार होते हैं। अधरतल पर श्वेत तलशायी और रेशम तुल्य सघन रोएँ होते हैं और ऊर्ध्व तल पर भी रोएँ होते हैं, पर कम होते हैं। पुष्पमंजरी ६-१८″ लम्बी और पुष्प नीले या नीलरक्त purple और फली २-३″ लम्बी तथा रोमश होती है। ये लताएँ प्रायः नदी-नालों के करारों में अधिक पाई जाती हैं। जमीन के नीचे इसमें प्रायः कई कन्द रहते हैं, जो काण्ड से दृढ़ मूल शाखा के द्वारा जुड़े रहते हैं और नीचे भी मूलशाखा पुनः निकली रहती है। बड़े कन्द प्रायः वृत्ताकार होते हैं। कन्द २ फीट तक लम्बे और घेरे में २½ फीट तक पाये गये हैं। आदिनिवासी (पलामू में) इसे काट कर और उबाल कर खाते हैं। कई मूत्र तथा उदर विकारों में और मछलियों के मारने में इसका उपयोग होता है। इसे पताल कोंहड़ा (खर०), जनक्षोरा अथवा चिर्रा (संथा०), हाँडीफुटा, भूँई का कर्कांरु (ऊ०) कहते हैं। इसे विदारी माना गया है। भूमिकूष्माण्ड और पताल कोंहड़ा समानार्थक नाम हैं। प्रान्त के जंगलों में प्रायः सर्वत्र यह लता पाई जाती है।

१६४—केवाँच, खुजनी

Mucuna prurita, Hook.

केंवाँच की पतली आरोही लताएँ होती हैं। पत्तियाँ त्रि-पत्रक, पत्रक अधर तल पर तलशयी रोमों से युक्त, पार्श्व पत्रक किंचित हृद्वत् और लट्वाकार, ३-६" लम्बे और अग्र्य पत्रक तिर्यगायताकार (Rhomboid) होता है। पुष्प नीलरक्त (purple) १½" तक लम्बे, सघन, लटकी हुई और ६-१२" लम्बी मंजरियों में निकले रहते हैं। फलियाँ दोनों अग्रों पर विपरीत दिशाओं में टेढ़ी, २-४" लम्बी और भूरे, जलन एवं खुजली उत्पन्न करने वाले सघन दृढ़ रोमों से ढकी हुई रहती हैं। बीज संख्या में लगभग ६, काले-चमकीले और अन्तर्भित्ति (endocarp) के पतले आवरण में ढके रहते हैं। प्रान्त के शुष्क जंगलों में सर्वत्र इसकी लताएँ पाई जाती हैं। हेन्स के अनुसार इससे पलामू में एक मादक पेय 'खसुन' बनाया जाता है। कच्ची फलियों को रोमरहित करके इनका शाक बनाया जाता है। बीज, रोम तथा मूल का चिकित्सा में उपयोग होता है। इसे केंवाँच (हिं०), अल्कुसी एटकीर, एटके (को०, संथा०) तथा वाई-खुजनी (उ०) कहते हैं। इसके तीन या चार भेद प्रायः फलशाक के लिये लगाये जाते हैं।

१६५—फरहद, पारिभद्र

Erythrina indica., Lamk.

फरहद की दो जातियाँ बिहार प्रान्त में मिलती हैं। उपर्युक्त जाति के काँटे छोटे और काले होते हैं। पत्रक ३-६" बड़े और चौड़े तथा त्र्यस्र (Doltoid) होते हैं। पुष्प वृण्ड ४" लम्बा और मञ्जरी प्रायः ६" लम्बी होती है। पुष्प रक्त वर्ण के और उनका बाह्यकोश एक ओर मूलतक फट जाता है और अग्र पर पाँच दाँत बन जाते हैं। फली ६-१०" लम्बी, चोंचदार और किंचित टेढ़ी होती है। बीज संख्या में ६-१२ होते हैं। छाल चिकनी और पतली पपड़ियाँ छूटने पर हरी होती है। इसके वृक्ष राँची, पलामू तथा वटिया (मुंगेर) में होते हैं और लगाये हुए भी होते हैं। इसे मरार (संथा०), फरार (खर०) पलिता-मंदार (बं०) फरहद या पांगरा (हिं०) हद्वद (घटवार०) और पड़ीदा (राँची) कहते हैं। वटिया में एक संथाल ने इसका दूसरा नाम कटपरासी बतलाया जो कंटकी पलाश का समानार्थक है। शास्त्रोक्त पारिभद्र वृक्ष यही है। इसके स्थान में अथवा इस नाम से निम्ब या हरसिंगार को ग्रहण करना केवल भ्रम मूलक है। फरहद की दूसरी जाति E. suberosa, Roxb को पीरी (को०), बुरु मरार (संथा०), फरर, (खर०) और पल्दुआ (उ०) कहते हैं। इसके वृक्ष छोटे होते हैं और प्रान्त के सभी पहाड़ी भागों में होते हैं। इसकी छाल मोटी कार्कवाली और पुष्प में बाह्य कोश द्व्योष्ठ होता है। पत्रक चौड़े लट्वाकार या तिर्यगायताकार (Rhomboid) होते हैं।

१६५—देवपरास

Erythrina resupinata, Roxb

देवपरास वस्तुतः बहुवर्षायु गुल्मक होता है परन्तु इसके वायव्य भाग प्रतिवर्ष सूख जाते हैं। नवीन शाखाएँ प्रतिवर्ष निकलती हैं और केवल कई इञ्च ऊँची बढ़ती हैं। पत्र पलाश के समान त्रिपत्रक और पत्रक २½" लम्बे और चौड़े, वृत्ताकार अथवा अग्र्य पत्रक तिर्यगायताकार (Rhomboid) और पार्श्वपत्रक छोटे लट्वाकार या लट्वाकारप्रासवत् और कुंठिताग्र होते हैं। पर्णनाल और पत्र सिराएँ प्रायः न्यूनाधिक छोटे कंटकों से युक्त होती हैं। सवृन्त पुष्पों की मञ्जरी ४-६" लम्बी और पत्तियों के बहुत पहले ही निकलती हैं। पुष्प रक्तवर्ण के होते हैं और उनका वाह्यकोश द्व्योष्ठ होता है। मूल मोटे और बहुवर्षायु होते हैं जिनसे प्रतिवर्ष पुष्पदण्ड तथा नवीन पत्र शाखाएँ निकलती हैं। पलामू (लाट), नेतरहाट, छोटानागपुर, पारसनाथ और सम्भवतः चम्पारन में भी इसके पौधे होते हैं। लाट में इसे देवपरास कहते हैं और प्रसव के बाद अन्य द्रव्यों के

साथ इसका मूल प्रसूना को दिया जाता है। पाण्डु एवं सर्वाङ्ग शोथ में इसके मूल को पिलाया जाता है। पलामू (लाट) में यह एक प्रसिद्ध उपयोगी ओषधि मानी जाती है। फरहद के पत्र भी ओषधि संग्रहकार के अनुसार आर्तव जनन और स्तन्य जनन के रूप में प्रसूता को दिये जाते हैं अतः एक ही प्रजाति की दो भिन्न-भिन्न जातियों में गुण-साम्य अस्वाभाविक नहीं है।

१६६—मुंगानी, मुद्गपर्णी

Phaseolus trilobus, Ait.

इसके काण्ड प्रसरी, १-२ फीट लम्बे, रोमश या चिकने होते हैं। पत्रक कद में प्रायः बहुत परिवर्तनशील होते हैं और प्रायः वृन्त से छोटे ही होते हैं। ये प्रायः सर्वदा खण्डित, खण्ड तीन और गोल होते हैं। उपपत्र बहुत बड़े और पीठ से जुड़े हुए (प्रायः $\frac{१}{२}$ तक) होते हैं। उपपत्रक छोटे परन्तु पर्णवत् होते हैं। मञ्जरी के शीर्ष पर पुष्प गुच्छ और बड़ा पुष्पदण्ड होता है। फली पतली, लगभग २″ लम्बी, चिकनी और बीज ६-१२ और श्वेताभ होते हैं। इसके बीजों को कभी-कभी गरीब लोग खाने के लिये एकत्र करते हैं। पत्रकों को आकार के अनुसार सूर्पपर्णी कह सकते हैं। इसे ही शास्त्रीय मुद्गपर्णी मानना चाहिये।

१६७ सुतरी

Phaseolus calcaratus, Roxb.

यह पतले काण्ड की चक्रारोही लता है। काण्ड रोमश और पत्ती त्रिपत्रक होती है। पत्रक २-४″ लम्बे, अग्र्य पत्रक लम्बे वृन्तवाले, लट्वाकार, प्रायः ४″×३″ बड़े, लहरदार द्वि-खण्ड धारवाले (कहीं-कहीं भालाकार और अखण्ड), और दोनों तलों पर रोमश होते हैं। उपपत्र बड़े और पीठ पर जुड़े हुए, मञ्जरी एक इञ्च तक लम्बी, पुष्प पीले, फली ६-१२ बीजों वाली और बीज भूरे होते हैं। पलामू, कोडर्मा, सिंगभूमि तथा राँची आदि के शुष्क एवं ऊँचाई के जङ्गलों में या शालवनों में इसके पौधे वन्य अवस्था में पाये जाते हैं। इसे सुतरी या वीरमूंग (संथा०) कहते हैं। बीज खाये जाते हैं और चेचक पर कुटी के साथ इसका लेप होता है।

१६८—अपराजिता

Clitoria ternatea, L.

इसकी सुन्दर और पतले काण्ड की चक्रारोही लताएँ होती हैं। पत्तियाँ प्रायः पंच-पत्रक (पक्षवत्), पत्रक अण्डाकार, १-२″ बड़े और इसके नीले अथवा कभी-कभी श्वेत पुष्प १$\frac{१}{२}$-२″ बड़े, पत्रकोणीय पुष्पदण्ड में एकाकी, कोणपुष्पक बड़े, स्थायी और पर्णसदृश होते हैं। पुष्प में ध्वजदल चिमच के आकार का और पक्ष-दलों के नीचे फैला रहता है। फली लम्बी, चिपटी और लगभग २$\frac{१}{२}$″ लम्बी होती है। इसकी लताएँ प्रायः बागों में ही लगाई हुई मिलती हैं और बस्तियों के आस-पास वन्य अवस्था में भी कभी-कभी देखने में आती है।

१६९—शीशम

Dalbergia sissoo, Roxb.

प्रसिद्ध शीशम के वृक्ष उत्तरी चम्पारन और उत्तरी पुर्णिया में प्रकृतिजन्य होते हैं। अन्यत्र इसके केवल लगाये हुए वृक्ष मिलते हैं। इसकी एक दूसरी जाति D. latifolia, Roxb, उत्तरी भाग में तथा अन्यत्र पहाड़ों के शीतल भागों में भी छोटे-छोटे वृक्षों के रूप में मिलती है। इसे सेतसार (था०), कीरी (को०) सतसयर अथवा महले (संस्था), पहारी सीसो या सितसाल (हिं०) और Black wood या rose wood कहते हैं। निघंटुकारों का यह दूसरा शिशपाभेद मालूम होता है।

१७० नारी सिरिस

Dalbergia volubilis, Roxb.

इसके गुल्म होते हैं, जिसकी शाखाएँ दुर्बल काण्ड की, लम्बी और हरी होती हैं और फैली रहती हैं। पत्तियाँ पक्षवत, ७-१२ पत्रकों वाली और पुष्प हलके नीलरक्त या नीले रंग के होते हैं। पुंकेशर ५+५ होते हैं। फलियाँ २-३½" लम्बी और ¾" चौड़ी होती हैं। पत्रक चौड़े आयताकार या अभिलट्वाकार, २¾"×१½" बड़े, नताग्र या कुण्ठिताग्र परन्तु तीक्ष्ण और सूक्ष्मनोक से युक्त होते हैं। उत्तरी चम्पारन में अधिक और अन्यत्र नदी-नालों के किनारे इसके पौधे मिलते हैं। मूल और छाल का चिकित्सा में उपयोग होता है। इसे शीतल, स्नेहन, व्रणशोधन और व्रणरोपन बतलाया गया है। मुख के या गले के अन्दर फोड़े या छाले होने पर छाल मुख में रखी जाती है। पामा नबीन हो तो छाल का रस जीरा और शक्कर मिलाकर दिया जाता है।

---

१७१ पैसार, विजासार

Pterocarpus marsupium, Roxb.

पैसार सुन्दर वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ पक्षवत और ५-७ पत्रक, पत्रक आयताकार या अण्डाकार, ३-५" लम्बे, कुण्ठित-या-नताग्र और अधरतल पर चमकीले होते हैं। पुष्प सघन और सशाख अग्रच मंजरियों में और फली वृत्ताकार, सपक्ष और व्यास में १-१¾" होती हैं। छाल में घाव करने से लाल रस निकलता है, जो कुछ दिनों में सूख कर काला और कड़ा हो जाता है। इसे अतिसार में बहुत उपयोगी बतलाया जाता है। इसके वृक्ष उत्तरी भाग को छोड़कर प्रान्त में सभी पहाड़ी भागों में प्रायः नालों के किनारे या पहाड़ियों की उत्तरो ढालों पर अधिक होते हैं। इसे हिद (को०), मुरगा (संथा०), पियासाल (प्रियशालक), विजा (जै०) सार (बीजक०) और बीया (बीजवृक्ष) कहते हैं। निघंटुकारों ने असन को बीजक का पर्याय नाम अथवा बीजक भेद बतलाया है, परन्तु आसन भिन्न वर्ग का भिन्न वृक्ष है, जिसका वर्णन अन्यत्र किया गया है। इस प्रान्त में (राजमहल) इसका एक भेद कहीं-कहीं मिलता है जिसके पत्रक लटवाकार, तीक्ष्णाग्र या लम्बाग्र और फलियाँ अधिक बड़ी होती हैं, इसे Var. acuminata, Prain कहते हैं।

---

१७२ करंज, डहर करंज

Pongamia glabra, Vent

करञ्ज के बड़े-बड़े वृक्ष होते हैं। पत्तियाँ पक्षवत्, ८-१४ इञ्च लम्बी, पत्रक संख्या में ५-७, चमकदार, आयताकार या लट्वाकार और प्रायः २-५ इञ्च लम्बे होते हैं। पुष्प (lilac) और फली एक बीज, चिकनी परन्तु कठोर होती है। प्रायः नदी-नालों के किनारे इसके जङ्गली वृक्ष प्रान्त में सर्वत्र मिलते हैं। बीज तैल जलाने तथा चिकित्सा के काम में आता है। यह चर्मरोगों में तथा सन्धिवात में लाभदायक होता है। इसे उत्तरप्रदेश में कहीं-कहीं डिठोहरी कहते हैं। इसे करञ्ज (हि. को.), कुरंजि (संथा०), डहर करंज (बं०) और कहीं-कहीं किरमाल भी कहते हैं। निघन्टुकारों ने करञ्ज के वर्णन में बड़ा गोलमाल किया है। करञ्ज भेदों का निर्णय करते समय तीन वनस्पतिओं को लक्ष्य में रखना चाहिये—(१) उपर्युक्त करञ्ज (२) चिरविल्व (अन्यत्र वर्णित), (३) काँटा करञ्ज (अन्यत्र वर्णित)।

टिप्पणी—प्रजापति उपकुल के अन्तर्गत इस प्रान्त में होनेवाली उन लोकोपयोगी और कृषिजन्य वनस्पतियों का वर्णन ऊपर नहीं दिया गया है, जो प्रायः सबको ज्ञात हैं। उनकी नामावली नीचे दी जाती है:—मेथी (Trigonella foenum graecum, L), गुआर या गुआलिन (cyamopsis tetragonoloba, Taub), मसूर (Lens esculenta, Moench) खेसारी (Lathyrus sativus, L), मटर (Pisum arvense. L), और P. sativum L), मूंगफली (Arachis hypogea, L), अरहर (Cajanus indicus, Spreng रत्मकुरथी

या सोयाबीन (Glycine hispida Maxim), मोठ या मोथी (Phaseolus aconitifolius, Jacq), उड़द या माष (Phaseolus Mungo, L) मूँग (Phaseolus radiata, L), लोबिया (Vigna Catiang, Endl), सेम (Dolichos lablab, L), कुल्थी (Dolichos biflorus, L), तथा चना या बूट (Cicer arietinum)।

१७३ अम्लिका उपकुल

(Caesalpiniaceae)

उपकुल-लक्षण—वृक्ष और गुल्म अधिक और क्षुप बहुत कम ; पत्ती १-२ पक्षवत्, कभी-कभी पत्रक केवल दो और कभी दोनों पत्रकों के मिल जाने से द्वि-खण्डित अपत्रक-पर्ण; पुष्प छोटे या बड़े, समेकच्छेद अथवा किंचित् नियताकार, प्रायः सवृन्त और काण्डज ; बाह्यकोश कभी-कभी पत्र-कोशाकार, प्रायः पंचांगभागी और परिजाय एवं नीचे का दलाक्ष-नाल छोटा या बड़ा, बाह्यदल अनियतारूढ़ या संश्लिष्ट दलक ; आभ्यन्तर दल पाँच, कभी-कभी कम या अनुपस्थित, स्वतन्त्र, अनियतारूढ़, पक्षदल के दोनों किनारे समीपवर्ती दलों के नीचे, और अन्य दलों से भिन्न ; पुंकेशर प्रायः दस, इनमें कुछ का क्लीवकेसरों में परिवर्तन या वे पूर्णतः लुप्त, दलयक्षनाल से निकले हुए, केवल कभी-कभी परस्पर संयुक्त ; अण्डाशय स्वतन्त्र अथवा एक ओर दलयक्ष-नाल से संयुक्त ; फली प्रायः अस्फोटी। इस कुल की मुख्य-मुख्य वनौषधियों का वर्णन नीचे दिया गया है:—

१७४ अमलतास

Cassia fistula, L.

अमलतास के प्रसिद्ध वृक्ष प्रान्त में स्वतः उगे हुए प्रायः सर्वत्र मिलते हैं और इसे हारो (को.) वनरलौर या मिरजूबाहा (संथा०), धनवहेरे या धनरस (खर०) सोनारी (उ०) सोनरकी (खर) कहते हैं। पत्ती सम-पक्षवत्, पत्रक लट्वाकार, लट्वाकार-प्रासत्रत् या लट्वाकार-आयताकार, २-७" लम्बे और लम्बाग्र या तीक्ष्णाग्र होते हैं। इसके पीले पुष्पों की मंजरियाँ नीचे की ओर लटकी हुई और लम्बी एवं रम्भाकार, काली (पककर सूखने पर) फलियाँ भी नीचे की ओर लटकी हुई रहती हैं। फल मज्जा, मूल, छाल और पत्ती का चिकित्सा में उपयोग होता है।

१७५ चकवड़, चक्रमर्द

Cassia tora, L.

इसके स्वावलम्बी क्षुप १-५ फीट ऊँचे होते हैं। सम-पक्षवत् पत्तों में पत्रक तीन जोड़े, १-२½" लम्बे, अभिलट्वाकार, गोल, कुण्ठित या नताग्र और पत्रकदण्ड के अग्र की ओर क्रमशः बड़े होते हैं। पत्रकों में कुछ दुर्गन्ध भी होती है और नीचे वाले पत्रकों के एक या दो जोड़ों के बीच में एक रेखाकार ग्रंथि होती है। पुष्प पीले, व्यास में .५", पत्र-कोणीय और एकाकी या दो-दो साथ और फली ६-१२" लम्बी, पतली, घेरे में गोलाई लिये हुई या चतुष्कोणीय होती है। इसका एक भेद विशेष (var. obtusifolia) भी पाया जाता है। कोमल पत्तों का शाक खाया जाता है और बीज तथा पत्र चर्म रोगों में बहुत उपयोगी माने जाते हैं। चक्रमर्द तथा पवाड़ (पामारि) नाम गुणसूचक है। इसके क्षुप बरसात में समूहबद्ध होकर परित्यक्त भूमि में सर्वत्र उगे हुए पाये जाते हैं।

१७६ कसौंदी, कासमर्द

Cassia occidentalis, L.

इसके बड़े-बड़े और पुष्ट क्षुप प्रायः २-४ फीट ऊँचे होते हैं। पत्तियाँ ६-१२" लम्बी और पत्रक ४-५ जोड़े, लट्वाकार, लट्वाकार-आयताकार या लट्वाकार-प्रासन्नत्, प्रायः लम्बाग्र और १¼-४" लम्बे होते हैं। पुष्प पीले, सवृन्त और काण्डज और पत्रकोणीय अथवा अग्र्य मंजरियों में होते हैं। फली ४-५" लम्बी और चिपटी होती है। परती जमीन में बरसात के दिनों में यह कसरत से पैदा होती है।

मलेरिया से बचने का एक सरल उपाय ?

वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री
अध्यक्ष—श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, कलकत्ता

क्वार-कार्तिक के महीने में बरसात बन्द होते ही समूचे भारतवर्ष में मलेरिया का भयंकर प्रकोप होता है। सरकारी श्राँकड़ों के हिसाब से हमारे देश में प्रतिवर्ष १०,००००००० दश करोड़ व्यक्ति मलेरिया से पीड़ित होते हैं। उनमें प्रायः शतांश तो मर ही जाते हैं श्रौर चर्तुथांश इतने श्रल्परक्त—कमजोर हो जाते हैं कि वे देश के लिए भारस्वरूप सिद्ध होते हैं। इसीलिए; मलेरिया हमारे राष्ट्र का एक भयानक शत्रु है। प्रत्येक मनुष्य को श्रात्म रक्षा के लिए इससे बचने के उपाय जानना श्रावश्यक है।

मलेरिया की उत्पत्ति

शरद् ऋतु (श्राश्विन-कार्तिक या सितम्बर-श्रक्टूबर) में पानी बरसना बन्द होने पर मलेरिया खूब फैलने लगता है। उस समय इससे बचना बहुत कठिन है। इसीलिए; हमारे वेदों में भी "जीवेन शरदः शतम्" श्रर्थात् हम सौ शरद् ऋतु पर्यन्त जीवें यही मंगल-कामना की गई है। श्राधुनिक विज्ञान (Modern Science) ने भी यही सिद्ध किया है कि एनोफिलिस जाति का प्लाज़्मोडीन नामक मलेरिया फ़ैलाने वाला मच्छर स्वच्छ पानी में ही श्रण्डे देता है।

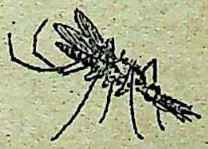

चित्र नं० १—एनोफिलिस जाति का यह मच्छर मलेरिया फैलाता है।

जब तक पानी बरसता है बहते रहने के कारण गन्दा रहता है, उसमें मलेरिया मच्छर का श्रण्डे देना सम्भव नहीं होता है। इसीलिए; बरसात बन्द होते ही जल संचय के स्थान तालाब, पोखर, गड्ढे, यहाँ तक कि हमलोगों के घर या छत पर रखे हुए टूटे-फूटे वर्तन, बाल्टी, डोलची, फूल-पौधों के गमले इत्यादि में भी मलेरिया का मच्छर श्रण्डे देकर कुछ ही दिनों में श्रसंख्य नये मच्छर उत्पन्न कर देता है।

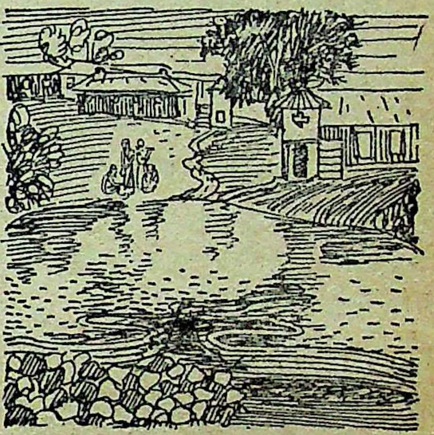

चित्र नं० २—घरों के पास इस प्रकार के पोखरों श्रौर गड्ढों में जल संचित होकर उसमें मलेरिया के मच्छर उत्पन्न हो जाते हैं।

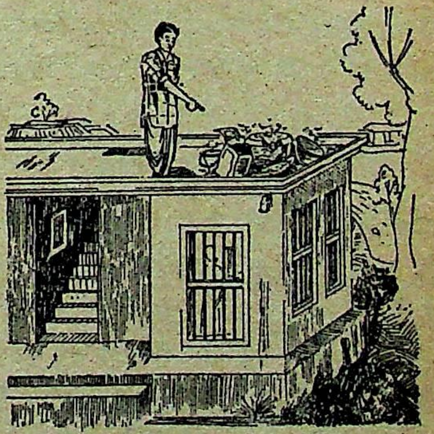

चित्र नं० ३—इस प्रकार घरों की छत पर रखे हुए टूटे-फूटे वर्तनों में जल संचित होकर उसमें मलेरिया का मच्छर श्रण्डे देता है।

मलेरिया का मच्छर जब मनुष्यों को काटता है, तब वह उनके रक्त में मलेरिया के कीटाणुश्रों को डाल देता है

और वे कीटाणु उन मनुष्यों के शरीर में पनप कर मलेरिया को उत्पन्न करते हैं। मलेरिया का मच्छर शरीर में काटने के १२ या १३ दिन बाद ही रक्त में मलेरिया के असंख्य कीटाणु पैदा हो जाते हैं। मलेरिया का मच्छर प्रायः अंधेरे में रहता है तथा एक साथ दो सौ गज से अधिक उड़कर नहीं जा सकता है। जिस वर्ष अधिक वर्षा होती है या हफ्ते दो हफ्ते रुक-रुक कर पानी बरसता है, उस वर्ष मलेरिया का अत्यधिक प्रकोप होता है। आसाम में वर्ष के आठ महीने वर्षा होने के कारण वहाँ मलेरिया का भयंकर प्रकोप होता है। वहाँ रहने वालों के अलावा चटगाँव से बदरपुर जाने वाली रेलवे से यात्रा करने वालों को भी मलेरिया बुखार हो जाता है। रेलवे लाइनों और सड़कों को बनाने में इनके दोनों तरफ बिल्कुल पास ही मिट्टी खोदने के लिए मजदूर लोग गड्ढे बना देते हैं। उनमें भी बरसात का जल संचित होकर मलेरिया के मच्छर पैदा हो जाते हैं और वे मलेरिया को फैलाते हैं।

मलेरिया की पहचान

मलेरिया बुखार की मुख्य पहचान यह है कि कँप-कँपी के साथ जाड़ा लगकर बुखार आता है। तापमान (Temperature) १०३ से १०७ डिग्री तक होता है तथा तीन-चार घण्टे बाद पसीना आकर बुखार उतर जाता है। रोग पुराना होने पर तिल्ली बढ़ जाती है, जिसके फलस्वरूप खून की कमजोरी अधिक बढ़ जाती है। रोगी का शरीर सूखकर हड्डियों का ढाँचा-सा प्रतीत होता है।

मलेरिया से बचने का उपाय

मलेरिया से बचने के लिए मच्छर मात्र से बचना चाहिए, क्योंकि साधारण व्यक्ति के लिए यह जानना कठिन है कि मलेरिया किस प्रकार के मच्छरों से फैलता है। मच्छरों से बचने के लिए स्थायी तथा अस्थायी दोनों तरह के उपाय हैं। स्थायी उपाय तो यह है कि अपने निवास स्थान से दो सौ गज से या इससे भी कुछ अधिक दूरी तक कहीं भी जल संचित न हो, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए। मलेरिया से बचने का यह महान् कार्य हमारे देश की जनता और दोनोंको मिलकर करना होगा। शहर और गाँवों को इस ढंग से बसाया जायं कि उसके आसपास कहीं भी जल संचय होकर मच्छर उत्पन्न न होने पावें। इस प्रकार मलेरिया से बचने का यह एक महत्वपूर्ण योजनावद्ध कार्य होगा। यद्यपि इसके होने में कुछ समय लगेगा। परन्तु; बिना इस तरह का स्थायी प्रबन्ध किये भारतीय जनता का कल्याण नहीं है। भविष्य में होने वाला शहरों और गाँवों के पुनर्निर्माण का कार्य इसी योजना के अनुसार होना चाहिए।

सरकार मलेरिया से रक्षा के लिए यद्यपि प्रतिवर्ष बहुत धन खर्च करती है। लेकिन; वह सब अस्थायी या क्षणिक (Temporary) प्रबन्धों पर ही खर्च किया जाता है। यह अस्थायी प्रबन्ध दो प्रकार से किया जाता है। (१) मलेरिया के मच्छरों का मानव शरीर से सम्पर्क न होने देने के लिए मच्छरों को डी० डी० टी० छिड़क कर नष्ट करना। (२) फैले हुए मलेरिया को विविध ओषधिओं से नष्ट करना। इन कामों में देश का करोड़ों रुपया सरकार के द्वारा खर्च होता है। यदि किसी प्रान्त में मलेरिया को नष्ट करने के लिए एक करोड़ रुपया खर्च होता है, तो उसमें से ७५ प्रतिशत खर्च डी० डी० टी० खरीदने और उसके छिड़कवाने में हो जाता है। हमारे निर्धन देश का इतना धन खर्च करके जो थोड़ा-सा स्थायी लाभ होता है, उसको देखते हुए इसे केवल पहाड़ खोदकर चूहा निकालना ही कहा जा सकता है। यद्यपि प्राणरक्षा के लिए निर्धन देश का इससे भी अधिक रुपया खर्च करना उचित कहा जा सकता, यदि हमारे देश में उससे अच्छा और सस्ता उपाय उपलब्ध न होता। परन्तु; हम आगे जो उपाय बतला रहे हैं, उसके साथ सस्ता शब्द का प्रयोग भी नहीं जँचता क्योंकि उसमें एक पाई का खर्च नहीं। इस सबको पढ़कर आप स्वयं जान लेंगें कि डी० डी० टी० मंगाने में विदेश को इतना रुपया भेंट करना कहाँ तक उचित है?

मच्छरों को नष्ट करने का सर्वोत्तम उपाय

प्राचीन काल से ही हम भारतवासी इन मच्छरों को नष्ट करने के लिए घरों में धुआँ करते हैं। धुएँ से मच्छर समूल नष्ट हो जाते हैं। आज भी ठेठ देहातों में जहाँ कि डी० डी० टी० का प्रवेश तक नहीं हुआ है, एक अशिक्षित किसान भी अपने परिवार के लोगों तथा पशुओं को मलेरिया से बचाने के लिए ठीक सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय नियमित रूप से कूड़ा-कचरा और

पशुओं की जूठन के बेकार घास को जलाकर अपने निवास स्थान को धुएँ से परिपूर्ण कर लेता है। मलेरिया के मच्छरों को नष्ट करने का यह सबसे सस्ता सरल और उत्तम उपाय है। विशेषतः देश की ७५ प्रतिशत आवादी के लिए और वह आवादी है देहात। कूड़ा-कचरा और बेकार घास का धुआँ करने से मच्छर और कीट पतंग आदि स्वास्थ्य नाशक जन्तु तो नष्ट होते ही हैं साथ ही साथ घर, पड़ोस और गाँव भी साफ-स्वच्छ हो जाते हैं। धुआँ करने के लिए लकड़ी, कण्डे, गोबर आदि को भी नहीं जलाना चाहिए। लकड़ी और कण्डे जलाने से खर्च भी अधिक पड़ता है और उनसे धुआँ भी अच्छा नहीं होता। एकदम लौ लगकर जलने लगता है। ऐसा करने से ईंधन और खाद का अपव्यय होता है। धुआं करने का सर्वोत्तम तरीका यह है कि प्रत्येक व्यक्ति नित्य अपने घर की सफाई करने पर जो कूड़ा-कचरा निकले उसमें कुछ नीम की पत्तियाँ डालकर उसको इस प्रकार जलावे कि धीरे-धीरे सुलग कर धुआँ होता रहे। समस्त गाँव के कूड़े-कचड़े के ढेर को भी इसी उपयोग में लाना चाहिए।

मच्छरों से बचने के लिए मशहरी। (Mosquito net) का उपयोग भी अच्छा है। परन्तु; सबके पास मशहरी सम्भव नहीं है ऐसी स्थिति में रात को शरीर पर सरसों का तैल लगाकर सोना चाहिए। ऐसा करने से मच्छरों से बचे रहेंगे। बंगाल और आसाम के लोग शरीर पर सरसों का तैल लगाकर सोते हैं, तब बच पाते हैं।

सर्व साधारण जनता को मलेरिया से बचने के लिए सबसे अधिक ध्यान तो इस बात पर देना चाहिए कि अपने-अपने घर के आस-पास के गड्ढों की राख-मिट्टी डालकर एकदम पाट देना चाहिए। तालाब या पोखर आदि भी गाँव से कुछ दूर होना चाहिए। हमारे गाँव प्रायः तालाब या बड़े जलाशय का आश्रय लेकर बसाये हुए हैं। इस वर्ष उत्तर प्रदेश में वर्षा अधिक होने के कारण प्रायः गाँव चारों तरफ जल से घिर गये हैं और उनकी स्थिति छोटे-छोटे टापुओं जैसी हो गयी है। यही कारण है कि इस वर्ष उत्तर प्रदेश में मलेरिया का विशेष प्रकोप हो रहा है। हमें इन सब बुराइयों को दूर करने के लिए जनता को शिक्षित करना होगा। सरकार जितना धन डी० डी० टी० छिड़कने पर खर्च करती है, उससे दशमांश भी मलेरिया से बचने के वास्तविक उपाय बतलाने में खर्च करे, तो लोग स्वयं ही मलेरिया से अपनी रक्षा कर सकेंगे। सरकारी कर्मचारी औपचारिक रूप से कूड़े के ढेरों और गन्दी नालियों आदि में एक-दो बार डी० डी० टी० छिड़क कर अपना कर्तव्य पूरा समझ लेते हैं और नागरिक भी डी० डी० टी० छिड़क दिया गया यह जानकर निश्चिन्त हो जाते हैं। परन्तु; उन कूड़े, कचरे के ढेरों और गन्दी नालियों की विना सफाई किये डी० डी० टी० छिड़कने का कुछ भी लाभ नहीं होता है। देश के धन को इस तरह फिजूल खर्च करने की आवश्यकता नहीं है। इसके वजाय कूड़े-कचरे के ढेरों को जलाकर धुआँ करके मच्छरों को नष्ट किया जा सकता है और गन्दगी से स्वास्थ्य की रक्षा की जा सकती है। करोड़ों रुपयों के खर्च से भी न होने वाला काम बिना एक पैसे खर्च किये हो जायगा। देश के शिक्षित लोगों को भी इस पुनीत कार्य में सहयोग देने के लिए अशिक्षित जनता को मलेरिया से बचने का सरल उपाय बताने का ज्ञानयज्ञ करना चाहिए। इससे जनता को मलेरिया महारोग से बचाया जा सकेगा।

बैद्यनाथ सुवर्ण मालिनीवसन्त (बृ०)

स्वर्ण और मुक्ताके योगसे बननेवाली यह महौषधि शरीरके सभी अंगों और विकारोंपर अपना खास असर दिखलाती है। जीर्णज्वर, क्षय, कास, श्वास, प्रमेह, पाचनविकार, धातुक्षीणता, हृदय-रोग,, श्वेतप्रदर, वीर्यस्राव, बहुमूत्र, पांडु, अशक्ति आदि में लाभ करती है। मस्तिष्कमें स्फूर्ति और बल पैदा करना इसका खास कार्य है। सभी प्रकारके स्त्री, पुरुषों, बालकों को सभी ऋतुओं में यह माफिक पड़ती है और निश्चय ही अपना प्रभाव दिखलाती है। कीमत—१ तोला २४), चार आना भर ६-), दो आना भर ३-), एक आना भर १।-)

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर।

देश भर में

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के ४ निर्माण केन्द्र, ५५ बिक्री केन्द्र तथा १५ हजार से अधिक एजेन्सियों द्वारा

धन्वन्तरि जयन्ती समारोह सम्पन्न

भू० पू० बिहार गवर्नर—लोकनायक महामहिम श्रीयुत अणेजी के शब्दों में "धन्वन्तरि जयन्ती—मनुष्य मात्र का पुण्य पर्व है।" इसीलिए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की देश व्यापी शाखा-प्रशाखाओं में यह पुण्य पर्व मानव मात्र के स्वास्थ्य कामना से बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। इसमें सहस्रशः वैद्य, डाक्टर तथा आयुर्वेद-प्रेमाजन एकत्र हो भगवान धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मानव मात्र के लिए स्वास्थ्य-हित की बातों पर विचार विमर्श करते हैं। प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी ता० १६-१०-५२ को श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की सभी शाखा-प्रशाखाओं द्वारा धन्वन्तरि जयन्ती समारोह सानन्द मनाया गया। धन्वन्तरि जयन्ती समारोह का विस्तृत विवरण नीचे प्रकाशित है।

पटना-निर्माण केन्द्र

आज यहां दक्षिण पटना स्थित चिरैया टांड के अंचल में "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" के संचालक एवं कार्यकर्त्तागण द्वारा श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह सफलता पूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर आयोजित सभा का सभापतित्व बिहार राज्य के उपमुख्य मंत्री डा० अनुग्रहनारायण सिंह कर रहे थे। भगवान धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के उद्देश्य से सभा में सभापति के अतिरिक्त सिचाई एवं बिजली मंत्री श्रीरामचरित्र सिंह पशुपालन एवं सहकारी मंत्री श्रीदीपनारायण सिंह, उप मंत्री श्री वीर चन्द्र पटेल, राज्य विधान सभा के उपाध्यक्ष श्री जगत नारायण लाल, भूतपूर्व चिकित्सा मंत्री पंडित विनोदानन्द झा और अनेकानेक गण्यमान नागरिक जिनमें विधान मंडल के अनेक सदस्य, प्रमुख आयर्वेद प्रेमी एवं लोक सेवी व्यक्ति उपस्थित रहे। पटना आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रिन्सिपल श्री हरि नारायण चतुर्वेदी, बेगूसराय आयुर्वेदिक महाविद्यालय के प्रधान श्री रामरक्ष पाठक और श्रीसुखरामप्रसाद वैद्य ने धन्वन्तरि के जीवन और मानव कल्याणकारी कार्यों पर प्रकाश डालते हुए उनके प्रति श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। इस पुण्य अवसर पर मयुरा हरिदास कंपनी की प्रबन्ध संचालिका श्रीमती चमेलीदेवी बैद्यभूषण, श्रीमती सुन्दरी देवी एम० एल० ए० और श्रीमती रामप्यारी देवी एम० एल० सी०, भी सभा में शामिल हुईं। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० कार्यालय का भीतरी प्रांगण इस मौके पर विशेष रूप से सुसज्जित किया गया था। और भवन के प्रत्येक परमाणु समारोह में पूर्ण उत्साह युक्त सहयोग दे रहा था।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के प्रबन्ध संचालक श्री राम दयाल जोशी के प्रस्तावानुसार डा० अनुग्रह नारायण सिंह ने सभापति का आसन ग्रहण किया। समारोह की कार्यवाही सुप्रसिद्ध कवि पंडित रामदयाल पांडे द्वारा निम्नलिखित मंगलाचरण पाठ से प्रारम्भ हुई।

मंगलाचरण

"जय धन्वन्तरि जय भारत", यह जन २ का हो नारा।
जागे देश हमारा, जागे आयुर्वेद हमारा॥
नव स्वतन्त्र भारत का उन्नत आयुशास्त्र हो अपना॥
शरदः शतम् कर्म मय जीवन का सच हो फिर सपना।
मन्द, बन्द हो रोग-शोक का रोना और कलपना॥
दुर्बलता हो ध्वस्त वहे नव आयु शक्ति की धारा।
जागे वीर्य हमारा, जागे आयुर्वेद हमारा॥

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के
पटना निर्माण केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
दवा ओंका सबसे बड़ा विश्वासी कारखाना
पटना निर्माण केन्द्र
आरोग्य प्रक
वैद्यनाथ

श्री पं० दुर्गाप्रसाद जी शर्मा वैद्य विशारद **स्वागत भाषण** (खड़े हुए) पढ़ रहे हैं

बैठे हुए बायें से दायें--श्रीयुत लक्ष्मीनारायण सिंह "सुधांशु", माननीय डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह, उप-मुख्य मन्त्री बिहार, माननीय रामचरित्र सिंह सिंचाई एवं बिजली मन्त्री, माननीय दीपनारायण सिंह–पशुपालन एवं सहकारी मन्त्री बिहार हैं।

अपने भारत की धरती में सभी शक्तियां सोईं।
पराधीनता के प्रमाद में सारी सुधबुध खोई॥
चरक और सुश्रुत की भारत माता कितना रोई।
स्वतन्त्रता ने स्वाभिमान को उठकर आज पुकारा॥
जागे तेज हमारा, जागे आयुर्वेद हमारा।
आज स्वदेशी शासन में हो आयुर्वेद स्वदेशी॥
व्याधि स्वदेशी हैं तो क्यों हो व्यर्थ इलाज विदेशी?
राष्ट्र-पिता ने हमें दिखाया पथ कर दूरंदेशी॥
भारत आयुर्वेद साधना में रत हो श्रम सारा।
जागे शौर्य हमारा, जागे आयुर्वेद हमारा॥
आओ हम साधना करें, अभिनव धन्वन्तरि आएँ।
नई प्रगति हो नव उन्नति हो, नव संदेश सुनाएँ।
"जय स्वतन्त्र भारत जय आयुर्वेद" गीत हम गाएँ॥
फिर बल तेज कर्ममय हो यह भारत देश हमारा।
तिमिराच्छन्न गगन में चमके उन्नति का ध्रुवतारा।
जागे फिर विज्ञान हमारा आयुर्वेद हमारा।"

तत्पश्चात् महोत्सव के स्वागताध्यक्ष श्री दुर्गा प्रसाद शर्म्मा ने अतिथियों का स्वागत करते हुए निम्नलिखित सारगर्भित भाषण किया।

स्वागत-भाषण[१]

माननीय वैद्य वृन्द तथा आयुर्वेद प्रेमी सज्जन वृन्द!

आप लोगों की सेवा में यह निवेदन करते हुए अपार हर्ष और असीम उत्साह का अनुभव हो रहा है कि आज हम सब लोग मिलकर आयुर्वेद के आदि देव भगवान श्री धन्वन्तरि जी का जयन्ती महोत्सव मना रहे हैं। आयुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाले सभी लोग इस पवित्र और पुण्यमय महोत्सव के मनाने में श्रद्धा रखते हैं और प्रति वर्ष इस महोत्सब को अपूर्व उत्साह के साथ मनाते हैं। परन्तु जैसे प्रायः लोग दीपावली के महोत्सव पर एक दिन तो लक्ष्मी पूजन बड़े उत्साह से करते हैं और वर्ष के वाकी दिनों में लक्ष्मी - उपार्जन का कोई ध्यान नहीं रखते हैं, ऐसी स्थिति में एक दिन के पूजन से ही लक्ष्मी जी का प्रसन्न होना असम्भव बात है। लक्ष्मी प्राप्तिके लिये तो नित्य ही उनका अर्चनरूपी पूजन करने की आवश्यकता है। ठीक इसी प्रकार की स्थिति आज कल हमारे धन्वन्तरि पूजन के विषय में भी हो रही है। अबतक हम लोग इसे अपनी रूढ़ि प्रथाके अनुसार केवल एक दिन ही मनाते आये हैं। परन्तु अब हमें इसमें आवश्यक सुधार करना होगा। यह पुण्य पर्व केवल एक दिन एकत्रित होकर आनन्दोल्लाससे पूजन कर लेनेका ही नहीं है। अपितु इससे वर्ष भर अपने दैनिक जीवन में श्रीधन्वन्तरिजी के रोग-पीड़ित जनता की निष्कामसेवावृत्तिपूर्ण आदर्श जीवनको अपनाना चाहिये। प्रति वर्ष जयन्ती महोत्सव पर अपनी इस सेवावृत्तिकी भावनाको अधिकाधिक बढ़ाने का संकल्प करने की आवश्यकता है। "स्वकर्मणा समभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवाः" अर्थात् मनुष्य अपने कर्मों द्वारा इष्ट देवकी तदनुकूल आचरणरूपी पूजा करके ही सिद्धिको प्राप्त करता है। किसी भी महा पुरुषकी जयन्ती मनाने का असली उद्देश्य भी यही होता है कि उसके उच्च आदर्शोंका स्मरण कर हम तदनुसार आचरण करें। हमारे आदि देव भगवान् श्रीधन्वन्तरिजी देवराज इन्द्र की सलाह से रोगग्रस्त प्राणियों के रोग निवारणार्थ एवं स्वास्थ्य विषयक आयुर्वेद के अमूल्य ज्ञान का प्रसार करने के लिये ही इस लोकमें आविर्भूत हुए थे। उनका मूल उद्देश्य "कामयेदुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्" यही था। हम लोगों को उनके इस आदर्श सिद्धांतके अनुसार ही कार्य करना चाहिये। यही उनकी असली पूजा है।

हमारे आधुनिक शिक्षाप्राप्त भारतीय जनसमाज को आधुनिक विज्ञान की चकाचौंध में आकर उसकी तरफ बढ़ता देखकर हमारा वैद्य समाज भी आधुनिक विज्ञानकी तरफ कुछ-कुछ आकर्षित हो कर उसके चिकित्सकोंका अनुसरण करते दिखाई देता है। परन्तु उसके लिये यह उन्नति का प्रशस्त मार्ग नहीं है। वैद्य समाज को चाहिये कि वह जनता को क्षणिक लाभवाली लाक्षणिक चिकित्सा के स्थान पर रोगोत्पत्ति के मूल कारणोंको दूर करते हुए रोगका निवारण करनेवाली स्थायी लाभकारी चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद का महत्व समझा कर तात्कालिक लाभ प्राप्त करनेके लिए उसके भ्रमको दूर करे। निहित स्वार्थवाले लोगोंके द्वारा आधुनिक विज्ञानके नाम पर किये जानेवाले प्रचार को रोकने के लिये जनता को सत्यका असली स्वरूप समझानेकी अत्यन्त आवश्यकता है।

हमारे देश के स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके साथ ही वैद्य समाज को कांग्रेस सरकारके द्वारा स्वदेशी चिकित्सा विज्ञान आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति बनानेकी आशा होने लगी थी।

---

[१] यह स्वागत-भाषण श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के सभी शाखा-प्रशाखाओं में पढ़ा गया।

परन्तु "प्रभुता पाय काहि मद नाहीं" के अनुसार कांग्रेस सरकार भी स्वदेशी विज्ञानके प्रोत्साहनका काम भूल गयी है। सरकार आयुर्वेदके लिये कुछ भी नहीं कर रही है। ऐसी स्थिति में वैद्य समाजको जनता के द्वारा आयुर्वेदको प्रोत्साहन देने के लिये सरकारसे जोरदार मांग करनी चाहिये। जनतासे अधिकाधिक सम्पर्क बढ़ानेके लिये वैद्य समाजको रोग पीड़ित जनताकी चिकित्सा सेवा भावसे करनी चाहिये रोगपीड़ित और गरीब लोगोंकी सेवा ही सच्चे अर्थोंमें भगवान् धन्वन्तरिजी की सेवा है और उसीके द्वारा ही हम उन्हें प्रसन्न कर सकते हैं। आयुर्वेद विज्ञान और वैद्य समाजकी उन्नतिके लिये भी इससे श्रेष्ठ दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

आजकल हम लोगों में दूसरोंकी देखा-देखी कार्य करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और आत्मदर्शनकी भावना कम होती जा रही है। हम लोग इन्जेक्सन और डूस आदिको देकर पाश्चात्य चिकित्साका महत्त्व मानने लगते हैं--यह आत्मदर्शनके अभावकाही फल है। यहसब कुछ आपके स्वशास्त्र आयुर्वेद में वर्णित सिराबस्ति और निरूहबस्तिका आश्रय लेकर ही आविष्कृत हुआ है। इसमें सिवाय इन उपकरणोंके बना लेनेके आधुनिक विज्ञानकी कोई देन नहीं है। आयुर्वेद में अब भी बहुतसे ऐसे आश्चर्यजनक औषध प्रयोग-विधान और चिकित्सा सिद्धांत हैं जिनतक अभी ये लोग पहुंच भी नहीं पाए हैं। हम लोगोंको चाहिये कि आयुर्वेदकी उन अमूल्य निधियोंको प्रकाश में लाकर विश्वका कल्याण करें। हमारे वैद्य समाजमें आज भी बहुतसे ऐसे सिद्धहस्त चिकित्सक हैं जिनके पास आयुर्वेदीय औषधियों के आश्चर्यजनक गुण प्रभाववाले चमत्कारिक अमूल्य योग हैं। उन योगोंके आश्चर्य जनक गुण प्रभावकी समता आधुनिक विज्ञानकी औषधियां आजतक नहीं कर पायी हैं। आधुनिक वैज्ञानिक समाज उन योगों के आश्चर्यजनक प्रभावको देखकर स्वयं आश्चर्य-चकित हैं। परन्तु जिन महानुभावोंके पास ऐसे अमोघ योग हैं वे अपनी संकुचित मनोवृत्तिके कारण उन्हें छिपाये रखते हैं और अन्तमें उनके साथ ही आयुर्वेदके ये अमूल्य योग भी समाप्त हो जाते हैं। यही कारण है कि धीरे-धीरे इन अमोघ योगोंकी कमी होती जा रही है। इस प्रकार की मनोवृत्ति आयुर्वेदके लिये घातक है। अस्तु, जिन वैद्य महानुभावोंके पास ऐसी अमूल्य निधियां हैं उनसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे केवल अपने स्वार्थकी भावनाका परित्याग कर समस्त विश्वके कल्याणार्थ उन अमूल्य निधियों को प्रकाशित करनेका कष्ट करें। उन महानुभावोंका यह कार्य आयुर्वेद विज्ञान को समुन्नत बनानेमें बहुत महत्वपूर्ण योगदान होगा। आधुनिक चिकित्सा विज्ञानका इतना जल्दी व्यापक प्रसार होनेका कारण यही है कि एक वैज्ञानिक जिस औषधि को अधिक गुणकारी अनुभव करता है वह अपने ज्ञानको शीघ्रातिशीघ्र दूसरे लोगों तक पहुंचानेका प्रयत्न करता है ताकि वे लोग भी उसके अनुभवसे लाभ उठाकर विश्वका कल्याण कर सकें। उन्होंने यह आदर्श सिद्धांत भी आयुर्वेद से ही अपनाया है अन्यथा पाश्चात्य देशोंके लोगों की स्वार्थी मनोवृत्तिमें ऐसे आदर्श सिद्धांतोंका मिलना असम्भव है। उनकी इस मनोवृत्तिका उदाहरण--अणुबमको ही लीजिये। इसके रहस्यको दूसरे देशोंसे छिपानेका कितना प्रयास किया जा रहा है। इससे आप विज्ञानको सीमित रखने की स्वार्थमयी प्रवृत्तिका अनुमान स्वयं लगा सकते हैं। परन्तु जहां तक चिकित्सा विज्ञानका विषय है, वे लोग ज्ञानके प्रसारके आदर्श सिद्धांतको अपनाते हैं। जब दूसरे लोग ही हमारे पूर्वज आयुर्वेदज्ञोंके ज्ञान और आदर्श सिद्धांतोंसे लाभ उठा रहे हैं। तब हमारे वैद्य समाजको भी उसे उपयोगमें लाकर लाभ उठाना चाहिये। विज्ञानका अबाध प्रवाह ही उसके समुन्नत होने का साधन है। अस्तु, वैद्य समाजको संगठित होकर अविलम्ब इस ज्ञानके आदान-प्रदानका कार्य करना चाहिये।

आजकल वैद्य समाजमें संगठनका अभाव दिखाई दे रहा है। 'अपनी-अपनी ढफली अपनी-अपनी राग' का आलाप लेकर हमलोग आयुर्वेद विज्ञान को ऊंचा नहीं उठा सकते हैं। सब लोगों के मिलकर प्रयत्न करनेसे ही यह महत्वपूर्ण कार्य हो सकेगा। आयुर्वेद विज्ञान की उन्नति ही हम सब लोगोंका लक्ष्य होना चाहिये। इसीमें हम सब की उन्नति है।

औषध निर्माण की प्रथा में सुधार की आवश्यकता

वर्तमान समयमें आयुर्वेद विज्ञानके प्रसारमें सबसे बड़ी अड़चन प्रत्येक वैद्यका अपनी-अपनी औषधियोंका पृथक्-पृथक् निर्माण करना है। इस प्रकार राष्ट्रकी शक्ति और समयका बहुत अपव्यय होता है और यही कारण है कि हमारे वैद्य समाजको शास्त्र अनुशीलनका समय नहीं मिल पाता है। बिना शास्त्र अनुशीलनके चिकित्साकार्यमें सफलता प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। आजकल के आयुर्वेदिक चिकित्सकों से जनता का विश्वास उठते जाने में सर्व प्रधान

कारण उनमें शास्त्र अनुशीलनका अभाव ही है। आजकल के समयमें औषध-निर्माण का कार्य कितना कठिन हो रहा है। यह तो प्रायः सभी वैद्य जानते हैं। सर्वसाधारण वैद्यों को तो औषधोपयोगी उत्तम उपादानों और उपकरणों की प्राप्तिके लिये अपार कष्ट उठाना पड़ता है। असली और उत्तम उपादानोंका मिलना तो अत्यन्त दुष्कर कार्य हो रहा है। पंसारी लोग पुरानी सड़ी-गली और नकली जो भी वस्तुएं देते हैं उन्हींसे वैद्योंको अपनी औषधियां बनानी पड़ती है। वे औषधियां पूर्ण लाभकारी कैसे हो सकती हैं? इस दोषको दूर करनेके लिये वैद्योंको मिलकर सहकारी समितियोंकी स्थापना करनी चाहिये। उसमें सब वैद्य मिलकर अपनी पूंजी लगावें और एक वैद्यको जिम्मेवार अधिकारी नियुक्त कर दें। वह जंगलसे ताजी जड़ी-बूटियों को मंगाकर सुखाकर संग्रहीत करता रहे। सभी वैद्यों और औषधिनिर्माणशालाओंको वहींसे बनौषधियां खरीदनी चाहिये। ऐसा करनेसे औषधियां भी उत्तम गुणकारी बनेंगी और उस सहकारी समिति के द्वारा होनेवाला लाभ भी वैद्य लोगोंको ही प्राप्त होगा। शास्त्र-अनुशीलनके लिये समय बचानेके लिये हमको अपना कार्य दो विभागोंमें विभक्त करना होगा। एक औषधि-निर्माण-विभाग और दूसरा चिकित्सा विभाग। औषधि निर्माण-विभागके कार्यकर्त्ता वैद्य लोग केवल वही काम करेंगे और चिकित्सा-विभागके कार्यकर्त्ता वैद्य लोग केवल चिकित्सा का ही कार्य करेंगे। ऐसा प्रबन्ध करलेने पर औषधि-निर्माण कार्यकर्त्ता वैद्य लोग उत्तम उपादानोंको संग्रहीत कर उनसे शास्त्रोक्त विधिसे उत्तम औषधियोंका निर्माण कर चिकित्सा कार्यकर्त्ता वैद्यलोगोंकी सेवामें प्रस्तुत कर सकेंगे और चिकित्सा विभागके कार्यकर्त्ता वैद्य लोग शास्त्र अनुशीलनपूर्वक उन उत्तम औषधियोंका चिकित्सामें उपयोग कर रोगपीड़ित-जन-समाजका रोग निवारण कर चिकित्सामें सफलता प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकार कार्य करनेसे आयुर्वेदको समुन्नत किया जा सकेगा। परन्तु औषधिनिर्माणकर्त्ता वैद्य लोग भी यदि पृथक्-पृथक् अपनी औषधियां बनायेंगे तो उनको उतनी ही कठिनाइयां उठानी पड़ेंगी। थोड़ी-थोड़ी दवाएं बनानेके लिये उपादानोंको फुटकर मंहगे भावमें खरीदना पड़ता है और थोड़ी दवा बनाने में भी श्रम उतना ही करना पड़ता है। उपरोक्त दोनों कारणोंसे दवाओंका मूल्य बहुत बढ़ जाता है और वैद्य लोग भी उन्हें मंहगा खरीदनेमें हिचकते हैं। ऐसी स्थितिमें बहुतसे वैद्य लोगोंको मिलकर सहकारी समितियों के रूपमें औषधि निर्माणशालाओंकी स्थापना करनी चहिये। उनमें आवश्यक उपकरणों तथा उत्तम उपादानों का विशाल संग्रह रहना चाहिये जिससे कि उत्तम गुणकारी औषधियां अधिक मात्रामें सस्ती तैयार कर सकें। "श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" इसी प्रकारकी भारत वर्ष भरमें सबसे बड़ी औषधिनिर्माता संस्था है। इसकी चार बड़ी-बड़ी औषधनिर्माण-शालाएं हैं जिनमें प्रति वर्ष हजारों मन आसव-अरिष्ट, तैल, घृत, अवलेह, पाक, मोदक, चूर्ण, बटी, गुग्गुल रस, रसायन, पर्पटी, धातु-भस्म, कूपीपक्व रसायन आदि आयुर्वेदके सभी प्रकारके औषध-कल्प प्रचुर मात्रामें तैयार होते हैं। निर्माणशालामें एक हजारसे अधिक कर्मचारियों द्वारा योग्य औषधनिर्माण-कुशल रसायनाचार्योंकी देखरेखमें कार्य होता है। दवा बनानेसे लेकर उसको बिक्रेताओं तक पहुंचानेका सभी कार्य निपुणता के साथ किया जाता है। इस संस्थाके प्रबन्धकोंका ध्यान सदैव उत्तम गुणकारी औषधियां निर्माण कर उचित मूल्य में वैद्य समाजकी सेवामें प्रस्तुत करने का रहता है। यही कारण है कि यह संस्था वैद्य समाज और जनता की अधिकाधिक विश्वासभाजन होती जारही है। हमारे वैद्य - बन्धु औषधिनिर्माणके झंझटसे मुक्त रहकर शास्त्र अनुशीलन पूर्वक चिकित्सका कार्य उत्तमता से कर सकें इसके लिये यह संस्था आपको अधिकाधिक सहयोग देनेके लिये तत्पर है। शास्त्र अनुशीलन पूर्वक चिकित्सा करनेसे आयुर्वेद विज्ञान और वैद्य समाजकी उन्नति अवश्यम्भावी है। आशा है सभी वैद्य-बन्धु आयुर्वेदको समुन्नत बनानेका इस महत्व पूर्ण कार्यमें इस संस्थाको अधिकाधिक सहयोग प्रदान करेंगे।

अन्तमें हम भगवान् श्रीधन्वन्तरिजीकी जयन्ती-महोत्सव पर समस्त वैद्य-बन्धुओं तथा आयुर्वेद प्रेमी लोगों की मंगल कामना करते हुए आयुर्वेद विज्ञानकी उन्नतिके लिये उन्हीं भगवान् श्रीधन्वन्तरिजीसे प्रार्थना करते हैं—

सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्रोगभाग्भवेत्॥

श्री लक्ष्मींनारायण सुधाँशु

अखिल भारतीय कांग्रेस कार्य समिति के भूत-पूर्व सदस्य एवं बिहार प्रांतीय कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री लक्ष्मी नारायण सुधांशु ने भगवान् धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की और आयुर्वेदिक चिकित्सा की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आशा प्रकट की कि बिहार सरकार आयूर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली को प्रोत्साहित करेगी।

श्रीसुधांशु ने अपने भाषणमें बताया कि भगवान् धन्वन्तरि इतने प्राचीन वैद्य थे जिनका वर्णन इतिहासों में नहीं बल्कि पुराण में ही पाया जाता है। यद्यपि उसका आविर्भाव समुद्रमंथन के फलस्वरूप बताया जाता है लेकिन जिन्हें पुराणों के प्रति पूर्ण आस्था नहीं है उन्हें समझना पड़ता है कि देश के चिकित्सकों ने काफी अन्वेषण के बाद उन्हें नेतृत्व प्रदान किया और वे हमारी चिकित्सा पद्धतिके आराध्य बने।

प्राचीन काल में सभी कार्यों में धर्म को ही प्रधानता दी जाती थी और देखा गया है कि चरक-सुश्रुत के आरम्भ में आत्मा और परमात्मा का विवेचन किया गया है। हमारे देशके चिकित्सकों ने दैहिक रोगों के अतिरिक्त दैविक और भौतिक तापों की स्थिति को भी मान्यता दी है। यद्यपि पाश्चात्य चिकित्सकों ने इस भावना की कुछ दिन पूर्व तक उपेक्षा की है लेकिन फ्रायड के बाद पाश्चात्य पद्धति ने भी दैनिक रोगों के अलावा उपर्युक्त रोगों का अस्तित्व माना और अब उसमें मनोवैज्ञानिक चिकित्सा प्रारम्भ कर दी गयी है।

धन्वन्तरि जयन्ती एवं आयुर्वेद दिवस समारोह का उल्लेख कर सुधांशु जी ने अन्त में कहा–प्राचीन चिकित्सा पद्धति को जीवित, अनुप्राणित तथा विकशित करने के उद्देश्य से ही यह समारोह आयोजित किया गया है। विदेशी शासनकाल में इसको विकास का अवसर नहीं मिला था। स्वाधीन भारत में यदि जनता और सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हो तो यह पद्धति लासानी बन जायगी।

वैद्यराज सुखराम प्रसाद

वैद्यराज श्रीसुखराम प्रसाद जी ने स्वागताध्यक्ष के भाषण का हवाला देखकर कहा कि यदि सहकारिता के आधार पर औषधियों का निर्माण कराया जाय तो दवाएँ भी सस्ते मूल्य में लब्ध होने लगेंगी। आपने राज्य के वैद्यों से अपील की कि वे इस भावना को प्रोत्साहन दें।

बिहार राज्य सरकार का ध्यान स्थानीय आयुर्वेद महा विद्यालय की ओर आकर्षित कर आपने कहा कि उक्त महा विद्यालय की स्थापना के कई वर्ष बीत जाने के बाद भी उसमें अभी अनेक त्रुटियां वर्तमान हैं। इसलिए सरकार को उचित है कि उनकी पूर्ति कराए ताकि उसमें अच्छे छात्र तैयार हो सकें।

सुखराम बाबू ने श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के संचालकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए कहा कि 'भवन' द्वारा प्रतिवर्ष धन्वन्तरि जयन्ती का आयोजन किया जाता है। 'भवन' ने कुछ दिन पूर्व पटने में एक दातव्य औषधालय भी खोला है जिसका काफी प्रचार है और जनसाधारण उससे लाभान्वित हो रहा है। आपने पटना में एक विशाल आयुर्वेदिक अस्पताल की आवश्यकता बताई तथा सरकार एवं श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संचालकों से साहाय्य की याचना की।

प्रिंसिपल हरिनारायण चतुर्वेदी

पटना आयुर्वेदिक कालेज के प्रधान श्री हरिनारायण चतुर्वेदी ने भगवान धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। आपने बताया कि प्राचीन भारतीय शल्य चिकित्सा को स्मृतियों ने सर्वोच्च बताया है। अष्टांग आयुर्वेद के ज्ञाता होने पर भी श्री धन्वन्तरि की रुचि शल्य-चिकित्सा की ओर अधिक रही। उन्होंने प्लैस्टिक सर्जरी, दंत एवं नेत्र चिकित्सा तथा पशु चिकित्सा का भी उपदेश दिया है। शालिहोत्र में उनके निर्देश का उल्लेख मिलता है। सर्वांगीण शल्य चिकित्सा के ज्ञान के साथ श्री धन्वन्तरि ने जो सम्प्रदाय चलाया वही एक संज्ञा बन गई और भगवान् धन्वन्तरि उसके सर्जन कहे जाने लगे। कालान्तर में शल्य चिकित्सा का ह्रास होने लगा। रक्त में जीवाणुओं की उपस्थिति बतलाते हुए बौद्ध शासकों ने इस पद्धति का विनियंत्रण किया। उसके बाद विदेशी शासकों की हुकूमत के दिनों में इसकी दशा गिरती गई। इस प्रकार आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली हजारों वर्ष से उपेक्षित होती आ रही है। इतना होने पर भी यह जीवित रही है और अब पुनः अग्रसर होने लगी है। दूसरी कोई पद्धति इस स्थिति में शायद ही दस साल तक जीवित रह सकती; लेकिन आयुर्वेद के अस्तित्व का मात्र कारण वैद्यों का सहयोग और जनता का विश्वास है। अब राष्ट्र स्वाधीन है और शासन ने भी सहायता का हाथ बढ़ाया है, इसलिए वैद्यों को उचित है कि आयुर्वेद को प्रगति पथ पर ले चलें।

श्री चतुर्वेदीजी ने सुखरामबाबू की उक्ति का समर्थन किया और सरकार तथा भवन के संचालक से आग्रह किया कि पूर्ण रूपेण विकसित आयुर्वेदिक अस्पताल की स्थापना के लिए वे प्रयत्नशील हों।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के
पटना निर्माण केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

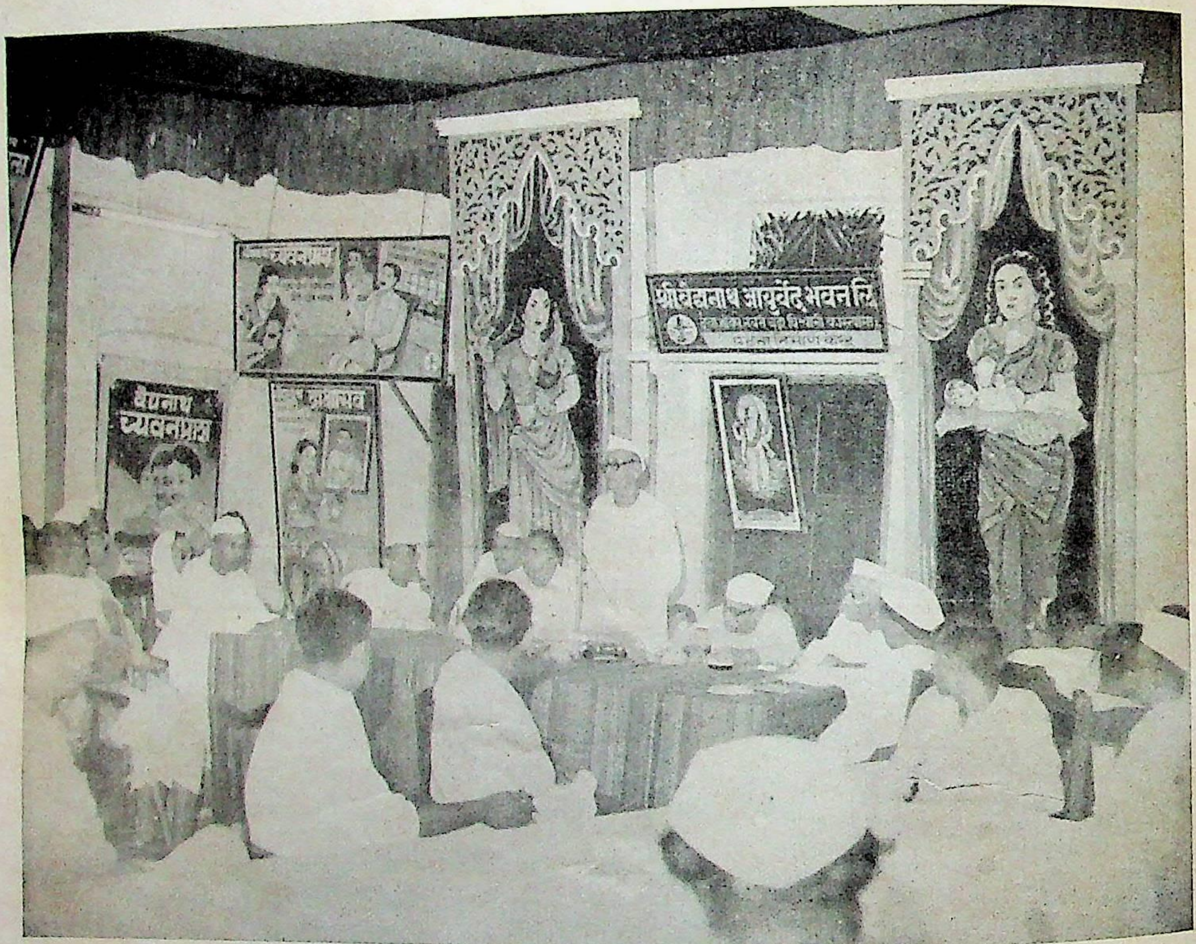
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
वैद्यनाथ च्यवनप्राश

माननीय डॉ० अनुग्रहनारायण सिंह उप-मुख्य मन्त्री बिहार सरकार
अध्यक्षीय भाषण दे रहे हैं।

बैठे हुए बायीं ओर से—श्रीमती रामप्यारी देवी एम० एल० सी०, माननीय जगतनारायण लाल, उपाध्यक्ष बिहार विधानसभा, माननीय श्री वीरचन्दजी पटेल, उप-मन्त्री बिहार सरकार, भू० पू० चिकित्सा मन्त्री श्रीयुत पं० विनोदानन्द झा, एम. एल. ए., बिहार कांग्रेस कमेटी के भू. पू. अध्यक्ष श्रीयुत लक्ष्मीनारायण सिंह "सुधांशु", माननीय श्रीरामचरित्र सिंह-सिंचाई एवं बिजली मन्त्री, माननीय श्री दीपनारायण सिंह, पशुपालन एवं सहकारी मन्त्री तथा श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद-भवन लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री पं० रामदयालजी जोशी हैं।

श्रीरामरक्ष पाठक

बेगूसराय आयर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल एवं प्रांतीय वैद्य सम्मेलन के मंत्री पंडित रामरक्ष पाठक ने आयुर्वेद-दिवस की महत्ता बताते हुए कहा कि आयुर्वेद का व्यावहारिक लक्ष्य रोग से मुक्ति दिलाना है ताकि मनुष्य सांसारिक लक्ष्यको प्राप्तकर सकें। इसकी वर्तमान शोचनीय अवस्था का प्रमुख कारण विदेशी शासन है जिसने मुंह में ताले और हाथ में हथकड़ी डाल कर इस विज्ञान की उन्नति में बाधा पहुचायी। आयुर्वेद की जीवनीशक्ति ने 'ही इसे अबतक जीवित रखा है।

पाठक जी ने खेद प्रकट किया कि यद्यपि राज्य सरकार ने आयुर्वेद के विकास के लिए कानून बनाया है और तदनुसार आयुर्वेद परिषद् का गठन भी हो चुका है लेकिन अभी तक विकास का अवसर परिषद के सदस्यों को नहीं प्राप्त हो सका है। कम से कम २५ वर्ष पूर्व खोले गये स्थानीय आयुर्वेदिक कालेज में शिक्षकों और साधनों के अभाव के कारण शिक्षार्थियों का उचित प्रशिक्षण नहीं हो सकता। सरकार से आपने आग्रह किया कि वह परिषद की बैठकें कराने की कारवाई करे।

श्री.रामरक्ष पाठक ने आयुर्वेद के विचार को उदार बताया और कहा कि मानव कल्याण का आदर करने के नाते यह इस बात के लिए उद्यत हैं कि विदेशी चिकित्सा पद्धति द्वारा प्रदर्शित अच्छी बातों को भी ग्रहण करें। अपनी उदारता एवं प्रौढ़ता ही के कारण आयुर्वेद विषम परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए भी अभी तक कायम रह सका है। सरकार को आपने सलाह दी कि वह राष्ट्र के आयुर्वेदज्ञों का आह्वान कर उनसे काम लें। आपने चिकित्सकों के प्रशिक्षण का समुचित प्रवन्ध करने का अनुरोध भी सरकार से किया।

श्री रामदयाल जोशी ने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड की ओर से उपमुख्य मंत्री को एक रजत पेटिका में अभिनन्दन पत्र जो इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित है, अर्पित किया।

सभापति का भाषण

सभापति पद से बोलते हुए डा० अनुग्रह नारायण सिंह ने श्री धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। आपने बताया कि भगवान धन्वन्तरि ने जिस पद्धति का आविष्कार किया उसके साथ हमारा पूर्व संबंध है। विषम परिस्थितियों की भयंकर आंधी की चपेट सहकर इसका बचे रहना यह निष्कर्ष दिखाता है कि अपने गुणों के कारण ही आयुर्वेद अभी तक जीवित रह सका है। इसलिए मुझे विश्वास है कि देश की उन्नति के साथ ही आयुर्वेद की अवश्य ही उन्नति होगी।

डा० अनुग्रह नारायण सिंह ने एलोपैथी (पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली) और आयुर्वेदिक पद्धति में तुलना करते समय हिंसा और अहिंसा का उल्लेख किया। आपने बताया कि आयुर्तेद का कार्य रोग का उन्मूलन करना है। एलोपैथी रोग की बाहरी भयंकरता को दबा देता है भले ही बिमारी देह के किसी भाग में छिपी रह जाय। यह कार्य हिंसा को हिंसा से दबा रखता है। लेकिन हमलोगों ने महात्मा गांधी के अहिंसा सिद्धान्त के बल पर शासनाधिकार प्राप्त किया है इसलिए हम धीरे धीरे आयुर्वेद जो अहिन्सा का प्रतीक है, के पास पहुंचते जा रहे हैं।

उपमुख्य मंत्री ने बताया कि आयुर्वेद के गुणों में नहीं वल्कि विकास में कमी है। खेद की बात है कि लोग इसका सारा उत्तरदायित्व सरकार पर ही लगाते हैं। सरकार ने यद्यपि इसे सहायता देना प्रारम्भ किया है लेकिन उसे आज यथेष्ट नहीं माना जा राहा है। दूसरी बात यह है कि सरकार ने जिसनें एलोपैथी को ग्रहण कर रखा है, इसे अभी अपनाया नहीं है। इसका एकमात्र कारण एलोपैथी की विकसित अवस्था है। आयुर्वेद में गुण अवश्य हैं और उसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज हम श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० जैसा संग्रहालय के रूप में देख रहे हैं। लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि आयुर्वेद के अन्वेषण में और भी परिश्रम किया जाय।

डा० अनुग्रहनारायण सिंह ने कहा कि राजनैतिक कमजोरी, विवशता और विकास भावना की कमी के कारण ही आयुर्वेद का विकास रुका रहा है और हमलोग श्री धन्वन्तरि की कमाई खा रहे हैं। आजकल विज्ञान का युग है, वायुमंडल बदला है और लोगों की अपनी विभिन्न मजबूरियां हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि आयुर्वेद के अनुभव मे वृद्धि की जाय। सरकारके फैसला इसमें कुछ अंश तक ही लाभदायक सिद्ध हो सकता है। यह भी सही है कि आपको शासन की प्रर्याप्त सहायता नहीं मिल पायी है। अब आपको उचित है कि आप पाश्चात्य

पद्धति से भी आवश्यक बातें ग्रहण कर और भी सबल हों ताकि शासन को अपनी सहायता करने के लिये मजबूर कर सकें। आपने स्वराज प्राप्त कर लिया है लेकिन उसका फल अभी नहीं प्राप्त हो सका है। हर जगह कठिनाइयाँ दीख रही हैं और वे आपके मार्ग में भी आयेंगी। उनका मुकाबिला आपको स्वयं करना होगा। दूसरे आपको सहायता देंगे, लेकिन आपके गुणों पर ही रीझ कर। कठिनाइयाँ दूर करने के लिए तो आपको स्वयं तैयार होना पड़ेगा। आपके लिए अनिवार्य आवश्यकता इस बात की है कि आप काफी अन्वेषण कर आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को लोगों के ग्रहण करने योग्य बनावें। जहाँ तक मेरा सवाल है मैं आपके गुणों का ग्राहक हूं और आश्वासन देता हूं कि सदा आयुर्वेद के प्रचार और वृद्धि में यथासाध्य सहायता देता रहूंगा। आपसे मेरा आग्रह है कि इस प्रणाली को और भी शक्तशाली बनाने में संलग्न रहें।

समारोह के पश्चात् संयोजकों ने अतिथियों का मिष्टान्नादि से सत्कार किया। भवन के संचालक अपने सभी कर्मचारियों सहित अतिथियों के सत्कार में काफी दत्तचित्त रहे।

× × ×

प्रातःकालीन कार्यक्रम

आज प्रातः काल 'भवन' के प्रांगण के एक पार्श्व में श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा द्वारा भगवान धन्वन्तरि की मूर्ति का स्थापन और पूजन कार्य सम्पन्न हुआ। राष्ट्रीय ध्वजा का उत्तोलन वयोवृद्ध ठाकुर राम सिंहासन सिंह ने किया। प्रातःकालीन कार्यक्रम भव्य वातावरण में सम्पादित किया गया।

कलकत्ता निर्माण केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र —१५६ सी, हरिसन रोड में प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव कविराज श्री सुशील कुमार सेन एम० एस–सी० की अध्यक्षता में बड़ी धूम धाम से मनाया गया। महोत्सव में भाग लेने के लिये हिन्दी भाषा-भाषी वैद्य तथा बंगाली कविराजों ने अपने दलगत भेद भाव को छोड़ कर अत्यधिक संख्या में उपस्थित थे।

सर्व प्रथम श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के कलकत्ता स्थित मैनेजर वैद्य वेणी प्रसाद जी आयुर्वेदाचार्य ने भगवान धन्वन्तरि की पूजा-आरती आदि कार्य सम्पादन किया। तत्पश्चात् सभापति निर्वाचन के बाद मुद्रित स्वागत-भषाण (स्वागत भाषण इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित है) वैद्य सभाकान्त झा, शास्त्री स० सम्पादक "सचित्र आयुर्वेद" के द्वारा पढ़ा गया।

प्रधान वक्ताओं में—अष्टांग आयुर्वेद कालेज के प्रिन्सिपल कविराज मणीन्द्रलाल दास गुप्त, आ० म० म० कविराज रामचन्द्र मल्लिक, कविराज हरिवक्ष जोशी काव्य सांख्य, स्मृति तीर्थ, कविराज व्रजनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य कविराज शैलेन्द्र राय चौधरी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कविराज मणीन्द्र लाल दास गुप्त ने—अपने भाषण में आयुर्वेदोन्नति के लिए वैद्यों में ऐकमत्य तथा संगठन की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए, कलकत्ता में निकट भविष्य में ही भारत वर्ष के प्रमुख वैद्यों को बुला कर आयुर्वेद की साम्प्रतिक परिस्थिति पर विचार करने की अपनी इच्छा प्रगट की। आपने जाम नगर आयुर्वेदिक कालेज में जो सरकार की तरफ से आयुर्वेदिक रिसर्च समिति बनी है, उसमें बंगाल के प्रतिनिधि नहीं लिये गए, इसके लिए क्षोभ प्रकट करते हुए सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया।

आ० म० म० कविराज रामचन्द्र मल्लिक ने—अपने भाषण में केन्द्रीय सरकार तथा कलकत्ता स्थित बंगाल आयुर्वेद फेकल्टी की आयुर्वेद के प्रति उदासीनता की तीव्र आलोचना करते हुए वैद्यों से अपने आत्मबल पर विश्वास रख कर आयुर्वेद की सेवा करने की अपील की, साथ ही एक ऐसी समिति स्थापना के लिए प्रार्थना की जो आयुर्वेद-हित के लिये कार्य कर सके। इस समिति में तन-मन-धन से सबको सहयोग के लिए आह्वान किया।

कविराज व्रजनाथ मिश्र ने—आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आयुर्वेदीय औषधियों का वर्गीकरण तथा प्रत्येक वैद्य के लिए द्रव्यों के रस, गुण, वीर्य, विपाक आदि का ज्ञान होना आवश्यक बतलाया।

कविराज हरिवक्ष जी जोशी ने—सरकार को आयुर्वेद की साम्प्रतिक परिस्थिति से अवगत कराने के लिये वैद्यों को

प्रबल आन्दोलन करने की आवश्यकता बतलाते हुए कहा कि जैसे भारतीय मुसलमान अपनी सुविधा के लिए भारतीय सरकार के पास बराबर अपनी आवाज पहुंचाते रहते हैं, तदनुसार सरकार भी ध्यान देती है, उसी-तरह हमको आयुर्वेद की उन्नति के लिए बराबर आन्दोलन करते हुए अपनी आवाज सरकार तक पहुँचानी चाहिए। तभी सरकार का ध्यान आयुर्वेद के तरफ होगा।

कविराज सुशील कुमार सेन एम० एस-सी० ने अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए आयुर्वेद की साम्प्रतिक परिस्थिति पर काफी प्रकाश डाला, तथा श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मैनेजिंग डाइरेक्टरों को धन्यवाद देते हुए इस संस्था द्वारा प्रकाशित "सचित्रआयुर्वेद" से जो आयुर्वेद और वैद्य समाज का उपकार हो रहा है, इसकी प्रशंसा करते हुए आपने कहा "सचित्र आयुर्वेद" ही आयुर्वेद जगत में एक ऐसा पत्र है जिसमें शास्त्रीय तथा आयुर्वेद सम्बन्धी राजनैतिक ठोस समाचार एवं साहित्य का प्रकाशन होता है। वैद्यों को इस पत्र द्वारा अवश्य लाभ उठाना चाहिए। आपने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा आयुर्वेदोन्नति तथा जन-सेवा कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इस तरह लगातार चार घण्टे तक धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव का कार्यक्रम चलने के बाद समागत सज्जनों को धन्यवाद दिया गया तथा प्रसाद वितरण के पश्चात महोत्सव का कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ।

झांसी-निर्माणकेन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के झांसी निर्माण केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती धूमधाम से मनायी गयी। इसमें नगर के प्रायः सभी गण्यमान महानुभाव उपस्थित थे। जिनमें पं० रामगोपाल शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, (झांसी वैद्य हकीम परिषद् के अध्यक्ष), श्री र० वि० धुलेकर (एम० पी०), श्री गोपाल शास्त्री गोडबोले, अध्यापक बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज, आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। भवन के शतशः कार्यकर्त्ता स्वागत व्यवस्था में संलग्न थे। सब से पहले श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मैनेजिंग डाइरेक्टर वैद्य पं० रामनारायण शर्मा ने विधिवत् श्री धन्वन्तरि महाराज का पूजन किया। आयर्वेदाचार्य पं० मंगलदत्त शास्त्री ने स्वागत—भाषण पढ़ा। इसके पश्चात् आयुर्वेद पर विविध भाषण हुये। श्री गोडबोले महोदय ने आयुर्वेद के विकास पर बोलते हुये कहा कि वैदिक युग में अश्विनी कुमार आयुर्वेद के आदर्श थे। बाद में पुराणयुग में भी धन्वन्तरि महाराज का उदय हुआ। और शल्य चिकित्सा का पुनरुद्धार हुआ। इसीलिये शल्य-चिकित्सक धन्वन्तरि कहलाते थे। इसी तरह की अनेक ज्ञातव्य बातें आयुर्वेद के सम्बन्ध में आपने बतलाईं।

उत्तर प्रदेश सरकार के इण्डियन मेडिसन बोर्ड में वैद्यों की रजिस्टरी की जो छीछालेदर हो रही है उस पर बोलते हुये पं० किशोरीदास बाजपेयी ने कहा कि हमें अपनी ओर भी देखना चाहिये। प्रदेश भर में हजारों ऐसे वैद्य रजिस्टर्ड करा दिए गये हैं जो आयुर्वेद का क, ख, भी नहीं जानते। और इनकी रजिस्टरी प्रायः वैद्य सभाओं के पदाधिकारिओं ने करायी है। क्या यह ठीक है? सरकार तो जो कुछ कर रही है, साफ ही है। परन्तु वैद्य लोग इस रजिस्ट्रेशन का तथा इस बोर्ड का वहिष्कार ही क्यों न कर दें। जबकि ऐसी दुर्गति है। सिंह को किसी पट्टे की जरूरत नहीं होनी चाहिये। यदि डट कर वहिष्कार हो तो सरकार ठीक हो जायगी। यह वोट पर बनी सरकार है। वैद्यों के हाथ में कितने वोट हैं। इसका भी ध्यान आते ही बड़े बड़े लोग ठिकाने आ जायगें, रोना ठीक नहीं है। कर्त्तव्य पर डटे रहें और प्रतिद्वन्द्वी का कड़ा मुकाबला करें।

बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज के प्रोफेसर श्री सिद्धि ने कहा कि आयुर्वेद की प्रतिष्ठा सरकार में बैठाने के लिये हमें रिसर्च में जूट जाना चाहिये और अपनी प्रामाणिकता प्रकट करनी चाहिये।

वैद्य पं० रामनाराण शर्मा द्वारा प्रस्तावित यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से गृहीत हुआ कि "धन्वन्तरि जयन्ती पर देश भर में सरकारी छुट्टी रहा करे और यह पर्व देश भर में स्वास्थ्य दिवस के रूप में मनाया जाया करे।" इसके लिए अभी से वैद्य समाज को प्रयत्न करना चाहिये।

अन्त में वैद्य पं० रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री ने सबको धन्यवाद दिया और मोदकादि प्रसाद वितरण करके समारोह विसर्जित हुआ।

अभिनन्दन-पत्र

बिहारविभूति माननीय डा० श्री अनुग्रहनारायण सिंह, उप-मुख्यमन्त्री, बिहार

—के—

कर—कमलों में

त्यागवीर !

भारतके इतिहासमें बिहारका एक विशिष्ट स्थान रहा है। ऐतिहासिक कालके पूर्वार्द्धमें तो बिहार भारतके गौरवका केन्द्र-बिन्दु ही था। आज हम तत्कालीन भारतके इतिहासमें अशोक, चन्द्रगुप्त आदि महापुरुषोंकी कीर्ति-गाथा पढ़ कर पुलकित हो उठते हैं। ठीक उसी प्रकार आधुनिक भारतके इतिहासमें भी बिहारका एक विशिष्ट स्थान है। "नया बिहार" आप सरीखे त्यागवीर, कर्मठ और प्रतिभा-सम्पन्न महापुरुषोंके ही भगीरथ प्रयत्नका फल है। इसलिये आज ही नहीं, आगे आनेवाली पीढ़ियाँ भी आपके नामको गौरव और सम्मानके साथ-साथ याद किया करेंगी। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जब अपने राजनैतिक जीवनके आरम्भकालमें बिहार पधारे तो देशरत्न राजेन्द्र बाबूके साथ आपने भी अपने जीवनकी आहुति देनेके लिये कमर बांधी। तबसे भारतकी आजादीकी लड़ाईमें आपने जो त्याग, वीरता और प्रतिभाका परिचय दिया वह हमारे राष्ट्रके इतिहासमें उच्च स्थान प्राप्त करेगा; इसलिये आज हम आपको अपने बीच पाकर चरम आनन्दका अनुभव कर रहे हैं।

तपस्या और सादगीके प्रतीक !

आपकी अथक कर्मठता और अचूक बुद्धिमत्ता ही नहीं बल्कि आपका साधनाशील, सरल तथा विनम्र व्यक्तित्व भी बिहार, भारत और समाजकी अमूल्य निधि है। वस्तुतः आपकी महत्ता पदसे कहीं बड़ी और आपकी लोकप्रियता प्रचारसे कहीं अधिक स्थायी है। आपने प्रखरता और तेजस्विताको विनम्रता और सादगीका आवरण देकर अपने उच्च व्यक्तित्वको और भी स्पृहणीय तथा श्रद्धेय बना दिया है।

भारतीय संस्कृतिके सच्चे पुजारी !

आज भगवान् धन्वन्तरिका जन्मदिवस है। भगवान् धन्वन्तरिने पीड़ित मानवताको जिस चिकित्सा-विज्ञानका अभूतपूर्व दान दिया, उसने संसारके वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक इतिहासमें भारतके लिये अमर स्थान प्राप्त किया है। आपने सदा भारतीय संस्कृतिकी रक्षाके लिये कठिन संघर्ष किया है। देशके स्वतन्त्र होनेके पश्चात् राष्ट्रका जो सर्वतोमुखी निर्माण हो रहा है, उसकी सफलता इस बातपर निर्भर है कि हम अपने राष्ट्रीय जीवनमें अपनी संस्कृतिका कितना रस घोल सकते हैं। भारतीय चिकित्सा-विज्ञान आयुर्वेद—ने ही सदियोंके दासताजनित संकट-कालमें भारतीय संस्कृतिको अपने हृदयमें छिपाकर रखा। आपने अपने सारे सार्वजनिक जीवनमें आयुर्वेदके लिये संघर्ष किया है। आज बिहारमें आयुर्वेदको जो भी प्रमुखता प्राप्त है, जो राजकीय प्रश्रय इसको मिला है, उसमें आपका प्रबल हाथ रहा है। इसलिये आज धन्वन्तरि जयन्तीके इस शुभ अवसर पर आप सरीखे आयुर्वेद प्रेमी को अपने बीच पाकर वैद्यों और आयुर्वेदीय संस्थाओंको प्रबल आशा और विश्वास हो रहा है।

अध्यवसाय एवं सत्प्रयत्नके सच्चे सहायक !

हमें यह कहनेमें आज गौरवका अनुभव हो रहा है कि "श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" को श्रद्धेय अनुग्रह बाबूका अनुग्रह वर्षोंसे प्राप्त है। हम देशरत्न राजेन्द्र बाबू एवं आपके शुभाशीर्वादोंसे सदा उत्साहित और प्रेरित होते रहे हैं। आज इस संस्था द्वारा आयुर्वेद, मानवता और दरिद्रनारायणकी जो कुछ सेवा बन पड़ रही है वह आप सरीखे दीन-दुखियोंके बन्धुओंकी प्रेरणाका ही तो फल है। इसलिये हम आज गद्गद् हृदयसे आपका अभिनन्दन करते हैं। हम सच्चे हृदयसे भगवान् धन्वन्तरिसे प्रार्थना करते हैं कि वह आपको दीर्घायु प्रदान करे ताकि आप आयुर्वेदकी उत्तरोत्तर सेवा कर उसे राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धतिके गौरवपूर्ण आसनपर बैठानेमें सफल हो सकें।

पाटलीपुत्र
ता० १६-१०-५२

हम हैं आपके स्नेहाधीन—
श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
के संचालक एवं कार्यकर्त्तागण।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के
पटना निर्माण केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

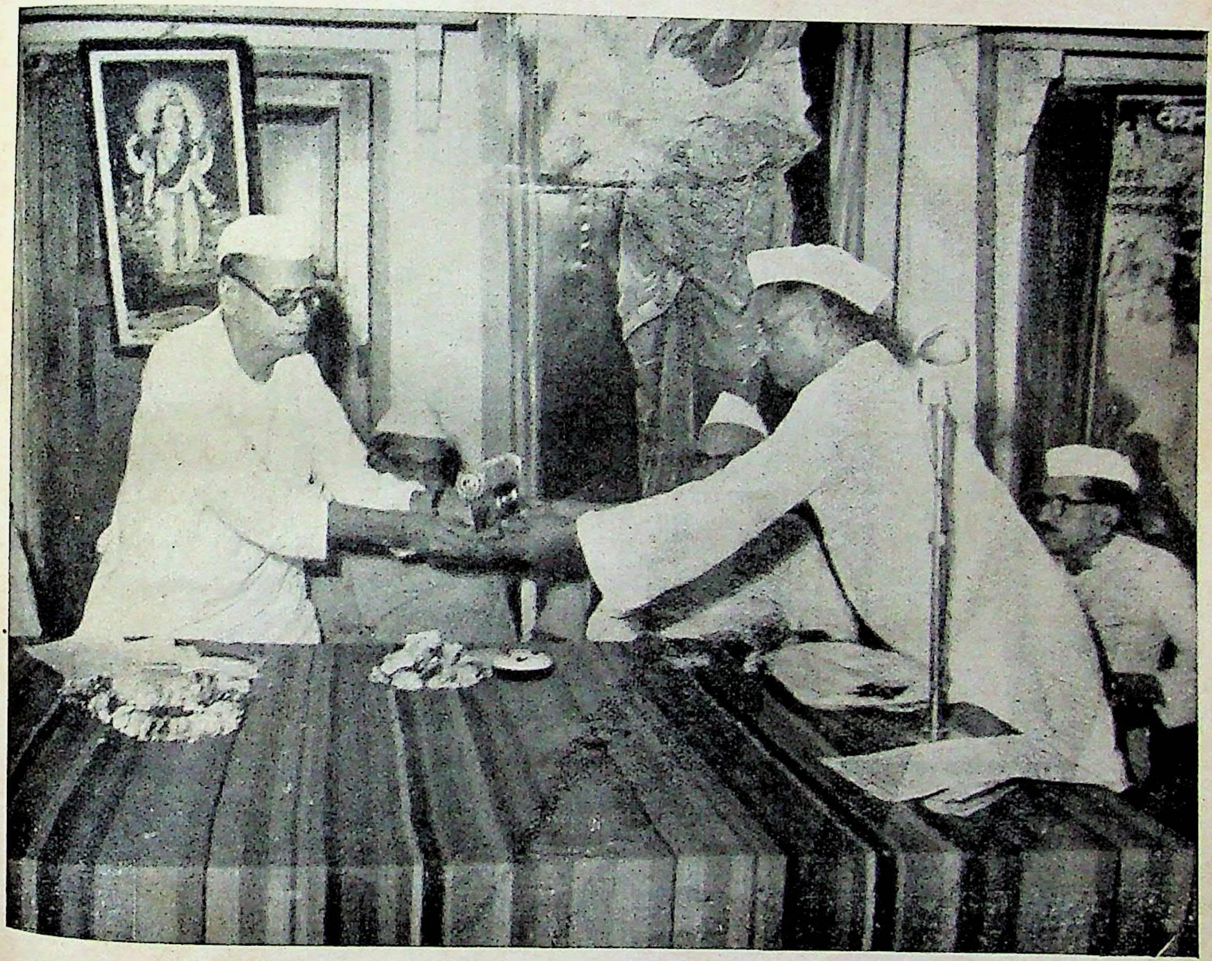

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री पं० रामदयाल जी जोशी, माननीय डॉक्टर अनुग्रह नारायण सिंह—उप-मुख्य मन्त्री को रजतपेटिका में अभिनन्दनपत्र भेंट कर रहे हैं।

नागपुर-निर्माण केन्द्र

आज ता० १६-१०-५२ के ५ बजे श्री धन्वन्तरि जयन्ती का वार्षिक समारोह राजवैद्य पं० गंगाशरण जी आचार्य की अध्यक्षता में स्थानीय श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की निर्माण शाला में सम्पन्न हुआ। समारोह का उद्घाटन लोकप्रिय खाद्य मन्त्री श्री दीनदयाल जी गुप्त ने किया।

सर्वप्रथम आयुर्वेद हितैषी श्री गोपीकृष्ण जी शास्त्री ने उपस्थित वैद्य बन्धुओं के समक्ष अपने भाषण में बतलाया कि आयुर्वेद को जो लोग वैज्ञानिक नहीं मानते हैं यह उनकी भूल है। आयुर्वेद शास्त्र में अष्टांग विषय, शल्य शास्त्र तथा मनुष्य की रचना आदि गहन विषयों का सांगोपांग वर्णन है। आयुर्वेद में सर्जरी शल्यशास्त्र का प्राचीन काल में महत्वपूर्ण स्थान था। यहाँ तक कि मरे हुये को जिन्दा कर देना और धड़ से अलग हुये सिर को भी जोड़ देना उस समय शल्य चिकित्सा द्वारा सम्भव था। दक्ष के अलग हुये सिर को अश्विनी कुमारों ने चिकित्सा विज्ञान द्वारा ठीक कर दिया था। इस शास्त्र की संसार की सभी चिकित्साओं पर अमिट छाप थी किन्तु यहाँ पर विदेशियों के आगमन से उन्होंने धीरे-धीरे अपनी भाषा सभ्यता और संस्कृति का प्रसार करके अपना प्रभुत्व स्थापित किया, जिससे इस विषय का लोप होने लगा। साथ ही वैद्य समाज भी आलसी और अकर्मण्य हो गया, फिर भी आज ८५ प्रतिशत जनता का आयुर्वेद चिकित्सा से कल्याण होता है। अतः हम सभी को संगठनात्मक रूप से आयुर्वेदोन्नति में हाथ बंटाना चाहिये।

श्री चुटेलकर शास्त्रीजी ने कहा—जब हम धन्वन्तरि की जयन्ती पर विचार करते हैं तो यही विचार आता है कि भारतमें जब-जब संकट उपस्थित हुआ है तभी देवताओं ने अवतार लेकर संकटग्रस्त जनता को संकट मुक्त किया है। भगवान धन्वन्तरि ने भी आयु के वेद आयुर्वेद को ऐसे समय में जन्म दिया है जबकि इसकी अत्यन्त आवश्यकता थी।

आयुर्वेद एक गहन विषय है। आयुर्वेद की रक्षा के हेतु चरक आदि ग्रन्थ रत्नों में प्रत्येक विषय पर काफी खोज की गयी है। सूक्ष्म नाड़ियों के ज्ञान में इस विज्ञान ने बारीक खोज की है। आयुर्वेद को वैज्ञानिक करार देना या न देना एक अलग और गौण विषय है जो इस शास्त्र का सूक्ष्म अंग है। आयुर्वेद ने प्रत्येक चीज को औषधि मान कर खोज की है। यहाँ तक कि मनुष्य, पेड़ आदि को भी औषधि मान कर गुणावगुण पर विचार किया है। पाश्चात्य चिकित्सा तथा आयुर्वेद में आपने कोई विशेष भेद नहीं बतलाया। एलोपैथी, होमियोपैथी आदि आयुर्वेद में से ही निकली हुई है। हमें किसी भी पैथी की उत्तम बातों को ग्रहण करना चाहिये। आपसी मतभेद मिटा कर वसुधैव कुटम्बकम् की भावना पैदा करनी चाहिये।

खाद्य सचिवश्री दीनदयाल जी गप्त ने कहा कि आयुर्वेद के दो सिद्धान्तों की तरफ मनुष्य का स्वाभाविक आकर्षण हो जाता है क्योंकि आयुर्वेद सिर्फ औषधि विषय में ही नहीं प्रतिदिन की दिनचर्या को भीउतना ही महत्वदेता है जो रोग निवारण की दृष्टि में मूलभूत चीज है। यदि हम अपनी दिनचर्या को संयम पूर्वक पालन करें तो आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार कभी बीमार ही पड़ने का मौका नहीं आता। आयुर्वेद मनुष्य को दिनचर्या का पाठ पढ़ा कर औषधि मुक्त करता है।

दूसरी बात यह है कि आयुर्वेद समस्त पदार्थों को आयुर्वेद की दृष्टि से देखने की दृष्टि देता है। खाद्य, पेय, और चोष्य वस्तुओं को सिर्फ खाने, पीने और चूसने के लिये ही नहीं औषधिकीमात्राकी दृष्टि सेभी देखा जाना चाहिये कि आयुर्वेद मतानुसार कौन चीज किस मात्रा में सेवन से आयु के संरक्षण में सहायक हो सकती है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य के लिये ये दोनों बातें महत्वपूर्ण हैं। श्री गुप्त जी ने आगे कहा कि मध्य प्रदेश सरकार ने आयुर्वेद की तरफ विशेष ध्यान दिया है और भविष्य में भी देगी। एलोपैथी आदि को तो कुछ विशेष चन्दा आदि ही दिया है किन्तु आयुर्वेद के १०० औषधालय भी खोले हैं। आयुर्वेद के कालेज आदि भी खुलवाने पर विचार हो रहा है।

इसके बाद सभा के अध्यक्ष श्री गंगा शरण जी ने आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुये आयुर्वेदोन्नति के लिये सभी वैद्य समाज से संगठन के तौर पर आगे बढ़ने की प्रार्थना की और श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के गत देश सेवा और उत्तम औषधि निर्माण पर गर्व प्रगट किया। प्रसाद वितरण के बाद सभा कार्यक्रम समाप्त हुआ।

समारोह के आयोजन के लिये आगन्तुक व्यक्तियों ने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की भूरि भूरि प्रशंसा की।

अकोला बिक्री केन्द्र

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के अकोला बिक्री केन्द्र में स्थानीय वैद्य बन्धुओं एवं प्रतिष्ठित सज्जनों की उपस्थिति में श्री भगवान धन्वन्तरि जयन्ती का समारोह चिकित्सक चूड़ामणि वैद्यवर पं० शिवगुलामजी पांडेयकी अध्यक्षता में आरम्भ हुआ।

सर्व प्रथम वै० कृष्णजी खेमजी नेयगान्धी के द्वारा कविता पाठ हुआ और आयुर्वेद के द्वारा शल्य चिकित्सा पर मार्मिक भाषण हुए।

श्रीमान वैद्य पराड़करजी शास्त्री, सदस्य मध्य प्रदेश आयुर्वेद एण्ड यूनानी वोर्ड ने म० भा० वोर्ड की कुछ कार्यवाहियों से अवगत कराते हुये सभी वैद्यबन्धुओं को आज के शुभ अवसर पर आयुर्वेद का उत्थान करने की प्रतिज्ञा करने की सलाह दी।

डा० एल० टी० शाह ने अपने भाषण में कहा कि मैंने जिस समय पहले पहल यहाँ पर श्री वै० आ० भ० लि० के विक्री केन्द्र की तरफ से धवन्तरि जरन्ती मनायी गयी थी उसी समय आयुर्वेद का भविष्य उज्जवल देखा था और मैं उसके प्रयत्नों को आयुर्वेद की उन्नति की एक जरिया समझता हूं। आयुर्वेद के प्रति आज बड़े-बड़े नेताओं का भी ध्यान खीच रहा है। वर्तमान में अमरावती के अन्दर एक डाक्टरों के कान्फ्रेन्स में म० प्र० के राज्यपाल सीताभीपट्टारामैया के द्वारा दिया गया भाषण पढ़ कर मेरा विश्वास और भी वृढ़ होता जा रहा है। चिकित्सकों को गरीब जनता के लिए सस्ती आयुर्वेद दवाओं का प्रयोग करना चाहिये। इससंस्था के संचालक धन्यवाद के पात्र हैं। जिन्होंने प्रतिवर्ष इस शुभ कार्य को समारोह के रूप में मनाने का संकल्प कर रखा है।

डाक्टर रामकुमार जी तिवारी आयुर्वेदाचार्य ने आयुर्वेद के द्वारा बतलाये गये स्वस्थवृत्त को जनता के सामने रख कर उसके अनुकूल दैनिक जीवन बनाने की सलाह देते हुये बतलाया कि जैसे भारतीय रिवाज के अनुसार भोजनोपरान्त मुख को साफ करना दांतों की सुरक्षा करता है उससे पायोरिया रोग होने का भय नहीं रहता। पश्चिमी देशों में भोजन करके वस्त्र से मुख पोंछ लेने से मुख की शुद्धि नहीं होती है और वहां पर यही कारण है कि पायरिया पीड़ित ज्यादा मिलते हैं। आयुर्वेद के स्वस्थवृत्त पालन अवश्य करने की सलाह दी।

डा० वै० नारायण प्रसाद जी ने कहा कि चिकित्सकों को दवा बनाने के झंझटों में नहीं पड़ना चाहिये उनको तो रोग निदान पर ही पूर्ण ध्यान देना चाहिये इसी प्रकार औषधि निर्माताओं को अच्छी गुणकारी और सस्ती औषधियाँ सामयिक पद्धति से तैयार करके देना चाहिये। इससे आयुर्वेद शास्त्र की उन्नति सम्भव है। हम वैद्य बन्धुओं तथा भारत प्रसिद्ध देशी औषधि निर्माणकर्ता श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद लि० से श्रेष्ठ औषधियाँ बना कर जनता जनार्दन की सेवा करने की उम्मीद करते हैं।

सभापतिजी का भाषण—आज का शुभ दिन आयुर्वेद शास्त्र के प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि के जन्मोत्सव मनाने का है। भगवान धन्वन्तरि ने संसार के प्राणियों के दुःख निवारणार्थ ही प्रकट होकर आयुर्वेद शास्त्र का वर्णन किया था। हम वैद्यगण भगवान धन्वन्तरि के वर्णित आयुर्वेदानुसारही चिकित्सा करते हैं। हमारे चिकित्साशास्त्र में चार चीजों का बड़ा महत्व है, यानि ये चार पदार्थ मुख्य है। शास्त्र में कहा है "भिषक् द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पाद चतुष्टयम्।" इसमें द्रव्याणि जो पद है वह औषधि वाची है और औषधियों का आयुर्वेद में ऐसा वर्णन है "बहुकल्पम् बहुगुणं सम्पन्नं योग्य मौषधम्।" इस श्लोक में बहुकल्पम् यह जो पद है, इस पद का यह अर्थ होता है कि जिस औषधि के बाहुल्य में कल्प हो यानि चूर्ण, गोली गुटिका, अवलेह जैसा आजकल के जमाने के अनुसार में मिला कर सार निकाला हुआ टिंचर इत्यादि और भी औषधियों के क्षार, सत्व वगैरह ऐसे आधुनिक ढंग से प्रयोगों को हमें बना कर प्रयोग करना चाहिये। क्योंकि आजकल के प्राणी बहुत कमजोर हो गये हैं। ऐसे प्राणियों के लिए हमें आयुर्वेदिक प्रयोगों का आशूकारी गुणयुक्त ही बना कर प्रयोग करना चाहिये। जिससे चिकित्सा में हमें ज्यादा फल मिल सके। ऐसे प्रयोग फार्मेसियों द्वारा ही बन सकते हैं, घरों में औषधि बनानेवाले वैद्य इसे नहीं बना सकते। इसलिये श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा ऐसे आयुर्वेदीय प्रयोग बना कर वैद्यों को दें तो ही संसार का बहुत उपकार होगा।

आगरा बिक्री केन्द्र

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बिक्री केन्द्र—श्री उपाध्याय आरोग्य भवन रावत पाड़ा आगरा में धन्वन्तरि

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के
आगरा बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

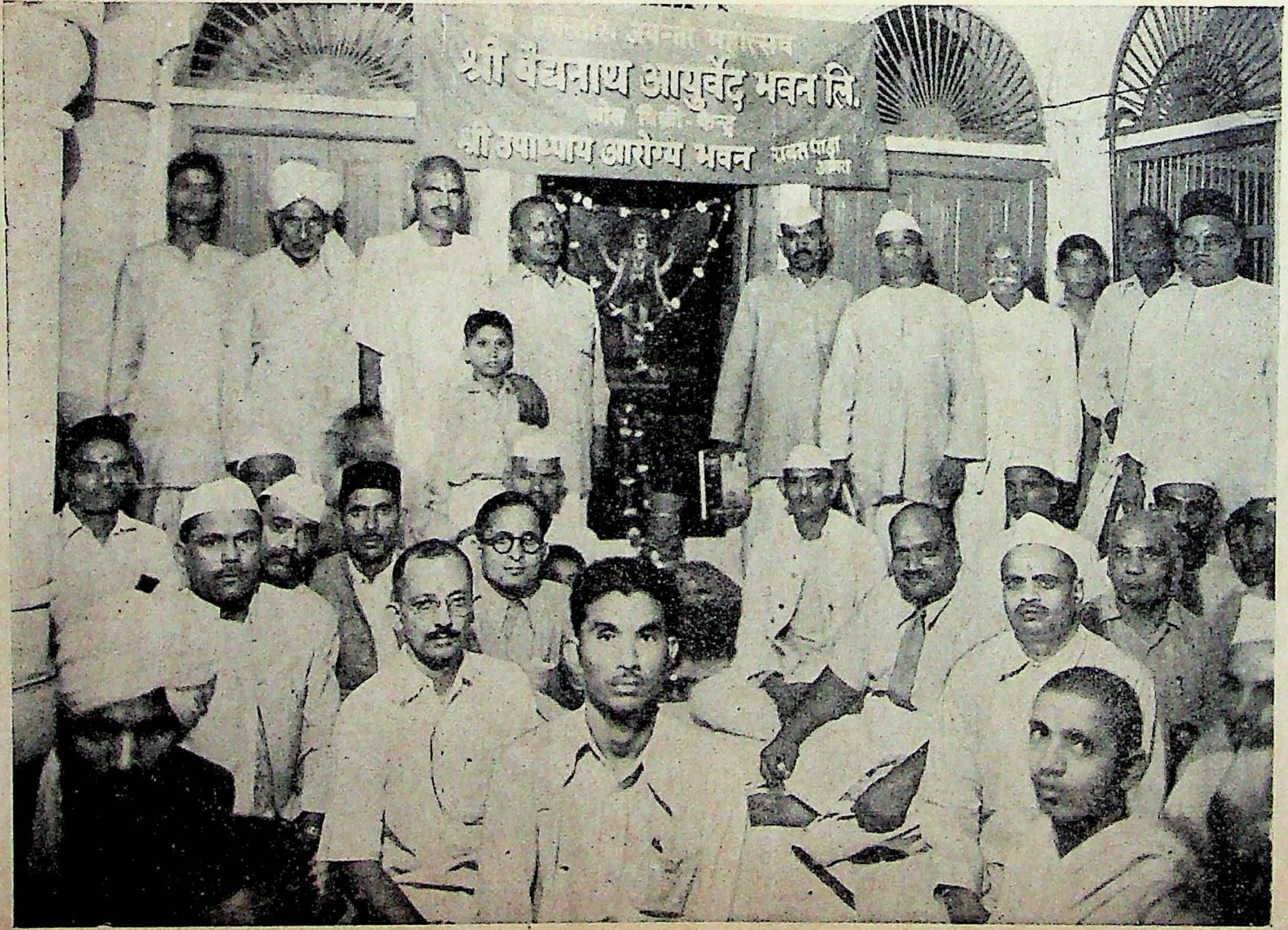
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.
श्री उपाध्याय आरोग्य भवन

धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव का एक दृश्य। (विवरण पृष्ठ ४९४ पर देखें)

जयन्ती महोत्सवश्री ब्रह्मानन्द जी आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में बड़े धूम-धाम के साथ मनाया गया। प्रारम्भ में मुद्रित स्वागत भाषण पाठ के बाद सर्व श्री वैद्य रघुवर दयाल जी, वैद्य शुक देव प्रसाद जी, वैद्य अम्बिका चरण जी दीक्षित, वैद्य प्रयाग दत्त जी, वैद्य ओंकार प्रसाद जी आदि विद्वान वैद्यों के आयुर्वेदोन्नति के विषय पर महत्त्व पूर्ण भाषण हुए। अन्त में बैद्यनाथ बिक्री केन्द्र के अध्यक्ष वैद्य प्रभु दयाल जी उपाध्याय ने समागत सज्जनों को धन्यवाद दिया, फिर प्रसाद वितरण कर सभा की कार्यवाही समाप्त की गयी।

औरैया बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह पं० प्रभुदयाल जी वैद्य आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। प्रारम्भ में पूजन और स्वागत भाषण के पश्चात् उपस्थित विद्वान वैद्यों ने आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए बैद्यनाथ दवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अन्त में सबको धन्यवाद देने के बाद प्रसाद वितरण करके कार्यवाही समाप्त की गयी।

खगड़िया बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह खगड़िया सबडिवीजन के एस० डी० ओ० के सभापतित्व में मनाया गया। सर्व प्रथम बिक्री केन्द्र के अध्यक्ष पं० बिहारी लाल शास्त्री द्वारा मुद्रित स्वागत भाषण पढ़ा गया। बाद में वैद्य राम प्रसाद जी आयुर्वेदाचार्य, वैद्य लक्ष्मी कान्त जी आयुर्वेदाचार्य तथा वैद्य सोमेश्वर प्रसाद जी गुप्त आदि प्रमुख विद्वान वैद्यों के भाषण हुए। तत्पश्चात् सभापति श्री एस० डी० ओ० साहब ने अपने भाषण में कहा "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० जैसी सर्वजन प्रिय आयुर्वेदीय औषध निर्माता संस्थाओं की आज के स्वतंत्र भारत में बहुत आवश्यकता है।"

अन्त में सभागत सज्जनों को धन्यवाद दिया गया और प्रसाद वितरण के बाद सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

समस्ती पुर बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह आयुर्वेदाचार्य पं० मुक्तिनाथ झा वैद्य के सभापतित्व में मनाय गया। इसमें नगर के प्रमुख वैद्य तथा गण्यमान व्यक्ति अधिकाधिक संख्या में उपस्थित होकर समारोह को सफल बनाया।

अन्त में समागत सज्जनों को धन्यवाद दिया गया और प्रसाद वितरण के बाद कार्यवाही समाप्त हुई।

लहेरिया सराय बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के लहेरियासराय बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव कविराज तुलसीचरण जी वन्द्योपाध्याय की अध्यक्षता में मनाया गया। सर्वप्रथम धन्वन्तरि पूजन और स्वागत भाषण के बाद अनेक विद्वान वैद्यों के आयुर्वेदीय विषय पर भाषण हुए। तत्पश्चात् सभापति जी ने आयुर्वेद की सामयिक स्थिति पर भाषण देते हुए बतलाया कि वैद्यों को आपसी मतभेद भुलाकर एक मजबूत संगठन बनाना चाहिए। तभी हम सामयिक परिस्थिति का मुकाबला कर सकते हैं। आयुर्वेद सेवा के लिये श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संचालकों को धन्यवाद देते हुए अपना भाषण समाप्त किया।

अन्त में वैद्य सूर्यभान जी द्वारा सबको धन्यवाद दिया गया तथा प्रसाद वितरण के पश्चात महोत्सव का विसर्जन हुआ।

बेतिया बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह वैद्य बद्री नारायण मिश्र, आयुर्वेद रत्न के सभापतित्व में बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। सभा में शहर के प्रायः सभी आयुर्वेदानुरागी सज्जन गण तथा प्रमुख वैद्य अधिकाधिक संख्या में उपस्थित थे। सर्व प्रथम पं० धरणीकान्त झा द्वारा मुद्रित स्वागत भाषण पढ़ा गया। तत्पश्चात् उपस्थित प्रमुख वैद्यों तथा सभापतिजी के आयुर्वेदीय विषय पर सार गर्भित भाषण हुए।

अन्त में धन्यवाद के बाद प्रसाद वितरण कर सभा विसर्जित हुई।

मोतीहारी बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मोतीहारी बिक्री केन्द्र भारत मेडिकल स्टोर्स में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह वैद्य राम गोविन्दप्रसाद जी के सभापतित्व में मनाया गया। सर्व प्रथम स्वागत भाषण पढ़ा गया। तत्पश्चात् वैद्यों और सभापति जी ने 'आयुर्वेद की सामयिक स्थि पर' भाषण दिये।

अन्त में धन्यवाद के बाद प्रसाद वितरण करते हुए सभा विसर्जित की गयी ।

राँची बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के राँची बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह वयोवृद्ध चिकित्सक पं० मदन लाल जी शर्मा के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ । सर्व प्रथम श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के सोल एजेण्ट जयश्री के वैद्य पं० रघुनन्दन मिश्र ने कार्यालय की ओर से भेजा हुआ स्वागत भाषण पढ़कर सुनाया । तत्पश्चात् पं० चिरंजी लाल जी शर्मा एवं गणपति संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल पं० राजेश्वर प्रसाद मिश्र ने धन्वन्तरि की उत्पत्ति और आयुर्वेद की महत्ता पर भाषण देते हुए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के ठोस कार्य पर मार्मिक भाषण दिया । बाद में सभापति जी ने आयुर्वेद के विकास पर विशद भाषण दिया ।

अन्त में समागत सज्जनों को धन्यवाद के बाद प्रसाद वितरण कर सभा समाप्त हुई ।

कटनी बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के कटनी बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव आयुर्वेदाचार्य वैद्य पूरण चन्द जी शर्मा की अध्यक्षता में सानन्द मनाया गया । सर्व प्रथम धन्वन्तरि पूजन और स्वागत भाषण के बाद नगर के प्रमुख वैद्य पं० लक्ष्मी दीन जी गौतम, पं० जग मोहन जी शास्त्री, वैद्य चिरंजीलाल जी गुप्ता आदि विद्वान वैद्यों के तथा सभापति के भाषण हुए ।

अन्त में समागत सज्जनों को धन्यवाद देते हुए प्रसाद वितरण कर सभा का कार्य समाप्त किया गया ।

वस्ती बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के वस्ती बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव वैद्यराज पं० बाबूराम जी वैद्य शास्त्री के सभापतित्व में मनाया गया । सर्व प्रथम स्वागत भाषण पं० दयाशंकर जी त्रिपाठी द्वारा पढ़ा गया । तत्पश्चात नगर के विज्ञ वैद्यों के भाषण हुए ।

अन्त में उपस्थित महानुभावों को धन्यवाद देते हुए प्रसाद वितरण कर सभा की कार्रवायी समाप्त हुई ।

देवरिया बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के देवरिया बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन ब्रह्मदेव जी ओझा के सभापतित्व में ससमारोह सम्पन्न हुई ; जिसमें नगर के विद्वान वैद्यों के अतिरिक्त लब्ध प्रतिष्ठित लोग भी उपस्थित थे । आयुर्वेद की उन्नति के विषय पर उपस्थित वैद्यों के भाषण हुए ।

अन्त में धन्यवाद देते हूए प्रसाद वितरण कर सभा की कार्रवायी समाप्त हुई ।

उज्जैन बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० उज्जैन बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह वैद्य रामस्वरूप जी शुक्ल आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में मनाया गया । इसमें धन्वन्तरि जयन्ती की महिमा पर वैद्य अनन्तलाल जी व्यास तथा वैद्य रामचरण जी शास्त्री के व्याख्यान हुए । और आयुर्वेदोन्नति पर वैद्य तुलसी रामजी मुद्गल, वैद्य रमानन्द जी शास्त्री तथा वैद्य कृष्ण चन्द्र जी पिण्डावाला का महत्त्वपूर्ण भाषण हुए

अन्त में वैद्य गुलाब चन्द जी शर्मा ने समागत सज्जनों को धन्यवाद देते हुए प्रसाद वितरण कर सभा की कार्यावाही समाप्त की ।

अलीगढ़-बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के अलीगढ़ बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह वयोवृद्ध वैद्य रामचन्द्र जी वैद्य शास्त्री की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । सर्व प्रथम धन्वन्तरि पूजन के बाद वैद्य हजारीलाल शर्मा द्वारा स्वागत-भाषण पढ़ा गया । बाद में वैद्य इन्द्रमणिजी ने अपने भाषण में कहा "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" आयुर्वेद की उन्नति के लिये अच्छा कार्य कर रहा है । यद्यपि आयुर्वेद के नाम पर अनेक आयुर्वेदीय फार्मेसियाँ चल रही हैं, परन्तु श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० जैसी विशुद्ध शास्त्रीय औषधि निर्माण करने वाली बहुत कम फार्मेसियाँ हैं । यही कारण है कि आज बैद्यनाथ-दवाओं पर जनता का अटूट विश्वास हो गया है ।" तत्पश्चात् सभापति जी ने भी अपने भाषण में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा किये गये आयुर्वेदोन्नति के ठोस कार्य के लिये धन्यवाद दिया ।

अन्त में धन्यवाद के पश्चात् प्रसाद वितरण द्वारा कार्य समाप्त किया गया ।

इटारसी-बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के सोल एजेण्ट—आत्रेय

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के

इटारसी बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

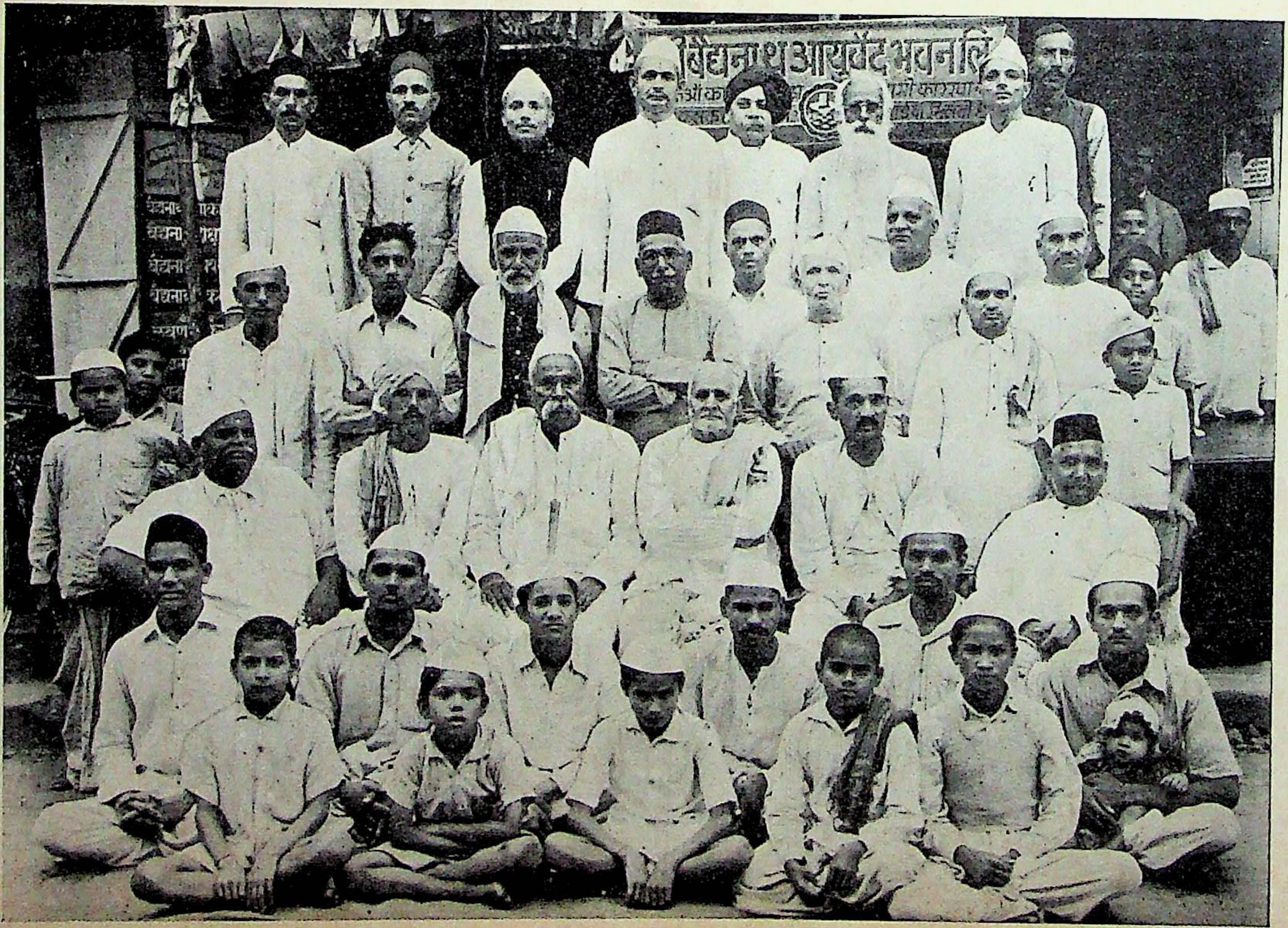
बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि

धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव का एक दृश्य। (विवरण पृष्ठ ४९६ पर देखें)

आयुर्वेद भवन, इटारसी में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव नगर पालिका के उपाध्यक्ष श्री केशव प्रसाद जी श्रोती आई० पी० की अध्यक्षता में मनाया गया। इसमें नगर तथा आस-पास के स्थानों के गण्यमान सज्जनों, अधिकांश वैद्य बन्धुओं के अतिरिक्त स्थानीय संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक पं० शिव प्रसाद जी शास्त्री की उपस्थिति विशेष उल्लेख है। सर्वप्रथम धन्वन्तरि पूजन और स्वागत भाषण के बाद पं० शिव प्रसादजी शास्त्री का सारगर्भित भाषण हुआ। आपने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के साधन का हेतु एकमात्र शरीरारोग्य बतलाते कहा—'आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा हम सच्चा स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं। रोगों की उत्पत्ति के आधि भौतिक और आध्यात्मिक रोगों के कारणों का सम्यक् विवेचन करते हुए उन्हें दूर करने के उपायों का निर्देश किया गया हैं। तत्पश्चात सभापति जी ने अपना संक्षिप्त भाषण देते हुए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन को धन्यवाद दिया।

अन्त में धन्यवाद के बाद प्रसाद वितरण कर सभा विसर्जित की गयी।

जमशेदपुर-बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बिक्री केन्द्र में सायं ४ बजे धन्वन्तरि भगवान का पूजन किया गया और एक सभा का भी आयोजन हुआ। सभापति पद ग्रहण करने के लिये श्रीमान् एस० डी० ओ० साहब जमशेदपुर निमन्त्रित थे परन्तु कारण वश वे न आ सके अतः अपने विचारोंका सारांश लिखकर दिया जिसकी प्रतिलिपी निम्न है——

"Ayurveda is a pride of India. It attained perfection and served the suffering humanity when, in many countries people did not know anything like a scientific treatment for their ailments. Alas! We at present cannot proclaim our pride because of the comparatively poor achievements of this system in many spheres of our present day ailments. What is required at present of the promoters, patrons and Acharyas of this Science is a vigorous & speedy research to invent quickly effective medicines for day to day diseases, like Malaria, Influenza, Intestinal diseases, enlarged spleens, diseased liver etc. which will not only give succour to the suffering population but will make the system popular with the people & lucrative for the Ayurveda practitioners.

Ayurveda is our indigenous medical treatment evolved from our culture, economic conditions and climate. There is no reason to feel defortist. Revered Acharyas of Ayurveda Please work day & night to invent quickly effective; cheap & scientific treatment for the most common day to day diseases & the masses will be soon in your grip."

उनकी अनुपस्थिति में सभापति श्रीमान् बैद्यराज आयुर्वेद चूड़ामणि श्री रघुनाथ जी को बनाया गया और सभा की कार्यवाही स्तुति पाठ एवं लिखित स्वागत भाषण से की गई। प्रथम वयोवृद्ध बैद्यराज पं० सुन्दर लाल जी शर्मा ने अपने ओजस्वी भाषण से आयर्वेद की महत्ता को सर्वसाधारण के सामने प्रकट किया। आयुर्वेदिक प्रणाली और पाश्चात्य प्रणाली की तुलनात्मक विवेचना कर यह सिद्ध कर दिखाया कि आयुर्वेद एक पूर्ण वैज्ञानिक और ठोस शास्त्र है जहाँ तक आज के वैज्ञानिकों की पहुंच है उससे भी आगे हमारे शास्त्र में वर्षों पहले से स्पष्ट किया हुआ है। इसलिये सरकार और जनता सहयोग दे जिससे सभी सुखी हों। तदन्तर श्री जगन्नाथ जी आयुर्वेद शास्त्री ने अपने सारगर्भित व्याख्यान में धन्वन्तरि जयन्तीका महत्त्व धन्वन्तरिकी उत्पत्ति में उसके शंख, घट, जलौका, और हर्रे लेकर प्रकट होने के तत्व का सुन्दर ढंग से विवेचन किया तथा ऐतिहासिक प्रमाणदेकर बताया कि आयुर्वेदही सब प्रचलित चिकित्साओं का जन्मदाता है फिर इस की अवहेलना क्यों जबकि इसमें फिजिशियन, सर्जन आदि की सभी सामग्री है। फिर वैद्य शिरोमणि पं० रामक्षा जी त्रिपाठी ने अपने एक घण्टे के भाषण

में अनेकों अपने प्रत्यक्ष के प्रमाणों को देकर जनता के सामने आयुर्वेद को अपनाने की तीव्र भावना जागृत की तदनन्तर वैद्य रामेश्वरजी आयर्वेदाचार्य, वैद्य कृष्ण दत्त द्विवेदीजी एम० एस० पटना, हकीम महम्मद यासीन खां,हकीम एस० एन० यासीन नूमानी, वैद्य शास्त्री रास बिहारीजी ओझा, वैद्य शास्त्री श्याम बहादुरजी श्रीवास्तव, वैद्य पं० मदन लाल शास्त्री आदि अनेकों महानुभावों ने भाषण दिये। तथा सभा में विचार प्रस्ताव सर्व सम्मति से उपस्थित जनता के साथ पास किये।

हरिद्वार बिक्री-केन्द्र

आज प्रातः ८ बजे श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की ओर से भारत चिकित्सा भवन में धन्वन्तरी जयन्ती महोत्सव अत्यन्त उत्साह पूर्वक मनाया गया।

पंच पुरी वैद्य सभा के प्रधान स्वामी राम प्रकाशजी ने अध्यक्ष पद से बोलते हुए अत्यन्त ओजस्वी शब्दो में उपस्थित जन समूह के सम्मुख भारतीय चिकित्स का मर्म बतलाते हुए वैद्य समाज से अनुरोध किया कि वह अपने संगठन को दृढ़ बना कर सरकार के कानों तक आयुर्वेद का आवाज पहुँचायें।

भारत चिकित्सा भवन के अध्यक्ष श्री कुमार ने जन-साधारण को संबोधित करते हुए देश की विगड़ी हुई दशा की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि भारतीयता के आधार पर चिकित्सा एवं स्वास्थ्य की समस्या हल करने से ही हमारा देश सुखी एवं समृद्धशाली हो सकता है।

चिकित्सक समुदाय को चेतावनी देते हुए श्रीकुमार ने कहा कि आज स्वार्थ को छोड़ कर 'स्व' की भावना को जागृत किये बिना न तो हम राष्ट्र की ओर नहीं आयुर्वेद की सेवा कर सकेंगे।

समारोह वन्देमातरम् की राष्ट्रीय गीत से प्रारंभ हुई। स्वागत भाषण के पश्चात अध्यक्षीय भाषण हुआ एवं धन्यवाद के पश्चात जन, गण, मन के मधुर संगीत के पश्चात प्रसाद वितरण से कार्य वाही समाप्त हुई।

जमुई बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के जमुई बिक्री-केन्द्र में श्री धन्वन्तरि जयन्ती उत्सव समारोह श्री यमुना प्रसाद सिहजी एम० एल० ए० चेयरमैन लोकलबोर्ड की अध्यक्षता में मनाया गया। सर्वप्रथम श्री बलदेव प्रसाद मिश्र ने श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० का मुद्रित स्वागत-भाषण पढ़ कर सुनाया। फिर श्री सुखदेव मिश्र ने आयुर्वेद की उपयोगिता पर अपना भाषण दिया। पुनः प्रो० श्री विजय नारायण सिंह जी ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता दिखा सरकार तथा जनता से आग्रह किया कि वे आयुर्वेद को अपनायें। उन्हों ने कहा कि राजा भोज के दिमाग का आपरेसन हुआ—दुर्योधन के व्रण का औषधि द्वारा आशु-चिकित्सा हुई और आयुर्वेद की संमोहनी जड़ी क्लोरोफार्म से कहीं ऊँचे दर्जे की चीज रही है, आदि। तत्पश्चात् पंडित रमावल्लभ चतुर्वेदी ने आयुर्वेद की उपयोगिता दिखाते हुए कहा कि सरकार इस चिकित्सा को भ्रम वश अवैज्ञानिक बता कर इस की उपेक्षा करती है। जन समुदाय से उन्होंने अपील किया कि वे इस को प्राचीन गौरव पूर्ण पद पर आसीन करे। आयुर्वेद पर प्रेम और विश्वास दिखाने के लिये राष्ट्रपति के किये प्रयत्न को उन्हों ने सराहा और इसके लिये धन्यवाद दिया। अन्तमें सभापति जी ने अपने भाषण में आयुर्वेद तथा इसके लिए श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा की गई सेवाओं पर अपना गंभीर भाषण दिया। तत्पश्चात् आगत सज्जनों और वैद्यों को आयुर्वेदिक साहित्य तथा धन्वन्तरि का प्रसाद वितरण किया गया। प्रसाद सामग्री में मेवा ही बाँटी गई, चूंकि आयुर्वेद के सिद्धान्त-विरुद्ध आजकल बाजार में बनस्पति जैसी आयुनाशक चीजें ही मिलती हैं। वैद्यों को इसके अतिरिक्त मकरध्वज एवं कई भस्मों की भेंट, भवन की तरफ से की गई। प्रायः एक हजार दर्शक भी भगवान धन्वन्तरि का दर्शन और प्रसाद पा तथा आयुर्वेद की महिमा सुन धन्य हुए।

गोरखपुर बिक्री-केन्द्र

तारीख १६-१०-५२ को श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० गोरख पुर के विक्री-केन्द्र—श्री महावीर औषधालय में जिले भर के वैद्यों की विशाल उपस्थिति में स्थानीय सुप्रसिद्ध पं० मालीराम जी आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में धन्वन्तरि जयन्ती बड़े उत्साह से मनाई गयी। कार्य क्रम नियत समय पर पं० सत्यनारायण शर्मा के स्वागत भाषण के बाद साथ २ प्रारम्भ हुआ। भगवान् धन्वन्तरि की यथाविधि पूजा-प्रार्थना के बाद अनेक वैद्यों के आयुर्वेद प्रचार आयुर्वेद की उत्तमता तथा रसायनशाला के बहुमुखी-प्रसार पर सारगर्भित भाषण हुये। अंत में औषधि उपहार

वितरण तथा सचित्र आयुर्वेद का स्वास्थ्य अंक भी प्रचारार्थ वितरण किया गया। सभापति श्री पं० मालीराम जी आयुर्वेदाचार्य के अंतिम भाषण तथा प्रसाद वितरण के अनन्तर सभा विर्सजित हुई।

मुजफ्फरपुर बिक्री-केन्द्र

आज शाम को ४ बजे श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। सभा के सभापति का स्थान आयुर्वेदाचार्य कविरत्न प्रो० श्रीगोस्वामी पं० भैरवगिरिजी नें सुशोभित किया। पश्चात स्वागत भाषण पढ़ के सुनाया गया। तदुपरान्त श्रीगिरि जी ने भगवान श्री धन्वन्तरि जी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए आयुर्वेद की उन्नति की चर्चा की। भाषण के अन्त में उन्हों ने कहा कि भारत में एक श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० ही ऐसी संस्था हैं जो हर साल अपने इष्टदेव भगवान श्री धन्वन्तरि की पूजा बड़े हर्ष से करती आ रही है। और श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की ओर से आयुर्वेद को उच्चस्थान प्राप्ति के लिये प्रयत्न भी बराबर किया जाता है। श्री गिरि जी का भाषण एक घण्टा हुआ। भाषण समाप्ति के बाद प्रसाद वितरण किया गया।

उज्ज़ैन बिक्री-केन्द्र

दिनांक १६-१०-५२ गुरुवादर को श्री बैद्यनाथ आ० भ० लि० के बिक्री-केन्द्र में श्री भगवान धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव बड़े समारोह पूर्वक सफल आयोजन के साथ संपन्न हुआ। उक्त सुअवसर पर नगर के गण्यमान समस्त वैद्यवृन्द उपस्थित थे।

श्री धन्वन्तरि भगवान के प्रादुर्भाव व आयुर्वेद पर अनन्तलाल जी व्यास व रामचरण जी शर्मा का भाषण हुआ। आयुर्वेदोन्नति किस प्रकार हो:—इस पर रामानन्द जी शास्त्री तुलसीराम मुद्गल व कृष्णचन्द्र जी पिण्डावाला के प्रवचन हुए।

पं० गुलाबचन्द्र जी शर्मा ने स्वागत भाशषण पढ़ा और आयुर्वेद चिकित्सकों के संगठन पर बड़ा ही मार्मिक व प्रभावशाली अध्यक्षीय भाषण हुआ।

जबलपुर बिक्री-केन्द्र

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री-केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव मनाया गया। श्री वी० भी० डिग्वेकर के संरक्षकत्व एवं प्राणाचार्य पं० सुन्दरलालजी शुक्ल के सभापतित्व में सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई।

सभापति निर्वाचनानन्तर कम्पनी की ओर से आयुर्वेदाचार्य शरदिन्दु पाण्डेय बी० आई० एम० एस० ने स्वागत भाषण सुनाया, तथा आपने अपने भाषण में चमत्कारिक योगों एवं तद्विषय में कम्पनी के द्वारा कलकत्ता एनेलेसियन लेबोरेटरी का चित्रण करते हुए बतलाया कि यह कम्पनी शास्त्रीय नियमानुसार दवाइयां निर्माण करती है, यही कारण है कि इस कम्पनी की औषधियां सर्वप्रिय एवं पुर्ण गुणकारी होती है।

स्वागत भाषण के बाद निम्नव्यक्तियों के भाषण हुए।

१. आयुर्वेदाचार्य श्री गया प्रसाद जी शुक्ल ने कहा कि धन्वन्तरि शब्द के यथार्थ तत्व को समझकर अग्रसर होना चाहिये। अर्थात् प्रत्येक चिकित्सक को काय चिकित्सा के साथ २ सर्जन भी होना चाहिये और हमें आज प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि इस दिशा में हम कभी भी पीछे न रहेंगे। आपने महाभारत के प्रकरण पर प्रकाश डालते हुये कहा कि जब गांधारी के उदर में गर्भ सम्बन्धी विशेष पीड़ा हो रही थी तब Cesarean Section (उदर शल्य क्रिया) करके गर्भ को बाहर निकालने को शास्त्रवेत्ताओं ने कहा था, इसी तरह आगे भी भीष्मपितामह के वाणों से विद्ध हो जाने पर तत्काल के सर्जन द्वारा वाण निकालने की प्रार्थना भीष्म-पितामह से दुर्योधन ने की थी। आपने इस दिशा की ओर विशेष ध्यान देने की बात कही।

२. आयुर्वेदाचार्य पं० वीरभानुजी त्रिवेदी ने भी अयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डाला और वैद्यबन्धुओं को संगठित होने की अपील की।

३. आयुर्वेदाचार्य वी० भी० डिग्वेकर ने आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धांतों पर प्रकाश डालते हुये आज की सरकार की आलोचना करते हुये आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डाला एवं सरकारी नीति का आयुर्वेद के प्रति सरकार की सौतेली मां जैसे व्यवहार पर आश्चर्य प्रगट किया। आपने सभी वैद्य बन्धुओं से संगठित हो कर इस दिशा में कार्य करने की प्रार्थना की।

४. अन्त में सभापति प्राणाचार्य श्री सुन्दर लाल जी शुक्ल आयुर्वेद मार्तण्ड ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता बतलाते हुये वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के सत्प्रयत्न पर

आशा व्यक्त की एवं धन्वन्तरि भगवान से प्रार्थना की कि हमारे सारे देशमें जिस तरह आज हम खुशी-खुशी मिष्ठान्न लेरहें हैं उसी तरह सारे प्राणी सुखी रहें एवं वैद्य बन्धु वर्ष-भर आनंदित रहें।

उपर्युक्त सभी वक्ताओं ने वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के इस सत्प्रयत्न पर संतोष व्यक्त करते हुए कहा कि हमारे देश में बहुत कम्पनियाँ कार्य कर रही हैं परन्तु जिस तरह यह कम्पनी जी-जान से आयुर्वेद के प्रसार में अग्रसर हो रही है यह प्रसंशनीय है। यह एक व्यापारिक संस्था नहीं अपितु इसका ध्येय शुद्ध शास्त्रीय औषध निर्माण कर जनता की सेवा करना एवं अन्य उपकरणों द्वारा आयुर्वेद का प्रसार करना है जोकि इसके द्वारा प्रकाशित सचित्र आयुर्वेद पत्रिका एवं आयुर्वेदीय ग्रन्थ प्रकाशनादि तथा पूरे भारत वर्ष में धन्वन्तरि महोत्सव मनाना प्रत्यक्ष उदाहरण है। भगवान धन्वन्तरि से इसके पूर्ण उन्नति की कामना करते हुए वैद्य बन्धुओं से एवं जनता से इस कम्पनी को पूर्ण सहयोग देने की प्रार्थना कर रहे हैं।

आयुर्वेद बृहस्पति पं० गोवर्धन शर्मा छांगाणी व पं० द्वारका प्रसादजी वैद्य जयपुरवालों ने भी श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की दिन-पर-दिन उन्नति के लिये भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना की।

अन्त में कम्पनी की ओर से शरदिन्दु पाण्डेय वैद्य ने आगत सभी वैद्यबन्धुओं को धन्यवाद दिया तथा अगले वर्ष इसी तरह सब लोगों को एकत्र हो कर धन्वन्तरि महोत्सव मनाने के लिये प्रार्थना की।

भागलपुर बिक्री-केन्द्र

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव कविराज शचीन भूषण शास्त्री एल० ए० एम० एस० के सभापतित्व में मनाया गया। इसमें नगर के सभी वैद्य उपस्थित थे। आगत अतिथियों में डा० बनारसी लाल शर्मा कप्टेन एम० बी० बी० एस० ने आयुर्वेदिक विज्ञान पर अपना विचार व्यक्त कर वर्तमान शिक्षा पर उन्होंने बतलाया कि इससे पूर्णतः आयुर्वेद का विकास नहीं होता बल्कि दोनों विज्ञान के सम्मिश्रण से एक अजीब परिस्थिति पैदा हो सकती है जिससे हमारा लक्ष्य ओझल में चला जा सकता है। प्रो० कविराज सत्यनारायण शर्मा ने भाषण में बतलाया कि दो पद्धति के संयोग से किस प्रकार से हमारा विकास हो सकता है इसलिए हमें विकसित विज्ञान की रूपरेखा रख कर काम करना चाहिये।

भागल पुर जिला वैद्य सम्मेलन के प्रधान मन्त्री कविराज विद्यानारायण सिंह जी ने कहा कि आज हम वैद्यों को अपना मूल्याङ्कन करना ही हम अपने को धन्वन्तरि का सम्प्रदाय मानते हैं पर उसके अनुकूल काम करने से उदासीन रहते हैं। धन्वन्तरि भगवान ने मानव मात्र के सामने समाज के वर्वर युग को आरोग्य का सिद्धान्तस्थिर कर जनता को लाभान्वित किया। आदि चिकित्सा शास्त्र के प्रवर्त्तक वे ही थे। उन्हों ने ही हमें प्रेरणा दी है कि मानव समाज को दुःखित देख कर हमें उनको रोग मुक्त करने के लिये क्या करना चाहिए। आज हम वैद्य प्रतिज्ञा लें कि जनता की सेवा हमारा उत्तम धर्म होगा। विज्ञान की चर्चा करते हुए बताया कि विज्ञान दो नहीं है। विज्ञान देश कालआदि ऐवं परिस्थिति के भेद से विभिन्न रूप धारण कर लेता है और जनता कहीं उसे संकीर्णता में आवद्ध कर लेती है तो कहीं समाज के लिये उनका मार्ग उन्मुक्त रहता है। सहयोग समिति द्वारा फार्मेसी के निर्माण की सलाह जो श्री "बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" की ओर से दी गई है उसकी सराहना करते हुए कहा कि इसमें वैद्योंको बड़ा लाभ होगा। आज औषधों की परीक्षा कर ही औषधि खरीदने की सलाह दें, नहीं तो धोखा हो सकता है। वैद्यों को इसलिये सचेष्ट होना चाहिए। वैद्यों को संगठित हो कर प्रयास करना चाहिए। तभी आयुर्वेद का विकास होगा।

भागलपुर जिला वैद्य सम्मेलन के उपसभापति कविराज श्रीनारायण शर्मा जी, ने कहा कि वैद्यों को संगठित होकर आयुर्वेदिक प्रतिष्ठा के विकास का प्रयत्न करना चाहिए तभी वैद्य समाज जीवित रह सकता है। स्वागत भाषण कविराज फणी भूषण सिंह जी ने पढ़ा। सभा में विशेष रूप से उपस्थित जिला वैद्य सम्मेलन के सभापति कविराज गया प्रसाद शुक्ल, भागलपुर आयुर्वेदिक कालेज के प्रिन्सिपल कविराज मन्मथनाथ वन्द्योपाध्याय एवं आ० कालेज के प्रोफेसर गण थे।

छपरा बिक्री-केन्द्र

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की छपरा स्थित सोल एजेन्सी स्वदेशी दवाखाना में श्री धन्वन्तरि भगवान का पूजन छपरे के सुविख्यात पंडित रामचन्द्र ओझा के आचार्यत्व में सविधि संपन्न हुआ। तत्पश्चात् श्रीभगवान

धन्वन्तरि जी की जयन्ती मनाने के निमित्त एक विराट सभा; जिला के प्रकांड विद्वान वैद्य गोस्वामी फूलन देव गिरि आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में हुई। सर्व प्रथम "श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" की ओर से स्वदेशी दवाखाना छपरा के अध्यक्ष श्री हरदेव प्रसाद सिंह ने आगत सज्जनों का स्वागत करते हुए मुद्रित स्वागत भाषण पढ़ा। पश्चात् नगर के प्रमुख वैद्यों के आयुर्वेद की महत्ता पर विद्वत्तापूर्ण सारगर्भित भाषण हुए। सभापति जी ने भी अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में आयुर्वेद की महत्ता बतलाते हुए लोगों को बतलाया कि भारत अपने राजनैतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता की रक्षा और भारतीयों की स्वास्थ्योन्नति तभी कर सकेगा जब आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति को ही राष्ट्रीय पद्धति करार दी जाय।

अन्त में स्वदेशी दवाखाना के अध्यक्ष श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की ओर से आगत सज्जनों को धन्यवाद देने के बाद सभा विसर्जित हुई।

अमरावती बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के अमरावती बिक्री-केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती सभा कार्य के लिए सर्व सम्मति से श्री गुरुप्रसाद जी मिश्र को अध्यक्ष पद के लिये चुनाव हुआ। तदनन्तर श्री पं० गंगाधर जी शर्मा जो वहां के व्यवस्थापक हैं; के स्वागत भाषण के बाद श्री योग धर्मार्थ औषधालय अमरावती शस्त्र क्रिया विभाग के प्रधानाध्यापक श्री वै० डा० पाठक जी का मराठी भाषा में गंभीर भाषण हुआ। उन्होंने आयुर्वेद का आदि काल से इतिवृत्त तथा आधुनिक परिस्थितियों एवं उसके सुधारने के साधन, पारस्परिक सहयोग तथा शुद्ध रूप से औषध निर्माण आदि पर अपने गंभीर विचार प्रगट किये। उसके बाद श्री विदर्भ आयुर्वेद महाविद्यालय अमरावती के प्रधानाध्यापक श्री तारे साहब का वर्तमान समय में आयुर्वेद का स्वरूप तथा उसके उद्धार के कई तरीके जैसे—पाठ्यक्रम का सुधार, प्राच्य-प्रतीच्य-विज्ञान का समन्वय, पृथक-पृथक विभाग के कार्यों की पृथक्-पृथक् सुव्यवस्था तथा नवीन आविष्कार एवं प्रबन्ध के लिए सरकार से पूर्ण अनुरोध इत्यादि पर—भाषण हुए। इसके बाद—श्री गुरुप्रसाद जी मिश्रा वैद्य ने महत्वपूर्ण भाषण दिया। उन्होंने प्राचीन-आयुर्वेद का रोग निदान-मल-मूत्र, नेत्र, जिह्वा, त्वचा, नाड़ी आदि का परीक्षण आयुर्वेद सिद्धान्त एवं आधुनिक सिद्धान्त से नवीन आविष्कृत सूक्ष्म यंत्र आदि से परीक्षा का विस्तृत विवेचन किया तथा इस विषय में प्राच्य-प्रतीच्य समन्वय भी किया और प्राक्तन आयुर्वेद सम्मत काय चिकित्सा प्रधान पंच कर्मों का फल प्रदर्शन पूर्वक सर्व शरीर शुद्धि का स्वरूप वैज्ञानिक तरीके से बतलाया तथा पंच कर्मानन्तर चरक सिद्धान्तानुसार स्वर्ण भस्म का प्रयोग सर्व रोग नाशक बतलाया और प्राचीन आयुर्वेद से नेत्र पटल का विवेचन तथा आधुनिक विज्ञान से विवेचन करके उसका समन्वय किया गया—और इसको उदाहरण का रूप देकर आयुर्वेद के सभी विषयों को इसी रूप में लाने को आयुर्वेद के उद्धार में प्रधान कारण बतलाया और आयुर्वेद की अवनति के कई कारण—आधुनिक वैद्यों की दुर्व्यवस्थायें तथा परस्पर सहयोग का अभाव आदि बतला कर इससे बचने का आदेश दिया तथा औषध निर्माण विभाग की पृथक विशेष आयोजना होनी चाहिये। इस के प्रसंग से उन्होंने "श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" के प्रति विश्वास प्रगट किया जिनका इस संस्था से अधिक काल से संबंध है। उन्होंने बैद्यनाथ की कई एक दवाओं की सफलता के उदाहरण बतलाये तथा औषध ज्ञान करने का प्रत्येक वैद्य को आवश्यकीय बतला कर उसके अभाव से होने वाला कई एक आपत्तियों का स्वानुभव उदाहरण बतला कर अपना भाषण समाप्त किया। इसके बाद बिक्री-केन्द्र के तरफ से वैद्य कृष्ण दत्त शर्मा ने सब उपस्थित महानुभावों के प्रति आभार प्रगट करने के बाद प्रसाद स्वागत भाषण-पुस्तक एवं उपहार दिये। पुनः सानन्द सभा-कार्य विसर्जित हुआ।

इन्दौर बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह वयोवृद्ध वैद्य ख्याली रामजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में बड़े समारोह के साथ मनाया गया। सभा में स्थानीय प्रमुख वैद्यों के अतिरिक्त अनेक गण्यमान व्यक्ति उपस्थित थे। अनेक वैद्यों के आयुर्वेदोन्नति के सम्बन्ध में महत्व पूर्ण भाषण हुए। अन्त में आगत सज्जनों को धन्यवाद देकर प्रसाद वितरण के पश्चात् सभा की कार्यवाही समाप्त की गयी।

कासगंज बिक्री केन्द्र

आज ता० १६—१०—५२ को श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती

आचार्य पं० वेदव्रत जी शास्त्री के सभापतित्व में बड़े समारोह के साथ मनायी गयी। इसमें नगर के प्रमुख वैद्यों के अतिरिक्त लब्ध प्रतिष्ठ व्यक्तियों की भी काफी संख्या में उपस्थिति थी। सर्व प्रथम बिक्री केन्द्र के अध्यक्ष श्री लखपत राय जी ने मुद्रित स्वागत भाषण पढ़कर सुनाया। बाद में अनेक विद्वान वैद्यों के आयुर्वेद की साम्प्रतिक स्थिति पर विचार विमर्श हुए। अन्त में समागत सज्जनों को धन्यवाद देकर प्रसाद वितरण के बाद सभा विसर्जित की गयी।

फैजाबाद बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बिक्री केन्द्र फैजाबाद में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव का समारोह बड़े उत्साह पूर्ण ढंग पर मनाया गया जिसमें जिले के प्रायः सभी वैद्य एवं स्थानीय नागरिकों ने विशाल संख्या मे भाग लिया। नागरिकों के अतिरिक्त जिले के कुछ पदाधिकारियों ने भी भाग लिए।

श्री धन्वन्तरि भगवान की सर्व प्रथम विधिवत् पूजा की गई। तत्पश्चात उनके जयनाद के पश्चात सभा की कार्यवाही करने के हेतु श्री कृष्ण दत्त जी वैद्य आयुर्वेदालंकार को सभापति का स्थान दिया गया और अनेक विद्वानों के सारगर्भित भाषण हुए। व्याख्यान दाताओं में श्रीमान् मदन गोपाल वैद्य आयुर्वेदाचार्य ए० एम० एस०, एम० एल० ए० तथा श्री हरिसेवक त्रिपाठी साहित्याचार्य का भाषण विशेष महत्व पूर्ण रहा। उन्होंने उपस्थित जनता को आयुर्वेद-चिकित्सा के महत्त्व को बिल्कुल वैज्ञानिक ढंग पर बताया और यह पूर्ण रुपेण सिद्ध कर दिया कि भारतीय सरकार को अपने राज्य की चिकित्सा में आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली को सर्व प्रथम स्थान देना चाहिए तभी भारतीय सच्चे सुख और पूर्ण स्वास्थ्य का लाभ कर सकेंगे।

इसके बाद बिक्री केन्द्र के व्यवस्थापक श्री डूंगरमल विधाधर शर्मा ने उपस्थित जन-समूह को धन्यवाद देकर सभा की कार्यवाही समाप्त की। जनता श्री धन्वन्तरि भगवान का प्रेम प्रसाद पाकर धन्वन्तरि जय के साथ गृह मय गामी हुई।

रायपुर बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बिक्री केन्द्र रायपुर में श्रीमान् पं० बाबूराम जी शर्मा सदस्य आयुर्वेद एण्ड यूनानी बोर्ड म० प्रा० की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह सम्पन्न हुआ।

प्रथम स्वागत भाषण श्रीमान् भूरेलालजी शर्मा बिक्री केन्द्र व्यवस्थापक रायपुर के द्वारा पढ़ा गया। धन्वन्तरि भगवान की श्रद्धाजंलि अर्पित की गई तत्पश्चात् श्रीमान् अध्यक्ष महोदय पं० बाबूराम शर्मा तथा श्रीमान एल० के० बक्षे पावन का आयुर्वेद पद्धति पर सारगर्भित भाषण हुए।

इस समारोह में नगर के बहुसंख्यक वैद्यराज तथा नगर के लब्ध प्रतिष्ठित सज्जनों ने भाग लिया। प्रसाद के पश्चात् कार्य क्रम समाप्त किया गया।

गया बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०के सोल एजेण्ट :—दी गया माहुरी ट्रेडिंग कम्पनी, गया में श्री रामावतार राम जी भदानी ने अपने औषधालय में समारोह के साथ श्री धन्वन्तरि जयन्ती मनाने का सोत्साह आयोजन किया। स्थानीय वैद्यों के अतिरिक्त अन्य मुख्य-मुख्य सज्जन भी उपस्थिति थे।

श्री वंसुरिया बाबा के सभापतित्व में पं० वजरंग दत्त शर्मा जी तथा पं० हरदेव मिश्र जी वैद्य के व्याख्यान हुए। आयुर्वेद के अभ्युदय सम्बन्धी समस्या पर विचार-विमर्श करने के लिये प्रतिमास स्थानीय वैद्यों की एक बैठक करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। श्री धन्वन्तरी-भगवान की पूजा के पश्चात् प्रसाद वितरण हो समारोह समाप्त हुआ।

गिरीडीह बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव वैद्य चन्द्र शेखर जी उपाध्याय की अध्यक्षता में बड़े धूम-धाम के साथ मनाया गया। जिसमें नगर के अनेक सुप्रतिष्ठित विद्वान वैद्यों ने अपने भाषण में आयुर्वेदीय और अन्य पैथियों की औषधों का तुलनात्मक विवेचन करते हुए वैद्य तथा जनता से आग्रह किया कि आप 'श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०' जैसे विश्वस्त आयुर्वेदीय दवाखाने से ही आयुर्वेदीय दवा खरीदकर उपयोग करके वास्तविक लाभ उठावें। अन्त में बिक्री केन्द्र के अध्यक्ष महोदय ने समागत सज्जनों को धन्यवाद दिया और प्रसाद वितरण करके सभा विसर्जित की गई।

देहली बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बिक्रीकेन्द्र—आयुर्वेदिक स्टोर चाँदनी चौंक—देहली में श्रीमान् पं० मनोहर

लाल जी वैद्य आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में महोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया। जिसमें देहली के प्रमुख विद्वान वैद्यों में---श्री जगदीश प्रसाद जी आत्रेय वैद्य, पं० ओंकार प्रसाद जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, वैद्य दौलत राम जी वैद्य वाचस्पति, वैद्य श्री योगी रामनाथ जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य आदि के आयुर्वेद के विषय पर सामयिक महत्व पूर्ण भाषण के साथ-साथ सबों ने बैद्यनाथ दवाओं की तथा श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा की गयी आयुर्वेदोन्नति तथा जन सेवा कार्य की प्रशंसा की। अन्त में बिक्री केन्द्र के अध्यक्ष वैद्य प्रभुदत्त जी शास्त्री ने आगत सज्जनों को धन्यवाद दिया, फिर प्रसाद–मिष्टान्न वितरण के बाद सभा विसर्जित की गयी।

मुरैना बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० मुरैना में श्री प्रयाग नारायणजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्वमें श्रीभगवान धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव मनाया गया। सर्व प्रथम श्री धन्वन्तरि भगवान का पूजन कार्य सम्पन्न हुआ, तदुपरान्त पं० मोतीलाल जी शर्मा ने स्वागत भाषण पढ़कर सुनाया। उपस्थित महानुभावों ने बड़ी श्रद्धा के साथ आयुर्वेद के महत्त्व को समझाया तथा उपस्थित वैद्य गणों ने भगवान धन्वन्तरि जी को श्रद्धांजलि अर्पित की। उपस्थित सज्जनों में नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति हरिदास जी राठी ने आयुर्वेद तथा श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की सराहना की, बाद में सभापति जी का भाषण हुआ श्री शास्त्री जी ने धन्वन्तरि जी के जन्म दिवस के उपलक्ष पर बोलते हुये बतलाया कि धन्वन्तरि जी कौन थे और क्यों इन्होंने इस पृथ्वी तल पर अवतार लिया इसको भली प्रकार सभी वैद्य बन्धु जानते हैं। आज ही के दिन समुद्र मन्थन के पश्चात अमृत कुम्भ लिये भगवान धन्वन्तरि इस जगती तल पर आयुर्वेद का प्रसार करने के लिये अवतरित हुये थे। जिन्होंने आयुर्वेद का काफी प्रचार किया और अपने सुयोग्य शिष्यों द्वारा प्राणीमात्र का कल्याण किया इत्यादि बोलते हुये पाश्चात्य पद्धति की चर्चा करते हुये वैद्यों को सलाह दी कि अब समय चुपचाप बैठे रहने का नहीं है। समय आ गया है कि हम सुसंगठित होकर अपनी आवाज को बुलन्द कर शासन से अपने अधिकार सुरक्षित करा लें। यदि चुपचाप ही बैठे रहे तो एक समय वह आयगा कि वैद्यों को अमान्यता दे दी जायगी उस समय वैद्यों की आँखें खुलेगी लेकिन फिर तो वही कहावत चरितार्थ हो जावेगी कि 'समय चूकि पुनि का पछताने' इसलिये अभी से वैद्यों को जागरूक हो जाना चाहिये। बाद में प्रसाद इत्यादि वितरण कर सभा समाप्त की गई।

डालटेनगंज (पलामू) बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह श्री चिरंजी लाल वैद्य आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में बड़े उत्साह पूर्वक मनाया गया। जिसमें शहर के प्रमुख वैद्य तथा प्रतिष्ठित नागरिकों ने अधिकाधिक संख्या में भाग लेकर महोत्सव को सफल बनाया।

सर्व प्रथम भगवान धन्वन्तरि के पूजन के पश्चात् अनेक विद्वान वैद्यों के आयुर्वेद के विषय पर महत्वपूर्ण भाषण हुए। अन्त में बिक्री केन्द्र के अध्यक्ष श्री रामचन्द्र भौरेलाल जी जोशी ने समागत सज्जनों को धन्यवाद दिया फिर प्रसाद वितरण के बाद सभा विसर्जित हुई।

बनारस बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बिक्रीकेन्द्र दशाश्वमेघ घाट बनारस में श्री धन्वन्तरी जयन्ती समारोह सानन्द मनाया गया। सर्व प्रथम श्री धन्वन्तरि भगवान् का सादर पूजन किया गया।

शाम को ६ बजे से सभा-कार्य प्रारम्भ हुआ। सभा में वैद्य-बन्धुओं की काफी भीड़ थी। सर्व प्रथम सभापति जी का निर्वाचन हुआ। सभी वैद्य बन्धुओं की अनुमति से श्री वैद्यराज दुर्गादत्त जी शास्त्री, अध्यक्ष श्रीराम लक्ष्मी नारायण मारवाड़ी अस्पताल को सभापति बनाया गया। तदनन्तर स्वागत भाषण हुआ। उसके पश्चात् कतिपय प्रमुख वैद्यों के आयुर्वेदोन्नति के विषय पर ध्यान देते हुये आधुनिक परिस्थिति का आलोकन करके भाषण हुये। कलकत्ते के सुप्रसिद्ध विद्वान वैद्य पं० तारादत्त जी भट्टाचार्य का भाषण हुआ। उन्होंने इस बात पर विशेष निर्देश किया कि यदि वैद्य बन्धु संगठित होकर कार्य करें तो आयुर्वेदोन्नति निश्चय ही हो सकती है। तथा सरकार को भी बाध्य होकर इसे सहयोग प्रदान करनी पड़ेगा। तदनन्तर श्री सभापति जी का भाषण हुआ। उनके शिक्षा प्रद उपदेशामृत से जनता पूर्ण रूप से प्रसन्न हुई।

अन्त में प्रसाद वितरण हुआ, साथ ही संस्था की ओर

से समागत वैद्य बन्धुओं को स्वर्णघटित मकरध्वज, लौह तथा अभ्रक भस्म के नमूने के पैकेट भेंट किये गये तथा श्री धन्वन्तरि भगवान् की जयन्ती ससमारोह सम्पन्न हुई।

बेगूसराय बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव बाबू सरजू प्रसाद सिंह बी० ए० बी० एल० एम० एल० ए० के सभापतित्व में मनाया गया। इसमें नगर के अनेक विद्वान वैद्यों के सारगर्भित भाषण हुए। अन्त में सभापति जी ने आयुर्वेदीय चिकित्सा का महत्त्व बतलाते हुए वैद्यों से अनुरोध किया कि आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार के लिए साधारण. जनता के हृदय में इसकी उपयोगिता का स्थान बनावें, जब जनता आपके साथ होगी, तो सरकार को अवश्य इस तरफ ध्यान देना होगा और आयुर्वेद की उन्नति भी होगी। क्योंकि जनता की आवाज के सामने बड़ी से बड़ी शक्तियाँ झुक जाती हैं। पश्चात् सभागत सज्जनों को धन्यवाद देकर प्रसाद वितरण के बाद सभा विसर्जित की गयी।

आरा बिक्री केन्द्र

आज श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र गोपाली कुआं आरा में श्री नारायण दत्त जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य, सभापति आरा जिला वैद्य सभा की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह धूम धाम से मनाया गया। समारोह में नगर के अनेक गण्यमान्न व प्रतिष्ठित वैद्य उपस्थित थे। केन्द्र के अध्यक्ष पं० महादेव प्रसाद जी शर्मा के स्वागत भाषण पढ़ने के बाद अनेक विद्वान वैद्यों के भाषण हुऐ। अन्त में सभापति जी वैद्यों को संगठित होने तथा आयुर्वेद की उन्नति के लिये समय निकाल कर ठोस संगठन बनाने की अपील की। सभापति जी ने अपने भाषण में आयुर्वेद की नित्यता को सिद्ध किया तथा श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की आयुर्वेदोन्नति के लिये की गई सेवाओं की प्रशंसा करके अन्त में भगवान धन्वन्तरि को श्रद्धांजली अर्पित की। इसके बाद केन्द्र के अध्यक्ष की ओर से प्रसाद वितरण किया गया तथा उपस्थित बैद्यों को कार्यालय की ओर से दी गई धन्वन्तरि समारोह की भेंट (औषधि रूप में) वितरण की गई।

बैरगनियाँ बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में सर्वोदय गुरुकुल के प्रधानाध्यापक श्री वासुदेव जी शास्त्री के सभापतित्व में श्रीधन्वन्तरि जयन्ती समारोह खूब धूम धाम से मनाया गया। इस सुअवसर पर स्थानीय तथा देहात के वैद्य महानुभाव, गणमान्य-प्रतिष्ठित जनों तथा सार्वजनिक एवं अधिकारी वर्ग के कार्यकर्ताओं ने सम्मिलित होकर श्रद्धांजलियां अर्पित की। पं० श्री ब्रह्मानन्द जी आयुर्वेद शास्त्री. (व्यवस्थापक स्थानीय बिक्री केन्द्र) ने उल्लास पूर्ण स्वर से वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए भगवान धन्वन्तरि जी का पूजन किया तथा पुष्पांजलि भी समर्पित की।

मंगलाचरण के पश्चात् श्री चतुर्भुज शर्मा (अनुज व्यवस्थापक बिक्री केन्द्र) ने मुद्रित स्वागत भाषण पढ़कर समागत आयुर्वेद प्रेमी सज्जनों को सुनाया और आयुर्वेद की प्राचीव गौरव गरिमा को लक्ष्य में रखते हुये निःस्वार्थ भाव से आयुर्वेदोन्नति के लिये सतत प्रयत्न करने एवं सुषुप्त भावनाओं को जागृत कर वैद्य समाज में नवजीवन का संचार करने की प्रार्थना की।

श्री ठाकुर मंगलप्रसाद सिंह साहित्य वाचस्पतिजी ने अपने जोरदार एवं जोशीले भाषण में कहा कि श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा निर्मित सभी दवाइयाँ तत्क्षण भावोत्पादक होती हैं। आपने अपने संक्षिप्त वक्तव्य में यह भी विचार प्रकट किया कि मुझे आयुर्वेद-चिकित्सा पद्धति में केवल श्रद्धा ही नहीं है वरन् पूर्ण विश्वास भी है। आपने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के प्रति शुभ कामना प्रकट करते हुये कहा कि आयुर्वेदोन्नति के लिये ऐसी ही संस्था की आवश्यकता है।

तदुपरान्त सभापति जी ने भगवान धन्वन्तरि के आदि से अन्त तक के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला। इसके अतिरिक्त सुश्रुत के अनुसार शल्य चिकित्सा पर प्रकाश डालते हुये आधुनिक आविष्कृत क्षणिक चिकित्सा से भी मुठभेड़ की। और अन्तमें आयुर्वेद प्रेमी सज्जनों तथा वैद्यों को आयुर्वेदोन्नति के हेतु प्रोत्साहन दिया। अन्त में "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०" द्वारा प्रेषित स्वास्थ्य अंक, वितरण किया गया। प्रसाद वितरण के पश्चात ८।। बजे सभा का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

कानपुर बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बिक्री केन्द्र--श्री पाण्डेय आयुर्वेदिक स्टोर्स--कानपुर में वैद्य जगदीश चन्द्र जी मल्लिक आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। प्रथम पं० हरिनाथ जी शर्मा द्वारा मुद्रित स्वागत भाषण पढ़ा गया। तत्पश्चात वैद्य रघुवर दयाल जी भट्ट आदि उपस्थित प्रमुख वैद्यों के सामयिक भाषण हुए। अन्त में बिक्री केन्द्र के अध्यक्ष वैद्य मदन मोहन पाण्डेय ने सबको धन्यवाद दिया, फिर प्रसाद वितरण के बाद समारोह का कार्य सम्पन्न किया गया।

मेरठ बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह आयुर्वेदाचार्य पं० गणेशदत्त जी शास्त्री के सभापतित्व में बड़े धूम-धाम के साथ मनाया गया। इसमें उपस्थित अनेक विद्वान वैद्यों के आयुर्वेद की महत्ता पर भाषण के बाद सभापति जी ने आयुर्वे की वर्तमान परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के मैनेजिंग डाइरेक्टरों को उनकी सेवा भावना के लिए धन्यवाद दिया। अन्त में बिक्री केन्द्र के अध्यक्ष वैद्य नारायण दत्त जी शर्मा ने समागत सज्जनों को धन्यवाद दिया, फिर प्रसाद वितरण के बाद सभा समाप्त की गयी।

सीवान बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के सीवान बिक्री केन्द्र में--धन्वन्तरि जयन्ती समारोह नगर कांग्रेस कमेटी, तथा सबडिविजनल वैद्य सम्मेलन के सभापति डा० सरयू प्रसाद जी गुप्त के सभापतित्व में मनाया गया। प्रथम अनिरुद्ध प्रसाद जी द्वारा मुद्रित स्वागत भाषण पढ़ा गया, बाद में वैद्य रामचन्द्र त्रिपाठी का वात, पित्त, कफ पर तथा श्याम बिहारी शर्मा वैद्य का प्राच्य-पाश्चात्य चिकित्सा का तुलनात्मक विवेचन पर और अन्य वक्ताओं का आयुर्वेद की महत्ता पर सारगर्भित भाषण हुए। अन्त में बिक्री केन्द्र के अध्यक्ष महोदय ने सबको धन्यवाद दिया फिर प्रसाद वितरण के बाद समारोह सानन्द सम्पन्न किया गया।

खामगाँव बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्रमें डॉ० पारसनोस की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती बड़ी धूमधाम के साथ मनायी गयी। सर्वप्रथम स्वागत भाषण पढ़ा गया, बाद में उपस्थित प्रमुख वैद्यों तथा सभापति जी के आयुर्वेद की महत्ता पर भाषण हुए। अन्त में सबको धन्यवाद देकर प्रसाद वितरण करके सभा समाप्त की गयी।

बाँदा बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बाँदा बिक्री केन्द्र में चौधरी छोटे लाल जी वैद्य के सभापतित्व में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह मनाया गया। सर्व प्रथम धन्वन्तरि पूजन के बाद बिक्री केन्द्र के अध्यक्ष श्री भगवान दास मुन्नी लाल जी ने मुद्रित स्वागत भाषण पढ़ा। तत्पश्चात् थानीय प्रमुख वैद्यों के सारगर्भित भाषण हुए। वैद्य श्री कालू राम जी राज वैद्य ने स्वास्थ्य रक्षा के विषय पर तथा श्री भवानीदत्त जी व्यास वैद्य ने धन्वन्तरि जयन्ती की महत्ता पर विशेष प्रकाश डाला। बाद में सभापति जी ने अपने भाषण में वैद्यनाथ दवाओं की प्रशंसा करते हुए बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के संचालकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उपस्थित वैद्यों का एक ग्रूप-चित्र भी लिया गया, जो ऊपर प्रकाशित है।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बाँदा बिक्री-केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव का एक दृश्य

अन्त में धन्यवाद देते हुए प्रसाद वितरण कर सभा विसर्जित की गयी।

इलाहाबाद बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के प्रयाग बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल के सभापतित्व में मनाया गया। इसमें नगर के प्रतिष्ठित वैद्य एवं ग्रामीण अंचलों से आये हुए

अधिकाधिक वैद्यों की उपस्थित थी । सर्व प्रथम धन्वन्तरि पूजन के बाद श्री सत्यदेव जी ने आगत सज्जनों का स्वागत करते हुए छपा हुआ स्वागत भाषण पढ़ा । तदनन्तर पं० नवरत्न जी विद्यालंकार, कविराज हनुमान प्रसाद जी वकील, बाबू बद्री दयाल जी वकील, वैद्य योगेशचन्द्र जी शुक्ल, हकीम कपूर चन्द जी तथा श्री त्रियुगी नाथ जी वैश्य ने अपने-अपने विचार धन्वन्तरि के सम्बन्ध में--प्रकट करते हुए आयुर्वेद की महत्ता, नाड़ी ज्ञान की विशिष्टता एवं दोष-दुष्य की विवेचन शैली का स्पष्टीकरण किया ।

अन्त में सभापति महोदय ने अपने भाषण में आयुर्वेद की विशेषताएं बतलाते हुए कहा--"चाहे कोई स्वास्थ्य मंत्री हो, किन्तु आयुर्वेद विज्ञान को एवं उसकी पद्धति के चिकित्सकों को कुचला नहीं जा सकता । इसकी अवनति होगी, तो हमारे अज्ञान एवं संगठन के अभाव में ही । अतः हम सुसंगठित हों और अधिकाधिक शास्त्रानुशीलन करें, जिससे हमारी शक्ति को सरकार पहचान सके ।

समुद्र मंथन की गाथा बतलाते हुए आपने कहा--विचार एवं स्वभाव वैभिन्य होते हुए भी जैसे देव-दानवों ने समुद्र मंथन कर के १४ रत्न प्राप्त किये, इसी प्रकार हम-लोगों को भी अपने से थोड़े भिन्न विचारवालों को मिलाकर एक कार्य करने की समूह रूपेण प्रेरणा लेनी चाहिए । क्योंकि उन्हीं देव-दानवों के सम्मिलित प्रयत्न के परिणाम स्वरूप भगवान धन्वन्तरि अमृत कलश लिये प्रकट हुए थे, जिनकी हम आज जयन्ती मना रहे हैं ।"

अन्त में धन्यवाद के बाद प्रसाद वितरण कर सभा समाप्त हुई ।

आलम बाजार (कलकत्ता) बिक्री-केन्द्र

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के (आलम बाजार, कलकत्ता) बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह श्रीमान् कविराज विजयरत्न सेन के सभापतित्व में बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया । इसमें स्थानीय प्रमुख वैद्यों के अतिरिक्त गण्यमान सज्जन भी उपस्थित थे । सर्व प्रथम कविराज लोकनाथ शर्मा ने मुद्रित स्वागत भाषण पढ़ा और [illegible] अनेक वैद्यों के आयुर्वेदीय विषय पर भाषण हुए ।

अन्त में धन्यवाद के पश्चात् प्रसाद वितरण कर सभा विसर्जित हुई ।

लखीमपुर (खीरी) बिक्री-केन्द्र

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के लखीमपुर (खीरी) बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह वैद्य वाचस्पति पं० बालादीन बाजपेयी के सभापतित्व में मनाया गया । सर्व प्रथम धन्वन्तरि पूजन और स्वागत भाषण के पश्चात स्थानीय अनेक प्रमुख वैद्यों के भाषण हुए ।

अन्त में धन्यवाद देकर प्रसाद वितरण के द्वारा सभा की कार्रवाही समाप्त हुई ।

बैद्यनाथ धाम बिक्री-केन्द्र

आज ता० १६-१०-५२ ई० को श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के बिक्री केन्द्र देवघर (वैधनाथ धाम) में श्री धन्वन्तरि जयन्ती बड़ेसमारोह के साथ मनाया गया । सर्व प्रथम श्री धन्वन्तरि भगवान का पूजन किया गया तदुपरान्त कविराज श्री सुरेन्द्रकुमार दासजी आयुर्वेदाचार्य भूतपूर्व प्रिन्सिपल श्री अष्टाङ्ग आयुर्वेद महाविद्यालय कलकत्ता के सभापतित्व में सभा हुई ।

वैद्य रामचन्द्र शर्मा आयुर्वेदाचार्य व्यवस्थापक बिक्री केन्द्र ने स्वागत भाषण किया ; तदुपरान्त आयुर्वेदोन्नति के विषय में पं० श्री चलबलजी झा, कविराज श्री पार्वती नारायण जी आयुर्वेदाचार्य, डा० हरीपद राम आदि के सार गर्भित भाषण हुए तदुपरान्त सभापति जी का भाषण हुआ ।

अन्त में व्यवस्थापक बिक्री-केन्द्र ने समागत महानुभावों को धन्यवाद दिया और प्रसाद वितरण एवं अभ्रक भस्म मकरध्वज आदि के नमूने उपहार स्वरूप भेंट कर सभा विसर्जित की गई ।

विक्रम (पटना) बिक्री-केन्द्र

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह श्री रामानन्द झा के सभापतित्वमें मनाया गया । सर्व प्रथम धन्वन्तरि पूजन के बाद बिक्री केन्द्र के अध्यक्ष वैद्य यज्ञेश नारायण जी ने स्वागत भाषण पढ़ा, बाद में वैद्य सुरेश दत्त शर्मा , वैद्य रामानन्द उपाध्याय वैद्य, पं० कामताप्रसाद जी शर्मा आदि प्रमुख वैद्यों के आयुर्वेद के विषय पर उत्तम भाषण हुए । तत्पश्चात् सभापति जी ने अपने भाषण में कहा--आयुर्वेद की अवनति के दोषभागी सरकार और वैद्य दोनों हैं अतः वैद्यों को इसका सुधार करना चाहिए । अन्त मे धन्यबाद देकर प्रसाद वितरण के बाद सभा समाप्त की गयी ।

यवतमाल बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के यवतमाल बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती उत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया।

सायंकाल ७।। बजे डा० काले सिविल-सर्जन यवतमाल की अध्यक्षता में सभा का आयोजन किया गया। जिसमें डा० काले, डा० देशमुख तथा पं० विश्वनाथ सारस्वत आदि सज्जनों के आयुर्वेद की महत्ता पर सारगर्भित भाषण हुए। डा० देश पाण्डेय ने अपने भाषण में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के वृहत् स्वरूप का लोगों को परिचय दिया, तथा इस प्रकार के महत्व शाली उत्सव मनाने और विशुद्ध आयुर्वेदीय औषधियाँ देश के कोने-कोने में पहुंचाने के लिये आभार प्रदर्शित किया।

बिक्री केन्द्र के अध्यक्ष वैद्य मेघदत्त जी शर्मा ने समागत चिकित्सक बन्धुओं को पुष्पहार, पान-सुपारी प्रसादादि सम्मानित वस्तुओं से सम्मानित किया।

मुंगेर बिक्री केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मुंगेर बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह वैद्य रामलाल जी वर्मा के सभापतित्व में मनाया गया। इसमें नगर के प्रमुख वैद्यों ने अधिकाधिक संख्या में उपस्थित होकर भगवान धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धाजंलि अर्पित करते हुए आयुर्वेद के विभिन्न विषयों पर अपने अपने विचार प्रकट किये।

अन्त में धन्यवाद के बाद प्रसाद वितरण कर सभा समाप्त हुई।

गोंदिया बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री-केन्द्र में श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह धूम-धाम के साथ मनाया गया। इसमें नगर सभी प्रमुख वैद्यों ने भाग लेकर भगवान धन्वन्तरी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

रकसौल बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के स्थानीय बिक्री केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह पं० राम शकल जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। सर्व प्रथम धन्वन्तरि पूजन के पश्चात् मुद्रित स्वागत भाषण पं० हरि प्रसाद त्रिवेदी ने पढ़ा, बाद में वैद्य गट्टूलाल जी, वैद्य सन्तकुमार जी वीर गंज वाले, वैद्य ज्वरी लाल जी शर्मा आदि प्रमुख वैद्यों के सारगर्भित भाषण हुए। अन्त में सभापति जी ने भगवान धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धाजंलि अर्पित करते हुए वैद्यों को बैद्यनाथ की दवाओं का ही व्यवहार करना चाहिए इस पर काफी जोर डाला और श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की भूरि भूरि प्रशंस की।

अन्त में समागत सज्जनों को धन्यवाद देकर प्रसाद वितरण किया गया।

—०○—

रतनगढ़ धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

राजपूताना प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन द्वारा आयोजित श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव सप्ताह का अधिवेशन स्थानीय श्री धन्वन्तरि मन्दिर के विशाल क्षेत्र में जिला सर्जन श्री जी० बी० टिपनीस के सभापतित्व में ता० १६-१०-५२ को सायं साढ़े चार बजे बड़े सजधज के साथ मनाया गया।

सर्व प्रथम श्री भगवान् धन्वन्तरि का पूजन नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के सभापति एवं श्री धन्वन्तरि मन्दिर के मंत्री वैद्य मणिराम शर्मा भिषगाचार्य ने किया। वैद्य श्री लक्ष्मीनारायण जी आयुर्वेदाचार्य एवं श्री गजानन्द जी शास्त्री के मंगलाचरण के पश्चात् श्रीमान् पं० कृष्ण चन्द्र जी व्याकरणाचार्य तथा वैद्य घनश्याम चन्द्र जी साहित्यायुर्वेदाचार्य के आयुर्वेद विषय सारगर्भित भाषण हुए।

इसी समय मंत्री श्री धन्वन्तरि मन्दिर ने आज तक का आय व्यय व मन्दिर की प्रगति पर संक्षिप्त प्रकाश डाला।

सभा में सर्व साधारण के अतिरिक्त नगर के प्रतिष्ठित वैद्य, धनिक, विद्वान्, आदि सभी उपस्थित थे। राजकीय कर्मचारियों ने भी इस उत्सव में विशेषता से भाग लिया।

रीवा में धन्वन्तरि जयन्ती

आयुर्वेद प्रचारिणी सभा की ओर से अर्जुन सिंह के सभापतित्व में एक विराट सभा हुई जिसमें नगर के गण्यमान महानुभाव उपस्थित हुए। स्थाई सभापति श्री जमुनाप्रसाद राजवैद्य ने अपनी कार्यकारिणी के सदस्य पं० चंद कुमार आदि के सहित श्री धन्वन्तरि भगवान की पूजा-स्तुति किया। अंत में सभापति महोदय ने बताया कि श्री धन्वन्तरि भगवान ने आयुर्वेद की रचना द्वारा प्राणियों को आरोग्य एवं दीर्घजीवी होने के साधन प्रदान किया अतः ये सब के आराध्य देव हैं। —मन्त्री

काठमाण्डू में धन्वन्तरि जयन्ती

काठमाण्डू, १६ अक्टूबर। नेपाल आयुर्वेदीय संस्था द्वारा आयोजित आ० औषधालय नेटपाचो टेला में नेपाल सरकार के स्वास्थ्य विभाग के माननीय शाही परामर्शदाता काजी माणिक लाल के सभापतित्व में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह अनेक प्रमुख वैद्यों तथा गण्यमान्य सज्जनों के साथ मनाया गया।

--मन्त्री

सीकर में धन्वन्तरि जयन्ती

सीकर, १६ अक्टूबर। श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में स्थानीय श्री परशुराम पुरिया राजस्थान आयुर्वेद कालेज में आयुर्वेद दिवस समारोह के साथ मनाया गया। स्थानीय वैद्य, विद्यार्थी एवं अध्यापकों ने उत्साह से भाग लिया। सुबह से ही धन्वन्तरि पूजा उत्सव, आदि के साथ सम्पूर्ण दिवस स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों में व्यतीत हुआ। इस वर्ष सीकर के वैद्यों में उत्साह दर्शनीय था।

गुमला (राँची)

गुमला (राँची) में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह निम्न क्रमानुसार सम्पन्न हुई, स्थानीय प्रधान वैद्य श्री पं० राजेन्द्रनाथ जी मिश्र के दरवाजे में सचित्र आयुर्वेद में प्रकाशित श्री धन्वन्तरी जी के चित्रपट को उत्तमासन में सजाकर पुष्पाभरणों से अलंकृत कर पूजन हुआ, मध्याह्नोत्तर (२ बजे) सम्पूर्ण वैद्य समाज एवं मण्डली एकत्र होकर सभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई, सर्वसम्मति से श्री पं० द्वारकाधीशजी शर्मा सभापति का आसन ग्रहण किये, अनन्तर श्री चन्द्रशेखर शास्त्री (मंत्री वैद्य सभा गुमला) ने संक्षिप्त वार्षिक रिपोर्ट पर प्रकाश डाला तदनन्तर श्री पं० राजेन्द्रजी का बड़ा ही सारगर्भित भाषण हुआ, पुनः श्री योगेन्द्रजी का वृहत् निवंध पाठ हुआ, तथा श्री पं० भगवान दत्तजी ने कई आयुर्वेदीय चुटकुले सुनाये जो बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुए फिर श्री चन्द्रशेखर शास्त्री का भाषण हुआ जो वे मलेरिया संबंधी अन्वेषण कुछ दिनों से करते आ रहे हैं और उन्हें अधिक सफलता मिल रही है वे मलेरिया के लियें एकमात्र कुनाइन औषध नहीं मानते बल्की बिल्कुल अनावश्यक समझते है, अनन्तर अध्यक्षजी का बहुत ललित एवं अर्थ गाम्भीर्य पूर्ण भाषण होकर सभा समाप्त हुई और श्रीमान् धन्वन्तरी जी की आरती हुई और प्रसाद में चरकोक्त श्रीखण्ड (रसवती) वितरण किया गया बाद में श्री पं० राजेन्द्रजी द्वारा जलपान कराने के बाद कार्यवाही समाप्त हुई।

वैद्य सभा जबलपुर

जबलपुर, १६ अक्टूबर। आज स्थानीय वैद्य सभाकी ओर से वैद्य सभा के सभापति पं० पुरुषोत्तम लाल जी गोस्वामी के औषधालय में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह सानन्द मनाया गया। समारोह में स्थानीय प्रमुख वैद्यों--श्रीयुत् डीग्वेकर जी, वैद्य लक्ष्मीनारायण पचौरी, पंडित गंगा विष्णु जी आदि महानुभाव उपस्थित थे। सभी वक्ताओं ने आयुर्वेद की सामयिक परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए वैद्यों से एक मजबूत संगठन के लिए प्रार्थना की।

--मन्त्री

वैद्य समाज से अपील

हमारी सरकार की वर्तमान आयुर्वेद सम्बन्धी नीति से आप भली भांति परीचित ही हैं। अभी-अभी केन्द्रीय सरकार ने सं० ३८-३-५२ ई० एस० टी० एस० दि० १-२-५२ के द्वारा भारत के सभी प्रान्तों को सूचित करते हुए रजिस्टर्ड वैद्यों तथा हकीमों द्वारा सरकारी कर्मचारियों को अवकाश एवं स्वास्थ्य के सम्बन्ध में दिये जाने वाले प्रमाण पत्रों को अमान्य घोषित कर दिया है। इस प्रकार की सूचना को वैद्य समाज के लिए अपमान जनक मानते हुए मैंने अपना लेख तथा पत्र इस सम्बन्ध में विगत सचित्र आयुर्वेद में प्रकाशित भी करवाएं हैं। उन्हें संभवतःआपने देखा ही होगा। मेरी प्रार्थना पर श्री आर० वी० धुलेकर साहब ने यह प्रश्न भारतीय संसद में भी प्रस्तुत किया है।

अतः आपसे निवेदन है कि आप अपने संगठन एसं व्यक्तिशः तथा सार्वजनिक सभाओं द्वारा उक्त निर्णय का संयमित भाषा में विरोध कर सूचना केन्द्रीय सरकार के गृह विभाग को भेजने का कष्ट करें। कृपया इस प्रकार की गतिविधियों से सम्मेलन को तथा आपके अब तक के प्रयत्नों से मुझे अवगत कराने का कष्ट करें।

विश्वविद्यालय की सहायता

एक सज्जन ने झांसी से लगभग ६० मील स्थित शिवपुरी नगर की अपनी जायदाद जिसकी आनुमानिक कीमत १०,०००) दस हजार रुपया है। दान देने का वचन दे दिया है। जायदाद की रजिस्ट्री एक सप्ताह में हो जायगी।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मालिक श्री रामनारायण शर्मा जी से सहायता के लिए प्रार्थना की गई है। उन्होंने हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर ५००) अभी दे दिया है।

--रजिस्ट्रार

वैद्यों को सिने-जगत का आह्वान ?

आजकल स्थानीय छबिगृह मे चल रहे वर्ष के श्रेष्ठ चल चित्र "पूनम" को देखकर स्वभावतः ही जो प्रणाली दृष्टिगोचर होती है, वह जनता मे भ्रमदा ही कही जा सकती है तथा एक जिम्मेदार अधिकारी के नाते डायरेक्टर को, सेन्सर-बोर्ड को व सरकार को इस प्रकार के चित्रों के वे अंश जिसके द्वारा पूरा समाज दोषी माना जा सके, चलचित्र मे नहीं रखना चाहिये।

"पूनम" मे वैद्य छज्जूराम जी का चरित्र चित्रण जिस भांति किया गया है क्या वह वैद्य समाज के लिये सत्यता का द्योतक है ? क्या देश की ८० प्र० श० जनता जनार्दन की सेवा करने वाली यह चिकित्सा पद्धति इस भांति बदनाम करने योग्य है ? नहीं, तो फिर क्यों वैद्य समाज पर यह कुठाराघात किया जाता है। जनता समझ ले कि वैद्यों का कार्य १५०० से ५०० आदमी करना नहीं है अपितु उनका तो उद्देश्य केवल सीमित क्षेत्र मे नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के प्राणि मात्र में शांतिमय, निरोग, दीर्घ जीवन प्रदान करना रहा है यथा--

"सर्वत्र सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।"

इसलिए जनता इस भांति के चित्र देखकर भ्रम में न आवे तथा साथ ही मैं इस संबंध के निर्माताओं से याने सिनें व्यवसायों से व सरकार से नम्र निवेदन करता हूं कि वे इस भांति के अंशों पर पहले विचार करके कि इसका असर देखनेवालों पर क्या होगा ? योग्यांशों को ही चित्र मे स्थान दें।

वैद्य छज्जूराम को यदि प्रहसन का पात्र मात्र भी बनाकर यदि ऐसी भयंकर गल्ती कर दी गई हो तो वह भी अक्षम्य है। क्योंकि व्यक्ति ही समष्टि का एवं समष्टि ही व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती है।

यदि इस प्रकार के चित्रों के विरुद्ध आवाजें न उठाई गईं तो वह दिन दूर नहीं जबकि भारतीय वैद्यों से घृणा भी करने लग जावें। हमारा पैसा विदेशों को नहीं पहुंचाया जाय। एतदर्थ इस भांति यह भर्त्सना एक कठोर चेतावनी देकर अभी वैद्य समाज व उससे लाभ पाने वाली जनता को आमंत्रित करता हूँ, अपने कर्त्तव्य के लिये।

अन्त मे मैं स्थानीय नगर वैद्य परिषद् ; मध्य भारतीय वैद्य मण्डल, अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन के पदाधिकारियों पत्रकार बन्धुओं से तथा जनता जनार्दन से जिसकी वैद्य समाज अविरत सेवा कर रहा है, अपील करता हूं कि वे इस प्रकार से देशी चिकित्सा पद्धति को अवैज्ञानिक कहने वालों के कुप्रचार तथा उसके प्रति द्वेष-पूर्ण वातावरण निर्माण कर उस ओर से हमे उदास व अलग करने वाले चित्रों के भ्रामक प्रचार का जोरदार खण्डन करें। व भविष्य में ऐसी गल्तियाँ पुनः न दोहराई जा सके। एतदर्थ उचित कार्यवाहियां प्रारंभ कर अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

--ह० सू० शास्त्री (गौड़)

शोक सकाचार

भूतपूर्व विद्या पीठ-मन्त्री वैद्यराज जगदीश प्रसाद जी शर्मा के पिता जी पं० गंगाराम जी का ६० वर्ष की आयु में अपने निवास स्थान मुहम्मदपुर में ता० २२-८-५२ को सायंकाल देहावसान हो गया। स्व० पं० गंगारामजी ज्योतिष शास्त्र के बड़े मर्मज्ञ विद्वान थे। आप सार्वजनिक कार्य में भी काफी भाग लेते थे। आपके सत्प्रयत्न से अभी मुहम्मद पुर में एक संस्कृत पाठशाला तथा जूनियर हाई स्कूल चल रहा है। आपके छः पुत्र हैं।

सचित्र आयुर्वेद के परिवार की तरफ से शोकसन्तप्त शर्मा जी के साथ सहानुभूति प्रगट करते हुए दिवंगतात्मा की शान्ति के लिए मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं।

वैद्य बलवन्त शर्मा दीक्षित का दुःखद निधन

जामनगर आयुर्वेदीय संस्थाओं के प्रखर सहकारी तथा बम्बई प्रांतीय आयुर्वेदिक स्टेट फेकल्टी के सदस्य श्री बलवन्त शर्मा दीक्षित जी का ता० २९।९।५२ को स्वर्गवास हो गया।

स्व० दीक्षित जी आयुर्वेद के निष्णात विद्वान तथा बड़े कर्मठ थे, आपके निधन से आयुर्वेद जगत में जो स्थान रिक्त हुआ है उसकी पूर्त्ति निकट भविष्य में होना [illegible] है, परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवंगतात्मा को शान्ति प्रदान करे।

--स० सम्पादक

आरोग्य-प्रकाश

(९ वाँ संस्करण)

(आरोग्य-स्वच्छता और चिकित्सा पर श्रेष्ठ ग्रन्थ)

भारत प्रसिद्ध श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर वैद्यराज पण्डित रामनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री ने ५-६ वर्ष में बड़ी मेहनत से स्वयं इस ग्रन्थ को लिखा है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हजारों रुपयों का काम देता है। इसके ८ संस्करणों में ६८००० प्रतियाँ छपकर बिक चुकी हैं और ९ वाँ संस्करण में १५ हजार फिर छापा गया है। इसीसे इसकी लोकप्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है।

मूल्य १।।।), डाक खर्च ।।=)

आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान

ले० वैद्य रणजित राय

वाइस प्रिन्सिपल आयुर्वेदिक म० वि० सूरत

आधुनिक मूलतत्त्वों के साथ आयुर्वेदोक्त तत्त्वों का समन्वय करने के लिए किस दृष्टि से प्रयास होना चाहिए। इस विषय में यथा-स्थान विद्वान् लेखक ने अपना मत प्रकाशित किया है। आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान अन्य सभी आयुर्वेदीय विषयों का आधार भूत है। अतः उसका अध्यापन किस शैली से होना चाहिए, इस बात का विवेचन करते हुए विषय को नया ही रूप देने का सफल प्रयास किया गया है।

मूल्य—६)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

आयुर्वेद सारसंग्रह

(दूसरा संस्करण)

हिन्दी में ऐसी आयुर्वेदीय पुस्तकों की कमी थी, जिनमें एकत्र रोग-विचार के साथ चिकित्सा, औषध-निर्माण, अनुपान, पथ्यापथ्य आदि का विवरण समझा कर सरल भाषा में दिया हो। इससे सर्वसाधारण पाठकों के सामने बहुत दिक्कतें आती थीं। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेद-साहित्य की इसी कमी को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा बनाई जानेवाली प्रायः सभी दवाओं की निर्माण विधि तथा उनके गुण–धर्म और प्रयोगविधि के साथ सभी वैद्योपयोगी बातों का वर्णन सरल हिन्दी भाषा में किया गया है। मूल्य—७)

सिद्धयोग संग्रह

(तीसरा संस्करण)

आयुर्वेदोद्धारक आयुर्वेद-मार्त्तण्ड वैद्य वाचस्पति वैद्य यादव जी त्रिकमजी आचार्य द्वारा लिखित यह ग्रन्थरत्न है। इसमें जितने प्रयोग लिखे गये हैं, वे सब श्रीयुत आचार्य जी के अनेक बार के अनुभव सिद्ध हैं। इस पुस्तक में यह विशेषता है कि रोगाधिकार के अनुसार ही दवाओं के प्रयोग लिखे गये हैं, जिससे सर्व साधारण जन भी इस पुस्तक के द्वारा सफलतापूर्वक चिकित्सा कार्य कर सकते हैं। वैद्यों के लिए तो बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ हैं।

मूल्य—२।।।)

प्रकाशक :

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर।

पदार्थ-विज्ञान

ले० वैद्य रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य,

प्रिन्सिपल, अ० शि० आयुर्वेदीय कालेज, बेगूसराय

इस ग्रन्थ में प्रमाणों का तुलनात्मक विवेचन, स्वास्थ्य-संरक्षण तथा रोग प्रतीकारार्थ उपयोग में आनेवाले पदार्थों का विवेचन करते हुए आयुर्वेद के मूलभूत त्रिदोष-सिद्धान्त की जननी-प्रकृति और उससे उद्भूत तत्त्वों की छान-बीन की गयी है। साथ ही यह भी दर्शाया गया है कि पूर्वजन्म कृत पापों का परिणाम भोगने के लिए किस प्रकार सगुण-आत्मा भिन्न-भिन्न योनियों में प्रवेश कर अपने कर्मों का फल भोगता है।

मूल्य--३।।)

यूनानी सिद्धयोग संग्रह

यूनानी चिकित्सा-पद्धति का महत्त्व सभी जानते हैं। इसके नुस्खे आयुर्वेदीय नुस्खों की भाँति ही लाभदायक और तुरत फायदा करने वाले तथा सस्ते होते हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सक भी यूनानी दवा से लाभ उठावें, इसलिये एक अनुभवी चिकित्सक से यह ग्रन्थ सरल हिन्दी भाषा में लिखवाया गया है। चिकित्सकों तथा सर्वसाधारण दोनों के लिए बहुत उपयोगी पुस्तक है। मूल्य--२।।)

उपचार-पद्धति

(चतुर्थ संस्करण)

सर्व साधारण गृहस्थ के सैकड़ों रुपये प्रति वर्ष बच सकते हैं, यदि उन्हें उपचार और पथ्य का साधारण ज्ञान भी हो जाय। इसी लक्ष्य को सम्मुख रखकर इस पुस्तक का प्रकाशन हमने किया है। इसमें रोगियों की परिचर्या का विवेचन दिया गया है।

मूल्य--।।।=)

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर

मानस-रोग विज्ञान

(ले० डॉ० बालकृष्णजी अमरजी पाठक)

आज के युग में जब कि काम, क्रोध आदि तथा मिरगी (अपस्मार), उन्माद, न्यूरिस्थिनिया, मानसिक अस्थिरता आदि मानसिक रोग मनुष्य जाति को बुरी तरह से त्रस्त कर रहे हैं, यह पुस्तक एक नवीन सन्देश देती है। अनुभवी लेखक की मँजी हुई लेखनी और तीक्ष्ण तर्कों ने प्रस्तुत पुस्तक के विषयों पर उपयुक्त सामग्री का सुन्दर और अधिकारपूर्ण रूप से सम्पादन किया है। हमारा विश्वास है कि वैद्य समाज, आयुर्वेद के शिक्षक और विद्यार्थी तथा साथ ही साथ सर्वसाधारण जनता के लिए भी यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी होगा।

मूल्य--५।।)

त्रिदोष-तत्त्व विमर्श

ले० वैद्य रामरक्ष पाठक, आयुर्वेदाचार्य

इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के आधारभूत त्रिदोष-सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन विधिवत किया गया है। मानव शरीर के अनेकानेक द्रव्यों में वात-पित्त-कफ प्रधान हैं, इसी तथ्य को केन्द्रित कर विद्वान् लेखक ने त्रिदोष तत्त्व के विभिन्न स्वरूपों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है, जिससे ग्रन्थ की शास्त्रीयता निखर गयी है। प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन के बाद त्रिदोष तत्त्व और पंच महाभूत का ज्ञान सरलता से हो जाता है। आयुर्वेद के जिज्ञासुओं के लिए पुस्तक बहुत उपादेय है। मूल्य--२।।=)

किशोर-रक्षा और ब्रह्मचर्य

किशोर-बालकों को हस्तमैथुन-रूपी सर्वस्व नाशकारी व्याधि से बचाने के लिए सफल उद्योग किया गया है।

मूल्य--।≡)

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,
कलकत्ता : पटना : झांसी : [illegible]पुर

13007

1

विश्वविद्याल

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के बिक्री केन्द्रों के लिये

वैद्यों की आवश्यकता

१. आयुर्दाचार्य पास वैद्य को प्रथम दो मास के ट्रेनिंग काल में ६०) साठ रुपया मासिक वेतन मिलेगा। असफल होने पर वापिस लौटा दिया जावेगा। सफल होने पर तथा व्यापारिक योग्यता और अनुभव ठीक होने पर प्रारम्भ में १००) सौ रुपया मासिक नहीं तो प्रारम्भ में ८०) अस्सी रुपया मासिक वेतन मिलेगा। कार्य सुचारु होने पर साल भर बाद तरक्की होगी और उन्हें विक्री केन्द्र का अध्यक्ष बनाया जा सकेगा। साल भर काम करने पर एक मास का सवैतनिक अवकाश मिलेगा। रहने का मकान प्रायः विक्री केन्द्र की तरफ से ही दिया जाता है।

२. आयुर्वेद विशारद को प्रथम दो मास की ट्रेनिंग में पचास रुपया मिलेगा। सफल होने पर नियुक्ति होगी। व्यापारिक योग्यता तथा अनुभव होने पर ७०) सत्तर रुपया मासिक नहीं तो प्रारम्भ में ६०) साठ रुपया मासिक मिलेगा। उत्तम कार्य होने पर सालभर बाद तरक्की और एक साल बाद एक मास का सवैतनिक अवकाश मिलेगा। सहायक के स्थान पर कार्य करना होगा। प्राचीन होने पर तथा निरन्तर उत्तम कार्य होने पर अध्यक्ष का पद भी मिल सकेगा।

३. वैद्य को पीयूष पाणि होने के साथ-साथ रोगी या ग्राहक को समझाने में कुशल होना आवश्यक है।

४. व्यापारी बुद्धि हो, आलस्य न हो, रेलवे से माल छुड़ाना, चुंगी भरना, वापिसी चुंगी लेना, अदालती काम करना, व्यापारियों को एजेन्ट बनाना, वैद्यों को सदस्य बनाना, स्थानीय विज्ञापन-प्रचारादि करना आदि काम करना होगा।

५. रोकड़ वही, खाता, स्टाक रजिष्टर आदि लिखने में निपुण, बीजक, कैशमेमो बनाने में पटु होना चाहिये।

६. दुकान पर एक साथ ३-४ घंटे तक जमकर बैठने का अभ्यास होना, सदाचारी और निर्व्यसनी होना आदि गुण होना चाहिये। ईमानदार, सच्चे और परिश्रमी होना आवश्यक है।

७. उम्र २५ वर्ष से ऊपर हो। परीक्षा पास करने के बाद कम से कम ३ साल कार्य करने का अनुभव हो।

८. २००) रु० की नकद जमानत, और उत्तरदायित्व पूर्वक कार्य करने के बाबत दो प्रतिष्ठित सज्जनों की लिखित जमानत दिलानी होगी,

९. सालभर में एक मास की छुट्टी में घर जाने के अतिरिक्त अनावश्यक छुट्टी न लें।

१०. विक्री केन्द्र के अबतक के सभी नियमों तथा भविष्य में बनने वाले सभी नियमों को मानना होगा।

११. जो उत्तरदायित्व सौंपा जावेगा उसे पूर्ण जिम्मेवारी के साथ निभाना आवश्यक होगा।

पत्र व्यवहार का पता :—*वैद्य रामनारायण शर्मा*

मैनेजिंगडायरेक्टर :—**श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०**

गुसाईंपुरा, झाँसी (यू० पी०)

सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः

सर्व साधारण के सुख और आरोग्य की शुभ कामना एवं इसके लिए सदुद्योग ही "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,, के आदर्श और मूल उद्देश्य हैं। इस उद्देश्य के वशीभूत होकर ही हमने अनेकानेक विशुद्ध आयुर्वेदीय तथा अचूक गुणकारी **बैद्यनाथ प्राणदा** जैसी पेटेण्ट औषधियों का निर्माण तथा प्रचार ही नहीं किये हैं; बल्कि ऐसी सद्यः गुणकारी जड़ी जैसे-- **चित्रकूट की दमे की दवा, सर्पगन्धा, गुड़मार बूटी** जनकल्याणार्थ प्रचार-प्रसार किया है, ये वनस्पतियाँ अपने गुणधर्मानुसार आश्चर्यजनक फायदा करती हैं। दमे की दवा तो हमारे पटना, कलकत्ता, झांसी और नागपुर कार्यालय द्वारा भाद्रपद और आश्विन में प्रतिवर्ष मुफ्त वितरण की जाती है, इससे हजारों की संख्या में लोग एकत्रित होकर लाभ उठाते हैं। और जो अपने घर पर ही सेवन करना चाहते हैं, वे पोष्टेज मात्र खर्च ।≡) भेजकर मंगा करके सेवन करते हैं। इन दवाओं के चमत्कार के सम्बन्ध में हम अपनी तरफ से कुछ न कहकर एक भुक्त भोगी रोगी का पत्र नीचे ज्यों का त्यों प्रकाशित करते हैं।

श्रीमान् वैद्यराज जी
अमखेरा,
सादर प्रणाम
ता० १३-९-५२

"निवेदन है कि गत दो साल से आपके यहाँ से दमा की चित्रकूट वाली दवा मंगा रहा हूं। इसके सेवन से मुझे प्रथमवर्ष ही आश्चर्यजनक लाभ हुआ। इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपका कार्यालय सदा दीर्घायु--चिरस्थायी रहे। अस्तु, सात आने की टिकट दमा की दवा (चित्रकूटवाली) के वास्ते तथा चौदह आने की टिकट गुड़भार-पत्ती के लिए भेज रहा हूँ। कृपया उक्त दवाएँ शीघ्र भेजें जिससे क्वार (आश्विन) की पूर्णिमा की रात्रिमें दमे की दवा का उपयोग कर सकूं। लगातार चार साल तक मुझे इसका सेवन करना है। मधुमेह के लिए गुड़मार बूटी का बैद्यनाथ पंचाँग में काफी प्रशंसा लिखी है, अतः १० तोला गुड़मार की पत्ती भी भेज दें।,,

आपका--
राम चरण लाल शर्मा

हमारी लोकप्रियता और सफलता के प्रमाण ये हमारे :--

४--निर्माण-केन्द्र, ५५--निजी बिक्री-केन्द्र, १५--हजार एजेन्सियाँ।

तथा लाखों-लाख वे नर-नारी जिनको कभी, किसी रूप में भी, श्री बैद्यनाथ दवाओं ने लाभान्वित किया हो।

[देशी दवाओं का सबसे बड़ा विश्वसनीय कारखाना]

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,

कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर।

वैद्यों के लिए विशेष सुविधा

श्री बद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के कार्यालय से जो वद्य महानुभाव दव खरीदते थे उन्हें दवाओं की बड़ी पैकिंग नहीं होने के कारण इनका मूल्य अधि देना पड़ता था। अतः उनका विशेष आग्रह रहता था कि खास-खास दवाओं क बड़ी पैकिंग भी बनाई जाय। वैद्य महानुभावों के इस आग्रह का विशेष ख्या करके खास-खास दवाओं की हमने बड़ी पैकिंग भी बनाई है। अतः वैद्य महानुभा अब बड़ी पैकिंग में इन औषधों को खरीदकर लाभ उठावें। जिन दवाओं क पैकिंग बढ़ाई गयी हैं, वे निम्न लिखित हैं।

अशोकारिष्ट
अश्वगन्धारिष्ट
कुमारी आसव
दशमूलारिष्ट
द्राक्षासव
लौहासव
सारिबाद्यरिष्ट
त्रिफला चूर्ण
महासुदर्शन चूर्ण
लवणभास्कर चूर्ण
महानारायण तैल
चालमूंगरा तैल
च्यवनप्राश
अभ्रक भस्म साधारण
कपर्दक भस्म
ताम्र भस्म
प्रवाल भस्म
प्रवाल पिष्टी
वंग भस्म

मण्डूर भस्म
मुक्ताशुक्ति भस्म
मुक्ताशुक्ति पिष्टी
शुक्ति भस्म
लौह भस्म साधारण
शंख भस्म
शृङ्ग भस्म
सिद्ध प्राणेश्वर रस
नवायस लोह
पुनर्नवा मण्डूर
अग्नितुण्डी बटी
चन्द्रप्रभा बटी
रजःप्रवर्तिनी बटी
लवंगादि बटी
संजीवनी बटी
सौभाग्य बटी
शंख बटी
महाशंख बटी

योगराज गुग्गुलु
महायोगराज गुग्गुलु
कैशोर गुग्गुलु
स्वर्णमाक्षिक भस्म
हरिताल(गोदन्ती) भ
अमरसुन्दरी (बटी)
आनन्द भैरव रस(ज्व
इच्छाभेदी रस
कफकेतु रस
चन्द्रामृत रस
चौसठ प्रहरी पीपल
ज्वरांकुश रस
प्रताप लंकेश्वर रस
मृत्युञ्जय रस
महामृत्युञ्जय रस
रस पीपरी
लक्ष्मीविलास रस—नार
श्वासकुठार रस

स्थाई ग्राहकों को इन औषधों पर नियमानुकूल कमीशन भी दिया जाता है।

देशी दवाओं का सबसे बड़ा विश्वासी कारखाना।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन

कलकत्ता • पटना • झांसी • नागपु

Compiled
1999-2000